



कणाद-मुनि-प्रणीतम् ।

# वैशेषिकदर्शनम् ।

शङ्कर-मिश्रकृत-वैशेषिक-सूत्रोपस्कार  
जयनारायण-तर्कपञ्चानन-कृत-कणादसूत्रविद्वत्तिभ्यां  
सहितम् ॥

श्रीयुक्त-जयनारायण-तर्कपञ्चाननेन  
परिशोधितम् ॥

कलिकातानगरे.

व्याप्तिसूत्रमिसन् यन्ने यन्त्रोऽयं मुद्राङ्कितोऽभूत् ।

शकाब्दाः १७८३ इ० ३८६१



# वैशेषिकदर्शनस्य

निर्घण्टपत्रम् ।

प्रथमाध्यायः ।

| प्रकरणम् ।                                       | पङ्क्ताङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|--|----------------|-----------------|
| मङ्गलाचरणधर्मनिरूपणप्रतिज्ञादि.. .. .            | ३              | २               |
| धर्मलक्षणम् .. .. .                              | ४              | २               |
| वेदप्रमाणकथनम् .. .. .                           | ८              | २               |
| प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धप्रदर्शनम् पार्थीद्वेषश्च .. | १०             | २               |
| द्रव्यविभागसूत्रम् .. .. .                       | १६             | २               |
| गुणविभागसूत्रम् .. .. .                          | २१             | २               |
| कर्मविभागसूत्रम् .. .. .                         | २३             | २               |
| द्रव्यादित्रयसाधर्म्यकथनम् .. .. .               | २७             | २               |
| कर्मणोऽद्रव्यगुणवैधर्म्यकथनम् .. .. .            | २८             | ४               |
| द्रव्यस्य गुणकर्मवैधर्म्यकथनम् .. .. .           | ३०             | २               |
| द्रव्यलक्षणम् .. .. .                            | ३२             | २               |
| गुणलक्षणम् .. .. .                               | ३३             | २               |
| कर्मलक्षणम् .. .. .                              | ३५             | २               |
| द्रव्यगुणकर्मणां कारणमुखेन साधर्म्यकथनम् ..      | ३६             | २               |
| एकस्मिन् कार्ये बहूनामारम्भकत्वम् .. .. .        | ३८             | ३               |
| प्रथमाध्यायस्य प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।             |                |                 |
| कार्यकारणभावव्यवस्थापनम् .. .. .                 | ४७             | २               |
| सामान्यपदार्थस्य लक्षणादिकथनम् .. .. .           | ५३             | २               |

प्रकरणम् ।

श्लोकाङ्काः । पङ्क्त्याङ्काः ।

|                                       |    |   |
|---------------------------------------|----|---|
| सत्तासामान्यव्यवस्थापनादिकम् .. .. .  | ५६ | ५ |
| द्रव्यत्वसामान्यव्यवस्थापनादि .. .. . | ६१ | ५ |
| गुणत्वसामान्यव्यवस्थापनादि .. .. .    | ६२ | ५ |
| कर्मत्वजातिव्यवस्थापनादि .. .. .      | ६३ | ५ |
| सत्ताया नानात्वनिराकरणम् .. .. .      | ६४ | ५ |

प्रथमाध्यायसमाप्तिः ।

|                             |    |   |
|-----------------------------|----|---|
| पृथिव्या लक्षणम् .. .. .    | ६५ | ५ |
| जललक्षणम् .. .. .           | ६६ | ५ |
| तेजोलक्षणम् .. .. .         | ७३ | ५ |
| वायुलक्षणादि .. .. .        | ७५ | ५ |
| वायुसाधनप्रकरणम् .. .. .    | ७६ | ५ |
| ईश्वरानुमानप्रकरणम् .. .. . | ८३ | ५ |
| आकाशनिरूपणम् .. .. .        | ८६ | ५ |

द्वितीयाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।

|   |     |   |
|---|-----|---|
| गन्धस्य स्वभावविकल्पोपाधिकत्वादिकथनम् .. .. .     | १०५ | ५ |
| उष्णस्पर्शस्य तेजोमात्रनिष्ठत्वकथनम् .. .. .      | १०७ | ५ |
| शीतस्पर्शस्य जलमात्रवृत्तित्वाप्रतिपादनम् .. .. . | १०७ | ५ |
| काकनिरूपणम् .. .. .                               | १०८ | ५ |
| दिशोलक्षणादिकम् .. .. .                           | ११४ | ५ |
| शब्दपरीक्षार्थसंशयव्युत्पादनम् .. .. .            | १२० | ५ |
| शब्दव्यवस्थापनादि .. .. .                         | १२५ | ५ |

द्वितीयाध्यायसमाप्तिः ।

|  |     |   |
|--|-----|---|
| आत्मपरीक्षाप्रकरणम् .. .. .                | १३६ | ५ |
| व्याप्तिज्ञानस्य न्यायोपयोगित्वादि .. .. . | १४६ | ५ |
| प्रसङ्गतोहेत्वाभासनिरूपणम् .. .. .         | १५५ | ५ |

प्रकरणम् । पृष्ठाङ्काः । पङ्क्त्याङ्काः ।

आत्मसाधने ज्ञानहेतुरनाभासत्वकथनम् .. १६१ २

परमात्मनमानप्रकारः .. १६४ २

द्वितीयाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

मनोनिरूपणम् .. १६५ २

आत्मसाधकनिष्क्रान्तरकण्ठगादि .. १७० २

नित्यज्ञानस्यात्मतानिराकरणम् .. १८७ २

आत्मनानात्वप्रकरणम् .. १९० २

द्वितीयाध्यायसमाप्तिः ।

परमायोर्मूलकारणताव्यवस्थापनादि .. १९३ २

परमायोरनित्यतानिराकरणादि .. १९६ २

परमायोर्द्विन्द्रियत्वोपपादनादि .. १९८ २

गुणप्रत्यक्षताप्रकरणम् .. २०१ २

परमायुरसादीनामप्रत्यक्षता .. २०२ २

गुरुत्वादेरप्रत्यक्षताप्रतिपादनम् .. २०४ २

द्विन्द्रियग्राह्यगुणकथनम् .. २०५ २

अयोग्यवृत्तीनां तेषामप्रत्यक्षत्वप्रतिपादनम् .. २०६ २

सत्तागुणत्वयोः सर्वेन्द्रियग्राह्यताप्रतिपादनम् .. २०७ २

चतुर्थाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

अनित्यद्रव्यविभागः .. २१० २

शरीरस्य चातुर्भौतिकत्वपाञ्चभौतिकत्वयोर्निराकरणम् २१० २

शरीरस्य भूतत्रयारब्धतानिराकरणम् .. २११ २

शरीरविभागः .. २१२ २

अयोनियजशरीरविशेषोत्पत्तिप्रकारः .. २१४ २

अयोनियजशरीरविशेषसत्त्वे म्रानादिकथनम् .. २१६ २

चतुर्थाध्यायसमाप्तिः ।

| प्रकरणम् ।   | प्रश्नाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|--|----------------|-----------------|
| कर्मपरीक्षारम्भः प्रयत्ननिष्पाद्यकर्मप्रतिपादनम्   | २२०            | २               |
| चेष्टाधीनकर्मप्रतिपादनम् .. .. .   | २२१            | २               |
| चेष्टाव्यतिरेकेण जायमानकर्मप्रतिपादनम् ..  | २२१            | ३               |
| मूषकेन सहोत्पततो हस्तस्य कर्मणि कारणाभि-<br>धानम् .. .. .  | २२३            | २               |
| प्रतिबन्धकाभावसङ्गतस्य गुरुत्वस्य पतनकारण-<br>त्वाभिधानम् .. .. .  | २२५            | २               |
| लोष्टादिक्रियविशेषे हेतुविशेषकथनम् .. ..   | २२६            | २               |
| व्याततायिविधजनककर्मणि पुण्यपापाहेतुत्वकथनम्  | २२८            | २               |
| यत्नानधीनकर्माकथनम् .. .. .  | २२८            | ३               |
| अभिमन्वितकास्यादेस्तस्कराभिमुखग-<br>मनस्य सूच्यादीनामयस्कान्ताभिमुख-<br>गमनस्य दृग्वादेस्तृणकान्ताभिमुख-<br>गमनस्य चादृष्टाधीनत्वकथनम् | २२८            | ३               |
| वागदोषादिस्थले उपरमपर्यन्तं कर्मणां नानात्वम्  | २३१            | २               |
| वेगजनकर्मकथनम् .. .. .   | २३२            | ४               |
| वेगनुशानन्तरशरादिपतने हेतुकथनम् .. ..  | २३३            | २               |
| पञ्चमाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।  |                |                 |
| नोदनादेः कर्महेतुत्वकथनम् .. .. .  | २३५            | २               |
| भृकम्पादौ हेतुविशेषकथनम् .. .. .   | २३६            | १               |
| ब्रवद्रव्यकर्मप्ररोक्षा .. .. .  | २३६            | ३               |
| जलादीनां स्यन्दने हेतुविशेषकथनम् .. ..   | २३७            | १               |
| भूखजलस्योर्द्धगमने हेतुकथनम् .. .. .   | २३७            | ३               |
| दक्षमूले सित्तजलस्य बुद्ध्याभ्यन्तरेणोर्द्धगमने हेतु-<br>विशेषकथनम् .. .. .  | २३८            | २               |

| प्रकरणम् ।   | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|--|---------------|-----------------|
| हिमकरकादेहत्वत्तिप्रकारः .. .. .   | २४०           | २               |
| वचनिर्वाणे हेतुकथनम् .. .. .   | २४२           | ३               |
| दिग्दाहभाष्मादौ हेतुविशेषकथनम् .. .. .   | २४३           | २               |
| उर्ध्वज्वलनादौ हेतुविशेषकथनम् .. .. .  | २४४           | २               |
| इन्द्रियसंयोगजनकमनःकर्मणि हेतुविशेषकथनम्   | २४४           | ३               |
| मनःकर्मणि मानकथनम् .. .. .   | २४५           | २               |
| मनसः स्वीर्यसम्पादने हेतुविशेषकथनम् .. .. .  | २४६           | २               |
| मरणावस्थायां मनसो देखदुत्क्रमणे देहान्तर-<br>प्रवेशे च हेतुविशेषकथनम् .. .. .                    | २४८           | २               |
| तमसोऽभावस्वरूपत्वकथनम् .. .. .   | २५०           | २               |
| आकाशादीनां निष्क्रियत्वकथनम् .. .. .   | २५१           | ३               |
| गुणादिसम्बन्धस्य समवायस्याजन्यत्वकथनम् .. .. .   | २५२           | ३               |
| गुणादीनामसमवायिकारणताकथनम् .. .. .   | २५३           | २               |
| पञ्चमाध्यायसमाप्तिः ।  |               |                 |
| वेदप्रामाण्योपपादनम् .. .. .   | २५६           | २               |
| धर्मादीनां स्वाधिकरणे स्वर्गादिजननम् .. .. .   | २५८           | ३               |
| आज्ञादौ दुष्टब्राह्मणभोजनायां फलाभावः .. .. .  | २६१           | २               |
| दुष्टब्राह्मणलक्षणम् .. .. .   | २६१           | ३               |
| दुष्टसंसर्गादपि दोषोत्पत्तिः .. .. .   | २६२           | २               |
| दुष्टब्राह्मणद्वारा कर्मसम्पादने पुनस्तत्कर्मणः<br>अदुष्टद्वारा कर्तव्यताकथनम् .. .. .           | २६३           | २               |
| उत्तमालाभे हीनसमादुष्टब्राह्मणग्रहणम् .. .. .  | २६३           | ३               |
| हीनसमविश्लेष्यः प्रतिग्रहे फलतारतम्यम् .. .. .   | २६४           | २               |
| प्राणसंशये परस्परग्रहणे न दोषः एवं तद्ग्रहण-<br>प्रतिकूलस्य बन्धे न धर्महानिर्न वाऽधर्मात्पत्तिः | २६५           | २               |



| प्रकरणम् ।  | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्तयङ्काः । |
|---|---------------|----------------|
| तत्र हीनसमविशिष्टेषु विशेषः .. .. .               | २६५           | ३              |
| षष्ठाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।                  |               |                |
| वैधकर्मफलविवेचनम् .. .. .                         | २६८           | २              |
| अदृष्टफलककतिपयकर्मप्रदर्शनम् .. .. .              | २६९           | २              |
| अधर्मासाधनकथनम् .. .. .                           | २७१           | २              |
| सुखसुचिगिरूपणम् .. .. .                           | २७२           | २              |
| संयमस्य कर्मसहकारिताकथनम् .. .. .                 | २७३           | ५              |
| दोषनिदानकथनम् .. .. .                             | २७५           | २              |
| दोषाणां प्रवृत्तिद्वारेण धर्मादिहेतुत्वम् .. .. . | २७८           | २              |
| धर्मादीनां प्रेत्यभावनिदानत्वकथनम् .. .. .        | २७८           | ३              |
| भोक्षोपायकथनम् .. .. .                            | २७९           | २              |
| षष्ठाध्यायसमाप्तिः ।                              |               |                |
| निवृत्तानित्यरूपादिकथनम् .. .. .                  | २८२           | २              |
| केवाचित् कारुण्यगुणपूर्वकत्वं केवाचित्पाकजत्वञ्च  | २८५           | २              |
| पार्थिवपरिमाणरूपादीनां पाकजत्वसाधनम् .. .. .      | २८३           | १              |
| परिमाणपरीक्षा .. .. .                             | २८४           | २              |
| परिमाणानित्यत्वादि .. .. .                        | ३०३           | २              |
| आकाशादौ परिमाणविशेषकथनम् .. .. .                  | ३०६           | २              |
| मनसो महत्त्वभावः .. .. .                          | ३०७           | २              |
| दिगादीनां परममहत्त्वकथनम् .. .. .                 | ३०८           | २              |
| सप्तमाध्यायप्रथमाह्निकसमाप्तिः ।                  |               |                |
| सङ्ख्यापरीक्षा .. .. .                            | ३१०           | २              |
| पृथक्त्वपरीक्षा .. .. .                           | ३११           | २              |
| गुणादीनां निःसंख्यत्वम् .. .. .                   | ३१४           | २              |
| गुणादावेकत्वादिवुद्धेर्भ्रमत्वम् .. .. .          | ३१५           | २              |

प्रकरणम् ।

प्रश्नाङ्काः । पङ्क्त्याङ्काः ।

|   |     |   |
|---|-----|---|
| अवयवावयविनोरभेदनिराकरणम् .. ..            | ३१६ | २ |
| संयोगपरीक्षारम्भः .. ..                   | ३२४ | २ |
| विभागे तदतिदेशः .. ..                     | ३२७ | २ |
| अवयवावयविनोः संयोगविभागाभावः .. ..        | ३३३ | ५ |
| पदपदार्थयोः साङ्केतिक सम्बन्धसाधनप्रकरणम् | ३३४ | २ |
| परत्वापरत्वपरीक्षा .. ..                  | ३४१ | ५ |
| समवायपरीक्षा .. ..                        | ३४८ | ४ |

सप्तमाध्यायसमाप्तिः ।

|   |     |   |
|---|-----|---|
| बुद्धिपरीक्षारम्भः .. ..                  | ३५५ | २ |
| प्रत्यक्षहेतुसन्निकर्षविशेषकथनम् .. ..    | ३६० | २ |
| विशिष्टप्रत्यक्षे हेतुविशेषादिकथनम् .. .. | ३६४ | ४ |

अष्टमाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

|  |     |   |
|--|-----|---|
| अर्थपदपरिभाषा .. ..  | ३६६ | ३ |
| इन्द्रियविशेषाणामुपादानविशेषस्य ग्राह्यविशेषस्य<br>च कथनम् .. .. | ३७१ | २ |

अष्टमाध्यायसमाप्तिः ।

|                                       |     |   |
|---------------------------------------|-----|---|
| अभावप्रत्यक्षकथने भूमिका .. ..        | ३७३ | २ |
| ध्वंसप्रत्यक्षसामग्रीकथनम् .. ..      | ३७८ | २ |
| प्रागभावे तदतिदेशः .. ..              | ३७९ | २ |
| अन्योन्याभावप्रत्यक्षप्रकारः .. ..    | ३८० | २ |
| अत्यन्ताभावप्रत्यक्षप्रकारः .. ..     | ३८१ | २ |
| योगजसन्निकर्षजन्यप्रत्यक्षकथनम् .. .. | ३८६ | २ |

नवमाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

|                                    |     |   |
|------------------------------------|-----|---|
| लैङ्गिकज्ञाननिरूपणम् .. ..         | ३९१ | २ |
| शाब्दबोधस्यानुमितावन्तर्भावः .. .. | ३९७ | २ |

| प्रकरणम् ।                                 | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|--|---------------|-----------------|
| उपमित्यादीनामनुमितावन्तर्भावः .. .. .      | ४०३           | २               |
| स्मृतिनिरूपणम् .. .. .                     | ४०८           | २               |
| स्वप्नहेतुनिरूपणम् .. .. .                 | ४०९           | २               |
| स्वप्नान्तिकज्ञानहेतुकथनम् .. .. .         | ४११           | २               |
| भ्रमज्ञाने हेतुकथनम् .. .. .               | ४१२           | ३               |
| अविद्यालक्षणम् .. .. .                     | ४१३           | २               |
| विद्यालक्षणम् .. .. .                      | ४१३           | ३               |
| आर्षज्ञानविशेषहेतुकथनम् .. .. .            | ४१४           | २               |
| नवमाध्यायसमाप्तिः ।                        |               |                 |
| सुखदुःखयोर्भेदप्रतिपादनम् .. .. .          | ४१६           | २               |
| तयोर्ज्ञानानन्तर्भावकथनम् .. .. .          | ४१८           | २               |
| शरीरावयवाणां परस्परभेदसंस्थापनम् .. .. .   | ४२२           | २               |
| दशमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।            |               |                 |
| त्रिविधानां कारणानां विशेषविवेचनम् .. .. . | ४२४           | २               |
| आभायप्रामाण्यस्य दार्ढ्यसम्पादनम् .. .. .  | ४३०           | २               |

दशमाध्यायसमाप्तिः ।

वैशेषिकसूत्राणां निर्घण्टपत्रं समाप्तम् ॥ ० ॥

*Table of Contents.*

**xi**

**CHAPTER VI.**

**SUCCESSIVE PARTIAL DIFFERENTIATION.**

|   | PAGE |
|---|------|
| The Order of Differentiation is indifferent in Independent Variables, . . . . .       | 145  |
| Condition that $Pdx + Qdy$ should be an exact Differential, . . . . .                 | 146  |
| Euler's Theorem of Homogeneous Functions, . . . . .                                   | 148  |
| Successive Differential Coefficients of $\phi(x + \alpha t, y + \beta t)$ , . . . . . | 148  |
| Examples, . . . . .   | 150  |

**CHAPTER VII.**

**LAGRANGE'S THEOREM.**

|                               |     |
|-------------------------------|-----|
| Lagrange's Theorem, . . . . . | 151 |
| Laplace's Theorem, . . . . .  | 154 |
| Examples, . . . . .           | 155 |

**CHAPTER VIII.**

**EXTENSION OF TAYLOR'S THEOREM.**

|  |     |
|--|-----|
| Expansion of $\phi(x + h, y + k)$ , . . . . .        | 156 |
| Expansion of $\phi(x + h, y + k, z + l)$ , . . . . . | 159 |
| Symbolic Forms, . . . . .                            | 160 |
| Euler's Theorem, . . . . .                           | 162 |

**CHAPTER IX.**

**MAXIMA AND MINIMA FOR A SINGLE VARIABLE.**

|  |     |
|--|-----|
| Geometrical Examples of Maxima and Minima, . . . . .                   | 164 |
| Algebraic Examples, . . . . .  | 165 |
| Criterion for a Maximum or a Minimum, . . . . .                        | 169 |
| Maxima and Minima occur alternately, . . . . .                         | 173 |
| Maxima or Minima of a Quadratic Fraction, . . . . .                    | 177 |
| Maximum or Minimum Section of a Right Cone, . . . . .                  | 181 |
| Maxima or Minima of an Implicit Function, . . . . .                    | 185 |
| Maximum or Minimum of a Function of Two Dependent Variables, . . . . . | 186 |
| Examples, . . . . .  | 188 |

**CHAPTER X.**

**MAXIMA AND MINIMA OF FUNCTIONS OF TWO OR MORE VARIABLES.**

|  |     |
|--|-----|
| Maxima and Minima for Two Variables, . . . . .                           | 191 |
| Lagrange's Condition in the case of Two Independent Variables, . . . . . | 191 |

|  | PAGE |
|--|------|
| Maximum or Minimum of a Quadratic Fraction, . . . . .                    | 194  |
| Application to Surfaces of Second Degree, . . . . .                      | 196  |
| Maxima and Minima for Three Variables, . . . . .                         | 198  |
| Lagrange's Conditions in the case of Three Variables, . . . . .          | 199  |
| Maximum or Minimum of a Quadratic Function of Three Variables, . . . . . | 200  |
| Examples, . . . . .  | 203  |

## CHAPTER XI.

## METHOD OF UNDETERMINED MULTIPLIERS APPLIED TO MAXIMA AND MINIMA.

|  |     |
|--|-----|
| Method of Undetermined Multipliers, . . . . .                                | 204 |
| Application to find the principal Radii of Curvature on a Surface, . . . . . | 208 |
| Examples, . . . . .  | 210 |

## CHAPTER XII.

## ON TANGENTS AND NORMALS TO CURVES.

|   |     |
|---|-----|
| Equation of Tangent, . . . . .  | 212 |
| Equation of Normal, . . . . .   | 215 |
| Subsagent and Subnormal, . . . . .                                      | 215 |
| Number of Tangents from an External Point, . . . . .                    | 219 |
| Number of Normals passing through a given Point, . . . . .              | 220 |
| Differential of an Arc, . . . . .                                       | 220 |
| Angle between Tangent and Radius Vector, . . . . .                      | 222 |
| Polar Subsagent and Subnormal, . . . . .                                | 223 |
| Inverse Curves, . . . . .   | 225 |
| Pedal Curves, . . . . .   | 227 |
| Reciprocal Polars, . . . . .  | 228 |
| Pedal and Reciprocal Polar of $r^m = a^m \cos m\theta$ , . . . . .      | 230 |
| Intercept between point of Contact and foot of Perpendicular, . . . . . | 232 |
| Direction of Tangent and Normal in Vectorial Coordinates, . . . . .     | 233 |
| Symmetrical Curves, and Central Curves, . . . . .                       | 236 |
| Examples, . . . . .   | 238 |

## CHAPTER XIII.

## ASYMPTOTES.

|   |     |
|---|-----|
| Points of Intersection of a Curve and a Right Line, . . . . .                       | 240 |
| Method of Finding Asymptotes in Cartesian Coordinates, . . . . .                    | 242 |
| Case where Asymptotes all pass through the Origin, . . . . .                        | 245 |
| Asymptotes Parallel to Coordinate Axes, . . . . .                                   | 245 |
| Parabolic and Hyperbolic Branches, . . . . .  | 246 |
| Parallel Asymptotes, . . . . .  | 247 |
| The Points in which a Cubic is cut by its Asymptotes lie in a Right Line, . . . . . | 249 |
| Asymptotes in Polar Curves, . . . . .   | 250 |
| Asymptotic Circles, . . . . .   | 252 |
| Examples, . . . . .   | 254 |

# वैशेषिकसूत्रोपस्कारस्य

निर्घण्टपत्रम् ।

प्रथमाध्यायः ।

| प्रकरणम् ।  | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---------------|-----------------|
| मङ्गलाचरणादि .. .. .                                      | १             | ५               |
| धर्मव्याख्यानप्रतिज्ञावतरणिका .. .. .                     | २             | २               |
| मङ्गलविचारः .. .. .                                       | ३             | १४              |
| श्रुतेरप्रामाण्यसाधिकानां बौद्धोक्तानां युक्तीनां कथनम् ७ |               | ११              |
| तत्खण्डनम् .. .. .  | ७             | १८              |
| मुक्तिविचारः .. .. .                                      | १०            | १३              |
| एवकारार्थविचारः .. .. .                                   | १७            | १३              |
| कर्मविचारः .. .. .  | २३            | १५              |
| एकतन्तुकपटनिराकरणम् .. .. .                               | ४०            | ४               |

प्रथमाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

|   |    |    |
|---|----|----|
| कार्यकारणभावसिद्धिप्रकारः .. .. .               | ४७ | ६  |
| सांख्यानं सत्कार्यवादस्य निराकरणप्रकारः .. .. . | ४८ | ८  |
| जातिविचारः .. .. .                              | ५२ | २  |
| द्रव्यत्वादिजातिसिद्धिः .. .. .                 | ५६ | ११ |
| आदित्यगत्यनुमान प्रकारः .. .. .                 | ५७ | २० |

प्रथमाध्यायसमाप्तिः ।

|                                  |    |    |
|----------------------------------|----|----|
| एधिबोद्धव्यानि .. .. .           | ६५ | ७  |
| व्यतिरेकिहेतुस्थले दोषाः .. .. . | ६६ | १० |

| प्रकरणम् ।                                    | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---------------|-----------------|
| तत्परीहारः .. .. .                            | ६७            | १२              |
| जले शुक्लरूपमधुररसशीतलस्यर्णव्यवस्थापनम् ..   | ६९            | १९              |
| तेजस उद्भूतरूपस्पर्शादिभेदेन चातुर्विध्यकथनम् | ७४            | ७               |
| वायुलक्षणानि .. .. .                          | ७५            | ५               |
| आकाशे शुक्लनीलरूपभ्रान्तैर्ध्वजकथनम् .. ..    | ७६            | ३               |
| सुवर्णादीनां तेजस्वसिद्धिप्रकारः .. .. .      | ७८            | ४               |
| वायोरनुमानप्रकारः .. .. .                     | ८१            | १३              |
| वायोरतीन्द्रियत्वव्यवस्थापनम् .. .. .         | ८२            | १७              |
| परमाणुसिद्धिप्रकारः .. .. .                   | ८६            | ११              |
| ईश्वरानुमानप्रकारः .. .. .                    | ९३            | १२              |
| क्षित्यादिगुणकथनम् .. .. .                    | १०४           | ५               |

## द्वितीयाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

|   |     |    |
|---|-----|----|
| महाकालसिद्धिप्रकारः .. .. .                           | १०८ | १४ |
| तदेकत्वव्यवस्थापनम् .. .. .                           | १११ | ६  |
| दिक्सिद्धिप्रकारः .. .. .                             | ११४ | ३  |
| शब्दे विप्रतिपत्तयः पञ्च .. .. .                      | ११९ | १६ |
| न्यायभाष्योक्तसंशयपञ्चविधत्ववार्त्तिकोक्तत्रैविध्ययोः |     |    |

|                                       |     |    |
|---------------------------------------|-----|----|
| खण्डनम् एकविधत्वव्यवस्थापनञ्च .. .. . | १२१ | ३  |
| संशयलक्षणकष्टानुम् .. .. .            | १२१ | १७ |
| स्फोटवादनिराकरणम् ... .. .            | १२५ | ९  |
| शब्दस्यैर्थाविचारः ... .. .           | १३६ | १० |

## द्वितीयाध्यायसमाप्तिः ।

|  |     |    |
|--|-----|----|
| प्रसङ्गाद्याप्तिनिरूपणम् ... .. .              | १४९ | ९  |
| उपाधिविचारः... .. .                            | १५२ | १९ |
| अनुकूलतर्काभावादेरसिद्धिमध्ये प्रवेशः ... .. . | १५८ | १८ |

| करणम् ।   | श्लोकाः । | पङ्क्तयः । |
|---|-----------|------------|
| हेतोः केवलान्वय्यादिभेदेन त्रैविध्यकथनम् ...                | १५६       | ३          |
| हेत्वात्मसस्य त्रैविध्यकथनम् ... ..                         | १६१       | ६          |
| तृणिकविज्ञानात्मवादस्य योगाचारोक्तस्य निरा-<br>करणम् ... .. | १६२       | ६          |
| तृतीयाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।                           |           |            |
| मनोऽणुत्वविचारः ... ..                                      | १६५       | १३         |
| देहात्मवादविचारः ... ..                                     | १७२       | ७          |
| तृतीयाध्यायसमाप्तिः   |           |            |
| परमाणौ विप्रुतिपत्तिनिरासः ... ..                           | १६४       | ८          |
| परमाणोरनित्यतायां हेतवः पराभिमतताः ...                      | १६६       | १५         |
| अनेकद्रव्यत्वस्य प्रत्यक्षोपयोगिताथवस्थापनम्                | १६८       | ६          |
| उद्भूतत्वादिनिर्वचनम् ... ..                                | २०२       | ११         |
| सङ्करस्य गुणगतजातिबाधकत्वाभाववादिमतम्...                    | २०२       | ६          |
| अभिभवस्वरूपकथनम् ... ..                                     | २०६       | ८          |
| मतविशेषे गुरुत्वस्य स्पर्शनप्रत्यक्षकथनम् ...               | २०४       | १२         |
| चतुर्थाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।                          |           |            |
| शरीरत्वस्वरूपनिर्वचनम् ... ..                               | २०८       | ७          |
| इन्द्रियत्वनिर्वचनम् ... ..                                 | २०८       | ६          |
| विषयत्वनिर्वचनम् ... ..                                     | २०९       | ३          |
| इन्द्रियाणां विशेषधर्मकथनम् .. ..                           | २१७       | २७         |
| घ्राणादीनां पार्थिवत्वसाधनप्रकारः ... ..                    | २१८       | ३          |
| एष्यव्यादीनां विषयाभिधानम् .. ..                            | २१८       | १०         |
| विषयरूपतेजससत्तुर्विध्यकथनम्... ..                          | २१६       | २          |
| चतुर्थाध्यायसमाप्तिः ।                                      |           |            |
| चेष्टास्वरूपकथनम् ... ..                                    | २२०       | १०         |



| प्रकरणम् ।                | पृष्ठाङ्कः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---------------------------|--------------|-----------------|
| पतनप्रतिबन्धककथनम् ... .. | २२५          | ५               |
| आसतायिककथनम् ... ..       | २२८          | १२              |
| कर्मनाशप्रकारः ... ..     | २३१          | ८               |

## पञ्चमाध्याय-प्रथमाङ्गिकसमाप्तिः ।

|  |     |    |
|--|-----|----|
| हिमकरकादौ द्रवत्वाभावरूपकम् .. ..          | २४० | ५  |
| जलमध्येदित्यतेजाऽनुप्रवेशे प्रमाणम् ... .. | २४२ | ६  |
| अपवर्गोत्पत्तिप्रकारः ... ..               | २४८ | १५ |

## पञ्चमाध्यायसमाप्तिः ।

|   |     |    |
|---|-----|----|
| वेदस्य लक्षणाभिधानम् ... ..                     | २५७ | ५  |
| पुत्रकृतश्राद्धादेः पितृस्वर्गादिजनकताविचारः .. | २५९ | ५  |
| क्षुधापीडितात्मादिरक्षणाथं सप्तमदिवसादौ शू-     |     |    |
| द्रादिधनापहारे दोषाभावः .. ..                   | २६४ | १० |
| आत्मरक्षणाथं परद्रव्यापहारसमये तत्प्रतिकूलस्य   |     |    |
| बधादौ दोषाभावे प्रमाणम् ... ..                  | २६५ | १० |

## षष्ठाध्याय-प्रथमाङ्गिकसमाप्तिः ।

|                                   |     |    |
|-----------------------------------|-----|----|
| प्रवृत्तिविशेष प्रतिपादनम् ... .. | २७८ | ८  |
| आत्मकर्मस्वरूपकथनम् ... ..        | २७९ | ११ |

## षष्ठाध्यायसमाप्तिः ।

|   |     |    |
|---|-----|----|
| गुणलक्षणानि ... ..                          | २८१ | ९  |
| नीलादेरेकताखण्डनम् ... ..                   | २८५ | १५ |
| नीलादेर्द्रव्यभिन्नत्वप्रतिपादनम् ... ..    | २८६ | ५  |
| चित्ररूपकथनम् ... ..                        | २८७ | ३  |
| कर्कशादौ माधुर्यवस्थापनम् ... ..            | २८७ | १३ |
| पाकजप्रक्रियाभिधानम् ... ..                 | २८८ | १५ |
| पार्थिवपरमाणुरूपादीनां पाकजत्वसिद्धिप्रकारः | १९३ | ६  |

| प्रकरणम् ।   | प्रष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|--|----------------|-----------------|
| परिमाणचतुर्विध्यादिकथनम् ... ..                      | २६५            | ३               |
| दीर्घत्वदिपरिमाणानङ्गीकर्तव्यं तम् ... ..            | २६५            | १२              |
| जन्यपरिमाणानां हेतुविशेषकथनम् ... ..                 | २६६            | ४               |
| परिमाणनाशकादिकथनम् ... ..                            | ३०३            | ५               |
| सप्तमः अध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।                  |                |                 |
| एकत्वसंख्यायाः सामान्यत्वखण्डनम् ... ..              | ३१०            | १४              |
| भूषणमतखण्डनम् ... ..                                 | ३११            | ६               |
| एथक्त्वस्यान्योन्याभावरूपताखण्डनम् ... ..            | ३११            | १५              |
| एथक्त्वस्य वैधर्म्यरूपतादिखण्डनम् ... ..             | ३१२            | ११              |
| द्वित्वाद्युत्पादविनाशक्रमविधानम् ... ..             | ३१८            | ११              |
| संयोगे प्रमाणाभिधानम् ... ..                         | ३२४            | १६              |
| संयोगजसंयोगोत्पत्तौ विशेषाभिधानम् ... ..             | ३२५            | ५               |
| विभूद्वयसंयोगनिराकरणम् ... ..                        | ३२६            | २               |
| संयोगनाशकहेतुकथनम् ... ..                            | ३२६            | १०              |
| संयोगस्य त्रयारम्भे निरपेक्षत्वं गुणाद्यारम्भे सापे- |                |                 |
| क्षत्वमव्याप्यत्वत्तत्त्वञ्च ... ..                  | ३२६            | १६              |
| विभागजविभागविभागादि... ..                            | ३२७            | १८              |
| विभागस्य संयोगाभावादिनाऽन्यथासिद्धत्वखण्डनम्         | ३२८            | ६               |
| विभागनाशककथनम् ... ..                                | ३२८            | १६              |
| विभागस्य कार्यविशेषकथनम् ... ..                      | ३२९            | १६              |
| विभागनाशे विशेषाभिधानम् ... ..                       | ३३१            | १६              |
| सङ्केतयाज्ञकहेतुगणाभिधानम् ... ..                    | ३३८            | ३               |
| जातिशक्तिवादिभेदमताभिधानम् ... ..                    | ३४०            | ७               |
| प्राभाकरमताभिधानम् ... ..                            | ३४०            | ८               |
| नैयायिकमताभिधानम् ... ..                             | ३४१            | ४               |

| प्रकरणम् ।   | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्याङ्काः । |
|--|---------------|------------------|
| परत्वापरत्वयोः सप्तधाविनाशप्रकारः ... ..   | ३४३           | १४               |
| कालिकपरत्वापरत्वनाशे विशेषः ... ..   | ३४६           | १५               |
| अयुतसिद्धेर्लक्षणम् ... ..   | ३४८           | १३               |
| समवायस्यैकत्वनिर्णयव्यवस्थापनम् .. ..  | ३४९           | ५                |
| समवायस्य नानात्वमनित्यस्येतिप्राभाकारमत-<br>खण्डनम् .. ..  | ३५३           | ८                |
| समवायस्यातीन्द्रियत्वव्यवस्थापनम् .. ..  | ३५३           | ११               |
| सप्तमाध्यायसमाप्तिः ।  |               |                  |
| सांख्यमते वृद्धादिनिरूपणम् ... ..  | ३५५           | ११               |
| तन्मतखण्डनम् ... ..  | ३५६           | १५               |
| विद्यादिभेदेन ज्ञानद्वैविध्यम्, प्रत्य-<br>क्षादिभेदेन विद्यायाश्चातुर्विध्यम्, }<br>संश्रयादिभेदेनाविद्यायाश्चातुर्विध्यञ्च } | ३५७           | ८                |
| सर्वज्ञीयादिभेदेन प्रत्यक्षद्वैविध्यम् ... ..  | ३५७           | १५               |
| सविल्यकनिर्विल्यकभेदेनासर्वज्ञीयप्रत्यक्ष-<br>द्वैविध्यम् .. ..  | ३५८           | ९                |
| अष्टमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।  |               |                  |
| घ्राणादीनां गन्धादिमत्त्वे प्रमाणाकथनम् ... ..   | ३७१           | ६                |
| अष्टमाध्यायसमाप्तिः ।  |               |                  |
| प्रागभावस्य प्रतिथेगिजनकत्वादि.. ..  | ३७४           | ६                |
| अन्योन्याभावप्रत्यक्षे विशेषः ... ..   | ३८१           | ४                |
| अत्यन्ताभावप्रत्यक्षे विशेषः ... ..  | ३८२           | १३               |
| नास्तिघटो गेहे इति प्रतीतिविवेचनम् ... ..  | ३८४           | ६                |
| युक्तवियुक्तयोः स्वरूपकथनम् .. ..  | ३८६           | ६                |
| असमाहितान्तःकरणस्य प्रत्यक्षप्रकारः ... ..   | ३८८           | ७                |

| प्रकरणम् ।                                    | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---------------|-----------------|
| योगजघर्म्मस्य प्रभावविशेषकथनम् ... ..         | ३८६           | १२              |
| नवमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।               |               |                 |
| पक्षतानिर्वचनम् ... ..                        | ३९१           | ६               |
| ज्ञायमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वव्यवस्थापनम् ... | ३९२           | ६               |
| अनौपाधिकमनिश्चयप्रकारः ... ..                 | ३९५           | १४              |
| स्वार्थपरार्थभेदेन अनुमानवैविध्यादिकथनम् ...  | ३९६           | ८               |
| न्यायतदवयवादिलक्षणाभिधानम् ... ..             | ३९६           | ११              |
| शब्दजन्यबोधस्थले आनुमानिकबोधप्रकारः ...       | ३९७           | १६              |
| चेष्टायाः प्रमाणान्तरत्वखण्डनम् ... ..        | ४००           | १५              |
| करणगतवैविध्याभिधानम् ... ..                   | ४०२           | १३              |
| उपमानस्य अनुमानान्तर्भावप्रकारः ... ..        | ४०४           | २               |
| अर्थापत्तेरनुमानान्तर्भावप्रकारः ... ..       | ४०५           | ६               |
| सम्भवस्यानुमानान्तर्भावप्रकारः ... ..         | ४०६           | ६               |
| अभावस्य मानान्तरत्वखण्डनम् ... ..             | ४०७           | ३               |
| अनुपलब्धेः प्रत्यक्षाद्यन्तर्भावः ... ..      | ४०७           | ५               |
| येतिह्यस्य प्रमाणान्तरत्वखण्डनम् ... ..       | ४०७           | ६               |
| स्वार्थज्ञानविशेषकथनम् ... ..                 | ४०८           | १३              |
| स्वप्नज्ञानस्य वैविध्यादिकथनम् ... ..         | ४०९           | १०              |
| सिद्धदर्शनस्य विशेषाभिधानम् ... ..            | ४१५           | ४               |
| नवमाध्यायसमाप्तिः ।                           |               |                 |
| सुखस्य चातुर्विध्यकथनम् ... ..                | ४१६           | ४               |
| सुखदुःखयोरनुभवभेदानुमानप्रकारः ... ..         | ४२२           | ८               |
| दशमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।               |               |                 |
| असमवायिकारणतालक्षणाविभागौ ... ..              | ४२६           | ४               |
| अवयवावयवसंयोगस्यावयविकारणतामर्तम् ...         | ४२८           | ८               |

| प्रकरणम् ।   | श्लोकाः । | पङ्क्तयः । |
|--|-----------|------------|
| वेदानामोक्तत्वसाधनप्रकारः ... ..   | ४३२       | ५          |
| ग्रन्थकर्तुर्मातापित्रोर्नामानुकीर्तनम्, ग्रन्थकर्तुर्नाम-<br>कीर्तनञ्च ... .. | ४३३       | ५          |
| ग्रन्थस्य समत्सरानादरणीयत्वेऽपि निजशिष्यपर-<br>म्यरादरणीयत्वाभिधानम्... ..     | ४५३       | ७          |

दशमाध्यायसमाप्तिः ।

वैशेषिकसूत्रोपस्कारस्य निर्घण्टपत्रं सम्पूर्णम् ।

# कणादसूत्रविवृते-

## निर्घण्टपत्रम् ।

| प्रकरणम् ।  | पृष्ठाङ्काः । | पर्यायङ्काः । |
|---|---------------|---------------|
| मङ्गलाचरणादि ... ..                               | १             | १२            |
| ग्रन्थावतरणिका ... ..                             | २             | ८             |
| शास्त्रे मङ्गलाचरणप्रतिपादनम् ... ..              | ४             | १७            |
| धर्मस्य ज्ञानोपयोगिताकथनम् ... ..                 | ५             | २२            |
| धर्मलक्षणाभिधानम् ... ..                          | ७             | १६            |
| उपस्कारव्याख्यानदूषणम् ... ..                     | ११            | १८            |
| अभावस्य सप्तमपदार्थत्वे मुनेस्तात्पर्यम् ... ..   | १४            | १६            |
| साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानस्य निःश्रेयसोपयोगिताप्रकारः | १५            | १५            |
| पदार्थविभाजककथनम् ... ..                          | १५            | १७            |
| प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धानां स्वरूपकथनम् ... ..       | १५            | २०            |
| मतविशेषे मोक्षविशेषकथनम् ... ..                   | १६            | १५            |
| शक्तिसादृश्ययोरतिरिक्तपदार्थताखण्डनम् ... ..      | १७            | २१            |
| द्रव्यत्वजातिसिद्धिः ... ..                       | १८            | २०            |
| अन्धकारस्य द्रव्यत्वखण्डनम् ... ..                | १८            | २२            |
| गुणत्वजातिसिद्धिप्रकारः ... ..                    | २२            | १६            |
| निष्कर्मण्यत्वादेर्जातित्वखण्डनम् ... ..          | २४            | २३            |
| उपस्कारदूषणान्तरम् ... ..                         | ३२            | १८            |

प्रथमाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

| प्रकरणम् ।                         | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|------------------------------------|---------------|-----------------|
| प्रसङ्गात् सांख्यमतखण्डनम् ... ..  | ४८            | १५              |
| जातिबाधकाभिधानम् ... ..            | ५३            | १८              |
| प्राभाकरमते गुणादौ जात्यभावः .. .. | ५५            | १९              |

प्रथमाध्यायसमाप्तिः ।

|                                    |    |    |
|------------------------------------|----|----|
| पृथिवीलक्षणानि ... ..              | ६५ | २३ |
| उपस्कारदृष्टणान्तरम् .. ..         | ६७ | २३ |
| जललक्षणानि ... ..                  | ६९ | २३ |
| जले शुक्लरूपादिपञ्चस्थापनम् ... .. | ७० | २१ |

द्वितीयाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

|   |     |    |
|---|-----|----|
| उपस्कारदृष्टणान्तरम् ... ..               | १०८ | १७ |
| कालसाधनप्रकारः ... ..                     | १०८ | २४ |
| प्राच्यादिव्यवहारे उपाधिकथनम् .. ..       | ११५ | १९ |
| उदयर्गरे प्राचीव्यवहारानुपपत्तिकथनम् ..   | ११८ | १७ |
| वीचीत्तरङ्गन्यायकदम्बगोलकन्यायाभिधानम् .. | १३७ | १९ |

द्वितीयाध्यायसमाप्तिः ।

|                                      |     |    |
|--------------------------------------|-----|----|
| शरीरे चैतन्यस्वीकारे दोषाः .. ..     | १४३ | १८ |
| व्यप्तिर्निष्कृष्टलक्षणम् .. ..      | १४९ | २२ |
| दोषलक्षणान्तराभिधानम् .. ..          | १५५ | २० |
| दोषविशेषाणां स्वरूपाद्यभिधानम् .. .. | १५६ | २४ |

द्वितीयाध्याय-प्रथमाह्निकसमाप्तिः ।

|   |     |    |
|---|-----|----|
| चाक्षुषादिकाले त्वाचाद्यनुत्पत्तौ वीजकथनम् .. | १६७ | १६ |
| मनसःसङ्कोचादिनिराकरणम् .. ..                  | १६९ | २१ |

द्वितीयाध्यायसमाप्तिः ।

|                           |     |    |
|---------------------------|-----|----|
| शून्यतोपादानमतकथनम् .. .. | १९३ | १४ |
| परमाणुसिद्धिप्रकारः .. .. | १९४ | २० |

| प्रकरणम् ।   | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|--|---------------|-----------------|
| परमाख्योऽनित्यतायां हेतवः .. .. .                    | १९७           | १८              |
| उद्भूतरूपस्य प्रत्यक्षहेतुतायां विशेषः .. .. .       | २०२           | २२              |
| गुरुत्वादीनां प्रत्यक्षप्रतिबन्धकत्वादिकथनम् .. .. . | २०४           | १९              |
| चतुर्थाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।                   |               |                 |
| शरीरलक्षणम् .. .. .                                  | २०८           | १५              |
| इन्द्रियलक्षणम् .. .. .                              | २०८           | २४              |
| विक्रयलक्षणम् .. .. .                                | २०९           | २२              |
| वृक्षादीनां शरीरत्वे मानम् .. .. .                   | २१३           | २१              |
| ब्राह्मादीनां परिधिबन्धादिसाधनप्रकारादि .. .. .      | २१७           | २३              |
| चतुर्थाध्यायसमाप्तिः ।                               |               |                 |
| प्रयत्नस्य चेष्टाजनकत्वे प्राचां संवादः .. .. .      | २२०           | २२              |
| मणिगमनादौ विशेषाभिधानम् .. .. .                      | २२६           | २३              |
| पञ्चमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।                    |               |                 |
| द्विमकरकाद्युत्पत्तिप्रकारः .. .. .                  | २४०           | १९              |
| मनःकर्म्मणि हेतुविशेषाभिधानम् .. .. .                | २४४           | २२              |
| मनसः स्वैर्यसम्पादनम् .. .. .                        | २४७           | १६              |
| पञ्चमाध्यायसमाप्तिः ।                                |               |                 |
| वेदलक्षणम् .. .. .                                   | २५६           | २३              |
| कर्म्मणामदृष्टहेतुतायां विशेषः .. .. .               | २५६           | १८              |
| आततायिस्थले विशेषः .. .. .                           | २६६           | २१              |
| षष्ठाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।                     |               |                 |
| यामादीनां सकलत्वव्यवस्थापनम् ... .. .                | २६८           | २१              |
| षष्ठाध्यायसमाप्तिः ।                                 |               |                 |
| अनित्यगुणसङ्कलनम् .. .. .                            | २८२           | १६              |
| पीलुपाकपिठरपाकमताभिधानम् ... .. .                    | २८७           | २३              |



| प्रकरणम् ।  | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्याङ्काः । |
|---|---------------|------------------|
| मीमांसिकवादिमतनिराकरणम् ... ..                                | २८६           | २१               |
| मुख्यगुणिनोरभेदनिराकरणम् ... ..                               | २६०           | २२               |
| चित्ररूपाभिधानम् ... ..                                       | २६०           | २३               |
| तदनङ्गीकर्तृनव्यमर्तम् ... ..                                 | २६१           | २०               |
| रसग्रन्थोच्चित्तत्त्वानङ्गीकारः ... ..                        | २८२           | २०               |
| परिमाणस्याश्रयनाशनाश्रयत्वे विप्रतिपत्तिनिरा-<br>करणम् ... .. | ३०३           | १५               |
| सप्तमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।                             |               |                  |
| पृथक्त्वस्य गुणत्वव्यवस्थापनम् .. ..                          | ३११           | २१               |
| एकं रूपमित्यादिव्यवहारोपपादनम् .. ..                          | ३१५           | १६               |
| द्विविधविभागोदाहरणम् .. ..                                    | ३२८           | २०               |
| सङ्केतविभागतद्ग्रहोपायादि .. ..                               | ३३७           | २०               |
| परत्वापरत्वात्प्रतिप्रकारादि .. ..                            | ३४९           | १५               |
| समवायसिद्धिप्रकारः .. ..                                      | ३४६           | २९               |
| समवायेत्यातीन्द्रियत्वादि .. ..                               | ३५३           | १६               |
| सप्तमाध्यायसमाप्तिः ।   |               |                  |
| बुद्धिविभागादि.. ..   | ३६७           | ७                |
| अष्टमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।                             |               |                  |
| इदमादिशब्दानां शक्यार्थकथनम् .. ..                            | ३६८           | १३               |
| अष्टमाध्याय-समाप्तिः ।  |               |                  |
| अभावं प्रति प्रतियोगिनोविरोधिता .. ..                         | ३७६           | १७               |
| उपस्कारमतदूषणम् .. ..   | ३८१           | २०               |
| नास्ति गेहे घट इतिप्रतीतिविषयविवेचनम् .. ..                   | ३८४           | १८               |
| युक्तयुक्तानयोर्लक्षणादि .. ..                                | ३८६           | २१               |
| नवमाध्याय-प्रथमाङ्किकसमाप्तिः ।                               |               |                  |

| प्रकरणम् ।  | श्लोकाः । | पर्यायश्लोकाः । |
|---|-----------|-----------------|
| अनुमितिलक्षणपरिष्कारः .. .. .   | ३६१       | १६              |
| मतभेदे पक्षताभेदकथनम् .. .. .   | ३६२       | २१              |
| शब्दस्यानुमितावन्तर्भावप्रकारः .. .. .                                | ३६८       | १६              |
| उपमित्यादीनामनुमितावन्तर्भावप्रकारः .. .                              | ४०४       | १७              |
| सुप्रज्ञाने विशेषः .. .. .  | ४०६       | १६              |
| नवमाध्यायसमाप्तिः ।   |           |                 |
| शरीरावयवानां परस्परभेदककथनम् .. .. .                                  | ४२३       | १७              |
| दशमाध्याय-प्रथमश्लोकसमाप्तिः ।  |           |                 |
| कारणलक्षणादिकम् .. .. .   | ४२४       | १५              |
| समवायिकारणविवेचनम् .. .. .  | ४२५       | ६               |
| असमवायिकारणविवेचनम् .. .. .   | ४२६       | १५              |
| संक्षेपतः शास्त्रार्थसंग्रहः, तत्र पदार्थ तद्विभाज-<br>ककथनम् .. .. . | ४३२       | १५              |
| द्रव्यतद्विभाजकादि .. .. .  | ४३३       | १४              |
| पृथिवीनिरूपणम् .. .. .  | ४३३       | २३              |
| जलनिरूपणम् .. .. .  | ४३४       | १६              |
| तेजोनिरूपणम् .. .. .  | ४३५       | १४              |
| वायुनिरूपणम् .. .. .  | ४३६       | १३              |
| आकाशनिरूपणम् .. .. .  | ४३६       | २७              |
| कालनिरूपणम् .. .. .   | ४३७       | १७              |
| दिशोनिरूपणम् .. .. .  | ४३८       | १०              |
| संसार्यात्मनिरूपणम् .. .. .   | ४३८       | १६              |
| ईश्वरनिरूपणम् .. .. .   | ४४२       | २४              |
| गुणसामान्यनिरूपणम् .. .. .  | ४४३       | २४              |
| रूपनिरूपणम् .. .. .   | ४४४       | २३              |

| प्रकरणम् ।                           | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|--------------------------------------|---------------|-----------------|
| रसनिरूपणम् .. .. .                   | ४४५           | २३              |
| गन्धनिरूपणम् .. .. .                 | ४४६           | २               |
| स्पर्शनिरूपणम् .. .. .               | ४४६           | ५               |
| पाकजकथनम् .. .. .                    | ४४६           | १५              |
| संख्यानिरूपणम् .. .. .               | ४४७           | २               |
| परिमाणनिरूपणम् .. .. .               | ४४७           | १६              |
| पृथक्त्वनिरूपणम् .. .. .             | ४४८           | ५               |
| संयोगनिरूपणम् .. .. .                | ४४८           | ११              |
| विभागनिरूपणम् .. .. .                | ४४८           | १६              |
| परत्वापरत्वनिरूपणम् .. .. .          | ४४९           | १०              |
| बुद्धिनिरूपणम् .. .. .               | ४४९           | २४              |
| ज्ञेत्वाभासनिरूपणम् .. .. .          | ४५२           | २४              |
| अनुगानविभागः .. .. .                 | ४५३           | २१              |
| स्मृतिनिरूपणम् .. .. .               | ४५४           | ७               |
| प्रकारान्तरेण बुद्धेर्विभागः .. .. . | ४५४           | १७              |
| सुखनिरूपणम् .. .. .                  | ४५५           | ४               |
| दुःखनिरूपणम् .. .. .                 | ४५५           | ७               |
| इच्छानिरूपणम् .. .. .                | ४५५           | ९               |
| द्वेषनिरूपणम् .. .. .                | ४५५           | १८              |
| यत्ननिरूपणम् .. .. .                 | ४५५           | २१              |
| गुरुत्वनिरूपणम् .. .. .              | ४५६           | २               |
| द्रवत्वनिरूपणम् .. .. .              | ४५६           | ६               |
| खेहनिरूपणम् .. .. .                  | ४५६           | १३              |
| संस्कारनिरूपणम् .. .. .              | ४५६           | १६              |
| धर्मनिरूपणम् .. .. .                 | ४५७           | ९               |

| प्रकरणम् ।  | पृष्ठाङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---------------|-----------------|
| अधर्म्मनिरूपणम्                                     | ७. . . . .    | ४५७ २२          |
| शब्दनि.रूपणम्                                       | . . . . .     | ४५८ २           |
| कर्म्मनिरूपणम्                                      | . . . . .     | ४५८ १७          |
| सामान्यनिरूपणम्                                     | . . . . .     | ४५८ ६३          |
| विशेषनिरूपणम्                                       | . . . . .     | ४५९ ९           |
| समवायनिरूपणम्                                       | . . . . .     | ४५९ १७          |
| अभावनिरूपणम्  | . . . . .     | ४६० २           |
| त्रय्यादिसप्तपदार्थेषु गोतर्मात्मानां प्रमाणादिषोड- |               |                 |
| शपदार्थानामन्तर्भावप्रकारः                          | . . . . .     | ४६० १८          |
| तुलातभट्टमतम्                                       | . . . . .     | ४६१ १७          |
| गुरुमतम्  | . . . . .     | ४६१ १८          |
| शिरोमणिशुद्धतखण्डनग्रन्थसंग्रहः, दिक्काणयोः-        |               |                 |
| खण्डनम्   | . . . . .     | ४६१ २२          |
| आकाशखण्डनम्   | . . . . .     | ४६२ १६          |
| मनसः खण्डनम्  | . . . . .     | ४६२ २४          |
| परमाणुद्वयकयोः खण्डनम्                              | . . . . .     | ४६२ २७          |
| ईश्वरपरिमाणुखण्डनम्                                 | . . . . .     | ४६३ ९           |
| अनुद्धूतानां रूपरसगन्धस्पर्शानां खण्डनम्            | . . . . .     | ४६३ १२          |
| पृथक्त्वस्य खण्डनम्                                 | . . . . .     | ४६४ २           |
| परत्वापरत्वयोः खण्डनम्                              | . . . . .     | ४६४ २२          |
| विशेषपदार्थखण्डनम्                                  | . . . . .     | ४६५ ५           |
| अव्याप्यवृत्तिरूपादिव्यवस्थापनम्                    | . . . . .     | ४६५ ९           |
| चित्ररूपखण्डनम्                                     | . . . . .     | ४६५ १७          |
| कर्म्मगोव्याप्यवृत्तित्वखण्डनम्                     | . . . . .     | ४६५ २७          |
| एकत्वसंख्याया असयवीयकारणजन्यत्वखण्डनम्              | . . . . .     | ४६६ १५          |

| प्रकरणम् ।  | पङ्क्त्याः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|--------------|-----------------|
| द्रव्यनाशस्य समवायिकारणनाशजन्यत्वखण्डनम्                    | ४६६          | १७              |
| द्रव्यस्पर्शनप्रत्यक्षे उद्भूतरूपस्य कारणताखण्डनम्          | ४६६          | २३              |
| घटत्वाद्यभावस्यप्रत्यक्षखण्डनम्                             | ४६८          | ७               |
| सत्ताजातिखण्डनम्  | ४६८          | ११              |
| गुणत्वजातिखण्डनम्   | ४६९          | २०              |
| अनुभवत्वजातिखण्डनम्   | ४६९          | ४               |
| घटाभावाभावस्य घटस्वरूपताखण्डनम्                             | ४६९          | ९०              |
| भेदभेदखण्डनम्   | ४६९          | १३              |
| ध्वंसप्रागभावस्य प्रतियोगितत्प्रागभावात्मकत्वखण्डनम्        |              |                 |
| प्रागभावध्वंसस्य प्रतियोगितद्ध्वंसात्मकत्वखण्डनम्           | ४६९          | १५              |
| प्रत्यभिज्ञायाः संस्कारजन्यत्वव्यवस्थापनम्                  | ४६९          | १९              |
| संशयस्य शाब्दबोधात्मकत्वकथनम्                               | ४७०          | २               |
| खल्वस्यातिरिक्तपदार्थत्वव्यवस्थापनम्                        | ४७०          | १२              |
| शक्तेरतिरिक्तपदार्थत्वव्यवस्थापनम्                          | ४७०          | २०              |
| दशरथप्रिशाचादिपदस्थले केन रूपेण पदार्थापस्थि-<br>त्वादि ... | ४७१          | ४               |
| संख्यायाः पदार्थान्तरत्वव्यवस्थापनम्                        | ४७१          | १०              |
| समवायस्य नानात्वव्यवस्थापनम्                                | ४७१          | २०              |
| अभावसम्बन्धस्य पदार्थान्तरत्वव्यवस्थापनम्                   | ४७१          | २२              |
| कारणत्वस्य कार्यत्वस्य च पदार्थान्तरत्वव्यवस्थापनम्         | ४७१          | २७              |
| नञ्पदानुत्तरवर्ति विभक्त्यर्थेनापि नञर्थान्वयः              | ४७२          | ८               |
| शिरामणिद्वयपदानि  | ४७२          | १७              |
| साधर्म्यबैधर्म्यकथनम्                                       | ४७२          | २३              |
| पञ्चकर्तुः परिचायकानि पदानि                                 | ४७४          | १०              |

॥ \* ॥ कणादसूत्रविहृतेर्निर्घण्टपत्रं समाप्तम् ॥ \* ॥

# वैशेषिकदर्शनम् ।

प्रथमाध्याये प्रथमाह्निकम् ।

वैशेषिकसूत्रोपस्कारः ।

श्रीगणेशाय नमः ॥

ऊर्ध्वबद्धजटाजूटक्रोडक्रीडत्सुरापगम् ।

नमामि यामिनीकान्तकान्तभालस्थलं हरम् ॥ १ ॥

याभ्यां वैशेषिके तन्त्रे सम्यग् व्युत्पादितोऽस्य हम् ।

कणादभवनाद्याभ्यां ताभ्यां मम नमः सदा ॥ २ ॥

सूत्रमात्रावलम्बेन निरालम्बेऽपि गच्छतः ।

खेखेलवन्ममाप्यत्र साहसं सिद्धिमेष्यति ॥ ३ ॥

कणादसूत्रविवृतिः ।

उत्पत्तिस्थितिसंहतीर्वितनुते विश्वस्य यः खेच्छया

तद्विष्टभ्य परिस्फुरन्नपि न यः प्राञ्जितरैर्घायते ।

यत्तत्त्वं विदुषां न संसृतिसरित्पूरे पुनर्मज्जनं

सोऽयं वः स्थिरभक्तियोगसल्लभो भूयाद्भवो भूतये ॥ १ ॥

मेघाङ्गीमपि सम्भृतांशुनिकरैर्ध्वान्तौघविध्वंसिनीं

भक्तानां भवभेदिनीमपि भवप्रेम्ना सदानन्दिनीं ॥

माहेशीं कुलकामिनीमपि दिशो वासो वसानां शनै-

रङ्गनीमप्यगजां शिवामपि शवासीनां भवानीं भजे ॥ २ ॥

प्रणम्य श्रीगुरुन् श्रीमान् जयनारायणो द्विजः ।

कणादसूत्रविवृतिं तनोतीश्वरतुष्टये ॥ ३ ॥

उ० तापत्रयपराहता विवेकिनस्तापत्रयनिवृत्तिनिदानमनु-  
सन्धाना नानाश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेष्व्वात्मतत्त्वसाचा-  
त्कारमेव तदुपायमाकलयाम्भूवुः। तत्राप्राप्तिहेतुमपि पन्थानं  
जिज्ञासमानाः परमकारुणिकं कणादं मुनिमुपसेदुरथ  
कणादो मुनिस्तत्त्वज्ञानवैराग्यैश्वर्यसम्पन्नः षष्ठां पदार्थानां  
साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानमेवात्मतत्त्वसाचात्कारप्राप्तये  
परमः पन्था इति मनसिकृत्य तच्च निवृत्तिलक्षणाद्भूषा-

वि० इह खलु जन्मजरामरणादिजनिततापकक्षापं जिहासवः सर्वं  
एवान्तेवासिनस्तज्ज्ञाननिदानमात्मतत्त्वदर्शनमाकर्षयन्ति श्रुति-  
स्मृतीतिहासपुराणादिषु । तथा हि श्रुतिः,

“आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य-  
श्चैतावदरे खल्वमृतत्वमिति” ।

“यदात्मानं विजानीयादहमस्मीति पूरुषः ।

किमिच्छन् कस्य कामाय संसारमनुसंसेरेत्” ॥

इत्यादि ।

स्मृतिश्च,

“आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च ।

त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्” ॥ इति ।

अथ केचिदन्तेवासिनो विधिवदधीतवेदवेदाङ्गा अनसूयकाः  
सम्पन्नश्रवणा मननार्थं भगवन्तं कणादमहर्षिं विधिवदुपसेदुः ।  
ततः परमकारुणिकः स मुनिर्दशाध्यायीतन्त्वं तानुपदिदेश्च ।  
तत्र प्रथमाध्याये समवेताशेषपदार्थकथनम् । द्वितीयाध्याये द्रव्य-  
निरूपणम् । तृतीयाध्याये आत्मान्तःकरणलक्षणम् । चतुर्थाध्याये  
शरीरतदुपयोगिकविषयम् । पञ्चमाध्याये कर्मप्रतिपादनम् ।  
षष्ठाध्याये श्रोतधर्मविवेचनम् । सप्तमाध्याये गुणसमवाययोः

सू० अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

उ० देतेषामनायासेन सेत्स्यतीति लक्षणतः स्वरूपतश्च धर्ममेव प्रथममुपदिशाम्यनन्तरं षडपि पदार्थागुद्देशलक्षणपरीक्षाभिरुपदेक्ष्यामीति हृदि निधाय तेषामवधानाय प्रतिजानीते ।

अथेति शिष्याकाङ्क्षानन्तर्यमाह । अत इति । यतः श्रवणादिपटवोऽनसूयकाश्चान्तेवासिन उपसेदुरित्यर्थः । यद्वा अथशब्दो मङ्गलार्थः । तदुक्तम्,

“श्लोकारश्च।थशब्दश्च द्वैवेतौ ब्रह्मणः पुरा ।

कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ” ॥ इति ।

युक्तञ्चैतत् कथमन्यथा सदाचारपरम्परांपरिप्राप्तकर्तव्यताकस्य मङ्गलस्य वैशेषिकशास्त्रं प्रणयतो महामुनेरनाचरणं सम्भाव्यते । न च कृतमङ्गलस्यापि फलादर्शनादकृतमङ्गलस्यापि फलदर्शनादननुष्ठानं न हि निष्फले

वि० प्रतिपादनम् । अष्टमाध्याये ज्ञानोत्पत्तितन्निदानादिनिरूपणम् । नवमाध्याये बुद्धिविशेषप्रतिपादनम् । दशमाध्यस्थे आत्मगुणभेदप्रतिपादनम् । उद्देशो लक्षणं परीक्षा चेति त्रिविधाऽस्य शास्त्रस्य प्रवृत्तिः विभागस्तु विशेषोद्देश एवेति नाधिक्यम् । यद्यप्यत्र तन्ने पदार्थनिरूपणस्यैव प्राचुर्यं तथापि पदार्थतत्त्वज्ञाननिदानतया धर्मस्यैव प्राधान्यात् तन्निरूपणमेव प्रथमं प्रतिजानीते ॥

अथशब्दस्यानन्तर्यमर्थः शिष्यजिज्ञुसामन्तरमित्यर्थः यतः श्रवणादिपटवोऽनसूयकाश्चान्तेवासिन उपसन्नाः । अतः कारणात्



उ० प्रेक्षावान् प्रवर्तत इति वाच्यम्, अकरणस्थले जन्मान्तरी-  
यस्य करणस्थले चाङ्गवैगुण्यस्य कल्पनया सफलत्वनिश्च-  
यात् । न हि शिष्टाचारांनुमितश्रुतिबोधितकर्त्तव्यता-  
कस्यापाततः फलादर्शनमात्रेणाकारणत्वशङ्काऽपि न चै-  
हिकमात्रफलकत्वान्न जन्मान्तरीयानुमानं पुत्रेष्टिवदैहिक-  
मात्रफलकत्वानुपपत्तेः । कारीर्यादौ तु तथा कामनयै-  
वानुष्ठानादैहिकमात्रफलकत्वम् । अत्र च समाप्तिकामोऽधि-  
कारी स्वर्गकाम इव यागे तत्रापूर्व्वं द्वारमिह तु विघ्न-  
ध्वंस इति विशेषः निर्व्विघ्नमारब्धं समार्यतामिति काम-  
नया प्रवृत्तेः । न च विघ्नध्वंसमात्रं फलं समाप्तिस्तु स्व-  
कारणादेवेति वाच्यम्, तस्य स्वतोऽपुरुषार्थत्वात् समाप्तेस्तु  
सुखसाधनतया पुरुषार्थत्वात् उपस्थितत्वाच्च, किञ्च दुरि-  
तध्वंसमात्रं न फलं तस्य प्रायश्चित्तकीर्त्तनकर्मनाश पार-  
गमनादिसाध्यतया व्यभिचारात् प्रारब्धपरिसरं तत्रप्रति-

वि० ज्ञाननिदानं धर्मं व्याख्यास्यामो निरूपयिष्याम इत्यर्थः ।

केचित्तु अथशब्दो मङ्गलार्थः,

“जोषारश्चाथशब्दश्च दावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।

कच्छं भित्त्वा विनिर्याते तेन माङ्गलिकावुभौ” ॥

इति स्मरणात् एतेन शास्त्रं प्रणयता महर्षिणा शिष्टाचार-  
परम्परापरिप्राप्ताभिमतकर्म्मरम्भसमयकर्त्तव्यताकं मङ्गलाच-  
रणं कथं न ह्यतमित्याक्षेपोऽपि निरस्त इत्याहुः । अन्ये तु  
योगजधर्मेण विघ्नभारनिश्चयात् मुनिना मङ्गलाचरणं न ह्यतं  
• ह्यतं वा किन्तु यस्यादौ तन्न निबद्धमित्याहुः । नथ्यास्तु गौतमीये

१० बन्धकदुरितध्वंसत्वेन फलत्वे समाप्तेरेव फललोचितत्वात्  
 तत्रापि च हिरण्यदानप्रयागस्नानादिजन्यत्वेन व्यभिचा-  
 रात् तेषामपि मङ्गलत्वीभिधानं साहसम् । किञ्च मङ्गले  
 मति समाप्तेरावश्यकत्वमित्येवं मङ्गलस्य कारणता तदुक्तम्  
 “श्रीतात् साङ्गात् कर्मणः फलावश्यम्भावनियमादिति” ।  
 अतएव विकल्पितमपि कारणं कारणमेव फलानन्तर्य-  
 नियमस्यैव वैदिककारणत्वात् विकल्पे तु वैजात्यकल्पनं  
 वैजात्यमेव । यत्रान्वयव्यतिरेकगम्या कारणता तत्र फल-  
 पूर्वभावनियमो ग्रह्यो न तु वेदेऽपि तत्र व्यतिरेकभा-  
 गस्य ध्रुत्वेनानुपस्थितेः तथा च साङ्गे मङ्गले समाप्ति-  
 रावश्यकीति न व्यभिचारः समाप्तिस्तु यस्मिन् अनुष्ठिते  
 सम्पूर्णमिदं कर्मेति प्रमा सा च ग्रन्थादौ चरमवाक्य-  
 लिखने चागादौ चरमाहुतौ पटादावन्यतन्तुसंयोगे  
 ग्रामगमनादौ ग्रामचरणचरमसंयोगे एवं तत्र तत्रोहनो-  
 यमिति मङ्गलजन्यसमाप्ते वैजात्यकल्पनेऽपि नोभयथा  
 व्यभिचारः । मङ्गलञ्च विघ्नध्वंसद्वारकसमाप्तिफलकं कर्म  
 तच्च देवतानमस्कारादिरूपमेव स्वतःसिद्धकिष्णाभावस्य-

वि० भगवन्नामगणान्तःपातिप्रमाणशब्देऽच्चारणवत् अत्र शास्त्रे तथा-  
 विधधर्मशब्देऽच्चारणरूपमेव मङ्गलमित्याहुः । अत्र धर्मस्य चा-  
 नोपयोगिता चित्तशुद्धिविदिषादिद्वारिकैव “विविदिषन्ति  
 यज्ञेनेत्यादि” श्रुतेः,

“कषाये कर्मभिः पक्वे ततो ज्ञानं प्रजायते” ।

सू० यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥ २ ॥

उ० लोऽपि सामान्यतो गृहीतस्य विघ्नध्वंसद्वारकत्वस्याभिपायात् नमस्कारादीनां ताद्रूप्यैव विघ्नध्वंसद्वारकत्वप्रतिपत्तेर्ना-  
व्याप्तिरिति दिक् ॥ १ ॥

अथ प्रतिज्ञतार्थमाह ।

अभ्युदयस्तत्त्वज्ञानं निःश्रेयसमात्यन्तिकीदुःखनिवृत्तिः  
तदुभयं यतः स धर्मः अभ्युदयद्वारकं निःश्रेयसमिति  
मध्यपदलोपो समासः पञ्चमीतत्पुरुषो वा स च धर्मो  
निवृत्तिलक्षणो वक्ष्यते, यदि तु निदिध्यासनादियोग-  
साधो धर्मोऽदृष्टमेव तदा विधिरूपः । वृत्तिकृतस्तु  
अभ्युदयः सुखं निःश्रेयसमेककालीनसकलात्मविशेषगुण-  
ध्वंसः प्रमाणञ्च धर्मो देवदत्तशरीरादिकं भोक्तृविशेषगुण-  
प्रेरितभूतपूर्वकं कार्यत्वे सति तद्भागसाधनत्वात्तद्विर्मित-  
स्वर्गदित्याहुः । तदेतद्भाष्याख्यानं प्रत्येकसमुदायाभ्यां न  
आपकं इत्यर्वाचीनैरुपेक्षितं वस्तुतस्तु को धर्मः किं  
लक्षणश्चेति सामान्यतः शिष्यजिज्ञासायां यतोऽभ्युदय-

वि० इत्यादि स्मृतेश्चेति मन्तव्यम् ॥ १ ॥

ननु धर्मस्याकिञ्चित्करत्वेन तन्निरूपणं व्यर्थमतो धर्मस्य  
परमपुरुषार्थसाधनत्वं दर्शयन् तल्लक्षणमाह ।

अभ्युदयः स्वर्गः निःश्रेयसं मोक्षस्तयोः- सिद्धिरित्यतिर्यतः  
कारणात् स धर्मः, तथा च स्वर्गापवर्गरूपपरमपुरुषार्थसाधन-  
तया बुभुक्षुणां मुमुक्षुणाञ्चोपादेयत्वाद्भर्मस्य व्याख्यानं युक्तमेव

उ० निःश्रेयससिद्धिरित्युपतिष्ठते तथा च यतोऽभ्युदयसिद्धि-  
 र्यतश्च निःश्रेयससिद्धिस्तदुभयं धर्मः एवं पुरुषार्थासाधा-  
 रणकारणं धर्म इति क्तव्ये परमपुरुषार्थयोः सुखदुः-  
 खाभावयोर्विशेषतः परिचयार्थमभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिरि-  
 त्युक्तं स्वर्गापवर्गंथोरेवान्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वेन परम-  
 पुरुषार्थत्वात् साधयिष्यते च दुःखाभावस्यापि पुरुषा-  
 र्थत्वम् ॥ २ ॥

ननु निवृत्तिलक्षणो धर्मस्तत्त्वज्ञानद्वारां निःश्रेयस-  
 हेतुरित्यत्र श्रुतिः प्रमाणं श्रुतेरेव प्रामाण्ये वयं विप्रति-  
 पद्यामहे अनृतव्याघातपुनरुक्तं दोषेभ्यः पुत्रेष्टौ कृत्यामपि  
 पुत्रानुत्पादादनृतत्वम् “उदिते जुहोति अनुदिते जुहोति  
 समयाध्युषिते जुहोतीति” विधेः प्राप्त एवोदितादिकाले  
 होमो व्याह्रन्ते “श्यावोऽस्याऽऽतिमभ्यवहरति य उदिते  
 जुहोति श्वलोऽस्याऽऽतिमभ्यवहरति योऽनुदिते जुहोति  
 श्यावश्वलावस्याऽऽतिमभ्यवहरतो यः समयाध्युषिते जुहोति”  
 इत्यादिना । तथा “त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमामन्वाह”

वि० अत्र च धर्मस्य स्वर्गसाधनता साक्षादेव अपवर्गसाधनता तु  
 तत्त्वज्ञानद्वारेति विशेषः अत्र सुखजनकतावच्छेदकतया सिद्धा  
 धर्मत्वजातिधर्मपदवाच्यत्वं वा धर्मस्य कक्षयमभिप्रेतमिति  
 ध्येयम् ॥ २ ॥ •

ननु धर्मं तस्य तत्त्वज्ञानादिसाधनत्वे च किं मार्गं वेद एव  
 मानमिति चेत् न तत्प्रामाण्यस्यापि सन्दिग्धत्वात् तथा चाक्ष-

## सू० तद्वचनादात्म्यायस्य प्रामाण्यम् ॥ ३ ॥

उ० इत्यनेन प्रथमोत्तमसामिधेन्योस्तिरुच्चारणाभिधानात् पौनरुक्तमेव । न आम्नायप्रामाण्यप्रतिपादकं किञ्चिदस्ति नित्यत्वे विप्रतिपत्तौ नित्यनिर्दोषत्वमपि सन्दिग्धं पौरुषेयत्वे तु भ्रमप्रमादविप्रतिपत्तिकरणापाटवादिसम्भावनायाः आप्तोक्तत्वमपि सन्दिग्धमेवेति न निःश्रेयसं न वा तत्र तत्त्वज्ञानं द्वारं न वा धर्म इति सर्वमेतदाकुलमत आह ।

तदित्यनुपक्रान्तमपि प्रसिद्धिमिद्धतयेश्वरं परामृशति यथा “तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः” इति गौतमीयसूत्रे तच्छब्देनानुपक्रान्तोऽपि वेदः परामृश्यते । तथा च तद्वचनात्तेनेश्वरेण प्रणयनादात्म्यायस्य वेदस्य प्रामाण्यं यद्वा तदिति सन्निहितं धर्ममेव परामृशति तथैव धर्मस्य वचनात् प्रतिपादनात् आम्नायस्य वेदस्य प्रामाण्यं व्यङ्ग्यं वाक्यं प्रामाणिकमर्थं प्रतिपादयति तत्प्रमाणमेव यत इत्यर्थः । ईश्वरस्तदाप्तत्वञ्च साधयिष्यते यच्चोक्तमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्य इति तत्रानृतत्वे जन्मान्तरीय-

वि० चरणसूत्रं “तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः” इतीत्याशङ्कं निरस्यति ॥

तेनेश्वरेण वचनात् कथनात् आम्नायस्य वेदस्य प्रामाण्यमवश्यं स्वीकार्यमिति शेषः । ईश्वरस्यानुपक्रान्तत्वेऽपि प्रसिद्धार्थकेन तच्छब्देन परामर्शो भवत्येव यथा कला च सा कान्तिमती कलावत

उ० फलकल्पनं कर्मकर्तृसाधनवैगुण्यकल्पनं वा श्रौतात् साङ्गत्  
 कर्मणः फलावश्यंभावनिश्चयात् नच कारीरीवदैहिक-  
 मात्रफलकत्वं तत्र हि शुंभ्यच्छस्यसञ्जीवनकामस्याधिकारः  
 पुत्रेष्टौ पुत्रमात्रकामस्येतिविशेषात् नच व्याघातोऽपि  
 उदितादिहोमं विशेषतः प्रतिज्ञाय तदन्यकाले होमा-  
 नुष्ठाने “श्यावोऽस्याहुतिमभ्यवहरति” इत्यादिनिन्दाप्रति-  
 पादनात् नच पुनरुक्ततादोषोऽपि एकादशमामिधेनीनां  
 प्रकृतौ पाठात् “पञ्चदशवरेण वाग्वज्रेणावबाधे तमिमं  
 भ्रातृव्यम्” इत्यत्र गामिधेनीनां पञ्चदशत्वस्य प्रथमोत्तम-  
 सामिधेन्यास्त्रिभिधानमन्तरेणानुपपत्तेश्चयाभिधानात् ॥

॥ ३ ॥

श्रियाकाङ्क्षानुरोधेन स्वरूपतो लक्षणतश्च धर्मं व्या-  
 ख्यायाभिधेयसम्बन्धप्रतिपादनाय सूत्रम् ।

वि० इति कुमारसम्भवे तच्छब्दस्याप्रक्रान्तवाचित्वं यथा वा तदप्रा-  
 माण्यमित्यादिगोतमसूत्रे अप्रक्रान्तस्य वेदस्य तच्छब्दं परामर्शः  
 यदा ईश्वरवाचकमेवात्र तत्पदम्,

“ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः” ।

इति वचनात् तथा च नित्यसर्वज्ञनिर्दाषपुरुषप्रणीतत्वात्  
 वेदस्य प्रामाण्यमवश्यमेवाभ्युपेयमित्यर्थः ॥ ३ ॥

इदानीं प्रेक्षावतां प्रवृत्तये शास्त्रस्य प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धान्  
 प्रदर्शयन् पदार्थानुद्दिशति ॥

## सू० धर्मविशेषप्रसूताद्\* द्रव्यगुणकर्मसामान्यवि-

उ० एतादृशं तत्त्वज्ञानं वैशेषिकशास्त्राधीनमिति तस्यापि निःश्रेयसहेतुत्वं दण्डापूपायितम् । तत्त्वं ज्ञायतेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्या शास्त्रपरत्वं धर्मविशेषप्रसूतादित्यनेनान्वयापत्तेः । सर्वपदार्थप्रधानो द्वन्द्वश्चात्र समासः सर्वपदार्थ-तत्त्वज्ञानस्य निःश्रेयसहेतुत्वात् तदत्र शास्त्रनिःश्रेयसयोर्हेतुहेतुमद्भावः शास्त्रतत्त्वज्ञानयोर्वापारव्यापारिभावः निःश्रेयसतत्त्वज्ञानयोः कार्यकारणभावः द्रव्यादिपदार्थ-शास्त्रयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावंः सम्बन्धोऽवगम्यते एतेषाञ्च सम्बन्धानां ज्ञानान्निःश्रेयसार्थिनामिह शास्त्रे प्रवृत्तिः मोक्षमाणाश्च मुनेर्गृहीताप्रभावा एव शास्त्रे प्रवर्तन्ते । निःश्रेयसमात्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिः । दुःखनिवृत्तेश्चात्यन्तिकत्वं समानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनत्वं युगपदुत्पन्नसमानाधिकरणसर्वात्मविशेषगुणध्वंससमानकालीनत्वं वा । अशेषविशेषगुणध्वंसावधिकदुःख-

वि० धर्मविशेषः ऐहिको जन्मान्तरीयो वा सुकृतविशेषः तत्प्रसूतात् तल्लब्धादित्यर्थः । इदञ्च तत्त्वज्ञानादित्यस्य विशेषणं साधर्म्यं समानो धर्मः, वैधर्म्यं विरुद्धो धर्म इति मुक्तावलीकारः तृतीया प्रकारे तत्त्वज्ञानादित्यत्र पञ्चम्यर्थः प्रयोज्यत्वं तथाच सुकृतविशेषेण द्रव्यादिपदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानं ज्ञायते, तत आत्ममननं अनन्तरं निदिध्यासनेनात्म-

\* धर्मविशेषप्रसूतादित्यपि पाठः ।

सू० शेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां  
तत्त्वज्ञानान्निःश्रियसम् ॥ ४ ॥

उ० प्रागभावे वा मुक्तिः नचामाध्यत्वान्नायं पुरुषार्थः कारण-  
विघटनमुखेन प्रागभावस्यापि साध्यत्वात् नच तस्य प्राग-  
भावत्ववृत्तिः प्रतियोगिजनकाभावत्वेन तथात्वात् जनक-  
त्वञ्च स्वरूपयोग्यतामात्रम्, नहि प्रागभावश्चरममामग्री  
येन तस्मिन् सति कार्यमवश्यम्भवेत् तथा सति कार्यस्या-  
प्यनादित्वप्रसङ्गात् तथाच यथा महकारिविरहादियन्तं  
कालं नाजीजनत् तथायेऽपि तद्विरहान्न जनयिष्यति हेतु-  
च्छेदे पुरुषव्यापारात् इत्यस्यापि प्रागभावपरिपालन एव  
तात्पर्यात्, अत एव गौतमीयद्वितीयसूत्रे “दुःखजन्मप्रवृ-  
त्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापाया-  
दपवर्गः” इत्यत्र कारणाभावात् कार्याभावाभिधानं  
दुःखप्रागभावरूपामेव मुक्तिं द्रढयति नहि दोषापाये  
प्रवृत्त्यपायः, प्रवृत्त्यपाये जन्मापायः, जन्मापाये दुःखापाय

वि० साक्षात्कारो जायते, तदनन्तरं मिथ्याज्ञानादिनाशक्रमेण मोक्षो  
भवतीत्यर्थः । उपस्कारकारास्तु सूत्रस्य तत्त्वज्ञानपदमात्मसाक्षा-  
त्कारपरं करण्युत्पत्त्या तादृशसाक्षात्कारकरणशास्त्रपरं वा  
तत्राद्ये धर्मविशेषपदं निवृत्तिलक्षणधर्मपरम् अन्त्ये ईश्वरनि-  
यागप्रसादरूपधर्मविशेषपरं कणादो महर्षिरीश्वरनियोग-  
प्रसादावधिगम्य एतच्छास्त्रं प्रणीतवानिति किंवदन्ती । आत्म-  
साक्षात्कारश्च शास्त्रान्मनननिर्दिध्यासनादिपरम्परयेति हेतु-



उ० इत्यपायो ध्वंसः किन्त्वनुत्पत्तिः सा च प्रागभाव एव न च  
 प्रतियोग्यप्रसिद्धिः सामान्यतो दुःखत्वेनैव प्रतियोगिप्र-  
 सिद्धेः प्रायश्चित्तवत् तत्रापि प्रत्यवायध्वंसद्वारा दुःखा-  
 नुत्पत्तेरेवापेक्षितत्वात् लोकेऽप्यहिकण्टकादिनिवृत्तेर्दुःखा-  
 नुत्पत्तिफलकत्वदर्शनात् दुःखसाधननिवृत्त्यर्थमेव प्रेक्षा-  
 वतां प्रवृत्तिः । केचित्तु दुःखात्यन्ताभाव एव मुक्तिः  
 स च यद्यपि नात्मनिष्ठस्तथापि लोष्टादिनिष्ठ एवात्मनि  
 साध्यते सिद्धिश्च तस्य दुःखप्रागभावासहवर्त्तिदुःखध्वंस  
 एव तस्य तत्सम्बन्धतयोपगमात् तस्मिन् भूति तत्र दुःखा-  
 त्यन्ताभावप्रतीतेः एवञ्च सति “दुःखेनात्यन्तं विमुक्तश्च-  
 रति” इत्यादिश्रुतिरप्युपपादिता भवतीत्याहुः । तत्र दुः-  
 खात्यन्ताभावस्यासाध्यत्वेनापुरुषार्थत्वात् दुःखध्वंसस्य च न  
 तत्र सम्बन्धत्वं परिभाषापत्तेः “दुःखेनात्यन्तं विमुक्तश्चरति  
 इति श्रुतेर्दुःखप्रागभावस्यैव कारणविघटनमुखेनात्यन्ता-  
 भावसमानरूपत्वतात्पर्यकत्वात् नन्वयं न पुरुषार्थः निरु-

वि० पञ्चम्याः प्रयोज्यत्वार्थकत्वात् “तमेव विदित्वातिमृद्यमेति” “द्वे  
 ब्रह्मणी वेदितव्ये” इत्यादि श्रुतेः वेदनपदं साक्षात्कारपरं तस्यैव  
 द्वासनमिथ्याज्ञानोन्मूलनक्षमत्वादित्याहुस्तस्मिन् सूत्रस्थतत्त्व-  
 ज्ञानपदस्य सवासनमिथ्याज्ञानविरोधिसात्मसाक्षात्कारपरत्वे  
 साधर्म्यवैधर्म्याभ्यामित्यस्य पदार्थानामिति यद्यन्तार्थस्य चा-  
 नन्वयापत्तेः नैह्यात्मसाक्षात्कारे साधर्म्यवैधर्म्यप्रकारकत्वं  
 घटपदार्थविशेष्यकत्वं वास्ति देहादिभिन्नत्वेनात्मसाक्षात्कारस्यैव  
 देहाद्यभेदवासनाद्युन्मूलनक्षमत्वेन तत्र तदभावात् न च योगज-

उ० पाधीच्छाविषयत्वाभावात् दुःखकाले सुखं तावन्नोत्पद्यते  
 इति सुखार्थिनाभिव दुःखाभावार्यं प्रवृत्तेरिति चेन्न  
 वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् सुखेच्छापि दुःखाभावौपाधि-  
 कीत्येव किं न स्यात् शोकाकुलानां सुखविमुखानामपि  
 दुःखाभावमात्रमभिसन्धाय विषभक्षणाद्वन्धनादौ प्रवृत्ति-  
 दर्शनात् ननु पुरुषार्थोऽप्ययं ज्ञायमान एव मुक्तेस्तु दुः-  
 खाभावस्य ज्ञायमानतैव नास्ति अन्यथा मूर्च्छाद्यवस्था-  
 र्थमपि प्रवर्त्तेतेति चेन्न श्रुत्यनुमानाभ्यां ज्ञायमानस्यावे-  
 द्यत्वानुपपत्तेः । अस्ति हि श्रुतिः “दुःखेनात्यन्तं विमुक्त-  
 श्चरति” “तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति” इत्यादिका ।  
 अनुमानमप्यस्ति दुःखसन्ततिरत्यन्तमुच्छिद्यते सन्ततित्वात्  
 प्रदोषसन्ततिवदित्यादि चरमदुःखध्वंसस्य दुःखमात्रात्का-  
 रेण क्षणं विषयीकरणात् प्रत्यक्षवद्यताऽपि । यागिनां  
 योगजधर्मबलेनागामिनो दुःखध्वंसस्य प्रत्यक्षोपगमाच्च ।

वि० धर्मणात्मनीतरभेदसाक्षात्कारदृशायां तादृशसन्निकर्षण सा-  
 धर्म्यवैधर्म्याभ्यां द्रव्यादिषट्पदार्थज्ञानमपि जायते तत्त्वामयी-  
 सत्त्वादिति वाच्यं तादृशसाक्षात्कारस्य तादृशोदासीनसाधर्म्या-  
 दिविषयकत्वेऽपि तस्य प्रकृतानुपयोगितया मुनीनां तदभि-  
 धानस्योन्मत्तप्रलपितत्वापत्तेः यत्तूपस्कारकारैरात्मसाक्षात्कारस्य  
 मोक्षहेतुतायां “तमेव विदित्वेति” श्रुतिः प्रमाणातयोपन्यस्ता तद-  
 प्यसङ्गतं “वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णे तमसः परस्तात्”  
 इत्यनेन परमात्मन एवोपक्रान्तत्वेन तच्छब्दस्य तत्परतयाऽनुप-  
 क्रान्तजीवात्मपरत्वासम्भवादिति संक्षेपः अत्र षट्पदार्थकीर्त्तनं

उ० तथापि तुल्यायव्ययतया नायं पुरुषार्थो दुःखवत् सुख-  
स्यापि हानेः द्वयोरपि समानमामग्रीकत्वादिति चेत्  
उत्सर्गतो वीतरागाणां दुःखदुर्द्दिनभीरूणां सुखखद्यो-  
तिकामात्रेऽलम्प्रत्ययवतां तत्र प्रवृत्तेः । ननु तथापि  
दुःखनिवृत्तिर्न पुरुषार्थः, अनागतदुःखनिवृत्तेरशक्यत्वात्  
अतीतदुःखस्यातीतत्वात् वर्त्तमानदुःखस्य पुरुषप्रयत्नमन्त-  
रेणैव निवृत्तेरिति चेन्न हेतुच्छेदे पुरुषव्यापारात् प्राय-  
श्चित्तवत् तथाहि स्वामनं मिथ्याज्ञानं संसारहेतुस्तदु-  
च्छेदश्चात्मतत्त्वज्ञानात् तत्त्वज्ञानञ्च योगविधिमाध्यमिति  
तदर्थं प्रवृत्त्युपपत्तेः । ननु नित्यसुखाभिव्यक्तिरेव मुक्तिर्न तु  
दुःखाभाव इति चेन्न नित्यसुखे प्रमाणाभावात् भावेवा-  
नित्यं तदभिव्यक्तेर्मुक्तसंसारिणोरविशेषापातात् अभिव्यक्तेरु-  
त्पाद्यत्वेन तन्निवृत्तौ पुनः संसारापत्तेश्च । ब्रह्मात्मनि  
जीवात्मलयेो मुक्तिरिति चेन्न लयेो यद्येकीभावस्तदाव-

वि० भावाभिप्रायेण वस्तुतोऽभावेऽपि पदार्थान्तरतया मुनेरभि-  
प्रेतः । अत एव द्वितीयाह्निके “कारणाभावात् कार्याभाव” इति  
सूत्रस्य नवमाध्याये “क्रयागुण्यपदेशाभावात्” इत्यादि सूत्रा-  
णाञ्च नासङ्गतिः, अत एव न्यायलीलावत्यां “अभावश्च वस्तुतो  
निःश्रेयसोपयोगित्वात् भावप्रपञ्चवत् कारणाभावेन कार्याभावस्य  
सर्वसिद्धत्वात्पयोगित्वसिद्धेः” इत्यभिहितं न्यायाचार्यैरपि  
द्रव्यकिरणावल्यां “एते च पदार्थाः प्रधानतयोद्दिष्टाः अभावस्तु  
स्वरूपवानपि नोद्दिष्टः प्रतियोगिनिरूपणाधीननिरूपणत्वात् न तु  
तुच्छत्वात्” इत्यन्तेनाभावस्य सप्तमपदार्थत्वमङ्गीकृतं तथाच स-

उ० धात् नहि द्वयमेकं भवति लिङ्गशरीरापगमो लथो  
 • लिङ्गश्चैकादशेन्द्रिधाणि तेषां शरीरस्य च विगमो लथ  
 इति चेन्न एतावता दुःखसामग्रीविरहस्योक्तत्वात् तथाच  
 दुःखाभाव एव मुक्तिरिति पर्यवमानात् । एतेनाविद्या-  
 निवृत्तौ केवलात्मस्थितिर्मुक्तिरात्मा च विज्ञानसुखात्मक  
 इत्येकदण्डमतमपास्तं आत्मने ज्ञानत्वे सुखत्वे च प्रमा-  
 णाभावात् । नच “नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति” श्रुति-  
 र्मानं तस्या ज्ञानवत्त्वानन्दवत्त्वप्रतिपादकत्वात् भवति हि  
 अहं जाने अहं सुखीतिप्रतीतिः नत्वहं ज्ञानम् अहं सुखमिति  
 किञ्च ब्रह्मण इदानीमपि सत्त्वात् मुक्तसंभारिणोरविशे-  
 षापत्तिः अविद्यानिवृत्तेश्चापुरुषार्थत्वात् ब्रह्मणश्च नि-  
 त्यत्वेनासाध्यत्वात् तत्साक्षात्कारस्य तदात्मकत्वेनासाध्य-  
 त्वात् एवमानन्दस्यापि तदात्मकत्वेनासाध्यत्वमेवेति तदर्थं

वि० मानामेव पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानं निःश्रेयसोपयोगि  
 तदुपयोगिता चात्मनीतरभेदसाधने लिङ्गज्ञानादिविधयेति म-  
 न्तव्यम्, पदार्थविभाजकाश्च द्रव्यत्वादयः सप्तधर्माः तत्र द्रव्यत्व-  
 गुणत्वकर्मत्वानि जातयः नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं सामान्यत्वं  
 जातिमद्भिन्नत्वे सत्येकमात्रसमवेतत्वं विशेषत्वं नित्यसम्बन्धत्वं  
 समवायत्वं द्रव्यादिषट्कभिन्नत्वमभावत्वमिति अत्र प्रयोजनं  
 निःश्रेयसं अभिधेयाः पदार्थाः सम्बन्धश्च शास्त्रनिःश्रेयसयोः  
 पदार्थतत्त्वज्ञान-निःश्रेयसयोश्च प्रयोज्यप्रयोजकभावः शास्त्र-पदा-  
 र्थतत्त्वज्ञानयोः कार्यकारणभावः पदार्थतत्त्वज्ञानयोर्विधयविध-  
 यिभावः पदार्थ शास्त्रयोः प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावश्च निःश्रेयसश्च

उ० प्रवृत्त्यनुपपत्तिरेव । निरूपयन्वा चित्तसन्ततिर्मुक्तिरिति चेन्न दुःखादिरूपस्य उपपन्नस्य विर्गमो यदि निरूपयन्वा तदा तन्मात्रस्यैव पुरुषार्थत्वेन चित्तसन्ततेरनुवृत्तौ प्रमाणाभावः तदनुवृत्तेरपि शरीरादिमाध्यत्वेन संसारानुवृत्तेरावश्यकत्वादिति सिद्धं दुःखनिवृत्तिरेवोक्तरूपा निःश्रेयसमिति । तत्त्वस्य ज्ञानमिति कर्माणि षष्ठी साधर्म्यं वैधर्म्याभ्यामिति प्रकारे तृतीया । तत्र साधर्म्यमनुंगतो धर्मः, वैधर्म्यञ्च व्यावृत्तो धर्मः यद्यपि क्वचित् साधर्म्यमपि कुतश्चिद्वैधर्म्यं कुतश्चिद्वैधर्म्यमपि केषाञ्चित् साधर्म्यं तथापि ताद्रूपेण ज्ञानं विवक्षितम् । अत्र च द्रव्यादिपदार्थानामुद्देश एव विभागः पर्यवसन्नः स च न्यूनाधिकसङ्ख्याव्यवच्छेदफलकस्तेन षडेव पदार्था इति नियमः पर्यवस्यति सचानुपपन्नः व्यवच्छेद्यस्य पदार्थान्तरं ।

वि० न्यायवैशेषिकसाङ्ख्यमतेषु आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिरूपं स्वसमानाधिकरणदुःखासमानकालीनदुःखध्वंसपर्यवसितम् । भवति हि चरमदुःखध्वंसः स्वसमानाधिकरणदुःखासमानकालीनः तदानीं मुक्तात्मनि कस्यापि दुःखस्यानुत्पत्तेः । न्यायैकदेशिमते आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिरेव मोक्षस्तस्यैव साक्षादात्मसाक्षात्कारसाध्यत्वात् “क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे” इति श्रुतेः । एकदण्डिवेदान्तिमते अविद्यानिवृत्तिर्माक्षः । अविद्या च पदार्थान्तरं त्रिदण्डिमते परमात्मनि जीवात्मनो लये मोक्षः स च जीवोपाधिलिङ्गशरीरनिवृत्तिपर्यवसितः लिङ्गशरीरश्च “पञ्चप्राणमनोबुद्धिदण्डिन्द्रियसमन्वितम् । अपक्षीकृतभूतोत्थं

७० प्रतिपत्तौ नियमानुपपत्तिः अप्रतीतौ व्यवच्छेदानुप-  
 • पत्तिः । ननु नाद्यमन्ययोगव्यवच्छेदः किन्त्वयोगव्यच्छेदः  
 पदार्थेषु षड्लक्षणायोगे व्यवच्छिद्यत इति चेन्न पदार्थ-  
 पदेन प्रसिद्धपदार्थमात्रोपसङ्गहे सिद्धसाधनात् अन्यस्य  
 चाप्रतीतेरेव । किञ्च लक्षणानां मिलितानामयोगोव्यव-  
 च्छेद्यः प्रत्येकं वा आद्ये मिलितायोगः सर्वत्रेति व्यव-  
 च्छेदानुपपत्तिः । अन्येऽपि प्रत्येकायोगः परस्परं सर्व-  
 त्रेति व्यवच्छेदानुपपत्तिरेवेति चन्न शक्तिसङ्घातामादृश्यादिषु  
 पदार्थेषु पराभिमतेषु षड्लक्षणायोगः परैरुच्यते तद्वा-  
 वच्छेदात् । नियमार्थः तथाच षडेव पदार्था इत्यस्य प्रती-  
 यमानेषु षष्ठां लक्षणानां मध्ये अन्यतमलक्षणयोगोऽस्यैव  
 नत्वयोग इत्यर्थः । तत्र विशेष्यसङ्गतस्यान्ययोगव्यवच्छेदो  
 विशेषणसङ्गतस्यायोगव्यवच्छेदः क्रियामङ्गतस्य चात्यन्ता-  
 योगव्यवच्छेदस्तावत् प्रतीयते तत्र शक्तित्रयमेवकारस्ये-

वि० सूच्याङ्गं भोगसाधनमिति” प्रतिपादितम् । भट्टान्तु नित्यसुख-  
 साक्षात्कारो मोक्षः नित्यसुखञ्च श्रुतिसिद्धं सर्वजीवगतमपि  
 संसारदशायामव्यक्तं आत्मतत्त्वसाक्षात्कारानन्तरमेव साक्षात्-  
 कृतं भवतीति प्राहुः, येषु मतेषु सम्भवन्तोऽपि दोषा यत्र-  
 गौरवभयान्नोद्भाविताः किन्तु सर्वेषु मतेषु मुक्तादशायामा-  
 त्यन्तिकदुःखनिवृत्तिर्निराबाधैवेति दिक् । ननु शक्तिसादृश्या-  
 दयोऽप्यतिरिक्ताः सान्ति पदार्थाः कथमन्यथा मण्यादिसन्निधाने  
 दहनेन दाहो न जन्यते जन्यते न्व तदसन्निधावतोमण्यादि-  
 र्दहने दाहानुभूतां शक्तिं नाशयति उक्तेजकं मण्याद्यपसरणञ्च

उ० त्येके व्यवच्छेदमात्रे शक्तिरयोगान्ययोगादयस्तु व्यवच्छेद्याः समभिव्याहारलब्धा इत्यपरे । धर्मविशेषप्रसूतादिति तत्त्वज्ञानादित्यस्य विशेषणं तत्र धर्मविशेषो निवृत्तिलक्षणे धर्मः यदि तु तत्त्वं ज्ञायतेऽनेनेति तत्त्वज्ञानं शास्त्रमुच्यते तदा धर्मविशेष ईश्वरनियोगप्रसादरूपो वक्तव्यः श्रूयते हीश्वरनियोगप्रसादावधिगम्य कणादो महर्षिः शास्त्रं प्रणीतवानिति तत्त्वज्ञानमात्मतत्त्वमात्रात्कारं इह विवक्षितस्तस्मैव मधामनमिथ्याज्ञानान्मूलनक्षमत्वात् “तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽनाय” इत्यत्र “द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये” इत्यत्र च वेदनपदस्य मात्रात्कारपरत्वात् “पश्यत्यज्ञतुः” इत्यत्रापि तथा सच शास्त्रान्मनननिदिध्यामनादिपरम्परयेति हेतुपञ्चम्या तथैवाभिधानात् ॥ ४ ॥

वि० पुनरुक्तादयतीत्यवश्यं कल्पनीयम् । एवं सादृश्यमपि पदार्थान्तरं तद्विषयेषु भावेषु नान्तर्भवति सामान्येऽपि सत्त्वात् यथा गोत्वं नित्यं तथाश्वत्वमपीति सादृश्यप्रतीतेः नाप्यभावः भावत्वेन प्रतीयमानत्वादिति चेन्न मण्डाद्यसमवहितवह्नादेः स्वातन्त्र्येण मण्डभावादेर्वा दाहादिकं प्रति हेतुताकल्पनैव सामञ्जस्येऽनन्तगणितत्वागभावतद्धंसकल्पनानिचित्यात् । न चोत्तेजकसमवहितमणिसत्त्वेऽपि कथं दाह इति वाच्यं उत्तेजकासमवहितमणिसामान्याभावस्यैव तथात्वकल्पनात् एवं सादृश्यमपि न पदार्थान्तरं किन्तु तद्विभक्तत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वं यथा चन्द्रभिन्नत्वे सति चन्द्रगताक्लादकलादिमत्त्वं मुखे चन्द्रसादृश्यमिति संक्षेपः । ४ ॥

सू० पृथिव्यापंस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा  
मन इति द्रव्याणि ॥ ५ ॥

उ० इदानीमपवर्गभागितया सर्वपदार्थाश्रयतया च प्रथ-  
मोद्दिष्टस्य द्रव्यपदार्थस्य विभागं विशेषोद्देशञ्च कुर्वन्नाह ॥

इतिकारोऽवधारणार्थः तेन नवैव द्रव्याणि नाधि-  
कानि न न्यूनानि वेत्यर्थः । ननु विभागबलादेव न्यूना-  
धिकसङ्ख्यावच्छेदमिद्वै किमितिकारेणैषिं चेत् उद्देश-  
मात्रपरतयाऽपि सूत्रमन्वे विभागतात्पर्यस्फोरणार्थमे-  
वेतिकाभाभिधानात् सुवर्णादीनामीश्वरस्य चात्रैवान्तर्भा-  
वात् अन्धकारस्य चाधिकत्वेनाशङ्क्यमानस्याभावत्वयुत्पा-

वि० द्रव्याणि विभजते ।

इतिशब्दोऽवधारणपरस्तेनोक्तानि नवैव द्रव्याणि नाधिकानि  
न वा न्यूनानीत्यर्थः । असमासकरणन्तु सर्वेषामितरनैरपेक्ष्येण  
कार्यविशेषोत्पादकताप्रदर्शनार्थं स्वसमवेतकार्यजनने सर्वेषां  
तुल्यताच्चापनार्थं वा नच विभागबलादेव न्यूनाधिकसङ्ख्याव्यव-  
च्छेदसम्भवात् अवधारणार्थकेतिशब्दो व्यर्थ इति वाच्यं यतो  
विभागस्यैव अवधारणवाचकपदासत्त्वे तदाध्याहारैरेव न्यूना-  
धिकसङ्ख्याव्यवच्छेदो बोध्यते अत्र त्वध्याहारं विनैव तादृशव्यव-  
च्छेदबोधार्थमेव मुनिना इतिशब्दोऽभिहित इति ध्येयं द्रव्य-  
त्वजातिस्तु कार्यसामान्यस्य संयोगस्य विभागस्य वा समवायि-  
कारणतावच्छेदकतया सिद्ध्यति ननु कन्दलीकारैः साङ्ख्याचार्यैश्च  
अन्धकारस्य द्रव्यत्वं स्वीकृतं युक्तञ्चेत् कथमन्यथा नीलं तम-



उ० दनादेतदध्यवसेयम् । अममासकरणन्तु सर्वेषां प्राधान्य-  
प्रदर्शनाय लक्षणमेतेषान्तु वैधर्म्यावसरे सूत्रकृदेव दर्श-  
यिष्यति । ननु सुवर्णं न तावत् पृथिवी निर्गन्धत्वात् न  
जलं स्नेहमांभिद्धिकद्रवत्वगून्यत्वात् न तेजो गुरुत्ववत्त्वात्  
अतएव न वायुर्नवा कालादि ततो नवभ्यो भिद्यत इति  
चेन्न आद्यद्वितीययोरनाभासत्वं तृतीयस्य स्वरूपाभिद्धत्वं  
ततः परं सिद्धसाधनं हेतोः स्वरूपासिद्धिश्च । साधयिष्यते  
च सुवर्णस्य तैजसत्वमिति ॥ ५ ॥

गुणत्वेन रूपेण गुणानां सर्वद्रव्याश्रितत्वं द्रव्याभिव्य-  
ञ्जत्वं द्रव्याभिव्यञ्जकत्वञ्चेति द्रव्यान्तरं गुणानामुद्देशं  
विभागञ्चाह ।

वि० अलतीति गुणक्रियाप्रत्ययस्तत्र लोकानां । स हि न पृथिवी निर्ग-  
गन्धत्वात् नाप्यस्य जलादावन्तर्भावः नीलरूपवत्त्वात् तथा चा-  
धिकसङ्ख्यावच्छेदः कथं सम्भवतीति चेन्न आवश्यकतेर्जाविश्रे-  
षाभावेनैवोपपत्तौ द्रव्यान्तरकल्पनाया अन्याय्यत्वात् नीलरूप-  
प्रतीतिस्तु गगन इव तत्र भ्रान्तिरूपा चलनप्रतीतिरपि अलो-  
कापसरणौपाधिकी भ्रान्तिरेव यथा नौकादिचलनौपाधिकी  
तीरस्थदृष्टादौ चलनप्रतीतिर्नास्थानां । तमसो द्रव्यत्वकल्पनेऽन-  
न्ततदवयवप्रागभावध्वंसकल्पनापत्तेः कन्दलीकारमते तु तमसः  
पृथिव्यामन्तर्भाव इति न तन्मते व्यवच्छेदासङ्गतिरिति ध्येयम् ।  
अत्र नवसु द्रव्यविभाजकेषु गगनत्वकालत्वदिकत्वानामेकैकमात्र-  
दत्तित्वान्न जातित्वं श्रेषायां पुनर्जातित्वमेवेति ॥ ५ ॥

गुणान् विभजते ।

सू० रूपरसगन्धस्पर्शाः सङ्ख्याः परिमाणानि पृथ-

उ० चकारेण गुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारधर्माधर्माशब्दान् समु-  
 च्चिनोति ते हि प्रसिद्धगुणभावा एवेति कण्ठतो नोक्ताः ।  
 गुणत्वञ्चामीषां यथास्थानं लक्षणतः स्वरूपतश्च वक्ष्यति  
 रूपरसगन्धस्पर्शानां समानकालीनरूपरसगन्धस्पर्शसामा-  
 नाधिकरणं नास्तीति सूचनार्थं समाप्तः । सङ्ख्यापरिमाण-  
 योस्तु समानकालीनसङ्ख्यापरिमाणसामानाधिकरणसूच-  
 नायाममाप्ते बद्धवचननिर्देशश्च यद्यप्येकत्वसमानाधिकरणं  
 नैकत्वान्तरं न धा० महत्त्वदीर्घत्वममानाधिकरणं महत्त्व-  
 दीर्घत्वान्तरं तथापि द्वित्वादीनामन्योऽन्यं सामानाधिक-  
 रणं महत्त्वदीर्घत्वादीनाञ्च विजातीयपरिमाणयोः सा-  
 मानाधिकरणमस्त्येव । पृथक्त्वञ्च यद्यपि द्विपृथक्त्वादि-  
 समानाधिकरणं तेन सङ्ख्यावद्बद्धत्वेनैव निर्देष्टुमर्हति  
 तथाप्यवधिव्यङ्ग्यत्वलक्षणं सङ्ख्यातो वैधर्म्यं सूचयितुमेक-  
 वचननिर्देशः । संयोगविभागयोर्द्वयोरप्येककर्माजन्यत्वसूच-  
 नाय द्विवचनं परत्वापरत्वयोरन्यान्याश्रयनिरूप्यतया ।

वि० अत्रानुक्तसमुच्चायकचकारेण गुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारधर्मा-  
 धर्माशब्दानामुपग्रहः, अतएव भाष्ये “चशब्दसमुच्चिताश्च  
 गुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारादृशब्दाः सप्तैवेति चतुर्विंशतिगुणा”  
 इति प्रशस्तदेवाचार्यैरभिहितम् । अत्र गुणविभाजकानि रूप-  
 त्वादीनि सर्वाण्येव जातयः सूक्तिकारस्तु वेगस्थितिस्थापकभाव-

सू० कत्वं संयोगविभागौ परत्वापरत्वे बुद्ध्यः सुख-  
दुःखे इच्छादेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥ ६ ॥

उ० दिक्काललिङ्गत्वाविशेषसूचनाय च द्विवचनं बुद्धीनां विद्या-  
दिभेदेन मज्झाभिमतैकमात्रबुद्धिनिराकरणसूचनाय च बज्ज-  
वचनं सुखदुःखयोर्दयोरपि भोगत्वावच्छेदैककालजनकत्वं  
अविशेषेण चादृष्टोन्नायकत्वं सुखस्यापि दुःखत्वेनाप्यवनञ्च  
ख्यापयितुं 'द्विवचनं इच्छादेषयोर्दयोरपि प्रवृत्तिप्रति  
कारणत्वसूचनाय द्विवचनं प्रयत्नानां विहितनिमित्तगो-  
चराणां दशविधानां पुण्यहेतुत्वं दशविधानाञ्च० प त्तु-  
त्वमभिमन्त्राय बज्जवचनमित्युन्नेयम् ।

यदा रूपरसगन्धस्पर्शानां भौतिकेन्द्रियव्यवस्था त्व-  
ज्ञापनार्थं पाकजप्रक्रियाव्यवस्थापनार्थं वा ते समलक्षणाः  
मज्झायां द्वित्वबज्जत्वादौ विप्रतिपत्तिरिति तन्निराकरण-  
सूचनार्थं बज्जत्वेनाभिधानं पृथक्त्वे तु मज्झाबज्जत्वेनैवा-  
स्यापि बज्जत्वमिति सूचनायावधिज्ञानव्यञ्जनीयत्वं मज्झातो  
वैधर्म्यमिति सूचनाय च पृथगभिधानं परिमाणे तु

वि० नासु वर्तमानं संस्कारत्वं न जातिः प्रमाणाभावादित्याह ।  
अथ गुणत्वजातौ किम्मानमिति चेत् इदं द्रव्यकर्मभिन्नसामा-  
न्यवति या कारणता सा किञ्चिद्दर्मावच्छिन्ना निरवच्छिन्न-  
कारणतायां असम्भवात् नहि रूपत्वादिकं सत्ता वा तत्त्वा-  
वच्छेदिका न्यूनातिरिक्तदेशवृत्तित्वात् अतश्चतुर्विधतन्मग्नं वाच्यं

सू० उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमन-  
मिति कर्माणि ॥ ७ ॥

उ० दीर्घत्वद्वस्वत्वादिविप्रतिपत्तिनिरासाय बह्वचनं संयोग-  
विभागयोरन्योन्यविरोधज्ञापनाय द्विवचनं परत्वापरत्व-  
योर्देशिककालिकभेदेन भिन्नजातीत्वसम्भवेन चतुष्टयापत्तौ  
गुणविभागो न्यूनः स्यात् इति तत्रापि द्विवचनमित्या-  
द्युन्नेयम् । एतेषाञ्च लक्षणमये वक्ष्यते ॥ ६ ॥

कर्माणां द्रव्यजन्यतया गुणजन्यतया च रूपवद्द्रव्य-  
समवायाच्च प्रत्यक्षेति द्रव्यगुणाभिधानानन्तरं कर्मा-  
देशविभागावाह ।

उत्क्षेपणं अवक्षेपणं आकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति  
कर्माणि इतिरवधारणार्थः भ्रमणादेरपि गमनान्तर्गत-  
त्वात् अत्र च उत्क्षेपणत्वावक्षेपणत्वाकुञ्चनत्वप्रसारणत्वगमन-  
त्वानि कर्मात्वमात्ताद्याप्याः पञ्च जातयः । नन्वेतदनुपपन्नं

वि० तदेव गुणत्वमिति मुक्तावलीकारः । नथ्यास्तु गुणत्वजातिः प्रत्यक्ष-  
सिद्धा इन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवायतत्त्वप्रत्यक्षसम्भवात् न च त-  
द्युक्तविरहान्न तत्प्रत्यक्षमिति वाचं सर्वत्र व्युत्पन्नस्य जातिप्रत्य-  
क्षप्रयोजकत्वं प्रमाणाभावात् अन्यथा रूपत्वादेरप्यप्रत्यक्षताप-  
त्तेरिति प्राहुः ॥ ६ ॥

कर्माणि विभजते ।

इति पूर्ववदवधारणपरः । कर्मात्वजातिः प्रत्यक्षसिद्धा एव-  
मुत्क्षेपणत्वादिकमपीति मुक्तावलीकारः । गमनत्वञ्च जातिविशेषो

उ० गमनस्य कर्मपर्यायत्वात् सर्वत्र गच्छतीति बुद्धेर्दृष्टत्वाद्-  
 त्क्षेपणत्वादीनां चतसृणां जातीनां परस्पररात्यन्ताभा-  
 समानाधिकरणानां सामानाधिकरणाननुभवात् चतस्र  
 एव कर्मत्वव्याप्या जातय इति चेत् सत्यं कर्मपर्याय एव  
 गमनं पृथगभिधानन्तु भ्रमणरेचनस्यन्दनोद्ध्वलननम-  
 नोन्नमनादीनां भिन्नभिन्नबुद्धित्वपदेशभाजामेकेन शब्देन  
 सङ्ग्रहार्थं यद्वा गमनत्वमपि कर्मत्वव्याप्या पञ्चमी जाति-  
 रेव तेन भ्रमणरेचनादिष्वेव गमनप्रयोगो मुख्यः उत्क्षेप-  
 णावक्षेपणादिषु यदि गमनप्रयोगस्तदा भाक्तः स्वा-  
 श्रयसंयोगविभागासमवायिकारणत्वमेवं गौणमुख्यसाधा-  
 रणो धर्मः गमनत्वजातेस्वनियतदिग्देशसंयोगविभागा-  
 समवायिकारणत्वमेव व्यञ्जकं तत्र भ्रमणादिषु सर्व-  
 चेति गमनग्रहणेनैव तेषां ग्रहणमिति । निष्क्रमणत्वप्रवे-  
 शनत्वादिका तु न जातिः एकस्मिन्नेव कर्मणि गृहाद्  
 गृहान्तरं गच्छन्ति पुरुषे कस्यचित् द्रष्टुः प्रविशतीति  
 प्रत्ययः कस्यचित्तु निष्क्रामतीति तत्र जातिमङ्गलः स्यात्  
 तथा भ्रमणादेरेकस्या जलप्रणाल्या निष्क्रम्यापरां प्रवि-  
 शति निष्क्रामति प्रविशतीति प्रत्ययद्वयदर्शनादुपाधिमा-

वि० भ्रमणरेचनस्यन्दनोद्ध्वलननमनोन्नमनादिष्वपि वर्तन्तेऽतो ना-  
 धिक्यं तद्युक्तञ्च नियतदिग्देशसंयोगविभागाकारणत्वं उत्क्षेप-  
 णादिषु गमनव्यवहारो भाक्तः स्वाश्रयसंयोगविभागासमवायि-  
 कारणत्वमेव गौणमुख्यसाधारणो धर्मः । निष्क्रमणत्वप्रवेशन-

उ० मान्यमेवैतदध्वसेयम् । उत्क्षेपणादौ तु मुषलमुत्क्षिपा-  
मीतीच्छाजनितेन प्रयत्नं प्रयत्नवदात्मसंयोगादसमवा-  
यिकारणाद्धस्ते तावदुत्क्षेपणं तत उत्क्षेपणविशिष्टहस्तनो-  
दनादसमवायिकारणात् मुषलेऽप्युत्क्षेपणाख्यं कर्म युग-  
पदा तत ऊर्द्धमुत्क्षिप्तयोर्हस्तमुषलयोरवक्षेपणेच्छाजनित-  
प्रयत्नवदात्मसंयोगाद्धस्तनोदनाच्च युगपदेव हस्ते मुषले  
चावक्षेपणं उलूखलपातानुकूलं संजायते ततो दृढ-  
तरद्रव्यसंयोगाद् यदकस्मान्मुषलसोर्द्धगमनं भवति तत्र  
नेच्छा न वा प्रयत्नः कारणं किन्तु संस्कारमात्रादेव  
मुषलस्योत्पतनं तच्च गमनमात्रं नद्वत्क्षेपणं भाक्तस्तत्रो-  
त्क्षेपणव्यवहारः एवमनुलोमप्रतिलोमवायुद्वयसङ्घट्टवशा-  
द्वायोस्तत्प्रेरिततण्डलकादौ चोत्क्षेपणव्यवहारो भूक्तः ।  
एवं स्रोतोद्वयसङ्घट्टवशाज्जलोर्द्धगमनेऽपि । एवमुत्क्षेपणाव-  
क्षेपणव्यवहारः शरीरतदवयवतत्संयुक्तमुषलतोमरादिष्वेव  
मुख्यः भवति हि हस्तमुत्क्षिपति मुषलमुत्क्षिपति तोमरमु-  
त्क्षिपतीति एवमवक्षिपतीत्यपि । आकुञ्चनन्तु सत्सेवावयवा-  
नामारम्भकसंयोगेषु परस्परमवयवानामनारम्भकसंयोगो-

वि० त्वादिका तु न जातिः एकस्मिन्नेव कर्मणि एकस्मादावरकादाव-  
रकान्तरं गच्छति पुरुषे प्रविशत्ययमिति कस्यचिद्द्रष्टुः प्रत्ययः  
कस्यचिच्च निष्क्रामतीत्यतो जातिसङ्करप्रसङ्गात् । जगदीशतर्का-  
लङ्कारस्तु ऊर्द्धसंयोगफलक्रियावच्छिन्नव्यापारत्वमेवोत्क्षेपण-

उ० त्यादकं वस्त्राद्यवयविकौटिल्योत्पादकं कर्म यतो भवति ।  
 सङ्कुचति पद्मं सङ्कुचति वस्त्रं सङ्कुचति चर्मोतिप्रत्ययः  
 एवमवयवानां पूर्वोत्पन्नानारम्भकसंयोगविनाशकं कर्म  
 प्रसारणं यतो भवति प्रसरति वस्त्रं प्रसरति चर्मं प्रविक-  
 सति पद्ममित्यादि प्रत्ययः, एतच्चतुष्टयभिन्नं यत् कर्म-  
 जातं तत्सर्वं गमनविशेषः । तत्र भ्रमणं प्रयत्नवदात्म-  
 संयोगाद्भ्रूस्ते कर्मवता हस्तेन नोदनाख्यसंयोगादवघट्टनाच्च  
 चक्रादौ तिर्यक्संयोगानुकूलं कर्म एवं रेचनाद्यपि व्या-  
 ख्ययं स्फुटीकरिष्यति चाये तदेतेषां कर्मणां विहित-  
 यागस्नानदानादिषु धर्मानुकूलप्रयत्नवदात्मसंयोगजन्यत्वं  
 निषिद्धदेशगमनहिंसाकलञ्जभक्षणादिषु चाधर्मानुकूल-  
 प्रयत्नवदात्मसंयोगजन्यत्वमध्यवमेयमिति ॥ ७ ॥

द्रव्यादीनामुद्देशानन्तरं त्रयाणां साधर्म्यप्रकरणमा-  
 रभते । तत्र द्रव्यादीनां त्रयाणां साधर्म्यस्य तत्त्वज्ञाना-  
 नुकूलतया प्रथमं शिष्याकाङ्क्षितत्वात् सामान्यादिपदार्थ-  
 त्रयस्य उद्देशात् प्रागेव त्रयाणां साधर्म्यमाह :

वि० त्वं तदेवोत्तिष्ठपतीत्यत्र धात्वर्थतावच्छेदकं नतूत्त्वेपणत्वं जातिः  
 प्रवेशनत्वादिना सङ्घरात् लोष्टमुत्तिष्ठपतीत्यादौ लोष्टादेः कर्म-  
 त्वानुपपत्तेश्चेति प्रकाशिकायां प्राह । गमनत्वञ्च न जातिः किन्तु  
 संयोगावच्छिन्नक्रियात्वमेवेति तु नय्याः ॥ ७ ॥

इदानीं द्रव्यगुणकर्मणां साधर्म्यमाह ।

सू० सदनित्यं द्रव्यवत्कार्यं कारणं सामान्यविशेष-  
वदिति द्रव्यगुणकर्मणामविशेषः ॥ ८ ॥

उ० विशेषे सत्यपि अयमविशेषशब्दः साधर्म्यपरः । सदिति मदाकारप्रत्ययव्यपदेशविषयत्वं त्रयाणामेव सत्तायोगित्वात् अनित्यमिति ध्वंसप्रतियोगित्वं यद्यपि न परमाखादिसाधारणं तथापि ध्वंसप्रतियोगित्वत्तिपदार्थविभाजकोपाधिभक्तं विवक्षितम् । द्रव्यवदिति द्रव्यं समवायिकारणतयाऽस्थास्तोति द्रव्यवत् एतदपि परमाखादौ नास्तोति द्रव्यमसवायिकारणकवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिभक्तं विवक्षितम् । कार्यमिति प्रागभावप्रतियोगित्वत्तिपदार्थविभाजकोपाधिभक्तं विवक्षितम् । कारणमिति ज्ञानेतरकार्यनिवृत्तपूर्ववृत्तिजातीयवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिभक्तं तेन स्वसाक्षात्कारे विषयतयाकारणे गोत्वादौ नातिप्रमक्तिर्नवापारिमाण्डल्यादावजनकेऽव्याप्तिः सामान्यविशेषवदिति सामान्यं नद्विशेषोऽन्यान्यव्यावर्तकतया द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वादि तद्वत्त्वमित्यर्थः । ननु “गं दद्यात्”

वि० इतीत्यनन्तरं प्रत्यय इत्यध्याहार्यम्, सामान्यं सद्विशेषो द्रव्यत्वादि तद्वत् । सदित्यादिप्रत्ययो यथा द्रव्ये तथा गुणकर्मणोरपि तत्र न कश्चित् विशेषः । तथाच सत्तावत्त्वं ध्वंसप्रतियोगित्वं द्रव्यसमवायिकारणकत्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं कारणत्वं सत्ताव्याप्यजातिभक्तं च द्रव्यगुणकर्मणां साधर्म्यमिति भावः । यद्यप्यनित्यत्वादित्त्रिकं नित्ये द्रव्ये गुणे चाव्यक्तं कारणत्वञ्च पारिमाण्डल्यादौ



सू० द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥ ६ ॥

उ० “गौः पदा न स्पृष्टव्या” इति श्रुतेर्धर्माधर्मजनकत्वं जातेर-  
पीति कारणत्वमतिव्यापीति चेन्न अवच्छेदकतामात्रेण जा-  
तेर्विनियोगात् । उपलक्षणञ्चेत् स्वममवाचार्थशब्दाभिधे-  
यत्वमपि त्रयाणां साधर्म्यं द्रष्टव्यम्, यदि तु कार्यत्वानित्य-  
त्वे कारणवतामेव “कारणत्वञ्चान्यत्र पारिमाण्डल्यादिभ्यः”  
इति प्रशस्त्वेवाचार्यव्यवस्थितं साधर्म्यमुच्यते तदा पदार्थ-  
विभाजकोपाधिमत्तया न विशेष्यं सूत्रोक्तरीत्या त्रयाणां  
गुणजनकत्वं गुणजन्यत्वञ्चान्यत्र नित्यद्रव्येभ्य इति ॥ ८ ॥

इदानीं द्रव्यगुणयोरेव साधर्म्यमाह ।

एतदेव सूत्रान्तरेण स्पृष्टयति ॥ ९ ॥

वि० तथापि ध्वंसप्रतियोगिभाववृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं अ-  
नित्यत्वं द्रव्यसमवायिकारणकवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं  
द्रव्यवत्त्वं प्रागभावप्रतियोगिभाववृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं  
कार्यत्वं समवाय्यसमवाय्यन्यतरकारणवृत्तिपदार्थविभाजकोपा-  
धिमत्त्वं कारणत्वं द्रव्यादीनां साधर्म्यमित्यत्र तात्पर्यं प्रथमं  
चरमञ्च यथाश्रुतमेवेति हृदयम् । इदमुपलक्षणं समवायानु-  
योगित्वम् अर्थशब्दाभिधेयत्वञ्च तेषां साधर्म्यं बोध्यम् ॥ ८ ॥

द्रव्यगुणयोः साधर्म्यमाह ।

पार्थिवाः परमाणवः पार्थिवं ह्यणुकमारभन्ते परमाणुनीलरू-  
पादिकञ्च ह्यणुकादिगतं नीलरूपादिकमारभते इति द्रव्यगुणयोः  
सजातीयारम्भकत्वं यद्यपि गगनादावन्त्यावयविनि तद्रूपे चा-

सू० द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च गुणान्तरम् ॥ १० ॥  
कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते ॥ ११ ॥

उ० अन्यावयविविभुद्रव्याणि तथान्यावयवविगुणान् द्वित्वद्विपृथक्परत्वापरत्वादीन् गुणांश्च विहाय सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यं द्रष्टव्यं सजातीयारम्भकवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं वा विवक्षितं तेनाजनकद्रव्यव्यक्तीनामप्युपगच्छः ॥ १० ॥

ननु कर्माणि कुतो न कर्मान्तरमारभन्त इत्यत आह ।

विदिरयं ज्ञानार्थं नतु सत्ताभिधायी । सजातीयारम्भद्रव्यगुणधोरिव कर्मसाध्ये कर्मणि प्रमाणं नास्तीत्यर्थः । इदमत्राकृतम् । कर्म यदि कर्म जनयेत् स्वात्पत्त्यनन्तरमेव जनयेत् शब्दवत् । तथाच पूर्वकर्मणैव यावत् संयोगिद्रव्यभेदा विभागे जनिते द्वितीयं कर्म केन सह विभागं

वि० यामिस्तथापि सजातीयारम्भकवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वस्य साधर्म्यत्वे तात्पर्यम् ॥ ६ ॥

पूर्वात्तामेव स्पष्टयति ।

सुगमम् ॥ १० ॥

नैतादृशं कर्मैत्याह ।

कर्मसाध्यं कर्म न विद्यते तथाच प्रमाणाभावात् कर्मणः कर्मारम्भकत्वमिति भावः । अयमभिसन्धिः क्रिया चेत् क्रियान्तरं जनयेत् तदा स्वात्पत्तिद्वितीयत्वात् एव जनयेत् शब्दवत्

सू० न द्रव्यं कार्यं कारणञ्च बधति ॥ १२ ॥

उ० जनयेत् विभागस्य संयोगपूर्वकत्वात् संयोगान्तरस्य च तत्राधिकरणेऽनुत्पन्नत्वात्. विभागजनने तु कर्मलक्षणत्वेः नच क्षणान्तरे कर्मान्तरं जनयिष्यतीति वाच्यं समर्थस्य चेपायोगान्तु अपेक्षणीयान्तराभावात् पूर्वसंयोगनाशक्षणेऽपि जनने विभागजनकत्वानुपपत्तिरेव उत्तरसंयोगोत्पत्तिकालेऽपि जनने तथैव । उत्तरसंयोगोत्पत्त्यनन्तकालान्तु कर्मानाश एव तथाच सुष्टूक्तं कर्म कर्ममाध्यं न विद्यत इति ॥ ११ ॥

गुणकर्मभ्यां द्रव्यस्य वैधर्म्यमाह ।

द्रव्यं न स्वकार्यं हन्ति न वा स्वकारणं हन्ति कार्यकारणभावापन्नयोर्द्रव्ययोर्बध्यघातकभावा नास्तीत्यर्थः । आश्रयनाशारम्भकसंयोगनाशाभ्यामेव द्रव्यनाशादितिभावः । बधतीति सौत्रे निर्देशः ॥ १२ ॥

विः सत्यां हि सामग्र्यां फलविलम्बस्यादृष्टचरत्वात् तथाच प्रथमकर्मणैव विभागे जनिते द्वितीयं कर्म कतमं विभागं जनयिष्यति विभक्त्याजनने च तस्य कर्मत्वानुपपत्तिः संयोगविभागयोरनपेक्षकारणं कर्मेति तल्लक्षणादिति ॥ ११ ॥

इदानीं गुणकर्मभ्यां द्रव्यस्य वैधर्म्यमाह ।

द्रव्यं स्वस्य कार्यं कारणं वा न हन्तीत्यर्थः । बधतीति सौत्रः प्रयोगः । अर्थभावः जन्यद्रव्यं हि आश्रयनाशादारम्भकसंयोगनाशाद्वा नश्यति नतु द्रव्यस्य कारणं कार्यं वा तन्नाशयतीति ॥ १२ ॥

सू० उभयथा गुणाः ॥ १३ ॥

कार्यविरोधि कर्म ॥ १४ ॥

उ० गुणस्य कार्यकारणबध्यत्वमाह ।

कार्यबध्दाः कारणबध्दाश्चेत्यर्थः, आद्यशब्दादीनां कार्यबध्यत्वं चरमस्य तु कारणबध्यत्वम् उपान्तेन शब्देन अन्यस्य नाशात् ॥ १३ ॥

गुणानां कार्यकारणोभयविरोधित्वमुक्त्वा कर्मणः कार्यविरोधित्वमाह ।

कार्यं विरोधि यस्येति ब्रह्मव्रीहिः स्वजन्योत्तरसंयोग-  
नाशत्वात् कर्मणः द्रव्याणां कार्यकारणविरोधित्वं नि-  
यतमेव गुणकर्मणोस्त्वनियमः आश्रयनाशकमवायिका-  
रणनाशनिमित्तनाशविरोधिगुणानां नाशकत्वस्य ब्रह्म-  
माणत्वात् ॥ १४ ॥

शिक्षाकाङ्क्षानुरोधेन त्रयाणां साधर्म्यमभिधायेदानीं  
त्रयाणां लक्षणमारभमाण आह ।

वि० नैतादृशा गुणा इत्याह ।

कश्चिद्गुणः स्वकार्येण नाशयते यथादिमः शब्दे द्वितीयेन  
शब्देन कश्चिच्च स्वकारणेन नाशयते यथोपान्त्यशब्देनान्यशब्दः ॥

॥ १३ ॥

स्वकार्यमेव कर्मणो नाशकमित्याह ।

कार्येणोत्तरसंयोगरूपेण कृता यो विरोधो नाशस्तद्वत् कर्म-  
त्यर्थः । अथवा कार्यं विरोधि नाशकं यस्येति ब्रह्मव्रीहिः ॥ १४ ॥

ब्रह्मस्य लक्षणमाह ।

सू० क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यल-  
क्षणम् ॥ १५ ॥

उ० क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्तेऽर्था प्रकृति क्रियागुणवत् अत्र  
लक्षणशब्दश्चिह्नवचनः समानासमानजातीयव्यवच्छेदक-  
व्यतिरेकिलिङ्गविशेषवचनश्च लक्ष्यतेऽनेनेतियुत्पत्तिबलात्  
तत्र क्रियाया कर्मणा द्रव्यमिदमिति लक्ष्यते गुण-  
वत्त्वेन च समानासमानजातीयेभ्यो व्यावृत्तं द्रव्यं लक्ष्यते  
तत्र समानजातीया भावत्वेन गुणादयः पञ्च असमान-  
जातीयस्त्वभावः तेन द्रव्यं गुणादिभ्यो भिन्नं गुणवत्त्वात्  
यत्र गुणादिभ्यो भिद्यते तत्र गुणवत् यथा गुणादीति ।  
गुणवत्त्वं यद्यप्याद्यक्षणेऽवयविनि नास्ति तथापि गुणात्य-  
न्ताभावविरोधिमत्त्वं विवक्षितं गुणप्रागभावप्रध्वंसयोरपि  
गुणात्यन्ताभावविरोधित्वात् एवं समवायिकारणत्वमपि

वि० क्रियाश्च गुणाश्च सन्त्यस्मिन्निति क्रियागुणवत् अत्र क्रियावत्त्वं  
कर्मवद्भूतिगदार्यविभाजकोपाधिमत्त्वं नातो गगनादावव्याप्तिः  
यद्वात्र क्रियावत्त्वं स्वजन्यसंयोगवत्त्वसम्बन्धेन स्वजन्यविभागवत्त्व-  
सम्बन्धेन वा बोध्यम् । उपस्कारकारास्तु चिह्नत्वरूपलक्षणत्वं  
क्रियायाः गुणवत्त्वसमवायिकारणत्वयोश्च समानासमानजातीय-  
व्यवच्छेदकत्वरूपलक्षणत्वं लक्ष्यतेऽनेनेतियुत्पत्तेर्द्विविधलक्षणबो-  
धादित्याहुस्तच्चिन्त्यम्, इतरभेदानुमापकत्वतिरिक्तस्य चिह्नत्वस्य  
दुर्बलत्वात् नच द्रव्यत्वसामानाधिकरण्येनेतरभेदानुमापकत्वं  
द्रव्यचिह्नत्वं तदवच्छेदेनेतरभेदानुमापकत्वञ्च व्यवच्छेदकत्वं नातो-

सू० द्रव्याश्रयगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणम्-  
 नपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥ १६ ॥

उ० षट्पदार्थभेदकमेव द्रव्यपदार्थस्य लक्षणं नच साध्याप्र-  
 सिद्धिर्गुणादिभेदस्य घटादावेव प्रत्यक्षसिद्धत्वात् नचात्र  
 सिद्धसाधनं घटत्वावच्छेदेनेतरभेदस्य सिद्धत्वेऽपि द्रव्य-  
 त्वावच्छेदेन साध्यत्वात् पक्षतावच्छेदकभेदे न सिद्धसाधनं  
 यथा नित्ये वाङ्मनसे इत्यत्र इति केचित्तन्न पक्षतावच्छे-  
 दकार्वाचक्ष्णे क्वचिदपि साध्यसिद्धौ पक्षताक्षतेस्तथाप्या-  
 वश्यकत्वात् इतिशब्दस्य इत्यादिपरस्तेन सङ्ख्यावत्त्वपरि-  
 माणवत्त्वपृथकत्ववत्त्वसंयोगवत्त्वविभागवत्त्वान्यपि द्रव्यलक्ष-  
 णत्वेन मङ्गुल्लन्ते ॥ १५ ॥

द्रव्यानन्तरं गुणानामुद्देशात् तल्लक्षणमाह ।

द्रव्यमाश्रयितुं शीलमस्येति द्रव्याश्रयी एतच्च द्रव्येऽपि  
 गतमत आह अगुणवानिति तथापि कर्मण्यतिव्याप्तिरि-

वि० भागासिद्धिरिति वाच्यं गन्धवत्त्वादेरपि द्रव्यचिह्नत्वापत्तेर्नचेष्टा-  
 पत्तिरुद्देशलक्षणपरीक्षाप्रकाशकशास्त्रेषु केनापि मुनिना निब-  
 न्धकारेण वा चिह्नरूपलक्षणस्यानभिधानादित्यलमनल्पजल्पनेन ।  
 अत्रेति शब्दे गणसूचकः तेन सङ्ख्यादीनां पदानां प्रत्येकस्यापि  
 लक्षणत्वं सूचितमिति दिक् ॥ १५ ॥

गुणलक्षणमाह ।

द्रव्यरूपो य आश्रयः सोऽस्यान्तीति द्रव्यमाश्रयितुं शीलं य-  
 स्येति वा द्रव्याश्रयी यद्यपि द्रव्याश्रितत्वं द्रव्यकर्मादावतिव्याप्तं

उ० त्वत् आह संयोगविभागेष्वकारणं तथापि संयोग-  
 विभागधर्माधर्मेश्वरज्ञानादीनामसङ्ग्रहः स्यादत उक्तमनपेक्ष-  
 इति अत्रानपेक्ष इत्यनन्तरं गुण इति पूरणीयं संयोग-  
 विभागेष्वनपेक्षः सन् कारणं यो न भवति स गुणइत्यर्थः ।  
 संयोगविभागादीनां संयोगविभागौ प्रति सापेक्षत्वात् ।  
 नित्यवृत्तिनित्यवृत्तिसत्ताव्याप्यजातिमत्त्वं गुणत्वं संयोग-  
 विभागौ मिलितौ प्रति समवायिकारणत्वासमवायिका-  
 रणत्वरहितौ सामान्यवति यत् कारणत्वं तद्गुणत्वाभिव्य-  
 च्चकं संयोगविभागयोः प्रत्येकमेव संयोगविभागकारणकत्वं  
 न मिलितयोः धर्माधर्मेश्वरज्ञानादीनां द्वयोर्निमित्त-  
 कारणत्वमात्रं न समवायिकारणत्वं नाप्यसमवायिकारण-  
 त्वमिति तेषां सङ्ग्रहः, यद्वा संयोगविभागसमवायित्वा-  
 समवायिकारणत्वप्रून्यत्वं सामान्यसमानाधिकरणं गुणत्व-  
 व्यञ्चकं सामान्यवत्त्वे सति कर्मान्यत्वे च सत्यगुणवत्त्वमे-  
 वा गुणलक्षणम् ॥ १६ ॥

वि० तथापि सकलद्रव्यगताश्रयता निरूपकतावच्छेदकसत्तान्यजाति-  
 मत्त्वस्य लक्षणत्वे तात्पर्यं द्रव्यत्वं कर्मत्वञ्च न तादृशं गगनादौ  
 द्रव्यकर्मणोरश्रयत्वाभावात् सामान्यत्वञ्च न जातिः सत्ताया-  
 स्तादृशत्वेऽपि न सत्तान्यत्वमिति अगुणवानित्यादि अत्रापेक्षइत्य-  
 न्तमेकं लक्षणम्, अनपेक्ष इत्यनन्तरं गुण इति लक्ष्यपदं पूर-  
 णीयं संयोगविभागेषु निरपेक्षः स्वोत्तरभ्रानपेक्षः सन् कारणं  
 यो न भवति कर्माभिन्न इति फलितार्थः सामान्यवानिति पूरणीयं  
 तथाच गुणवद्भिन्नः कर्मान्यो यः सामान्यवान् स गुण इत्यर्थः ।

सू० एकद्रव्यमगुणं \*संयोगविभागेष्वनपेक्षकारण-  
मिति कर्मलक्षणम् ॥ १७ ॥

उ० गुणानन्तरमुद्दिष्टस्य कर्मणो लक्षणमाह ।

एकमेव द्रव्यम् आश्रयो यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यते ।  
गुणोऽस्मिन्नित्यगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति स्वी-  
त्यनन्तरोत्पत्तिकभावभूतानपेक्षमित्यर्थः । तेन समवा-  
यिकारणापेक्षायां पूर्वसंयोगाभावापेक्षायाञ्च नासिद्धत्वं  
स्वीत्यनन्तरोत्पत्तिकानपेक्षत्वं वा विवक्षितं, पूर्वसंयोग-  
ध्वंसस्यापि स्वीत्यनन्तरानुत्पत्तिकत्वात् अभावत्वेन त-  
स्याद्यक्षणसम्बन्धाभावात् नित्याद्यत्तिसत्तासाक्षाद्याप्यजा-  
तिमत्त्वं कर्मत्वं चलतीतिप्रत्ययामाधारणकारणतावच्छे-  
दकजातिमत्त्वं वा गुणान्यनिर्गुणमात्रद्यत्तिसत्ताजातिमत्त्वं वा

वि० द्रव्यकर्मणोर्दुदासाय विशेषणद्वयं सामान्यादिव्युदासार्थं विशेष-  
द्यदलमिति ॥ १६ ॥

कर्मलक्षणमाह ।

एकं द्रव्यमाश्रयो यस्य तदेकद्रव्यं यथावयवविद्रव्यं संयोगादि-  
गुणास्त्रानेकाश्रिताः तथा किमपि कर्म नानेकाश्रितं तथा-  
श्रानेकाश्रिताद्यत्तिसत्तासाक्षाद्याप्यजातिमत्त्वं कर्मणो लक्षण-  
मित्यर्थः अगुणमिति गुणवद्भिन्नमित्यर्थः तथाच गुणवद्भिन्नद्यत्ति-  
गुणाद्यत्तिसत्ताजातिमत्त्वं पर्यवसितं लक्षणं संयोगविभागेषु स्वान-  
न्तरोत्पन्नभावनैरेपेक्षेण कारणत्वं तृतीयं लक्षणं कर्मण उच्यते-

\* संयोगविभागोरित्यपि कश्चित् पाठः ।



सू० द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥ १८ ॥

उ० स्थापत्यव्यवहितोत्तरक्षणवृत्तिविभागकारणतावच्छेदकजा-  
तिमत्त्वं वा स चायं चलतीतिप्रत्ययसाक्षिकः पदार्थो  
नाविरलदेशोत्पादनादिनोपपाद्यः क्षणभङ्गस्याये निरा-  
करिष्यमाणत्वात् । लक्षणस्य इतरभेदसाधकताप्रकारः  
पूर्वाक्त एव ॥ १७ ॥

इदानीं कारणमुखेन त्रयाणामेव साधर्म्यप्रकरणमुप-  
क्रमते ।

समानमेव सामान्यं एकमित्यर्थः अनयोः समाना-  
मातेतिवत् । एकस्मिन्नेव द्रव्ये समवायिकारणे द्रव्यगुण-  
कर्मणि वर्तन्ते इत्यर्थः द्रव्यसमवायिकारणकवृत्तिजा-  
तिमत्त्वं त्रयाणां साधर्म्यम् ॥ १८ ॥

गुणसमवायिकारणकत्वं त्रयाणां साधर्म्यमाह ।

वि० संयोगजनने समवायिद्रव्यकालादृष्टेश्वरादिभावापेक्षणात् प-  
संयोगनाशापेक्षणाच्च खानन्तरोत्पन्नभावित्युक्तमधिकमन्यवानु-  
सन्धेयम् । सूत्रे संयोगविभागयोरिति षष्ठ्यन्तपाठो मुक्तावली-  
कारादिसम्मतः ॥ १७ ॥

कारणकयनव्याजेन त्रयाणां साधर्म्यमाह ।

समानमेव सामान्यं स्वार्थिकप्रत्ययात् एकमित्यर्थः अनयोः  
समानमधिकरणमितिवत् द्रव्यगुणकर्मणां त्रयाणामेव समवा-  
यिकारणमेकं द्रव्यं तथाच द्रव्यसमवायिकारणकवृत्तिपदार्थ-  
विभाजकरोपाधिमत्त्वं त्रयाणां साधर्म्यमित्यर्थः ॥ १८ ॥

साधर्म्यान्तरमाह ।

सू० तथागुणः ॥ १६ ॥

उ० गुणासमवायिकारणकृत्तिजातिमत्त्वं त्रितयसाधर्म्यं  
द्रव्याणां संयोगोऽसमवायिकारणं कार्यगुणानां रूपरस-  
गन्धस्पर्शमह्वापरिमाणपृथक्त्वादीनां सजातीयकारण-  
गुणासमवायिकारणकत्वं बुद्ध्यादीनामात्मगुणानां मनः-  
संयोगासमवायिकारणकत्वं पार्थिवपरमाणुगुणानामग्नि-  
संयोगासमवायिकारणकत्वं कर्मणान्तु बुद्ध्यादिनोदना-  
भिघातगुरुत्वद्रवत्वसंस्कारादृष्टवदात्मसंयोगप्रयत्नवदात्म-  
संयोगाद्यसमवायिकारणकत्वं यथायथं स्वयमूहनोयम् ।  
क्वचिदेकस्यापि गुणस्य त्रयाणां द्रव्यगुणकर्मणामारम्भ-  
कत्वं तद् यथा वेगवत्तूलपिण्डसंयोगस्तूलपिण्डान्तरे कर्म  
करोति द्वितूलकञ्च द्रव्यमारभते तत्परिमाणञ्च । क्वचि-  
देको गुणो द्रव्यगुणावारभते यथा तूलपिण्डसंयोग एव  
वेगानपेक्षप्रचयाख्या द्वितूलकं द्रव्यं तत्परिमाणञ्चार-  
भते ॥ १६ ॥

वि० द्रव्यगुणकर्मणां त्रयाणां यथा एकं द्रव्यं समवायिकारणं  
तथा एको गुणोऽसमवायिकारणं तथाच गुणासमवायिकार-  
णकृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं त्रयाणां साधर्म्यमित्यर्थः  
भवति हि द्रव्यम् अवयवसंयोगासमवायिकारणकम् अवयवविगता  
रूपरसादिगुणा अवयवगतसमानजातीयगुणासमवायिकारण-  
काः कर्माणि नोदनाद्यसमवायिकारणकानीति गुणासमवायि-  
कारणकृत्तित्वं द्रव्यत्वादिपदार्थविभाजकोपाधित्रिके इति ॥ १६ ॥

सू० संयोगविभागवेगानां कर्म समानम् ॥ २० ॥  
न द्रव्याणां कर्म ॥ २१ ॥

उ० क्वचिदेकस्य कर्मणोऽनेककार्यकारित्वमाह ।

कारणमित्यनुषङ्गः । यत्र द्रव्ये कर्मात्पक्षं समं  
यावद्द्रव्यं संयुक्तमासीत् तावत्सङ्ख्यकान् विभागान् जन-  
यित्वा तावतः संयोगानपि पुनरन्यत्र जनयति । पुन-  
रेकमेव स्वाश्रये करोति वेगपदं स्थितिस्थापकमप्यु-  
च्यति ॥ २० ॥

ननु क्रियावता द्रव्येणारम्भकसंयोगे जनिते तेन  
द्रव्यमारम्भं यत्तदपि कर्मजन्यमेव कर्मणस्तत्पूर्ववर्त्तित्वा  
दत आह ।

कर्म द्रव्याणां न कारणमित्यर्थः ॥ २१ ॥

कुत एव मत आह ।

वि१ द्रव्यगुणयोरिव कर्मणोऽप्यनेककार्यकारित्वमाह ।

समानमित्यनन्तरं कारणमिति पूरणीयं पूर्वाह्नस्यस्य का-  
रणमित्यस्यानुषङ्गो वा शरादौ यत् कर्म जायते तद्धनुषः शरस्य  
विभागम् उत्तरदेशेन संयोगं शरे वेगश्च जनयतीति भावः ॥

॥ २० ॥

द्रव्येषु कर्मणः कारणत्वं नास्तीत्याह ।

कारणमित्यस्य पूर्ववत् पूरणमनुषङ्गो वा । कर्मपदार्थो  
द्रव्याणां कारणं न भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

नन्ववयवसंयोगजनकं कर्म कुतो न द्रव्यकारणमित्यत आह ।

सू० व्यतिरेकात् ॥ २२ ॥

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥ २३ ॥

उ० व्यतिरेकादिति निवृत्तेरित्यर्थः । उत्तरसंयोगेन कर्मणि निवृत्ते द्रव्यमुत्पद्यते इति न कर्मणो द्रव्यकारणत्वं वि-  
नश्यदवस्यञ्च कर्म न द्रव्यकारणम् । किञ्च कर्म द्रव्यस्या-  
समवायिकारणं वा भवेन्निमित्तकारणं वा न तावदाद्यः  
द्रव्यस्यासमवायिकारणनाशनाशत्वेन अवयवकर्मनाशादेव  
द्रव्यनाशापत्तेः न द्वितीयः महापटनाशेऽवस्थितसंयोगेभ्य-  
एव खण्डपटोत्पत्तौ निष्कर्माणामेवावयवानां द्रव्यारम्भ-  
दर्शनाद्वाभिचारात् ॥ २२ ॥

बह्वनामेकस्यारम्भकत्वमुक्त्वा इदानीमेकस्मिन् कार्यं  
बह्वनामारम्भकत्वमाह ।

द्रव्ये च द्रव्याणि चेति द्रव्याणि तेषां द्रव्याणां । तत्र

वि० व्यतिरेकात् द्रव्योत्पत्तिसमये कर्मणोऽभावात् यत् कर्मावय-  
वारम्भकसंयोगं जनयति संयोगस्य तन्नाशकत्वेन संयोगोत्तरं  
द्रव्योत्पत्तिकाले तस्य नाशात् नच कर्मणः कार्यकालेऽसत्त्वेऽपि  
तत्पूर्वक्षणावृत्तित्वात् कारणात्वं निराबाधमिति वाच्यं महापट-  
नाशानन्तरं खण्डपटोत्पत्तेः पूर्वक्षणेऽपि तदवयवेषु कर्मणो  
ऽभावात् वस्तुतः कर्मजनितारम्भकसंयोगाधीनद्रव्येऽपि न कर्म  
कारणं संयोगेनान्यथासिद्धत्वादिति ध्येयम् ॥ २२ ॥

इदानीमेकस्यानेककारणकत्वमाह ।

बह्वनामवयवरूपद्रव्याणामवयविरूपमेकं द्रव्यं कार्यमित्यर्थः

सू० गुणवैधर्म्यान्न कर्मणां कर्म ॥ २४ ॥

उ० दाभ्यां तन्तुभ्यां द्वितन्तुकः पटो वज्रभिरपि तन्तुभिरेकः पट आरभ्यते । नन्वेकतन्तुकोऽपि पटो दृश्यते यत्रैकेनैव तन्तुना तानप्रतितन्त्रौ भवत इति चेन्न तत्रैकस्य संयोगाभावेनासमवायिकारणाभावात् पटानुत्पत्तेः । नचांशुकतन्तुसंयोगोऽसमवायिकारणम् अवयवावयविनोरयुतसिद्धत्वेन, संयोगाभावात् आरभ्यारम्भकभावानभुपगमात् मूर्त्तानां समानदेशताविरोधात् । दृश्यते तावदेवमिति चेन्न तत्र वेमाद्यभिघातेन महावयविनस्तन्तोर्नाशात् खण्डावयविनानातन्तुत्पत्तौ तेषामन्यान्यसंयोगात् पटोत्पत्तेः वस्तुगत्या तत्र नानाभूतेषु तन्तुषु एकत्वाभिमानात् ॥ २३ ॥

ननु यथा द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं गुणानाञ्च गुणस्तथा किं कर्मणामपि कर्म कार्यमित्यत आह ।

कार्यमिति शेषः द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यमुक्तं तत्र कर्म कर्मसाध्यं न विद्यते इति सूत्रेण

वि० सामान्यशब्दस्य पूर्वोक्तरीत्या एकबोधकत्वात् । इदमुपलक्ष्यं द्वयोरपि द्रव्ययोरैकं द्रव्यं कार्यमित्यपि द्रष्टव्यम् असमवायिकारणसंयोगाभावादेकस्यावयवस्य नावयव्यारम्भकत्वमिति ॥ २३ ॥

एकस्मिन् कर्मण्यनेककर्मजन्यत्वं नास्तीत्याह ।

कर्ममिति कार्यमिति शेषः ननु गुणकर्मणोर्द्रव्यसमवेतत्वाविशेषात् गुणानां गुणजन्यत्ववत् कथं न कर्मणां कर्मजन्यत्वमि-

सू० द्वित्वप्रभृतयः संख्याः पृथक्त्वसंयोगविभागाश्च ॥

॥ २५ ॥

उ० कर्माणां कर्मजनकत्वं प्रतिषिद्धमेव तदिहानूद्यते इति भावः ॥ २४ ॥

इदानीं व्यासज्यवृत्तीनां गुणानां अनेकद्रव्यारभ्यत्वं दर्शयन्नाह ।

अनेकद्रव्यारभ्या इति शेषः द्वित्वाद्भिन्नमभिव्याहृतं पृथक्त्वपदमपि द्विपृथक्त्वादिपरम्, एवञ्च द्वित्वादिकाः परार्द्धपर्यन्ताः सङ्ख्या, द्विपृथक्त्वादीनि च संयोगा विभागाश्च द्वाभ्यां बद्धमित्येव द्रव्यैरारभ्यन्ते इत्यनेकवृत्तित्वसमीषां तच्च समवाय्यन्यान्याभावमामानाधिकरण्यम् ॥ २५ ॥

नन्ववयविद्रव्याणां गुणानाञ्ज्ञेयानां यथा व्यासज्यवृत्तित्वं तथा कर्माणामपि किं न स्यादत आह ।

वि० त्वत् उक्तं गुणवैधर्म्यादिति । यथा द्रव्यसमवेतत्वरूपं गुणसाधर्म्यं कर्मणि तथा कर्मत्वादिरूपं गुणवैधर्म्यमपीति सजातीयानारम्भकत्वमपि वैधर्म्यान्तरं कर्मणीति भावः एतच्च पूर्वोक्तमपि स्पष्टार्थमुक्तम् ॥ २४ ॥

केषाञ्चित् गुणानामप्यनेकद्रव्यारब्धत्वमित्याह ।

अत्र पृथक्त्वपदं द्विपृथक्त्वादिपरं तथाच द्वित्वादिपरार्द्धपर्यन्ताः सङ्ख्या द्विपृथक्त्वादीनि संयोगा विभागाश्च अनेकद्रव्यारब्धा इत्यर्थः ॥ २५ ॥

कर्मण्यनेकारब्धत्वं नास्तीत्याह ।

सू० असमवायात् सामान्यकार्यं कर्म न विद्यते ॥  
॥ २६ ॥

उ० असमवायादित्यत्र द्रव्ययोर्द्रव्येच्छिति योज्यं तथाच न द्रव्ययोरेकं कर्म समवैति न वा द्रव्येच्छेकं कर्म समवैति तेन सामान्यस्य समुदायस्य कार्यं कर्म न विद्यते अत्रापि विदिज्ञानार्थो न सत्तावचनः यदि कर्म व्यासज्यवृत्ति स्यात् एकस्मिन् द्रव्ये चलति द्वयोर्द्रव्ययोर्बहुषु च द्रव्येषु चलतीति-प्रत्ययः स्यात् नचैतत् तस्मान्न कर्म व्यासज्यवृत्तीत्यर्थः । ननु शरीरतदवयवानङ्गं कर्म शरीरतदवयवैर्बहुभिरारभ्यत एव कथमन्यथा शरीरे चलति करचरणादावपि चलतीति-प्रत्ययः एवमन्यत्राप्यवयवविनीतिचेन्न अवयविकर्मसामग्र्या अवयविकर्मसामग्रीव्याप्तत्वात् तथोपलब्धेः नतु वैपरीत्यं नह्यवयवे चलति सर्वत्रावयविनि चलतीति-प्रत्ययः अन्यथा कारणाकारणसंयोगात् कार्याकार्यसंयोगोऽपि न स्यात् कारणकर्मणैव कार्यस्यापि संयोगोपपत्तेः ॥ २६ ॥

पुनर्बहुनामेकं कार्यमाह ।

वि० असमवायात् द्वयोर्बहुषु च समवायेन कर्मणोऽभावात् सामान्यकार्यम् अनेकारब्धं कर्म न विद्यते नास्तीत्यर्थः तथाच प्रतिद्रव्यं भिन्नं भिन्नं कर्म अनुभवसिद्धम् ॥ २६ ॥

पुनरनेकारब्धं कार्यमाह ।

सू० संयोगानां द्रव्यम् ॥ २७ ॥

रूपाणां रूपम् ॥ २८ ॥

उ० बहूनां संयोगानां द्रव्यमेकं कार्यमित्यर्थः निःस्पर्शानां द्रव्याणाम् अन्यावयविनां विजातीयद्रव्याणाञ्च ये संयोगास्तान् विहायेति द्रष्टव्यम् ॥ २७ ॥

इदानीं बहूनां गुणानामेकं गुणकार्यमाह ॥

रूपमेकं कार्यमित्यन्वयः रूपपदमुभयमुपि लक्षणिकम् अजहत्स्वार्थात्तदं लक्षणा कारणैकार्थममवायप्रत्यामत्या जन्यजनकभावाश्रयत्वाच्च शक्यलक्ष्यसाधारणोधर्मस्तेन रूपरसगन्धस्पर्शस्नेहसांसिद्धिकद्रवत्वैकत्वैकपृथक्त्वानि संगृह्यन्ते एते हि कारणे वर्त्तमानाः कार्येषु सम्मानजातीयमेकमेव गुणमारभन्ते द्विधाह्यममवायिकारणानाङ्गितिः केचित् कारणैकार्थप्रत्यामत्या जनयन्ति, कारणमिह समवायिकारणं तच्च जन्यस्य रूपादिलक्षणस्य कार्यस्य तेन रूपादिलक्षणकार्यस्य यत् समवायिकारणं घटादि तेन सह कपाले वर्त्तमानं रूपं कारणैकार्थममवायेन घट-

वि० बहूनां तत्त्वादिसंयोगानां पटादिरूपमेकं द्रव्यं कार्यमित्यर्थः ॥ २७ ॥

एकस्य गुणस्यानेकगुणजन्यत्वमाह ॥

रूपपदे रसगन्धस्पर्शस्नेहसांसिद्धिकद्रवत्वैकत्वैकपृथक्त्वपरिमाणवेगस्थितिस्थिरापकगुरूत्वानामप्युपलक्षके तथाच समवायि-



## सू० गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम् ॥ २६ ॥

उ० रूपमारभते एवं रमाद्यपि क्वचित्तु कार्यैकार्यप्रत्यासत्त्या-  
ऽसमवायिकारणत्वं यथा कारणमपि शब्दो नभसि कार्य-  
मपि शब्दान्तरमारभते नभस्यैव रूपाद्यपि पार्थिवपर-  
माणार्वाग्निसंयोगेन कार्यैकार्यसमवायप्रत्यासत्त्या जन्यते ॥  
॥ २८ ॥

एकस्य कर्मणोऽनेककार्यत्वमाह ॥

उत्क्षेपणमेकं कार्यममीषामित्यर्थः । अत्र गुरुत्वस्य  
हस्तलोष्टादिवर्त्तिनो निमित्तकारणत्वं प्रयत्नवदात्मसंयो-  
गस्यासमवायिकारणत्वं हस्तनिष्ठात्क्षेपणस्य, लोष्टनिष्ठात्क्षे-  
पणस्य तु हस्तनोदनसममवायिकारणम्, अत्राप्युत्क्षेपण-  
पदमवक्षेपणादावपि लाक्षणिकम् ॥ २६ ॥

ननु मूर्त्तगुणानां कार्याणां कारणगुणपूर्वकत्वं स्वा-  
श्रयगुणपूर्वकत्वञ्चेत्तं द्रव्यकर्मणोश्च न कर्म कारणम् ।-

वि० कारणगतैर्बज्जभी रूपादिभिरवयवविगतमेकं रूपादिकं जायते  
इत्यर्थः ॥ २८ ॥

इदानीमेकस्य कर्मणो बज्जकारणकत्वमाह ॥

एकं कार्यमिति शेषः । उत्क्षेपणपदमवक्षेपणादेरप्युपल-  
क्षकम् उत्क्षेप्यस्य गुरुत्वम् उत्क्षेपुः प्रयत्नः उत्क्षेप्यहस्तनोदनश्च  
एते त्रय इवात्क्षेपणहेतवः, अतः कर्मण्यप्यनेककारणकत्वं  
निराबाधमिति भावः ॥ २६ ॥

ननु यथा धूमादिरूपकार्येण वज्जादिकारणानामनुमानं

सू० संयोगविभागाश्च कर्मणाम् ॥ ३० ॥

उ० त्यक्तं तथाच कर्मणः किमपि न कार्यमित्याद्यातं तथा-  
चातीन्द्रियाणां सूत्र्यादिगतीनाम् अनुमानमपि दुर्लभं  
लिङ्गाभावात् अतः संयोगविभागवेगानां कर्मैति सूत्रे-  
कमेव स्मारयन्नाह ॥

जन्या इति शेषः व्यक्त्यभिप्रायेण बह्वचनं संस्कारो-  
ऽप्युपलक्षणीयः ॥ ३० ॥

ननु द्रव्यकर्मणी न कर्मकार्ये इति पूर्वमुक्तम्, संयोग-  
विभागौ तु संयोगविभागकार्यावेव तथाचेदानीं कर्मणः  
कारणत्वाभिधानं विरुद्धमित्यत आह ।

वि० तथाऽतीन्द्रियाणां चन्द्रसूत्र्यादिगतीनां केन लिङ्गेनानुमानं कर्म-  
णः कार्याभावादित्यतः पूर्वोक्तानि कर्मकार्याणि स्मारयति ।

चकारो वेगस्थितिस्थापकयोः समुच्चायकः तथाच एत एव  
कर्मणो जायन्ते इति कर्मणो न कार्यदारिद्र्यमिति भावः ॥  
॥ ३० ॥

ननु संयोगो यदि कर्मजन्यस्तदाऽवयवसंयोगद्वाराऽवयवकर्म-  
णोऽवयवविद्रथं प्रति वज्जिनोदनद्वारा वज्जिकर्मणः परमाणादि-  
क्रियां प्रति च कारणत्वं दुरपह्वं यथा स्वजन्यसंयोगद्वारा चाक्षु-  
षादिकं प्रति चक्षुरादेः कारणत्वं तथाच कर्मणो यद्द्रव्यकर्मा-  
कारणत्वमुक्तं तत् किं द्रव्यं प्रति क्रियां प्रति च कर्मणो नासमवा-  
यिकारणत्वमित्येतत्परमित्यत आह ।

सू० कारणसामान्ये द्रव्यकर्मणां कर्माकारणमु-  
क्तम् ॥ ३१ ॥

उ० कारणसामान्यपदेन तत्प्रकरणमुपलक्ष्यते तेन कारण-  
सामान्यभिधानप्रकरणे द्रव्यकर्मणी प्रति कर्मणोऽकारण-  
त्वमुक्तं नतु सर्वथाप्यकारणमेव कर्मेति विवक्षितं येन  
संयोगविभागाच्च कर्मणामिति सूत्रं व्याहन्येतेति भावः ॥  
॥ ३१ ॥

इति शाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्कारे प्रथमाध्यायस्य  
प्रथमाह्निकम् ॥\*॥

वि० द्रव्यकर्मणाम् अकारणं कर्म इति यत् पूर्वमुक्तं तत् कारणा-  
सामान्ये कारणसामान्यपरमित्यर्थः तथाच पूर्वं द्रव्यकर्मकारण-  
सामान्यभिन्नत्वमेव कर्मण्युक्तम्, नतु तदसमवायिकारणा-  
त्त्वम् अवयवकर्मणो वज्रिकर्मणश्च अवयवसंयोगेन वज्रिनादनेन चा-  
न्यथासिद्धत्वात् चक्षुरादेस्तु चाक्षुषादिकं प्रति संयोगेन नान्य-  
थासिद्धत्वं व्यापारेण व्यापारिणोऽनन्यथासिद्धत्वादिति भावः ॥  
॥ ३१ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-कृतायां कणादसूत्रविवृतौ  
प्रथमाध्यायस्य प्रथमाह्निकम् ॥ \* ॥



सू० कारणाभावात्कार्याभावः ॥ १ ॥

उ० नन्वेन प्रघटकेन द्रव्यादीनां त्रयाणां पदार्थानां कार्यैकत्वघटितं कारणैकत्वघटितञ्च साधर्म्यमुक्तं तच्चानुपपन्नं कार्यकारणभावस्यैवामिद्धेरित्यत आह ।

दृश्यते हि मृच्चक्रसलिलकुलालसूत्रादौ समवहितेऽपि दण्डाभावाद् घटाभावः भूसलिलादौ समवहितेऽपि वीजाभावादङ्कुराभावः स च दण्डघटयोर्बीजाङ्कुरयोर्वा कार्यकारणभावमन्तरेणानुपपन्नः । अन्यथा वेमाद्यभावेऽपि घटाभावः शिलाशकलाद्यभावेऽप्यङ्कुराभावः स्यात् किञ्च घटपटादीनां कादाचित्कत्वमनुभूयते, तदपि हेतुफलभावमन्तरेणानुपपन्नं नहि किञ्चित्कालामत्त्वे सति किञ्चित्कालमत्त्वरूपं कादाचित्कत्वं भावानां कारणपेक्षामन्तरेण सम्भवति तदा हि स्यादेव न स्यादेव वा नतु कदाचित् स्यात् नहि भावो न भवत्येव नाप्यहेतोर्भवति

वि० ननु पूर्वाह्निके कार्यत्वघटितं कारणत्वघटितञ्च, साधर्म्यमुक्तं तत्कथं सङ्गच्छते कार्यकारणभावस्यासिद्धत्वेन प्रशविषाणसमानत्वादित्यतः कार्यकारणभावमेव व्यवस्थापयति ।

दण्डाभावाद् घटाभाव इत्यादि-प्रतीतौ हि दण्डाभावे घटाभावप्रयोजकत्वं भासते तच्च दण्डघटयोः कार्यकारणभावं विना नोपपद्यते अन्यथा दण्डाभावात् पटाभाव इत्यपि प्रतीत्यापत्तेः एवं घटादिकार्याणां किञ्चित्कालामत्त्वे सति किञ्चित्कालमत्त्वं-

उ० नाप्यकस्मादेव भवति न वा निरूपाख्यादेव शशविषाणा-  
 देर्भवति किन्तु दण्डवेमादेः सौपाख्यस्यावधेर्घटपठादौ  
 कार्ये दर्शनादवधिस्तु कारणमेव एवं कार्यकारणभावा-  
 भावे प्रवृत्तिनिवृत्ती न स्यातां तथाच निरीहं जगज्जा-  
 येत नहीष्टसाधनताज्ञानमन्तरेण प्रवृत्तिरनिष्टसाधनता-  
 ज्ञानमन्तरेण निवृत्तिः ॥ १ ॥

ननु सदेवोत्पद्यते नामत् “सदेव सौम्येदमग्र आसीत्”  
 इत्यादिश्रुतिप्रामाण्यात् अन्यथाऽसत्त्वाविशेषे तन्तुभ्य एव

वि० रूपं कदाचित्कत्वमनुभूयते तदपि घटादेः कारणापेक्षामन्त-  
 रेण न सम्भवति अन्यथा घटादिः सर्वदेव स्यात् किं वा सर्व-  
 देव न स्यात् नतु कदाचित् स्यात् अपि च कार्यकारणभावा-  
 भावे प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च लोकानां न स्यात् तथाच निरीहं जग-  
 दापद्येत नहि प्रवृत्तिरन्तरंगेष्टसाधनताज्ञानं न वा विनाऽनि-  
 ष्टसाधनताबुद्धिं निवृत्तिः । साङ्ख्यास्तु मृदादौ पुरा तिरोभ-  
 सन् कलसादिराविर्भवति पुनर्मुद्गरप्रहारादिना तत्रैव तिरो-  
 भूतस्तिष्ठतीत्याविर्भावतिरोभाववेवोत्पादविनाशौ ननु वास्तवौ  
 तथा सति कथं न तन्तुतः कलसोत्पादः । न चोत्पत्तेः पूर्वं का-  
 र्याणां कारणे सत्त्वमप्रामाणिकमिति वाच्यम् “सदेव सौम्येदमग्र  
 आसीत्” इत्यादिश्रुतेरेव प्रामाण्यत्वादिवाङ्मत्तच्चिन्त्यम् अविर्भाव-  
 स्याविर्भावस्वीकारेऽनवस्थाप्रसङ्गात् अविर्भावस्य पूर्वमसत्त्वे-  
 ऽसदुत्पत्तिस्वीकारस्यावश्यकत्वेन घटादीनां पूर्वसत्त्वाङ्गीकारस्य  
 निर्युक्तिकत्वादिति कारणत्वज्ञानन्यथास्मिद्धनियतपूर्ववर्तिजा-  
 तीयत्वं सहकारिवैकल्यप्रयुक्तकार्याभाववत्त्वं स्वरूपसम्बन्धविशे-  
 षोऽतिरिक्तपदार्था वेति ॥ १ ॥

उ० पटो न कपालेभ्य इति नियमो न स्यादिति चेत् परि-  
 षण्णामवादिभिरपि स्वीकृतकारणकैरयं नियमोऽभ्युपग-  
 न्तव्य एव अन्यथा घटाभिव्यक्तिः कपालेष्वेव न तन्तुव्य-  
 त्ति कथं स्यात् किञ्च यद्यभिव्यक्तिरपि पूर्वभासोदेव तदा  
 तस्या अपि नित्यत्वे आविर्भावतिरोभावावेवेत्यादविना-  
 शाविति रिक्तं वचः अथाविर्भावतिरोभावौ कारणपेक्षौ  
 तदा घटपटादीनामपि कारणपेक्षैवासतामप्युत्पत्तिरि-  
 त्यायातं यन्तु कारणं प्रति नियमानुपपत्तिरित्युक्तं तत्र  
 स्वभावनियमेनैवोत्तरं सच स्वभावनियमोऽन्वयव्यतिरेका-  
 वगम्यो भवति, भवति हि दण्डमन्तरेण न घटो दण्डे  
 सति घट इति सर्वसाक्षिकोऽनुभवः एवञ्चानन्यथासिद्धनि-  
 यतपूर्ववर्त्तिजातीयत्वं सहकारिवैकल्यप्रयुक्तकार्याभाववत्त्वं  
 वा कारणत्वम् । यद्यपि “यवैर्यजेत व्रीहिभिर्वा” इत्यादौ  
 नियतपूर्ववर्त्तित्वं नास्ति नहि यवकरणक्यागनिष्पाद्ये  
 फले व्रीहिकरणक्यागस्य पूर्ववर्त्तित्वं तथापि विकल्पितं  
 विहितकारणं कारणमेव फलैकजात्येऽपि द्वयोः कारण-  
 त्वोपपत्तेः तथाच सहकारिवैकल्यप्रयुक्तकार्याभाववत्त्वं  
 लोकवेदसाधारणी कारणता नियतपूर्ववर्त्तित्वन्तु अन्वयव्य-  
 तिरेकगम्या कारणता लौकिकी, नहि “स्वर्गकामो यजेत”  
 इत्यादौ व्यतिरेकभागोऽपि विषयः प्रवृत्तेरन्वयमात्रज्ञा-  
 नादेवोपपत्तेः, अतएव “विकल्पे उभयमशास्त्रार्थ” इत्यपि  
 घटते तज्जातीयस्य फलस्य एकेनैवोपपत्तेरपरानुष्ठान-

सू० नतु कार्याभावात् कारणाभावः ॥ २ ॥

उ० वैयर्थ्यात् । अतएव “श्रौतात् ाङ्गात् कर्मणः फलावश्य-  
न्भावनियमं” इत्यप्युचितम् “आगममूलत्वाच्चास्यार्थस्य व्य-  
भिचारो न दोषाय” इत्याचार्याभिधानमृज्वर्थतात्पर्यक-  
मेव दणारणिमणिस्यले तु कार्यवैजात्यमावश्यकं तत्रा-  
न्वयव्यतिरेकगम्यत्वात् कारणताया व्यतिरेकाद्भूतिरेकस्या-  
वश्यकत्वात् विकल्पस्यले तु फलवैजात्यकल्पने राजसृय-  
वाजपेयादावपि वैकल्पिकी कारणता स्यादिति कार्यकार-  
णभावनियममेवोपपादयन्नाह ।

यदि कार्यकारणभावनियमो न भवति तदा कार्या-  
भावादपि कारणभावः स्यात् कार्याभावः कारणभावं  
प्रत्यतन्त्रं कारणभावस्तु कार्याभावं प्रति तन्त्रं तेन दुः-  
खाभावाच्च जन्माभावे, जन्माभावार्यं प्रवृत्त्यभावे, तदर्थं च  
दोषाभावे, तदर्थं मिथ्याज्ञाननिवृत्तये, तदर्थं च्चात्मसाक्षा-  
त्काराय मुमुक्षूणां प्रवृत्तिः प्रयोजनमौपोद्घातिकस्या-  
प्यस्य द्विसूत्रकप्रकरणस्य ॥ २ ॥

कार्यकारणभावनियममेवोपपादयति ।

वि० कार्यकारणभावनियमाभावे कार्याभावः कारणाभावाप्रयो-  
जकः कारणाभावस्तु कार्याभावप्रयोजक इति नियमानुपपत्ते-  
रिति भावः ॥ २ ॥

सू० सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥ ३ ॥

उ० पदार्थत्रयोद्देशलक्षणानन्तरमिदानीमुद्दिष्टस्य सामान्य-  
पदार्थस्य लक्षणमाह ।

सामान्यं द्विविधं परमपरञ्च तत्र परं सत्ता अपरं  
सत्ताव्याप्यं द्रव्यत्वादि तत्र सामान्यस्य तद्विशेषस्य च लक्षणं  
बुद्धिरेव । अनुवृत्तबुद्धिः सामान्यस्य व्यावृत्तबुद्धिर्विशेषस्य ।  
इतिना द्वयमवच्छिद्य परामृश्यते तेन बुद्ध्यपेक्षमिति नपुं-  
सकनिर्देशः । वृत्तिकारस्तु विशेषान्वयमाह परन्तु “नपुं-  
सकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरंस्थाम्” इत्यनेनैकवद्भावा-  
नपुंसकता चेत्याह । बुद्धिरपेक्षा लिङ्गं लक्षणं वा यस्य  
तद्बुद्ध्यपेक्षं तत्र नित्यमनेकव्यक्तिवृत्ति सामान्यं नित्यत्वे सति  
स्वाश्रयान्योन्याभावसमानाधिकरणं वा परमपि सामान्य-  
मपरमपि तथा परन्तु सामान्यं विशेषसंज्ञामपि लभते  
यथा द्रव्यमिदं द्रव्यमिदमित्यनुवृत्तप्रत्यये सत्येव जायं  
गुणो नेदं कर्षेति विशेषप्रत्ययः तथाच द्रव्यत्वादीनां  
सामान्यानामेव विशेषत्वम् ॥ ३ ॥

वि० सामान्यपदार्थस्य लक्षणमाह ।

सामान्यं परं विशेषः अपरं सामान्यम् इति इयं बुद्ध्यपेक्षं  
बुद्धिरपेक्षा लक्षणं यस्य तत् तथाच सामान्यं द्विविधं परमप-  
रञ्च तत्र परसामान्यं सत्ता द्रव्यत्वादिकन्वपरसामान्यं तत्र  
सामान्यविशेषयोः परापरयोर्लक्षणं बुद्धिरेव अनुवृत्तत्वबुद्धिः



उ० ननु विधिरूपं सामान्यं नास्त्येव अनुगतमतेरतद्वावृत्तै-  
 वोपपत्तेः भवति हि गौरयमिति प्रतीतेरगोव्यावृत्तोऽय-  
 मिति विषयः जातिवादिनाऽपि गोत्वादिविशिष्टप्रत्ययस्य  
 तद्विषयत्वाभ्युपगमात् नहि वैशिष्ट्यमतद्वावृत्तेरन्यत्, गवा-  
 दिपदप्रवृत्तिनिमित्तमप्यगोव्यावृत्त्यादिरेव । किञ्च गोलं  
 कुत्र वर्त्तते न तावद्गवि गोत्ववृत्तेः पूर्वं तस्याभावात्  
 नाप्यगवि विरोधात् यत्र गोपिण्ड उत्पद्यते तत्र कुत आगत्य  
 गोलं वर्त्तते न तावत्तत्रैवासीत् देशस्यापि तस्य गोत्वापत्तेः  
 नापि गोत्वमपि तदानीमेवात्यन्नं नित्यत्वाभ्युपगमात् ना-  
 प्यन्यत आगतं निष्क्रियत्वाभ्युपगमात् नच एकस्यैव नित्यस्य  
 नानाव्यक्तिवृत्तित्वं कार्त्तिकदेशविकल्पानुपपत्तेः । नहि  
 कृत्स्नमेकत्रैव वर्त्तते अन्यत्र तद्विशिष्टप्रत्ययानुदयप्रसङ्गात् ।  
 नाप्येकदेशेन, जातेरेकदेशस्याभावात् । तदुक्तं “न याति नच  
 तत्रासीन्नचोत्पन्नं नचांशवत् । जहाति पूर्वं नाधारमहे-  
 व्यसनसन्ततिः” इति । सामान्यमस्ति तच्च संस्थानमात्रव्यङ्ग्यं  
 गोत्वघटत्वादिवत् ननु गुणकर्म्मगतमपीति संगोत्रकलहः ।

वि० सामान्यस्य, व्यावृत्तत्वबुद्धिर्विशेषस्य लक्षणम्, अनुवृत्तत्वम् अधि-  
 कदेशवृत्तित्वं व्यावृत्तत्वमल्पदेशवृत्तित्वं तथाच सत्तायाः सर्व-  
 सामान्यापेक्षयाऽधिकदेशवृत्तित्वात् परत्वमेव द्रव्यत्वादिजातेस्तु  
 सत्तापेक्षया न्यूनदेशवृत्तित्वादपरत्वं पृथिवीत्वाद्यपेक्षयाऽधिक-  
 देशवृत्तित्वात् परत्वमपीति परत्वरूपं सामान्यत्वम् अपरत्व-  
 रूपं विशेषत्वञ्च न नियतं किन्तु बुद्ध्यपेक्षमिति । जातिबाधका

उ० अत्रोच्यते सामान्यं नित्यं व्यापकञ्च व्यापकत्वमपि स्वरू-  
 मतः सर्वदेशसम्बद्धत्वं न देशानां गोव्यवहारापत्तिः सम-  
 वायेन तद्भवहारस्याभ्युपगमात् काले रूपादिमत्त्वेऽपि  
 कालो रूपवानित्यप्रतीतिव्यवहारवत् नच कालो नास्त्येव  
 पञ्चस्कन्धसंज्ञाभेदमात्रमित्यभ्युपगमादिति वाच्यं कालस्य  
 साधयिष्यमाणत्वात् । तथाच यत्र पिण्ड उत्पद्यते तत्रस्य-  
 मेव गोत्वं तेन सम्बध्यते जातः सम्बद्धस्येत्येकः काल इत्यभ्युप-  
 गमात् एतेन कीदृश्याश्रये वर्त्तते इत्यत्र यत्र प्रतीयते इत्यु-  
 त्तरम्, कुत्र प्रतीयते इत्यत्र यत्र वर्त्तते इत्युत्तरम्, गोत्व-  
 वृत्तेः पूर्वं स पिण्डः कीदृगासीदित्यत्र नासोदित्येवोत्तरम्,  
 एवञ्च “न याति नच तत्रासीत्” इत्यादिकं परिदेवनमात्रम्,  
 अतद्वावृत्तिरेव गोत्वमित्यत्र गौरयमिति विधिमुखः प्रत्यय  
 एव बाधकः । न ह्यनुभवोऽपि व्याख्यायते तदुक्तं “विधिजः  
 प्रत्ययोऽन्योऽयं व्यतिरेकासमर्थक” इति नहि गौरयमिति  
 प्रत्ययेऽगोव्यावृत्तिरपि भासते कात्स्निकदेशविकल्पस्तदा-  
 भवेत् यद्येकस्य सामान्यस्य कात्स्न्यं भवेदेकदेशो वा कृत्स्नता

वि० उक्त्वा न्यायाचार्यैः, “वृत्तेरभेदस्तत्त्वत्वं सङ्करोऽयानवस्थितिः ।  
 रूपहानिरसम्बन्धो जातिबाधकसंयद्” इति । तत्रैकव्यक्तिकत्वा-  
 दाकाशत्वं न जातिः अन्यूनानतिरिक्तव्यक्तिकत्वाद् घटत्वं कलस-  
 त्वञ्च न जातिद्वयं परस्परान्ताभावसमानाधिकरणयोरैकव्यक्ति-  
 समावेशेन सङ्करेण भूतत्वं मूर्त्तत्वञ्च न जातिः अनवस्थाभयात्  
 सामान्यत्वं न जातिः विशेषस्य व्यावृत्तत्वभावस्य रूपहानिर्विशेष-

उ० ह्यनेकाशेषता सा चैकस्मिन्नोपपन्ना गौरयमित्याद्यनुभव  
 एवासद्विषयो न वस्तुव्यवस्थापनचर्म इत्यत्रोत्तरं वक्ष्यते।  
 प्राभाकरास्तु संस्थानमात्रव्यङ्गं सामान्यमाचक्षते तद्यद्य-  
 नुगतप्रतीतिसाक्षिकं तदा किमपराङ्गं गुणकर्मागतैः सा-  
 मान्यैः, भवति हि रूपरसादावनुगतधीः सा च जातिव्यव-  
 स्थापिकैव बाधकाभावात् रूपत्वादजातिषु न तावद्वाक्य-  
 भेदो बाधकः आकाशत्वादिवत्, रूपरसादिव्यक्तीनामने-  
 कत्वात् नापि बुद्धिलज्जानत्वादिवत् घटलकलमत्वादिवद्वा  
 तुल्यत्वं बाधकं तच्चान्यूनानतिरिक्तव्यक्तिकत्वं गुणत्वापेक्षया  
 न्यूनव्यक्तिकत्वात् नीलत्वाद्यपेक्षयाचाधिकव्यक्तिकत्वात् अत-  
 एव न मङ्करः भूतत्वमूर्त्तत्ववत्, परस्परान्यन्ताभाव-  
 सामानाधिकरण्ये सति जात्यन्तरेण सामानाधिकरण्या-  
 भावात् नाप्यनवस्था रूपत्वादिगतसामान्यान्तरानभ्युपग-  
 मात् नापि रूपहानिर्विशेषत्ववत् यदि विशेषाः द्रव्या-  
 श्रितत्वे सति जातिमन्तः स्युः गुणाः कर्माणि वा स्युः  
 विभुवृत्तित्वे सति यदि जातिमन्तः स्युर्गुणाः स्युरिति

वि० त्वजातिबाधिका, यदि विशेषत्वं जातिः स्यात् तदा जातिमतः  
 स्वतो व्यावृत्तत्वासम्भवेन स्वतोव्यावृत्तत्वरूपस्य असाधारणधर्मस्य  
 व्याघातः स्यादतो विशेषत्वं न जातिः, अथवा रूपहानिः स्वरूप-  
 हानिः तथाच विशेषा यदि मूर्त्तवृत्तित्वे सति जातिमन्तः स्यु-  
 स्तदा गुणाः कर्माणि वा स्युः विभुवृत्तित्वे सति जातिमन्तः  
 स्युस्तदा गुणाः स्युरिति विशेषस्य स्वरूपहानिर्विशेषत्वजातिबा-

सू० भावोऽनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव ॥ ४ ॥

उ० यथा विशेषपदार्थस्वरूपहानिस्तथा प्रकृतेऽभावात् नापि समवायत्ववदसम्बन्धः समवाये समवायाभ्युपगमेऽनवस्थाभयात्तथास्तु, प्रकृते तु समवायस्यैव सम्बन्धस्याभ्युपगमात् । यद्यपि समवायत्वजातिबाधकोव्यक्त्यभेद एव तथापि यन्मते उत्पादविनाशशीलाः बहवः समवायास्तन्मते द्रष्टव्यम्, अभावत्वादिजात्यभ्युपगमे वा बाधकमेतत्, विवादपदमनुगतबुद्धिः अनुगतनिमित्तसाध्या अबाधितानुगतमतित्वात् दामकुसुमबुद्धिवत् इति जःतौ मानमिति वृत्तिकारास्तच्चिन्त्यम् ॥ ३ ॥

सामान्यं विशेष इति द्वैविध्यं यदुक्तं तदुपपादयन्नाह ।

भावःसत्ता अनुवृत्तेरेव हेतुः नतु व्यावृत्तेरपि हेतुः  
तथाच विशेषसंज्ञां न लभते ॥ ४ ॥

वि० धिका समवायसम्बन्धाभावात् समवायत्वं न जातिः समवाये समवायान्तरस्वीकारेऽनवस्थाप्रसङ्गात् उत्पादविनाशशालिनो बहव समवाया इतिमतेनैतत् अन्यथैकव्यक्तिकत्वादपि समवायत्वं न जातिः स्यात् एवमभावत्वस्य जातित्वे समवायसम्बन्धाभाव एव बाधक इत्यादिकमूहनीयम् । प्राभाकरास्तु संस्थानव्यञ्जैव जातिः माच गुणकर्मणोर्नास्तीत्याहुः ॥ ३ ॥

सत्तायाः परत्वमेव नापरत्वमित्याह ।

भावः सत्ता अनुवृत्तेरधिकदेशवृत्तित्वबुद्धेर्हेतुत्वात् एवकारेणाव्यपदेशवृत्तित्वबुद्धिस्थवच्छेदः तादृशबुद्धिस्तु सत्ता द्रव्यत्वाद्य-

सू० द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेष-  
षाञ्च ॥ ५ ॥

उ० केषां सामान्यानां विशेषसंज्ञेत्यपेक्षायामाह ।

चकारः पृथिवीत्वादीनि द्रव्यगतजातीः रूपत्वादीनि  
गुणगतजातीः उत्क्षेपणत्वादीनि कर्मगतजातीः समुच्चि-  
नोति, द्रव्यत्वमित्यादावसमासः परस्परं व्याप्यव्यापक-  
भावाभावबुद्ध्यनर्थः सामान्यानि विशेषाश्चेत्यत्रासमासः सा-  
मान्यत्वे सत्येव विशेषत्वं यथा ज्ञायेत तदर्थम्, अन्यथा  
सामान्यविशेषा इति यद्विषयसमासभ्रमः स्यात् तथाच सा-  
मान्यत्वे सति विशेषत्वं न प्रतीयते । ननु द्रव्याकारानुग-  
तमतिशक्तिकं न द्रव्यत्वम्, पृथिव्यादौ कथञ्चित् तत्सत्त्वे-  
ऽपि वाय्वाकाशादौ तदसम्भवात् नच गुणत्वावच्छिन्नका-  
र्यसमवायिकारणतावच्छेदकतया तत्सिद्धिः नित्यानि-  
वृत्तितया गुणत्वस्य कार्यतानवच्छेदकत्वात् गुणत्वाभिमपि  
पर्यनुयोगस्य तादवस्थ्यात्, मैवं संयोगत्वावच्छिन्नकार्यसम-

वि० पेक्षयाऽधिकदेशवृत्तिरित्याकारिका तस्याः प्रत्यक्षात्मिकाया-  
हेतुत्वं सत्तायां विषयमुद्रया तथाच सत्तायां काश्चिदपि जाति-  
मपेक्षाल्पदेशवृत्तित्वबुद्धेरभावान्न विशेषत्वं किन्तु परत्वमात्र-  
मेवेति ॥ ४ ॥

ननु के विशेषा इत्याकाङ्क्षायामाह ।

चकारेण पृथिवीत्वादीनां द्रव्यगतानां रूपत्वादीनां गुण-  
गतानाम् उत्क्षेपणत्वादीनां कर्मगतानाञ्च जातीनां समुच्चय-

उ० वायिकारणतावच्छेदकतया द्रव्यत्वसिद्धेः साहि न पृथि-  
 बीत्वाद्यवच्छेद्या न्यूनवृत्तित्वात् नापि सत्तावच्छेद्या ऽधिक-  
 वृत्तित्वात् अवश्यं ह्यवच्छेदकेन भवितव्यम्, अन्यथाक-  
 स्मिकतापत्तेः तत्र परमाणुषु द्युण्कासमवायिकारणव-  
 त्तया द्युणुकेषु त्र्यणुकासमवायिकारणवत्तया विभुचतु-  
 ष्टयस्य सर्वमूर्त्तसंयोगितयैव सिद्धेः मनसि इन्द्रियमनः-  
 संयोगाधारतया वायौ तृणादिनोदनाश्रयतया प्रत्यक्ष-  
 द्रव्येषु प्रत्यक्षतयैव संयोगाभ्युपगमस्यावश्यकत्वात् अजसु  
 संयोगो नास्त्येव येन संयोगत्वस्यापि कार्याकार्यवृत्तितया  
 कार्यतावच्छेदकता न स्यात् एवं विभागसमवायिकारण-  
 तावच्छेदकतयाऽपि द्रव्यत्वसिद्धेः सुप्रतिपदत्वात् । गुणत्वन्तु  
 संयोगविभागसमवायिकारणत्वसमवायिकारणत्वशून्ये मा-  
 मान्यवति यत्कारणत्वं तदवच्छेदकतयैव सिद्धमित्युक्तत्वात्  
 कर्मत्वमपि प्रत्यक्षद्रव्येषु चलतीति-प्रत्ययमाह्निकम्, अन्यत्र  
 तु संयोगविभागानुमेयं संयोगविभागोभयाममवायिका-  
 रणतावच्छेदकतयाऽपि कर्मत्वसिद्धेरावश्यकत्वात् अतएवा-  
 दित्यस्य देशान्तरप्राप्त्या गत्यनुमानं तत्र च देशान्तर-  
 स्याकाशादेरतीन्द्रियत्वेऽपि तत्करणसंयोगविभागयोस्त-  
 न्माण्डलेन प्रत्यक्षत्वात् तत एव गत्यनुमानं, देशान्तरप्रा-  
 प्तिमान् आदित्यः अविनाशित्वे द्रव्यत्वे च मति प्राङ्मुखो-

वि० तथाच द्रव्यत्वादीनां परत्वरूपं सामान्यत्वम् अपरत्वरूपं विशे-  
 षत्वञ्चेत्यर्थः ॥ ५ ॥

## सू० अन्यचान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः ॥ ६ ॥

उ० पलभस्य प्रत्यङ्मुखेन तेनैवोपलभतया प्रत्यभिज्ञाय मान-  
त्वादिति देशान्तरप्राप्त्यां अनुमितया आदित्यगत्यनुमान-  
मित्युद्योतकराचार्याः ॥ ५ ॥

ननु य एव विशेषपदार्थ उद्दिष्टः स एव किं सामान्य-  
विशेषत्वेनाभिधीयते इति शिष्याकाङ्क्षामपनयन्नाह ।

अन्त्य विशेषा नित्यद्रव्यवृत्तयो येऽभिहिताः तान्  
वर्जयित्वा सामान्यविशेषाभिधानमित्यर्थः । अन्तेऽवसाने  
भवन्तीत्यन्या यतो न र्थावर्त्तकान्तरमस्तीत्याचार्याः उत्पा-  
दविनाशयोरन्तेऽवसाने भवन्तीत्यन्या नित्यद्रव्याणि तेषु  
भवन्तीत्यन्या विशेषा इति वृत्तिरुक्तः । ते हि विशेषा एव  
व्यावृत्तिबुद्धिहेतवो नतु सामान्यरूपा अपीति ॥ ६ ॥

सत्तासामान्यमित्यत्र बहूनां विप्रतिपत्तिरतस्तत्र प्र-  
माणमाह ।

वि० ननु सामान्यस्य विशेषत्वाभ्युपगमे भावानां घटत्वसंख्या  
व्याहृत्येति तटस्थाशङ्कां निरस्यति ।

अन्या नित्यद्रव्यवृत्तयो ये विशेषा अभिहितास्तान् वर्जयित्वा  
सामान्यविशेषाभिधानमित्यर्थः । अन्तेऽवसाने तिष्ठन्ति यदपे-  
क्षया विशेषो नास्ति एकमात्रवृत्तय इति फलितार्थः, तथाच  
पूर्वसूत्रे विशेषपदं नैकमात्रवृत्तिविशेषपदार्थपरं किन्तु व्याप्य-  
सामान्यपरमिति न घटत्वसंख्याव्याघात इति भावः ॥ ६ ॥

सत्तासामान्ये प्रमाणमाह ।

सू० सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥ ७ ॥

• द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता ॥ ८ ॥

उ० इतिकारेण प्रत्ययव्यवहारयोः प्रकारमुपदिशति ।  
तथाच द्रव्यादिषु त्रिषु सत्सदिति-प्रकारको यतः प्रत्ययः  
सदिदं सदिदमित्याकारकः शब्दप्रयोगोवा यदधीनः सा  
सत्ता ॥ ७ ॥

ननु द्रव्यगुणकर्मभ्यः पृथग्भावेन सत्ता नानुभूयते-  
ऽतो द्रव्याद्यन्यतममेव सत्ता यतो हि यद् भिन्नं भवति  
तत्ततो भेदेनानुभूयते यथा घटः पटात् नच सत्ता  
तेभ्यो भेदेनानुभूयते इति तदात्मिकैवेत्यत आह ॥

द्रव्यादर्थोऽननुगताः सत्ताचानुगता । तथाच अनु-  
गतत्वाऽननुगतत्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासेन तेभ्यो भेदस्य  
सिद्धत्वात् यत्तु तेभ्योऽन्यत्र नोपलभ्यते तदयुतसिद्धिबलात्  
घटपटयोस्तु युतसिद्धिः नच व्यक्तिस्वरूपमेव सत्ता, व्यक्ती-

वि० इतिशब्देन प्रत्ययव्यवहारयोः संग्रहः । यतो यस्याः सत्ताया  
हेतोर्द्रव्यगुणकर्मसु अयं सन्नित्याकारकः प्रत्ययः व्यवहारश्च  
भवति सा सत्ता इत्यर्थः । तथाच सत्तायामनुगतः प्रत्ययो व्य-  
हारश्च मानमितिभावः ॥ ७ ॥

ननु स्वरूपसम्बन्धरूपैव सत्ता सा च द्रव्यादिस्वरूपानतिरिक्त-  
त्वाशङ्कां निरस्यति ।

अर्थान्तरं भिन्ना तथाच द्रव्यादिषु त्रिषु सदित्यनुगतप्रत्ययस्य



सू० गुणकर्मसु च भावान्न कर्म, न गुणः ॥ ६ ॥

उ० नामननुगमात् स्वरूपत्वं. यद्यनुगतं तदा सैव सत्ता अन-  
नुगतैरपि स्वरूपैरनुगतव्यवहारश्चेत्तदा गोत्वादिभिरपि  
गतम् । अतएव यत्र सत्ता समवैति तादृशैराधारैरेव  
तद्भावहारोपपत्तौ किं सत्तयेत्यपास्तम् । अतएवार्थक्रिया-  
कारित्वं प्रामाणिकत्वं वा सत्त्वमित्ययुक्तं तदननुमन्धानेऽपि  
सन् इति प्रत्ययात् ॥ ८ ॥

भेदकान्तरमाह ।

न गुणो न कर्मोति वक्तव्ये व्यत्ययेनाभिधानं न द्रव्य-  
मित्यपि सूचयति नहि कर्म कर्मसु वर्तते न वा गुणो गुणेषु  
न वा द्रव्यं गुणे कर्मणि वा, सत्ता तु गुणे कर्मणि च वर्तते  
तेन द्रव्यगुणकर्मवैधर्म्यात्तेभ्यो भिन्नैव सत्ता ॥ ९ ॥

भेदकान्तरमाह ।

वि० सर्वसिद्धत्वेनाऽनुगता सत्ता स्वीकार्या सत्ताया अननुगतद्रव्या-  
दिस्वरूपत्वे तादृशानुगतप्रत्ययापलापप्रसङ्गादितिभावः ॥ ८ ॥

इतोऽपि सत्ता न द्रव्यादिस्वरूपेत्याह ।

न कर्म न गुण इति व्यत्ययेनाभिधानात् न द्रव्यमित्यपि  
मुनेरभिप्रेतं तथाच सत्ताया गुणकर्मवृत्तित्वात् द्रव्यादीनाञ्च  
तदभावात् सत्ता द्रव्यादिभ्यो भिद्यते इत्यर्थः ॥ ९ ॥

भेदकान्तरमाह ।

सू० सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १० ॥

• अनेकद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यत्वमुक्तम् ॥ ११ ॥

उ० यदि सत्ता द्रव्यं गुणः कर्म वा स्यात् तदा सामान्य-  
विशेषवती स्यात् नच सत्तायां सामान्यविशेषा द्रव्यत्वा-  
दय उपलभ्यन्ते नहि भवति सत्ता द्रव्यं गुणः कर्म वेति  
केषाञ्चिदनुभवः ॥ १० ॥

एवं सत्ताया द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरत्वमभिधाय द्रव्य-  
त्वस्य तेभ्योऽर्थान्तरत्वमाह ।

अनेकं द्रव्यं समवायितया यस्यास्ति तदनेकद्रव्यवत्  
अनेकपदमिह सर्वपरं तेन पृथिवीत्वादिभ्यो भेदः, नित्य-  
त्वन्तु सामान्यत्वचणप्राप्तमेव तेनावयविभ्यो भेदः, अनेक-  
द्रव्यवत्त्वञ्च अनेकद्रव्यमात्रसमवेतत्वं तेन सत्ताया भेदः ।  
तेन नित्यमनेकद्रव्यमात्रसमवेतं द्रव्यत्वम्, अतः संयोगो  
नेत्यत इत्युक्तं द्रव्यत्वञ्च साधितमेव । द्रव्यत्वमुक्तमिति  
द्रव्यत्वमपि सत्तावदेव व्याख्यातमित्यर्थः ॥ ११ ॥

वि० सामान्यविशेषाः पूर्वोक्ताः द्रव्यत्वादयः तथाच द्रव्यत्वाद्यभावात्  
सत्ता न द्रव्याद्यात्मिकेत्यर्थः ॥ १० ॥

द्रव्यत्वमपि न द्रव्याद्यात्मकमित्याह ।

अनेकद्रव्यवत्त्वं समवेतत्वसम्बन्धेन, नित्यत्वन्तु सामान्यत्वादेव  
प्राप्तं तथाच द्रव्यत्वमनेकद्रव्यसमवेतत्वेन नित्यत्वेन च द्रव्यादि-  
भिन्नतया सत्तावदेव व्याख्यातमित्यर्थः ॥ ११ ॥

सू० सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १२ ॥  
 तथा गुणेषु भावाद्गुणत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥  
 सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १४ ॥

उ० ननु द्रव्यत्वमपि जातिः स्वाश्रयादभिन्नमेव स्यात्  
 को दोष इत्यत आह ।

यदि द्रव्यत्वं जातिर्द्रव्याद्यात्मिकैव स्यात् तदा तस्यां  
 पृथिवीत्वंजलत्वतेजस्वादयः सामान्यविशेषाः स्युरित्यर्थः ।  
 नहि भवति द्रव्यत्वं पृथिवी जलं तेजो वेति केषाञ्चित्  
 प्रत्यय इत्यर्थः ॥ १२ ॥

गुणत्वमाह ।

गुणेष्वेव भावात् समवायात् गुणत्वं द्रव्यगुणकर्म्मभ्यो  
 भिन्नं सत्तावदेवोक्तमित्यर्थः ॥ १३ ॥

भेदकान्तरमाह ।

यदि द्रव्यगुणकर्म्मभ्यो गुणत्वमतिरिक्तं न भवेत्तदा

वि० द्रव्यादिगतधर्माभावादपि द्रव्यत्वं न द्रव्याद्यात्मकमित्याह ।  
 द्रव्यत्वगुणत्वकर्म्मत्वपृथिवीत्वजलत्वतेजस्वादयभावात् द्रव्यत्वं न  
 द्रव्याद्यात्मकमित्यर्थः ॥ १२ ॥

गुणत्वमपि न द्रव्याद्यात्मकमित्याह ।

भावात् समवायेन सत्त्वात् तथाच गुणसमवेतत्वाद् गुणत्वं  
 द्रव्यादिभिन्नं तथा सत्तावदेव व्याख्यातमित्यर्थः ॥ १३ ॥

इतोऽपि गुणत्वं न द्रव्याद्यात्मकमित्याह ।

द्रव्यत्वाद्यभावाद् गुणत्वं न द्रव्याद्यात्मकमित्यर्थः ॥ १४ ॥

ख० कर्मसु भावात् कर्मात्मत्वमुक्तम् ॥ १५ ॥

• सामान्यविशेषाभावेन च ॥ १६ ॥

उ० द्रव्यत्वगुणत्वकर्मात्मत्वतदवान्तरजातिमत्तया उपलभ्येत्यर्थः ॥

॥ १४ ॥

द्रव्यगुणकर्मभ्यो भेदकं कर्मात्मत्वात् ।

कर्मात्मत्वेव भावात् समवायात् कर्मात्मत्वमपि जात्यन्तरं  
द्रव्यगुणकर्मभ्यो भिन्नमुक्तं सत्तावदित्यर्थः ॥ १५ ॥

भेदकान्तरमाह ।

कर्मात्मत्वं यदि द्रव्याद्यात्मकं भवेत्तदा द्रव्यत्वादिमा-  
मान्यविशेषस्तत्र समवेद्यादित्यर्थः । मेयमेकाकारा चतुः-  
सृत्री सत्तद्रव्यत्वगुणत्वकर्मात्वानां चतसृणां जातीनां  
द्रव्यगुणकर्मभेदप्रतिपादनाय एकप्रकरणेनोक्तेत्यवधेयम् ॥

॥ १६ ॥

ननु सत्ता द्रव्यगुणकर्मसु वर्त्तमाना द्रव्यत्वाद्यवच्छेद-  
भेदेन भिन्नैव कथं न स्यादत आह ।

वि० कर्मात्मत्वमप्यतिरिक्तमित्याह ।

कर्मसु भावात्सत्त्वात् कर्मात्मत्वं सत्तावदतिरिक्तमुक्तमित्यर्थः ॥

॥ १५ ॥

द्रव्यादिगतधर्माभावादपि कर्मात्मत्वं न द्रव्याद्यात्मकमित्याह ।

द्रव्यत्वाद्यभावात् कर्मात्मत्वमपि न द्रव्याद्यात्मकमित्यर्थः ॥ १६ ॥

ननु द्रव्यादिषु वर्त्तमाना सत्ता द्रव्यत्वाद्यवच्छेदकभेदेन भिन्ना  
कथं न स्यादित्यत आह ।

सू० सदितिलिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्चेको  
भावः ॥ १७ ॥

उ० सदित्यकारकं ज्ञानं शब्दप्रयोगो वा सत्ताया लिङ्गं  
तच्च द्रव्यगुणकर्म्मसु समानमविशिष्टं तेन भावः सत्ता एकैव  
तेषु वर्तते अन्यथा द्रव्यत्वादिभिस्तुल्यव्यक्तिकतया सत्ता वा  
न स्यात् तानि वा न स्युः विशेषलिङ्गाभावाच्चेति विशेषो  
भेदस्तत्र खल्लिङ्गमनुमानं तदभावाच्च न भेद इत्यर्थः ।  
भवति हि स एवायं दीप इत्यनुगमस्तत्र यथा विशेषलिङ्गं  
दीर्घद्वस्त्रत्वादिपरिमाणभेदस्तथाच विशेषलिङ्गं नास्तीति  
भावः ॥ १७ ॥

इति श्रीभगवत्कणादसूत्रोपस्कारे शाङ्करे प्रथमा-  
ध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ \* ॥

वि० सदित्याकारकप्रत्ययव्यवहारयोः सत्तालिङ्गयोर्विशेषाभावात्  
भेदकलिङ्गान्तराभावाच्च भावः सत्ता एक एव नतु नाना भिन्नत्वे  
तुल्यव्यक्तिकत्वात् सत्ताया द्रवत्वादेर्वाऽर्थान्तरत्वं न स्यादिति  
भावः, स एवायं दीप इत्यनुगतयोः प्रत्ययव्यवहारयोः सत्त्वेऽपि  
तत्र परिमाणादिभेद एव भेदकः नचात्र तथा कश्चिदस्तीति  
भावः ॥ १७ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कप्रज्ञानन-प्रणीतायां कणादसूत्रवि-  
द्वतौ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ \* ॥

समाप्तश्चार्यं प्रथमाध्यायः ॥ ० ॥

सू० रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी ॥ १ ॥

उ० द्वितीयाध्यायस्य प्रथमाङ्गिकस्य नवानां द्रव्याणां लक्षणमर्थः, तत्र पृथिव्यप्तेजसां लक्षणप्रकरणम् ईश्वरसिद्धि-प्रकरणम् आकाशानुमानप्रकरणम्, तत्र प्रथमोद्दिष्टाद्याः पृथिव्या लक्षणमाह ।

रूपं नीलपीताद्यनेकप्रकारं पृथिव्या एव । तथाच नीलरूपसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं लक्षणम् एव रसः कटुकषायाद्यनेकप्रकारकः पृथिव्यामेव तथाच कटु-रससमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं लक्षणम् एव कषायादिपदप्रत्ययेण लक्षणान्यहनीयानि । गन्धो द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च तथाच गन्धसमाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्य-जातिमत्त्वं लक्षणं तथा गन्धसमानाधिकरण-गन्धसमाना-धिकरणगुणसमानाधिकरण-जात्यधिकरणद्रव्यत्वं द्रष्टव्यम् । नच पाषाणादौ गन्धरसयोरननुभवात्, तत्राव्यापकमिद-मुभयमपीति वाच्यं तत्रापाततो गन्धरसयोरननुभवेऽपि तदीयभस्मसु तदुपलम्भात् य एवावयवाः पाषाणार-म्भकास्त एव तद्भस्मारम्भका अपीति नाव्याप्तिः कथं

वि० जनयन्तं पालयन्तं नाशयन्तं जगन्मुक्तः ।

अगजाङ्गजमानन्दाद् गजाननमहं भजे ॥

द्वितीयाध्यायस्य प्रथमाङ्गिके द्रव्यलक्षणान्यभिधास्यति, तत्रा-दौ पृथिव्या लक्षणमाह ।

नीलादिरूपसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वकषायादि-

उ० तर्हि सुरभिः समीरणः तिक्रंकारवैल्लजलमिति-प्रतीति-  
रिति चेन्न पार्थिवोपाधिकत्वात् तयोर्गन्धरसयोः, स्वर्शा-  
ऽप्यनुष्णाशीतः पाकजः पृथिव्यामेव तथाच पाकजस्पर्श-  
समानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं लक्षणम्, पाकज-  
त्वञ्च विशेषान्तरव्यङ्ग्यं पृथिवीस्पर्शं एव, विशेषान्तरञ्च  
शिरोषल्लवङ्गीकुसुमादीं स्पर्शविशेषे स्फुटतरम्, नत्वेवं  
जलादिस्पर्शं । यद्यप्यवयविनि पाकादग्निसंयोगात् स्वर्शा-  
दयो न भ्रायन्ते तथापि तत्परम्पराप्रभवतया तत्रापि  
वैजात्यविशेषोऽनुसरणीयः । ननु लक्षणमिदं व्यतिरेकि-  
लिङ्गमितरभेदसाधकं व्यवहारसाधकं वा तत्र पृथिवीत-  
रेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् यन्नेतरभिन्नं तत्र गन्धवत् यथा  
जलादि इतरभेदाभावव्यापकाभावप्रतियोगिगन्धवती चेयं  
तस्मादितरभिन्ना तत्रेतरभेदस्य साध्यस्य प्रसिद्धौ ततो-  
हेतोर्व्यतिरेके सपक्षविपक्षव्यावृत्ततयाऽसाधारण्यम् अव्य-  
तिरेके चान्वयित्वम् अप्रसिद्धौ च अप्रसिद्धविशेषणः  
पक्षः तथाच तत्र न सन्देहो न वा सिषाधयिषा न वा  
तद्विशिष्टज्ञानरूपानुमितिः किञ्च व्यतिरेकयोर्व्याप्तिस्त-  
थाच न व्याप्तस्य पक्षधर्मत्वं पक्षधर्मस्य न व्याप्तत्वमिति  
वैषम्यम्, अत एवोपनयवैयर्थ्यमपि व्याख्यायते नत्वगृही-  
तव्याप्तिकमपि तदुक्तम्,

वि० रससमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वगन्धवत्त्वपाकजस्पर्श-  
मानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वादीनि पृथिव्या लक्ष्यान्नु-

उ० “साध्याप्रसिद्धिर्वेषम्यं व्यर्थतोपनयस्य च ।

• अन्वयेनैव सिद्धिश्च व्यतिरेकिणि दूषणम्” ॥ इति ।  
 एवं व्यवहारसाध्यकेऽपि, तत्र यद्यपि व्यवहारः पृथिवी-  
 पदवाच्यत्वं तच्च पृथिवीत्वजातावप्यस्ति तत्रच पृथिवीत्वं  
 हेतुर्नास्तीत्यसाधारण्यं तथापि पृथिवीत्वप्रवृत्तिनिमि-  
 त्तकपृथिवीपदवाच्यत्वं साध्यमिति नासाधारण्यं यद्वा  
 पृथिवीत्वं काचित्कपदप्रवृत्तिनिमित्तं जातित्वात् घटत्व-  
 वदिति सामान्यतः सिद्धौ पृथिवीपदं पृथिवीत्वप्रवृत्ति-  
 निमित्तकम् इतराप्रवृत्तिनिमित्तकत्वे सति सप्रवृत्तिनि-  
 मित्तकत्वात् यन्नैवं तन्नैवमिति साध्यम् । तथाचात्रापि सा-  
 ध्याप्रसिद्धिरेवेति चेत् नैवम्, इतरेषां जलादीनाम् भेदस्य  
 घट एव प्रसिद्धेः । वाय्वादेरतीन्द्रियस्यापि भेदस्य अन्योन्या-  
 भावस्य घटादौ प्रत्यक्षत एव सिद्धत्वात् अन्योन्याभावग्रहे  
 अधिकरणयोग्यतामात्रस्य तन्वत्वात् स्तम्भः पिशाचो न  
 भवतीत्यादौ तथा दर्शनात्, नचैवं घट एव तर्हि दृष्टा-  
 न्तोऽस्य किं व्यतिरेकिणा

“अजुमार्गेण सिद्ध्यन्तं कोहि वक्रेण साधयेत्”

इति वाच्यम् अत्यतिरेकिलिङ्गं चेदनाभासं, तदाऽवमपि  
 मार्गो वक्ररुचिं प्रत्यप्रतिहत एव साध्याप्रसिद्धेर्निरामे  
 तन्मूलकदोषाणां निरस्तत्वात् । व्यतिरेकसुहचारेण अन्व-  
 यव्याप्तेरेव ग्रहात् व्यतिरेकव्याप्त्याऽन्वयव्याप्तेरनुमानाद्वा न

वि० ह्यानि । अत्र शङ्करमिश्राणां गन्धर्त्तं परित्यज्य तत्समानाधि-



उ० वैषम्यम् । नचोपनयवैचर्यम्, गृहीतव्याप्तेरेव हेतोः पक्षे  
उपसंहारात् तदुक्तम्,

“नियम्यत्वनियन्तूले भावयोर्धादृशी मते ।

त एक विपरीते तु विज्ञेये तदभावयोः” ॥ इति ।

व्यवहारस्तु गन्धवती पृथिवीत्युपदेशादेव यथा कम्बु-  
वादिमान् घटपदवाच्य इति । तथा कुत्रचिदेव घृतादेव  
मृदादौ च गन्धवत्त्वेनोपलक्षणेन पृथिवीले पृथिवीपद-  
प्रवृत्तिनिमित्तत्वं येनोपदेशाद् गृहीतम्, गन्धवत् सर्वं  
पृथिवीत्वेन प्रवृत्तिनिमित्तेन पृथिवीपदवाच्यं गन्धवत्त्वात्  
यन्नैवं तन्नैवमिति व्यतिरेकी । तस्याप्यवतरत्येव । ननु  
भेदसाधकव्यतिरेकिणि भेदो वैधर्म्यं स्वरूपभेदो वा  
अन्योन्याभावो वा न तावदाद्यौ प्रत्यक्षते एव तदवगमात्  
न तृतीयः अभावभेदस्यापि साध्यत्वेन तदन्योन्याभावस्य  
तत्राभावात् तेन सच्च स्वरूपभेदे साध्ये साध्याननुग-  
मादिति चेन्न । अभावप्रतियोगिकान्योन्याभावस्यापि सा-  
ध्यत्वात् स व्यतिरेकस्तदाऽस्येव न चेत् स्वरूपमादाय  
तत्पर्यवसानात् वस्तुतोभिन्नएव तद्वैधर्म्यस्य तदन्योन्या-  
भावव्याप्यत्वात्, नचानवस्था यावत्येवानुभवस्तावत्येवाऽवि-  
श्रामात् अन्यत्र त्वननुभवेनैव विश्रामात् यत्तु त्रयोदशा-  
न्योन्याभावास्त्रयोदशसु प्रसिद्धाः मिलिताः पृथिव्यां

वि० करणत्रयत्वव्याप्यजातिमत्त्वपर्यन्तानुधावनस्य प्रयोजनं त एव  
जानन्ति ॥ १ ॥

सू० रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः ॥ २ ॥

उ० बाध्यन्ते इति तत्तुच्छं प्रत्येकं प्रसिद्धेरतन्त्रत्वात् मिलित-  
प्रसिद्धेरभावात् किन्तु निर्गन्धत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताका-  
न्योन्याभावः साध्यत प्रतियोगितावच्छेदकभेदेनाभावभेद-  
स्यावश्यकत्वात् स च घटादावेव प्रत्यक्षसिद्ध इत्युक्तत्वात् ।  
आकाशादौ का गतिरिति चेत् आकाशमितरभिन्नं  
शब्दाश्रयत्वात् यन्नैवं तन्नैवमित्यादौ पक्षेकदेशे यद्यपि न  
साध्यं प्रसिद्धं तथापि यत् यद्वैधर्म्यवत् तत्तत्प्रतियोगि-  
कान्योन्याभाववदिति सामान्यप्रवृत्तव्याप्तिबलेन शब्दा-  
श्रयत्वात्यन्ताभाववत्प्रतियोगिकान्योन्याभावस्य पूर्वमेव  
सिद्धौ केवलं पक्षनिष्ठतया इदानीं बोध्यन्ते वङ्गिरिव  
पर्वतनिष्ठतया इत्यन्योऽस्मत्सिद्धान्तः तद्वैधर्म्यस्य तद-  
न्योन्याभावव्याप्यत्वात् । शब्दाश्रयत्वात्यन्ताभाववत्त्वमेव वि-  
पक्षे न गृहीतमिति चेत् तर्हि शब्दाश्रयत्वस्य न लक्षणत्वं  
न वा लिङ्गत्वं विपक्षगामित्यशङ्कायस्तत्त्वादिति ॥ १ ॥

पृथिव्यनन्तरमुद्दिष्टानामपां लक्षणमाह ।

शुक्लमधुरशीताएव रूपरसस्पर्शाः द्रवत्वञ्च सांसिद्धिकं  
स्नेहस्तु स्वरूपतः । ननु शुक्लमेव रूपमपामित्ययुक्तं का-

वि० क्रमानुरोधत् पृथिव्यनन्तरं जललक्षणमाह ॥

जले रूपं शुक्लं रसो मधुरः स्पर्शः शीतः द्रवत्वं सांसिद्धिकं  
तथाच जलसूत्रे पद्मानां गुणानामुपादानात् पक्षैव जललक्षणानि  
मुनेरभिप्रेतानि । तथाच नीलारमानाधिकरणभास्वरसुक्ता-

उ० लिन्दीजलादौ नैत्यस्योपलम्भात् । मधुर एव रस इत्यप्ययुक्तं जम्बीरकरवीररसादौ आन्तृतैक्त्वादेरूपलम्भात् शीत एव स्युर्ग इत्यप्यनुपपन्नं मध्यन्दिने श्रौण्यस्यैवोपलम्भात् सांसिद्धिकस्य द्रवत्वमव्यापकं हिमकरकादावभावात् स्नेहस्य स्वरूपसिद्धेऽतिव्यापकस्य जलेऽननुभवात् घृतादौ पार्थिवेऽनुभवाच्च नच जलत्वं जातिरेव जललक्षणं व्यवस्थापकाभावेन तदनुपपत्तेः नच स्नेहममवाधिकारणतावच्छेदकत्वेन तत्सिद्धिः स्नेहत्वस्य कार्यकार्यवृत्तितया कार्यतानवच्छेदकत्वात् तस्माद्भेदकाभावाद् जलं न भिद्यत इति चेन्नैवम् अभास्वरशुक्लमात्ररूपस्यैव तद्भेदकत्वात् कालिन्दीजलादौ नैत्यस्याश्रयोपाधिकत्वात् वियदिकीर्णकालिन्दीजले धावन्यस्योपलम्भात् तेनाभास्वरशुक्लेतररूपाममानाधिकारणरूपवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्याप्यजातिमत्त्वम् अपां लक्षणम् । रसोऽपि मधुर एव जम्बीरकरवीररसात्तृतैक्त्वादेः पार्थिवोपाधिकत्वात् । जले माधुर्यं नानुभूयत एवेति चेन्न

वि० समानाधिकारणरूपवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्याप्यजातिमत्त्वं तित्क्त्वाद्धिमधुरवृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्याप्यजातिमत्त्वं शीतस्पर्शवत्त्वं सांसिद्धिकद्रवत्ववत्त्वं स्नेहवत्त्वमित्येतानि लक्षणानि जलस्येति भावः । हिमकरकादौ यदि न सांसिद्धिकद्रवत्वं तदा सांसिद्धिकद्रवत्ववद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं विवक्षणीयम् । लवणोदकालिन्दीजलादौ या नीलोपलम्भिः सा अश्रयोपाधिकी भ्रान्तिरेव वियदि विक्षेपे तस्यैव धवणिमोपलम्भिः यद्यपि जले कोऽपि रसो नानुभूयते तथापि हरीतक्वादिक्वायद्रव्यभक्ष्यानन्तरं

उ० कषायद्रव्यभक्षणान्तरं तदभिव्यक्तेः । नच हरीतक्या  
एव तन्माधुर्यं जलाभिव्यङ्गं तत्र कषायरसस्यैवोपलम्भात्  
हरीतक्याञ्चामलक्याम्बि कषाय एव रसः तस्यैवानुभवात्  
नच गुणविरोधेन तत्र रसाऽनारम्भः श्रवयवीनामपि तत्र  
कषायरसवत्त्वात् षड्रसत्वप्रवादस्तु तत्तद्रसकार्यकारित्व-  
निबन्धनः चित्ररसस्तु प्रमाणाभावादेव निरस्तः चित्ररूपे  
तु पटोपलम्भ एव प्रमाणं सुरभ्यसुरभ्यवयवारम्भस्तु गुण-  
विरोधनिरस्त एव चित्रगन्धे प्रमाणाभावात् तस्माद्धरी-  
तकीभक्षणान्तरं यन्माधुर्यमुपलभ्यते तत् जलस्यैव उल्ल-  
णता तु० द्रव्यविशेषमन्निधानाधीना श्रीखण्डसन्नियोगा-  
ज्जले शैत्योल्बणतेव कर्कटीभक्षणान्तरन्तु तिक्तता याऽनु-  
भूयते सा कर्कट्या एव तदवयवे जलपानमन्तरेणापि ति-  
क्ततोपलम्भात् रसनाग्रवर्त्तिपित्तद्रव्यतिक्तताया वा तत्रा-  
नुभवात् तथाच मधुरेतररसासमानाधिकरणरससमाना-  
धिकरणद्रव्यत्वमात्राद्याप्यजातिमत्त्वमपां लक्षणम् । एवं

वि० जलमाधुर्यमनुभूयत एव तस्य तद्वृद्धकत्वात्, नच जलसंयोगात्  
हरीतक्यादावेव माधुर्यात्पत्तिरिति वाच्यं पात्रस्यहरीतक्यादा-  
वपि जलसंयोगेन मधुरिमोत्पत्त्यापत्तेः कषायनाशरसान्तरो-  
त्पादतत्प्रागभावादिकल्पनायां गौरवाच्च कर्कटीभक्षणान्तरं  
जलस्य या तिक्ततोपलम्बिः सा कर्कट्या एव जलमन्तरेणापि  
तद्यद्वात् जम्बीररसादावस्त्रोपलम्बिः कारवेक्षरसादौ तिक्त-  
तोपलम्बिश्च एतेन व्याख्याता । सूकरादिसंयोगाज्जले यदुष्ण-  
स्पर्शः प्रतीयते सोऽपि सूकरादेरेव, यद्यपि हिमकरकादौ

उ० शीतस्पर्शसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमपां लक्षणं मध्यन्दिने तु यदैष्यं तत्तेजस एव तदन्वयव्यतिरेकानु-विधानात् एवं सांमिद्धिकद्रवत्वं स्वरूपत एव लक्षणं सांमिद्धिकद्रवत्ववृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं वा जलत्वम्। स्नेहस्तु गुणविशेषो नतु दुग्धत्वदधित्ववत् सामान्यविशेषः स्निग्धस्निग्धतरस्निग्धतमेति तारतम्यप्रतीतेः नच जातौ तारतम्यं सम्भवति। ननु भवतु स्नेहो गुणः स तु जले वर्तत इत्यत्र किं प्रमाणमिति चेन्न सक्तुसिकतादौ जलेन संग्रहे तदनुमानात् संग्रहे हि स्नेहद्रवत्वकारितः संयोग-विशेषः स हि न द्रवत्वमात्राधीनः काचकाञ्चनद्रवत्वेन संग्रहानुपपत्तेः नापि स्नेहमात्रकारितः स्थानैर्घृतादिभिः संग्रहानुपपत्तेः तस्मादन्वयव्यतिरेकाभ्यां स्नेहद्रवत्वकारितः स च जलेनापि सक्तुसिकतादौ दृश्यमानः स्नेहं जले द्रव-यति इत्यञ्च प्रत्यक्षोपपत्तिकैव युक्तिः स्नेहस्य प्रत्यक्षत्वात्

कि० द्रवत्वं नानुभूयते इति कथं तस्य जलेऽन्तर्भावः सम्भवति तथापि उष्णता विलीने तत्र जलत्वं प्रत्यक्षसिद्धमेव दिव्यतेजः-संयोगात्तु तत्र द्रवत्वप्रतिरोधः काठिन्यप्रतीतिस्तु तत्र भ्रान्ति-रेवेति मुक्तावलीकारः। केचित्तु दिव्यतेजःसंयोगात् जलपर-माणुभ्यां द्यगुक्तं तैश्च असरेण्णादिकं क्रमेण हिमादौ जायते तादृशद्वयकादिकञ्च द्रवत्वरहितं कठिनमेवेति हिमादौ का-ठिन्यप्रतीतिर्न भ्रान्तिरित्याहुः। स्नेहस्तु जल एव घृतादावपि तदुपपत्तिकजलस्यैव स्नेहः तत्प्रकर्षाच्च घृतादेर्दहनानुकूलत्वं सक्तुसिकतादौ पिण्डीभावरूपः संग्रहनामकः संयोगविशेषो

सू० तेजो रूपस्पर्शवत् ॥ ३ ॥

उ० घृतादौ तु स्नेह उपष्टम्भकजलनिष्ठः संयुक्तसमवायेन तद्गततथा भानात् एवं तैलरसादिष्वपि । उपष्टम्भकञ्चातिशयितस्नेहमेव जलम्, स्नेहाधिक्यादेव तस्य जलस्य नाऽनल-विरोधित्वम् । यदि पृथिवीविशेषगुणः स्नेहः स्यात् सर्व-पार्थिववृत्तिः स्यात् गन्धवत् । जलत्वञ्च द्रव्यत्वमात्राद्वाप्यजातिः स्नेहवन्मात्रवृत्तिसंयोगसमवायिकारणतावच्छेदि-काया जातेः परमाणुसाधारण्येन सिद्धत्वात् ॥ २ ॥

उद्देशकमानुरोधेन तेजोलक्षणमाह ।

रूपं भास्वरं स्पर्शश्चोष्णस्तदन्तेज इत्यर्थः । ननु भास्वरत्वं परप्रकाशकत्वं तादृशञ्च रूपं नोष्णं न वा चामीकरस्ये भर्जनकपालस्ये वारिस्ये वा तेजसि । शुक्लञ्च रूपमुक्तेषु न कापि, उष्णञ्च स्पर्शा न चान्द्रे न वा चामीकरे तत्कथमेत-

वि० द्रवत्वसहितस्नेहकारित एव द्रवत्वमात्रकारितत्वे काचकाष्ठन-द्रवत्वादितोऽपि तदुत्पत्त्यापत्तेः नापि स्नेहमात्रकारितः घृणोभूतै-र्हतादिभिरपि तदुत्पत्तिप्रसङ्गादित्यलमधिकेन ॥ २ ॥

क्रमप्राप्तं तेजोलक्षणमाह ॥

भास्वरशुक्लरूपवत्त्वम् उष्णस्पर्शवत्त्वञ्च तेजोलक्षणमित्यर्थः । नच सुवर्णोष्णभर्जनकपालादिस्थतेजःप्रभृतिषु परप्रकाशकत्वरूप-भास्वरत्वविशिष्टशुक्लरूपाभावादव्याप्तिरिति वाच्यं तेष्वपि तेज-स्त्वेन तदनुमानात् सुवर्णस्य तेजस्त्वञ्च सुवर्णं तैजसम् अत्यन्ता-

उ० दिति चेन्न उष्मादौ तेजस्त्वेन भास्वरूपानुमानात् । तेज-  
स्त्वमेव तत्र स्वरूपासिद्धमिति चेन्न उष्णस्पर्शवत्त्वेन बदन-  
मानात्, चामीकरे कथमिति चेत् तत्र भास्वरूपाभावेऽपि  
अत्यन्तानलसंयोगेनानुच्छिद्यमानजन्यद्रवत्वाधिकरणत्वेन  
व्यतिरेकिणा तेजस्त्वानुमानादिति वक्ष्यमाणत्वात् भर्जन-  
कपालादिनिष्ठे चोष्णस्पर्शवत्त्वेन तेजस्त्वानुमानात् । चतु-  
र्विधं हि तेजः किञ्चिदुद्भूतरूपस्पर्शं यथा सौरादि, किञ्चि-  
दुद्भूतरूपमनुद्भूतस्पर्शं यथा चान्द्रम्, किञ्चिदनुद्भूतरूपस्पर्शं  
यथा नायनम्, किञ्चिदनुद्भूतरूपमुद्भूतस्पर्शं यथा नैदाघं  
वारिभर्जनकपालादिगतञ्च तेजः । नायनमध्ये साधयि-  
ष्यते ॥ १ ॥

वि० नलसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानजन्यद्रवत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा पृथि-  
वोति-व्यतिरेक्यनुमानात् सिद्धम्, उष्मादौ तु उष्णस्पर्शवत्त्वेन उष्ण-  
स्पर्शाऽपि चान्द्रकरचामीकरादौ जलीयपार्थिवस्पर्शनाभिभवाः  
गृह्यते इति न तत्र द्वितीयलक्षणाव्याप्तिः तेजस्त्वेन तत्र तदनु-  
मानात् । चतुर्विधं हि तेजः किञ्चिदुद्भूतरूपस्पर्शं यथा सौ-  
रादि, किञ्चिदनुद्भूतरूपस्पर्शं यथा चक्षुरादि, किञ्चिदुद्भूतरूप-  
मनुद्भूतस्पर्शं यथा चान्द्रप्रभादि, किञ्चिदनुद्भूतरूपमुद्भूतस्पर्शं यथा  
भर्जनकपालादिस्थवद्भ्यादि । तेजस्त्वञ्च जन्योष्णस्पर्शसमवायिका-  
रणतावच्छेदकतया सिद्धो जातिविशेषः नित्यस्य स्वरूपयोग्यस्ये-  
त्यादिनियमाभ्युपगमे तु जन्योष्णस्पर्शसमवायिकारणतावच्छेदक-  
तया सिद्धं जन्यतेजस्त्वं तदवच्छिन्नसमवायिकारणतावच्छेदक-  
तया तेजस्त्वजातिसिद्धिरिति मुक्तावलीकारः ॥ ३ ॥

सू० स्पर्शवान् वायुः ॥ ४ ॥

• त आकाशे न विद्यन्ते ॥ ५ ॥

उ० क्रमप्राप्तं वायुलक्षणमाह ।

रूपासमानाधिकरणस्पर्शसमानाधिकरणजातिमत्त्वं र-  
सासमानाधिकरणानुष्णाशीतस्पर्शसमानाधिकरणजातिम-  
त्त्वं गन्धासमानाधिकरणानुष्णाशीतस्पर्शसमानाधिकरण-  
जातिमत्त्वं स्पर्शेतरविशेषगुणासमानाधिकरणविशेषगुणस-  
मानाधिकरणजातिमत्त्वं वा वायुलक्षणम् ॥ ४ ॥

नन्वाकाशकालदिगात्मनामपि रूपादिमत्त्वं कथं न  
लक्षणमत आह ।

अत्र विदिरूपलब्धिवचनः नोपलभ्यन्ते यतोऽतो न ते

वि० वायुं लक्षयति ।

अत्र स्पर्शाऽपाकजोऽनुष्णाशीतो ग्राह्यः तेन वायवीयो वि-  
जातीयस्पर्शा लभ्यते तथाच तादृशविजातीयस्पर्शवत्त्वमेव वायु-  
लक्षणं वैजायन्तु वायुस्पर्शे प्रत्यक्षसिद्धमिति ॥ ४ ॥

नन्वाकाशादावपि नीलादिरूपोपलब्धेस्तस्य कथमतीन्द्रियत्वमत  
आह । यदा रूपादिचतुष्कं निःस्पर्शद्रव्ये नास्तीति वस्तुगतिमनु-  
रुधाह ।

ते रूपरसगन्धस्पर्शाः आकाशे न सन्तीत्यर्थः । दधिधवलमा-  
काशमिति प्रतीतिस्तु सूकरधवलमौषाधिकी आन्तिरेव नीलं



उ० रूपादयो नियोगतः समुच्चयतो विकल्पतो वा वर्त्तन्ते  
 नभःप्रसृतिषु द्रव्येष्टित्यर्थः । ननु दधिधवलमाकाशमितिकथं  
 प्रतीतिरिति चेन्न मिहिरमहसां विशदरूपाणामुपलम्भा-  
 त्तथाभिमानात् कथं तर्हि नीलं नभ इति प्रतीतिरिति  
 चेन्न सुमेरोर्दक्षिणदिशमाक्रम्य स्थितस्येन्द्रनीलमयशिखरस्य  
 प्रभामालोकयतां तथाभिमानात् यत्तु सुदूरं गच्छच्चक्षुः  
 परावर्त्तमानं स्वचक्षुःकनीनिकामाकलयत्तथाभिमानं जन-  
 यतीति 'मतं तदयुक्तं पिङ्गलसारनयनानामपि तथा-  
 भिमानात् । इहेदानीं रूपादिकमिति-प्रत्ययात् दिक्-  
 कालयोरपि रूपादिचतुष्कमिति 'चेन्न समवायेन पृथि-  
 व्यादीनां तल्लक्षणस्योक्तत्वात् नतु सम्बन्धान्तरेणापि इहे-  
 दानीं रूपात्यन्ताभाव इत्यपि प्रतीतेः सर्वाधारतैव  
 दिक्कालयोः ॥ ५ ॥

नन्वपां द्रवत्वं लक्षणमुक्तं तदयुक्तं पृथिव्यामपि द्रवत्वो-  
 पलम्भादित्यत आह ।

वि० नभः इति प्रतीतिरपि सुमेरोर्दक्षिणदिगवस्थितस्येन्द्रनीलमय-  
 शिखरस्य नीलमविषयिणी भ्रान्तिरेव, केचित्तु सुदूरगतस्य  
 परावर्त्तमानस्य चक्षुषः स्वगोलकस्थकनीनिकापतनात् तद्गत-  
 नीलरूपविषयिणी तादृशप्रतीतिरित्याहुस्तत्र पिङ्गलसारनय-  
 नानामपि तद्योपलम्भादिति संक्षेपः ॥ ५ ॥

ननु पृथिव्यादावपि द्रवत्वसत्त्वात् जलसूत्रे जलमात्रस्य द्रव-  
 त्वकथनमसङ्गतमत आह ॥

ख० सर्पिर्जंतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयोगाद्द्रवत्वमद्भिः  
सामान्यम् ॥ ६० ॥  
चंपुसीसलोहरजतसुवर्णानामग्निसंयोगाद्द्रव-  
त्वमद्भिः सामान्यम् ॥ ७ ॥

उ० सर्पिरादीनां यद्द्रवत्वमस्ति तदग्निसंयोगान्निमित्तात्  
नतु सांसिद्धिकं तादृशञ्चापां लक्षणं द्रवत्वमात्रन्तु पृ-  
थिव्या अद्भिः सामान्यं नतु सांसिद्धिकं द्रवत्वमपीति  
नातिव्याप्तिरित्यर्थः ॥ ६ ॥

ननु तथापि चंपुसीसलोहादौ तेजसि गतत्वेन तदव-  
स्थैवातिव्याप्तिरित्यत आह ।

उपलक्षणञ्चैतत् कांश्यतासारकूटपारदादीनामप्युप-  
संग्रहः । शक्यलक्ष्यसाधारणञ्च अत्यन्ताग्निसंयोगानुच्छिद्य-  
मानजन्यद्रवत्वाधिकरणत्वमेव तथाच सुवर्णादीनामपि

वि० सर्पिर्घृतम्, मधूच्छिष्टं सिक्थकम्, घृतादीनां यद्द्रवत्वम् अग्नि-  
संयोगान्निमित्ताद्भवति तदद्भिः जलैः सामान्यं समानं स्वार्थिक-  
तद्धितप्रत्ययात् अत्र जलवाचकशब्दस्य जलद्रवत्वे लक्षणा  
तथाच घृतादीनां यन्नैमित्तिकं द्रवत्वं तज्जलगतसांसिद्धिकं-  
द्रवत्वतुल्यं द्रवत्वत्वजातेरुभयत्र सत्त्वात् सांसिद्धिकद्रवत्वन्तु घृता-  
दिषु नास्ति जलसूत्रोक्तद्रवपदं सांसिद्धिकद्रवत्वविशिष्टपरमिति  
नासङ्गतिरिति भावः ॥ ६ ॥

एवं रङ्गसीसकादौ द्रवत्वमपि नैमित्तिकमेवेत्याह ।

उ० द्रवत्वं नैमित्तिकमेव निमित्तस्याग्निसंयोगस्यान्वयव्यतिरेकसिद्धत्वात्, परन्तु पूर्वसूत्रेऽग्निपदमौषध्यप्रकर्षवन्नेजः-परम्, इह तु वह्निपरमिति विशेषः । ननु सुवर्णादीनामपि पार्थिवत्वमेव द्रव्यान्तरत्वं वा पीतिमगुरुत्वादेः पार्थिवत्वव्यवस्थापकत्वाद्वलानुच्छेदस्य 'पृथिवीवैधर्म्यस्याप्यनुभवात् द्रव्यान्तरत्वव्यवस्थापकत्वादिति चेन्न सुवर्णं तैजसम् अत्यन्ताग्निसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात् यद्वैवं तन्नैवं यथा पृथिवीति व्यतिरेकिणा तैजसत्वसिद्धेः । नच जलपरमाणौ विरुद्धता द्रवत्वस्यानित्यत्वेन विशेषणीयत्वात् नच प्रदीपभेदेः सपचाङ्केतोर्थावृत्तेरभाधारण्यं सुवर्णं न पार्थिवमिति साधार्यत्वात् नचात्र गुरुत्वाधारस्य पक्षे बाधः तदतिरिक्तस्य पक्षे चाश्रयसिद्धिः, द्रवत्वाधिकरणत्वेन पक्षत्वात्, नचात्यन्तिकत्वं दुर्बलं, प्रहरपर्यन्तमग्निसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानानित्यद्रवत्वाधिकरणत्वादिति विवक्षितत्वात् नच तरतमादिप्रत्ययादाश्रयनाशाच्च द्रवत्वनाशोऽप्यवश्यं वाच्य इति वाच्यं समाधाधिकरणद्रवत्वसामर्थ्यमवहिताग्निसंयोगजन्यध्वंसप्रतियोग्यवृत्तिद्रवत्वसामान्यवद्रवत्ववत्त्वादित्यस्य हेत्वर्थत्वात् यद्वा पीतिमगुरुत्वाश्रयः पीतरूपभिन्नरूपप्रतिबन्धकद्रवद्रव्यसंयुक्तः प्रहरपर्यन्तमनलसंयोगेऽपि पीतरूपभिन्नरूपोऽनाश्र-

वि० सुवर्णानामिति बह्वचनेन काश्य-ताम्र-पित्तल-पारदादीनामप्युपग्रहः । व्याख्यानश्चास्य सूत्रस्य पूर्ववदेव बोध्यम् ॥ ७ ॥

सू० विषाणी ककुद्धान् प्रान्तेबालधिः सास्त्रावान्  
इति गोत्वे दृष्टं लिङ्गम् ॥ ८ ॥

उ० यत्वात् अनलसंयुक्तजलमध्यस्थितपीतपटवत् । ननु चान्धकारे  
सुवर्णरूपग्रहापत्तिस्तदानीं तद्रूपस्याभिभवाभावात् बल-  
वत्सजातीयग्रहणकृतस्याऽग्रहणस्याऽभिभवपदार्थत्वात् इति  
चेत् तत्र फलबलेन बलवत्सजातीयसम्बन्धमात्रस्याभिभव-  
पदार्थत्वात् तदुक्तम्,

“भूसंसर्गवशाच्चान्यरूपं नैव प्रकाशते” ।

इति दिक् ॥ ७ ॥

एवं स्पर्शवद्द्रव्यचतुष्कलक्षणप्रकरणं समाप्य वायोर्ल-  
क्षणमाश्रयासिद्धमिति तत्परिजिहीर्षया वा आदावनुमानं  
प्रमाणमुपन्यस्याऽनुमानस्यैव प्रथमं दृष्टानुसारेण प्रमा-  
णमुपपाद्य वायुमाधनप्रकरणमारभते ।

यथा गोत्वं प्रति विषाणादीनि लिङ्गानि गृहीतव्या-  
प्तिकानि तथाऽतीन्द्रियवाद्यादिद्रव्यपञ्चकलिङ्गान्यपि सा-  
मान्यतो दृष्टानि प्रमाणभावमासादयन्तीति भावः । अत्र

वि० ननु स्पर्शवान् वायुरित्यनेन वायोर्लक्षणमुक्तं तच्च लक्ष्या  
सिद्ध्याऽसिद्धं नहि वायौ प्रत्यक्षं प्रमाणं सम्भवति तस्योद्भूत-  
रूपाभावादित्यतस्तत्रानुमानं प्रदर्शयितुमादावनुमानप्रामाण्यं  
द्रष्टव्यम् ।

यथा गोत्वे विषाणित्वादीनि लिङ्गानि सामान्यतो दृष्टानि  
लोकसिद्धानि प्रमाणानि तथाऽतीन्द्रिये वायौ स्पर्शादीनि

उ० यद्यपि विषाणित्वाच्च न गोत्वे लिङ्गं महिषादौ व्यभि-  
 चारात् । नच सास्त्रादिमत्त्वं विशेषणं विशेष्यस्य व्यर्थात्वा-  
 पत्तेः तथापि गोविषाणे महिषमेषादिविषाणापेक्षया  
 वैलक्षण्यमभिलक्ष्यतां धूमं इव ते ते विशेषा लिङ्गभावमा-  
 सादयन्त्येव विषाणेष्वपि ऋजुत्ववक्रत्वंकठिनत्वसुकुमारत्व-  
 ह्रस्वत्वदीर्घत्वादयः । तेच विशेषाः निपुणतरवेद्याः सन्ति  
 तथाच व्यवहितविप्रकृष्टगोपिण्डे अयं गोविषाणविशेषव-  
 त्वात् पूर्वानुभूतगोपिण्डवदित्यनुमानमप्रत्यूहमेव । एवं  
 ककुद्दत्तापि लिङ्गं गोत्वे, प्रान्तेबालधिमत्त्वमपि स्वतन्त्रमेव  
 लिङ्गं गोत्वे, प्रान्ते बाला आधीयन्तेऽस्मिन्निति प्रान्तेबा-  
 लधिः पुच्छविशेषः अलुक्समासात् गोपुच्छ एवान्तेबा-  
 लधिश्चेन्नोच्यते नहि यथा गोपुच्छेषु प्रान्तेबालधित्वं  
 तथाऽश्वमेषादिपुच्छेषु, तेषां सामख्येन बालमयत्वात् महि-  
 षादिपुच्छे तादृशी प्रलम्बता नास्तीति वैलक्षण्यात् अन्ते-

वि० लिङ्गान्यपि प्रमाणातीति सूत्रद्वयनिगूढार्थः । तत्र प्रथमसूत्रे  
 विभाषीति प्रशंसायामस्त्यर्थप्रत्ययः तेन च महिषादिव्यावृत्ते  
 विषाणविशेषो लभ्यते स च गोत्वे लिङ्गम् एवं ककुद्दत्तापि । प्रा-  
 न्तेबालधिरिति अन्ते बाला आधीयन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या पुच्छ-  
 रूपाङ्गविशेष उच्यते प्रकृष्टोऽन्तेबालधिर्यस्य स प्रान्तेबालधि-  
 गोपिण्डः, मेषादिपुच्छे तु सामख्येन बालमयत्वान्तेबालधित्वं  
 महिषादिपुच्छे प्रलम्बत्वादिरूपप्रकर्षाभावात् पुच्छविशेषो गोत्वे  
 लिङ्गम्, सास्त्रा गलकम्बलं तदत्ता गोत्वे लिङ्गम्, विषाणीत्यादित्यव-

सू० स्पर्शश्च वाधोः ॥ ६ ॥

उ० बालधिमन्त्रमपि गोले लिङ्गं मतुव्लोपात् गोपिण्ड उच्यते  
तथा चायं गौः प्रान्तेबालधिमन्त्रात् पूर्वानुभूतगोपिण्डवत्,  
सास्त्रावन्ता तु प्रसिद्धैव गोले लिङ्गम् ॥ ८ ॥

एवं सकललोकयात्रावाहिनोऽनुमानस्य दृष्टानुसा-  
रेण प्रामाण्यमभिधाय वायुसाधनप्रकरणमारिष्यमान  
आह ।

लिङ्गमिति शेषः चकारात् शब्दधृतिकम्पाः समुच्चयन्ते ।  
ननूपलभ्यमानस्पर्शः पृथिव्या एवाऽनुद्धतरूपायाः स्यादिति  
चेन्न उद्धतस्य पृथिवीस्पर्शस्योद्धतरूपनान्तरीयकत्वात् ।  
तथाच योऽर्थं स्पर्शाऽनुभूयते स क्वचिदाश्रितः स्पर्शलात्  
पृथिव्यादिस्पर्शवदिति सामान्यतोद्दष्टेन स्पर्शाश्रयसिद्धौ  
स्पर्शाश्रयो न पृथिव्यादित्रयात्मकः नीरूपत्वात् नाका-  
शादिपञ्चात्मकः स्पर्शवत्त्वादितीतरबाधसंरुद्धतेनाष्टद्रव्या-  
तिरिक्तद्रव्यसिद्धिः, एवं शब्दविशेषोऽपि वायौ लिङ्गम्,

वि० हारविषयतावच्छेदकम् इति शब्देन पराम्श्रुते तत्रायं प्रयोगः  
अयं गौर्विषयाण्यविशेषवत्त्वात् ककुद्गत्वात् पुच्छविशेषवत्त्वात् सा-  
स्त्रावत्त्वाद्वा पूर्वानुभूतगोपिण्डवदिति ॥ ८ ॥

एवं लोकयात्रनिर्व्वाहकस्यानुमानस्य प्रामाण्यमुक्त्वाऽनुमानेन  
वायुं साधयति ।

लिङ्गमित्यनुषज्यते चकारः शब्दधृतिकम्पान् समुच्चिनोति

- उ० तथाहि असति रूपवद्द्रव्याभिघाते० योऽयं पर्णादिशब्द-  
सन्तानः स स्पर्शवद्देगवद्द्रव्याभिघातिनिमित्तकः अकिभज्य-  
मानावयवद्रव्यसम्बन्धिशब्दसन्तानत्वात् दण्डाभिघातजभे-  
रीशब्दसन्तानवत् रूपवद्द्रव्याभिघातव्यतिरेकस्तु योग्या-  
नुपलब्धिगम्यः तच्च स्पर्शवद्देगवद्द्रव्यमष्टद्रव्यातिरिक्तं  
परिशेषात् । एवं घृतिविशेषोऽपि वायुर्लिङ्गं तथाहि  
दण्डलक्षस्तनयित्त्वुविमानानां नभसि घृतिः स्पर्शवद्देगवद्द्रव्य-  
संयोगजं चेतनानधिष्ठितद्रव्यघृतित्वात् प्रवाहे दण्डकाष्ठ-  
नौकादिघृतित्वत् अभिध्यानकृतविषादिघृतौ च अस्मदा-  
द्यधिष्ठानमेव एवं पक्षिकाण्डादिघृतावपि, नचेश्वराधि-  
ष्ठितत्वेन हेतुविशेषणासिद्धिः चेतनपदेन तदितरस्य विव-  
क्षितत्वात् । एवं कर्मोऽपि वायुमत्त्वे लिङ्गं तथाहि इदं  
रूपवद्द्रव्याभिघातमन्तरेण दण्डौ कर्म स्पर्शवद्देगवद्द्रव्या-  
भिघातजं गुरुत्वप्रयत्नवदात्मसंयोगाजन्यकर्मत्वात् नदी-  
पूराहतवेतसर्वनकर्मवदिति गुरुत्वपदेनादृष्टवदात्मसंयोग-  
द्रवत्वसंस्काराणामुपग्रहः तेन तदजन्यकर्मत्वं हेतुः । ननु  
प्रत्यक्ष एव वायुः किमत्र लिङ्गगवेषणयेति चेन्न वायुर्न  
प्रत्यक्षः नीरूपवद्द्रव्यत्वात् गगनवदित्यनुमानादतीन्द्रिय-  
त्वस्यैव सिद्धेः । ननु वायुः प्रत्यक्षः स्पर्शाश्रयत्वाद् घटवदिति  
प्रत्यक्षत्वानुमानमिति चेन्न उद्भूतरूपवत्त्वस्यात्रोपाधित्वात्, नच
- वि० तथाच विजातीयस्पर्शेन पर्णादिशब्देन नभसि दण्डतूलादीनां  
घृत्वा शाखादीनां कर्मो न च वायुरनुमीयते इतिभावः, अनुमान-

उ० रूपादावात्मनि च साध्याव्यापकमेतत् पञ्चधर्मावहिर्द्रव्यत्वा-  
वच्छिन्नस्य साधनधर्मावच्छिन्नस्य वा साध्यस्य व्यापकत्वात्,  
नच चाक्षुषप्रत्यक्षत्वे तत्तन्त्वं तत्रैव तदन्वयव्यतिरेकानुवि-  
धानात् स्यार्शनप्रत्यक्षत्वे तु योग्यस्पर्शवत्तामात्रस्य तन्त्व-  
तेति वाच्यं रूपाश्वयव्यतिरेकयोर्भयत्रापि तन्त्वत्वात्  
नक्षुभयसिद्धस्पर्शेनैव प्रत्यक्षता रूपस्य ग्रहमन्तरेण दृष्टा ।  
किञ्च यदि वायुः प्रत्यक्षः स्यात् सञ्ज्ञादि सामान्यगुणोप-  
लभ्येऽपि तन्त्वं स्यात् नन्वस्येव फूत्कारादीं सञ्ज्ञायाः  
परिमाणस्य च हस्तवितस्त्यादेः उभयपार्श्ववर्तिनोर्वायोः  
पृथक्त्वस्य च परत्वापरत्वयोश्च प्रत्यक्षता वायुजातीयस्य  
व्यक्तिपरतया तु न तत्रापि नियमः पृष्ठलग्नवस्तादौ तदनुपल-  
म्भादिति चेन्न व्यक्तिपरतयैव नियमात् पृष्ठलग्नवस्तादौ चा-  
र्ज्जवावस्थाने सञ्ज्ञादीनां ग्रहणात् अनार्ज्जवावस्थानदो-  
षात्तु तदग्रहः उद्भूतरूपस्पर्शा मिलितावेव वहिर्द्रव्य-  
प्रत्यक्षत्वे तन्त्वे प्रभाया नयनगतपीतद्रव्यस्य चन्द्रमहसस्य  
स्पर्शानुद्भववादप्रत्यक्षत्वं निदाघोष्णोर्विभक्तावयवाप्यद्रव्या-  
णाञ्च रूपानुद्भववादप्रत्यक्षत्वमितिन्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका-  
कृतः, स्पर्शानुद्भवेऽपि प्रभादीनां प्रत्यक्षतैव अतएव चा-  
न्द्रालोके नभसि पक्षिकाण्डादिसंयोगविभागयोः प्रत्यक्ष-  
तैवेति सम्प्रदायविदः, नचोद्भूतस्पर्शवत्त्वं सामान्यतोवहिर्द्र-  
व्यप्रत्यक्षताप्रयोजकमिति वाच्यम्, इन्द्रनीलप्रभाया अप्रत्य-

वि० प्रकारस्त्वन्यत्रानुसन्धेयः विस्तरभयात् परिव्यक्तोऽस्माभिः ॥ ६ ॥



सू० नच दृष्टानां स्पर्श इत्यदृष्टलिङ्गोवायुः ॥ १० ॥

उ० चतापत्तेः, नचोद्भूतविशेषगुणवत्त्वमेव तन्त्रम् आकाशस्यापि प्रत्यक्षतापत्तेः, नच जन्यमहत्त्वममानाधिकरणोद्भूतविशेषगुणवत्त्वं तथा रसनाद्यवर्त्ति-पित्तद्रव्यस्य तैत्त्वोद्भवेऽप्यप्रत्यक्षत्वात् तस्मादुद्भूतरूपवत्त्वमेवात्मैतरद्रव्यप्रत्यक्षतातर्कं तच्च वायौ नास्तीत्यप्रत्यक्षोवायुः ॥ ६ ॥

ननु प्रत्यक्षतो दृष्टमिह लिङ्गं नास्ति नहि वक्त्रिधूमयोरिवेह प्रत्यक्षेण व्याप्तिग्रहः । किञ्च पृथिव्याद्यन्यतमस्यैव स्पर्शोप्ययं भविष्यतीत्यत आहं ।

अयं स्पर्शो यः पक्षः क्रियते स दृष्टानां पृथिव्यप्तेजसां न भवति रूपासहचरत्वात् तथाचायं स्पर्शः क्वचिदाश्रित इत्यनुमेयमित्यदृष्टलिङ्गः सामान्यतोदृष्टलिङ्गोऽपि वायुः पक्षधर्मात्बलादायातइत्यर्थः, यद्यपि दृष्टमेव स्पर्शादित्तुष्कं लिङ्गमिति तथापि वायुना महागृहीतव्या-

वि० गनु विजातीयस्पर्शेन तदधिकरणं वायुर्न सिध्यति पृथिव्याद्यन्यतमेन सिद्धसाधनादित्यत आह ॥

येन स्पर्शेन वायुरधिकरणतयाऽनुमीयते स स्पर्शो न दृष्टानां पृथिव्यप्तेजसाम्, इतिहेतोः वायुरदृष्टलिङ्गः नास्ति दृष्टमधिकरणतया यस्य तादृशं लिङ्गं यस्य सः दृष्टापत्तिस्पर्शल्लिङ्गोवायुरिति फलितार्थः तथाच पृथिव्यादिना न सिद्धसाधनं नवार्था-न्तरं पृथिव्यादिस्पर्शस्य रूपसहचरित्वनियमादितिभावः ।

सू० अद्रव्यवत्त्वेन द्रव्यम् ॥ ११ ॥

उ० प्रिकत्वाददृष्टलिङ्गत्वमुक्तं न ह्ययं धर्मी वायुरिति प्रतिज्ञाय  
वायुः साधयितुं शक्यते तथाच सामान्यतौ दृष्टादेवेतर-  
बाधसहकृताद्वायुसिद्धिरितिभावः ॥ १० ॥

उपलभ्यमानस्पर्शाश्रयमवयविनं साधयित्वा परमाणु-  
लक्षणं वायुं साधयितुमाह ॥

द्रव्यमाश्रयभूतमस्यास्तीति द्रव्यवत् न द्रव्यवत् अद्रव्य-  
वत् द्रव्यानाश्रितमित्यर्थः तथाचाकाशवत् परमाणुलक्षणे  
वायुर्द्रव्यम् अन्येषां पदार्थानां द्रव्याश्रितत्वात् आश्रित-  
त्वञ्चान्यत्र नित्यद्रव्येभ्य इत्यभिधानात् परमाणुभ्यां द्युणु-  
कारभात् द्युणुकादिप्रक्रमेणावयविनो महत् आरम्भस्वोप-  
पादनीयत्वादिति ॥ ११ ॥

वि० अथवा यतो वायुरदृष्टलिङ्गः अदृष्टं रूपसहचरितत्वेनाऽनुपल-  
भ्यमानं लिङ्गं यस्य सः इति हेतोर्वाय्वनुमापकविजातीयस्पर्शा न  
दृष्टानां दृष्टिव्यादीनामिति समुदितसूत्रार्थः ॥ १० ॥

एवमवयविनि वायौ सिद्धे तन्निर्वाहकतया तत्परमाणुरप्य-  
वश्यं स्वीकार्यस्तत्र द्रव्यत्वमप्यावश्यकमित्याह ।

द्रव्यम् अधिकरणतया विद्यते यस्य तद्द्रव्यवत् द्रव्यवत्त्वित्यर्थः  
न द्रव्यवद्द्रव्यवत् तस्यभावोऽद्रव्यवत्त्वं विशेषण्ये तृतीया तथाच  
द्रव्यवृत्तिभिन्नत्वेन विशेषितं वायुरूपं द्रव्यं स्थूलवायुनिर्वाह-  
कतयाऽवश्यं स्वीकार्यमित्यर्थः ॥ ११ ॥

## सू० क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च ॥ १२ ॥

उ० वायुपरमाणोर्द्रव्यत्वसाधकं हेतुद्वयं समुच्चिन्वन्नाह ।  
 वायुपरमाणुर्द्रव्यमिति शेषः यद्यपि द्रव्यत्वे सिद्धे क्रिया-  
 वत्त्वं गुणवत्त्वञ्च सिध्यति तत्सिद्धौ च द्रव्यत्वसिद्धिरित्य-  
 न्यान्याश्रयः तथाप्युपलभ्यमानस्यर्शाश्रयस्यावयविनामूल-  
 भूतस्य परमाणोरसमवायिकारणसंयोगान्यथानुपपत्त्या क्रि-  
 यावत्त्वम् 'अवयविस्यर्शरूपादेः कारणगुणपूर्वकत्वनिधमाद्  
 गुणवत्त्वञ्च सिद्धं ताभ्याञ्च द्रव्यत्वमित्यदोषः । तत्र क्रिया-  
 वत्त्वं सपचैकदेशवृत्ति गुणवत्त्वञ्च सपचव्यापकम् । चका-  
 रात् सप्रवायिकारणत्वं द्रव्यत्वसाधकं समुच्चिनोति । ननु  
 परमाणावेव न प्रमाणं कस्य द्रव्यत्वं साध्यत इति चेन्न स्थूल-  
 कार्यस्य क्रियाविभागादिन्यायेन भज्यमानस्याल्पतरतमा-  
 दिभावात् यतोनाल्पीयः स एव परमाणुः अत्रयवावयवि-  
 प्रसङ्गस्थानवधित्वे अनन्तावयवत्वाविशेषे सुमेरुसर्षपादीनां  
 परिमाणाविशेषापत्तिः कारणसंख्याविशेषमन्तरेण परि-  
 शाणप्रचययोरपि परिमाणभेदं प्रत्यतन्त्रत्वात्, नच विना-

वि० वायुपरमाणोर्द्रव्यत्वसाधकं हेतुद्वयमाह ।

वायव्यपरमाणुर्द्रव्यमिति शेषः । द्युणकारम्भकसंयोगादि-  
 रूपगुणवत्त्वं तदनुकूलक्रियावत्त्वञ्च परमाणाववश्यमङ्गीकार्य-  
 मिति न सन्दिग्धासिद्धौ हेतुः, परमाणुसिद्धिप्रकारस्तु असरेणुः  
 सावयवश्चात्तुषद्रव्यत्वाद् घटवत् असरेणोरवयवाः सावयवा-

सू० अद्रव्यत्वेन नित्यत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥

उ० शावधिरिवाऽयम् अवयवावयविप्रसङ्गः अन्यस्य निरवयवत्वेन विनाशानुपपत्तेः सावयवत्वे च निरवधित्वापत्तेस्तत्र च दोष-  
स्योक्तत्वात् । ननु चुटिरेवावधि दृश्यमानत्वाददृश्यमान-  
कल्पनायां मानाभावादिति चेन्न तस्य चाक्षुषद्रव्यतया मह-  
त्त्वानेकद्रव्यत्वयोरवश्यकत्वात् तस्मात् चमरेणवयवावयव  
एव परमाणु र्यथा पृथिव्यादौ तथा वायाबभौति सिद्धो-  
वायुपरमाणुः ॥ १२ ॥

ननु क्रियावत्त्वद् गुणवत्त्वाच्च घटादिवत् परमाणोर-  
नित्यत्वमनुमेयमत आह ॥

परमाणुलक्षणवायोरिति शेषः द्रव्यं हि समवायिकार-  
णाममवायिकारणान्यतरनाशान्नुश्रयति परमाणोस्तु निर-  
वयवतया नैतदुभयमस्ति तथाच विनाशकाभावान्न विन-

वि० महदवयवत्वात् कपालवदित्यादिः, एवञ्च पृथिव्यादौ यथा क्र-  
माणुस्तथा वायुस्थलेऽपि निराबाध एव अवयवावयविपरम्परा-  
यास्तुल्यत्वादिति ॥ १२ ॥

ननु परमाणुरनित्यः क्रियावत्त्वात् गुणवत्त्वाद्वा घटवत्  
इत्यनुमानेन परमाणोवनित्यत्वं सेत्स्यतीत्यत आह ।

वायुपरमाणोरिति शेषः, नास्ति द्रव्यं समवायिकारणतया यस्य  
तद्द्रव्यं द्रव्यसमवायिकारणकभिन्नं तत्त्वेनेत्यर्थः समवायिकार-  
णजन्यत्वस्य द्रव्यसमवायिकारणकत्वव्याप्यतया परमाणोर्व्यापका-  
भाववत्त्वेन व्याप्याभाववत्त्वान्नित्यत्वं तथाहि समवायिकारणा-

सू० वायोर्वायुसंमूर्च्छनं नानात्वलिङ्गम् ॥ १४ ॥

उ० श्चति क्रियावत्त्वे गुणवत्त्वे च हेतौ सावयवत्वमुपाधिः सच पञ्चधर्माद्भ्रंशतावच्छिन्नसांध्यव्यापकः केवलसाध्यव्यापकस्तु प्रागभावप्रतियोगित्वमुपाधिः ॥ १३ ॥

द्व्यणुकादिप्रक्रमेणारम्भसिद्धौ सिद्धमपि वायुनानात्वं प्रकारान्तरेणापि साधयितुमाह ॥

वायुसंमूर्च्छनमिति वायोर्वायूनां वा संमूर्च्छनं संयोग-  
विशेषः । सच समानवेगयोर्विरुद्धदिक्क्रिययोः सन्नि-  
पातः । सच दण्डतूलकादेरूर्द्धगमनेनानुमीयते । वायोर्ूर्द्ध-  
गमनस्य सन्निपातस्य चातोन्द्रियत्वात् दणादीनान्तु प्रत्या-  
क्षाणामूर्द्धगमनलक्षणायाः क्रियायाः प्रत्यक्षायाः स्पर्श-  
वद्देगवद्द्रव्याभिघातनोदनान्यतरजन्यत्वमनुमीयते तथाहि

वि० भावेऽसमवादिकारणस्थाप्यभावात् परमाणोर्न विनाशसम्भवः  
द्रव्यनाशं प्रति तदन्यतरनाशस्य हेतुत्वात् परमाणोर्द्रव्यत्वन्तु पूर्व-  
मेव साधितम् । केचित्तु अद्रव्यद्रव्यत्वेनेति सूत्रस्य पाठश्च्युत्तः ॥१३॥  
मन्वाकाशादिवत् वायोरपि न नानात्वं किन्त्वेकत्वमेव, दक्षिण-  
वातोत्तरवातादिव्यवहारस्तु उपाधिभेदादेवोपपादनीय इति  
तटस्थाशङ्कां निरस्यति ।

विरुद्धदिग्गामिनोर्वैगवतोर्वायोः परस्परप्रतीघातरूपं यत्  
संमूर्च्छनं दण्डतूलादीनामूर्द्धगमनानुकूलं तत्सम्पादकतयाऽनुमी-  
यमानं तदेव वायुनानात्वे लिङ्गम्, अन्यथा वायोरेकत्वे संमूर्च्छना-  
नुपपत्त्या दणादेरूर्द्धगमनानुपपत्तेः तथाच वायोः संमूर्च्छनेन

सू० वायुसन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावाद्दृष्टं लिङ्गं न विद्यते  
॥ १५ ॥

उ० तिर्यग्गमनस्वभावस्य वायोर्दूर्द्धगमनं परस्परप्रतीघात-  
मन्तरेणानुपपद्यमानं परस्परप्रतीघातं साधयति नदी-  
पयःपूरयोस्तथादर्शनात् तद्दूर्द्धगमनञ्च दृष्ट्यादूर्द्धगमना-  
नुमेयं नहि दृष्ट्यादीनामूर्द्धगमनं स्पर्शवद्देगवद्द्व्याभि-  
घातनोदनान्यतरद्विनेति ॥ १४ ॥

नन्वदृष्टलिङ्गेवायुरित्युक्तं तथाच कथमेतदित्यत आह ।

दृष्टं हि लिङ्गं यत्र प्रत्यक्षेण व्याप्तिप्रवृत्तदुच्यते यथा  
धूमोऽग्नेः, वायुसन्निकर्षे च वायुना महाविनाभावे प्रत्यक्षं  
नास्ति नहि भवति यो यः स्पर्शकम्पादिमान् स वायु-  
रिति कस्यचित् प्रत्यक्षं वायोरेवाप्रत्यक्षत्वादतएव तादृशं  
प्रत्यक्षगृहीतव्याप्तिकं लिङ्गं नास्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥

वि० तयोर्दूर्द्धगमनं भवति तेन च दृष्ट्यादीनामूर्द्धगमनम्, संमूर्च्छने-  
नोर्द्धगमनन्तु विरुद्धदिग्गामिनोर्वगवतोर्नद्यादिप्रवाहस्थितजल-  
योर्दृष्टमिति ॥ १४ ॥

नन्वदृष्टलिङ्गेवायुरिति यत् पूर्वमुक्तं तत् कथं सङ्गच्छते  
दृष्टस्य स्पर्शादेरेव वायुलिङ्गत्वादत आह ।

दृष्टं लिङ्गं हि यत्र व्याप्तेः प्रत्यक्षं भवति यथा वज्रधूमः,  
प्रकृते तु वायुसन्निकर्षेऽपि वायुव्याप्तिप्रत्यक्षं न सम्भवति वायो-  
तीन्द्रियत्वात् तथाच प्रत्यक्षगृहीतव्याप्तिकं लिङ्गं वाया नास्तीत्य-  
दृष्टलिङ्गे वायुरिति सुखंमेवेत्यर्थः ॥ १५ ॥

## सू० सामान्यतो दृष्टाच्चाविशेषः ॥ १६ ॥

उ० तर्हि वायोरनुमानमेव कथमित्यत उक्तमेव द्रढयितु-  
माह ।

अनुमानं हि त्रिविधं पूर्ववत् श्लेषवत् सामान्यतो दृ-  
ष्टञ्च । तथाचायमनुभूयमानस्पर्शः क्वचिदाश्रितः स्पर्शत्वात्  
गुणत्वादेति सामान्यतो दृष्टादेवेतरबाधसहकृतात् अष्टद्र-  
व्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वं मिथ्यतीत्यर्थः । गतं तर्हि केवल-  
व्यतिरेकिणेत्येन्न इतरबाधानन्तरं यत्र सामान्यतो-  
दृष्टं प्रवर्तते तत्राऽष्टद्रव्यानाश्रितत्वं पक्षविश्लेषणं सिद्ध-  
मादाय अष्टद्रव्याऽनाश्रितोऽयं स्पर्शः क्वचिदाश्रित इति  
प्रतिज्ञार्थोऽष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वमनादाय न पर्य-  
वस्यतीति-प्रतीत्यर्थोपर्यवसन्नतयाऽन्वयिन एव तत्सिद्धिः ।  
यत्र तु पूर्वमेव बाधावतारात् सामान्यतो दृष्टं तत्र प्रती-  
त्यर्थपर्यवसानात् केवलव्यतिरेकोक्त्यभ्युपगमात् । प्रका-

वि० ननु वायुव्यतिरेकप्रत्यक्षत्वे तदनुमानं कथं सम्भवतीत्यतः पूर्वा-  
-क्तमेव स्मारयति ।

अविश्लेषो विश्लेषरहितः विश्लेषाविश्लेषित इति यावत् विश्ले-  
षश्च द्रव्यत्वव्याप्यजातिविश्लेषो वायुत्वं तथाचानुभूयमानः स्पर्शः  
क्वचिदाश्रितः स्पर्शत्वादित्यनुमानेन इतरबाधसहकृतेन स्पर्शं  
अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वसिद्धौ अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वेन वा-  
युरपि साध्यतावच्छेदककोटौ सिध्यतीतिभावः सामान्यतो दृष्टा-  
दिति कार्यकारणभिन्नलिङ्गात् अन्यव्यतिरेकिलिङ्गादेत्यर्थः ।

सू० तस्मादागमिकम् ॥ १७ ॥

उ० राधे केवलव्यतिरेकीति तु तुच्छमेव । उक्तम्यत्ने प्रका-  
रस्यान्वयिनएवोपस्थितेः व्यापकतावच्छेदकप्रकारिकैवानु-  
मितिरिति-नियमस्त्वप्रामाणिकः सामग्रीविशेषमाचिव्यात्  
प्रकारान्तरभानस्यापि सम्भवात् ॥ १६ ॥

ननु चाविशेष इति वायुरयमित्याकाराऽनुमितिर्न  
भवति किन्त्वष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वेनैव प्रकारेणेति  
विवक्षितं यदि, तदा तस्य द्रव्यस्य वायुसंज्ञायां किं मान-  
मत आह ।

यस्माद्विशेषाकारेण नाऽनुमितिः तस्माद्वायुरिति नाम  
आगमिकम्, आगमो वेदः ततः सिद्धमित्यर्थः “वायुर्वै  
क्षेपिष्ठा देवता” “वायव्यं श्वेतं ह्यागलमालभेत” “वायुश्च  
सर्व्ववर्णोऽयं सर्व्वगन्धवहः शुचिः” इत्यादि-विधिग्रेषी-  
भूतार्थवादादेव वायुसंज्ञाधिगतिः । यथा

वि० न्यायसूत्रे पूर्व्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्टमिति त्रिविधमनुमान-  
मुक्तं तत्र पूर्व्ववत् कारणलिङ्गकं केवलान्वयि वा शेषवत् कार्य्य-  
लिङ्गकं केवलव्यतिरेकि वा सामान्यतोदृष्टं कार्य्यकारणभिन्न-  
लिङ्गकम् अन्वयव्यतिरेकि वा इत्यर्थः ॥ १६ ॥

ननु वायुत्वेन यदि नानुमानं तदा तस्य वायुसंज्ञायां किं मान-  
मत आह ।

यस्माद्वायुत्वस्वरूपजातिप्रकारेण विशेषानुमितिः तस्माद्वायु-  
रिति नाम आगमिकं वेदप्रसिद्धं आगमात् “वायुर्वै क्षेपिष्ठा



उ० “यन्न दुःखेन सन्निभं न च यस्तमन्तरम्” ।

इत्याद्यर्थवादात् स्वर्गसंज्ञायाः ।

“वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम् ।

मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कण्णिशशालिनः” ॥

इत्यर्थवादात् यवसंज्ञायाः, “अम्बुजो वेतसः” इत्यर्थवादात् वेतससंज्ञायाः । “वराहं गावोऽनुधावन्ति” इत्यर्थवादात् वराहसंज्ञायाः, अन्यथा “स्वर्गकामो यजेत” इत्यादौ विशिष्टसंज्ञानुपस्थितौ चागादिषु स्वर्गार्थिनां प्रवृत्तिर्न स्यात् न स्याच्च “यवमयश्चूर्भवति” “वेतसे कटे प्राजापत्यं धिनेति” “वाराही चोपानत्” इत्यादौ स्नेच्छाप्रसिद्धिमनुरुद्ध्य प्रवृत्त्यनध्यवसायः, स्नेच्छा हि यववराहवेतसशब्दान् कङ्कुवायमजम्बुषु प्रयुञ्जते तथाचार्थवादमन्तरेण सन्देहः स्यादित्यागमादेव तत्तदर्थप्रतीतिरिति भावः नाममात्रमागमिकं द्रव्यमिद्धिसु सामान्यतोऽदृष्टादेव ॥ १७ ॥

वि० देवता” “वायव्यं श्वेतं क्वागलमालभेत” “वायुश्च सर्ववर्णाऽयं सर्वगन्धवहः शुचिः” इत्याद्याः, तस्या वायुसंज्ञाऽधिगता, यथा “यन्न दुःखेन” इत्यादिना स्वर्गसंज्ञावर्गतिः, यथा वा “वसन्ते सर्वशस्यानाम्” इत्याद्यर्थवादात् यवसंज्ञावर्गतिः, यथा वा “अम्बुजो वेतसः” इत्यर्थवादात् वेतससंज्ञावर्गमः, यथा वा “वाराही चोपानत्” “वराहं गावोऽनुधावन्ति” इत्याद्यागमाद्वराहसंज्ञावर्गमः, स्नेच्छा हि यववराहवेतसशब्दान् क्रमेण कङ्कु-काक-जम्बुषु प्रयुञ्जते तथाचार्थवादमन्तरेण सन्देहः स्यात् इत्यागमादेव तत्तदर्थप्रतीतिरित्याशयः ॥ १७ ॥

ख० संज्ञा-कर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम् ॥ १८ ॥

• प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात् संज्ञाकर्मणः ॥ १९ ॥

उ० एवं वायुप्रकरणं समाप्य तत्-किमुन्मादिजल्पित-डित्य-  
डवित्यसंज्ञावत् वायुसंज्ञापीत्यागमस्य सर्वज्ञप्रणीतत्व-  
मुपपादयन् औपोद्घातिकमीश्वरप्रकरणमारिप्तमान आह ।

तुशब्दः स्पर्शादिलिङ्गव्यवच्छेदार्थः संज्ञा नाम कर्म  
कार्यं चित्यादि, तदुभयमस्मद्विशिष्टानाम् ईश्वर-महर्षीणां  
सत्त्वेऽपि लिङ्गम् ॥ १८ ॥

कथमेतदित्यत आह ।

अत्रापि संज्ञाच कर्म चेति समाहारद्वन्दादेकवद्भावः  
संज्ञाकर्तृर्जगत्कर्तृश्चाभेदसूचनार्थः । तथाहि यस्य

वि० नन्वागमस्य कथं प्रामाण्यमित्यत आह ।

तुशब्दः प्रकरणविच्छेदार्थः इदानीमीश्वरप्रकरणमारब्धमिति  
भावः । संज्ञा नाम वायुवराहयववेतनादि, कर्म कार्यं चित्य-  
ङ्गुरादि, एतदुभयमस्मद्विशिष्टानाम् अस्मत्तो विशिष्टानां तत्त-  
त्कार्यसमर्थानां सार्वज्ञेश्वर्यसम्पन्नानाम् ईश्वरमहर्षीणां लिङ्ग-  
मनुमापकं तुकारो लिङ्गान्तरव्यवच्छेदार्था वा तथाचेश्वरमहर्षि-  
सिद्धौ तत्प्रणीतत्वेन वेदस्मृत्यादेः प्रामाण्यमवश्यमङ्गीकार्यमिति  
यद्यपीदं पूर्वमुक्तं तथापि दार्ढ्यार्थमीश्वराद्यनुमानकथनार्थञ्च  
पुनर्वचनम् ॥ १८ ॥

ननु सर्वज्ञत्वं संज्ञाकर्मकर्तुः कुतः सिद्धमित्यत आह ।

संज्ञाकर्मण इत्यत्र पूर्ववत् समाहारद्वन्द्व-प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात्  
प्रत्यक्षसाध्यत्वात् तत्र संज्ञायाः सिद्धिप्रत्यक्षसाध्यत्वम्, कार्यस्य

उ० स्वर्गापूर्वादयः प्रत्यक्षाः स एव तत्र स्वर्गापूर्वादिसंज्ञाः कर्तुमीष्टे प्रत्यक्षे चैत्रमैत्रादिपिण्डे पित्रादेश्चैत्रमैत्रादि-संज्ञानिवेशनवत् एवञ्च घटपटादिसंज्ञानिवेर्नमपि ईश्वर-सङ्केताधीनमेव यः शब्दे यत्रेश्वरेण सङ्केतितः स तत्र साधुः यथा या काचिदोषधिर्नकुलदंष्ट्राद्यसृष्टा सा सर्वा-ऽपि सर्पविषं हन्तीत्येतादृशी संज्ञा अस्मादादिविशिष्टानरं लिङ्गमनुमापकं याऽपि मैत्रादिसंज्ञा पित्रा पुत्रे क्रियते सा-ऽपि “द्वन्द्वशेऽहनि पिता नाम कुर्यात्” इत्यादि-विधिना नूनमीश्वरप्रयुक्तैव तथाच मिद्धं संज्ञाया ईश्वरलिङ्गत्वम् । एवं कर्माऽपि कार्यमपीश्वरे लिङ्गं तथाहि चित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवदिति अत्र यद्यपि शरीराजन्यं जन्यं वा जन्यप्रयत्नाजन्यं जन्यं वा सकर्तृकत्वामकर्तृकत्वेन विवादाध्यासितं वा सन्दिह्यमानकर्तृकत्वं वा चित्यादि-त्वेन न विवक्षितम् अदृष्टद्वारा चित्यादेरपि जन्यप्रयत्न-जन्यत्वात् विवादसन्देहयोऽयातिप्रसक्तत्वेन पक्षतानवच्छे-दकत्वात् किञ्च सकर्तृकत्वमपि यदि कृतिमज्जन्यत्वं तदाऽ-

वि० दुपादानप्रत्यक्षसाध्यत्वं पित्रादिना हि पुत्रादिशरीरं दृष्ट्वैव तत्र चैत्रमैत्रादिसंज्ञा निवेश्यन्ते एवं कुलालादयोऽपि कपालादिकं दृष्ट्वैव घटादिकं कुर्वन्ति अतो निखिलसाधुसंज्ञाकर्तृस्तादृश-संज्ञिप्रत्यक्षस्य चित्यादिकार्थकर्तृस्तदुपादानप्रत्यक्षस्य चावश्यक-त्वात् सर्वज्ञत्वमर्थवशसम्पन्नमेव अतएव न्यायसूत्रवृत्तौ तद्दृष्ट्या-कादिकं पक्षीकृत्य सकर्तृकत्वस्यागमाने अधिकरणसिद्धान्तन्याये-नेशस्य सर्वज्ञत्वसिद्धिरित्युक्तम् अथ चित्यङ्कुरादिपक्षकसकर्तृक-

उ० अस्मदादिना सिद्धसाधनम् अस्मदादिहतेरप्यदृष्टद्वारा चि-  
 त्वादिजनकत्वात् उपादानगोचरकृतिमञ्जन्यत्वेऽपि तथा,  
 अस्मदादिहतेरपि किञ्चिदुपादानगोचरत्वात्, कार्यत्व-  
 मपि यदि प्रागभावप्रतियोगित्वं तदा ध्वंसे व्यभिचार इति  
 तथापि चितिः सकर्तृका कार्यत्वात् अत्र च सकर्तृकत्वम-  
 दृष्टाद्वारकृतिमञ्जन्यत्वं कार्यत्वञ्च प्रागभावावच्छेद-  
 सत्ताप्रतियोगित्वं नचाङ्कुरादौ सन्दिग्धानैकान्तिकत्वं  
 साध्याभावनिश्चये हेतुमदसत्त्वसन्देहे सन्दिग्धानैकान्तिक-  
 त्वस्य दोषत्वात् अन्यथा सकलानुमानोच्छेदप्रसङ्गात्, न  
 च पक्षातिरिक्ते न्देशोऽयमिति वाच्यं राजाज्ञापत्तेः  
 नाह दोषस्यायं महिमा यत् पक्षं नाक्रामति, तस्मादङ्कुर-  
 स्फुरणदशायां निश्चितव्याप्तिकेन हेतुना तत्र माध्यमिद्धेर-  
 प्रत्यूहत्वात् क सन्दिग्धानैकान्तिकता तदस्फुरणदशायां  
 सुतरामिति संक्षेपः ॥ १६ ॥

वि० त्वानुमाने पक्षतावच्छेदकं किम्, न तावत् चित्तित्वं परमाण्वात्मक-  
 च्छितावंशतो बाधस्वरूपासिद्धोः प्रसङ्गात् तत्सामानाधिकर-  
 ष्येण पक्षत्वमितिचेन्न घटादौ सिद्धसाधनात् जन्यत्वस्य विशेष-  
 णत्वे पक्षतावच्छेदकघटकस्य हेतुत्वेन उपनयासम्भवात् उद्देश्यता-  
 वच्छेदकविधेययोरैक्यादितिचेन्न स्वरूपसम्बन्धरूपं पदार्थान्तर-  
 रूपं वा कार्यत्वं पक्षतावच्छेदकं प्रागभावप्रतियोगित्वरूपं कार्य-  
 त्वञ्च हेतुः सकर्तृकत्वञ्च खोपादानगोचरापत्तेरज्ञानचिकीर्षा-  
 कृतिमञ्जन्यत्वं ध्वंसे बाधादिवारणाय कार्यत्वद्वये सामानाधिक-  
 रण्यसम्बन्धेन सत्तावैशिष्ट्यं निवेशनीयमिति संक्षेपः ॥ १६ ॥

सू० निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥ २० ॥  
तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात् कर्मणः ॥ २१ ॥

उ० एवं सूत्राभ्यामीश्वरप्रकरणं समाप्त्याकाशप्रकरणमा-  
रिप्तमान आह ।

इतिशब्दः प्रकारार्थः उत्क्षेपणादीन्यपि कर्माणि  
मंग्रह्णाति स्पर्शवद्द्रव्यसञ्चारो निष्क्रमणं प्रवेशनञ्च तद-  
कार्यस्याकाशस्य लिङ्गमिति साह्याः ॥ २० ॥

तदेतद्दूषयितुमाह ।

निष्क्रमणप्रवेशनादिकर्म न तावत् मयाऽऽपि गण-  
तया आकाशमनुमापयति कर्मण एकद्रव्यत्वात् एकमात्र-  
मूर्त्तममवायिकारणकत्वात् न कर्मापि व्यासज्यवृत्तौद्युक्तं  
न वाऽमूर्त्तवृत्तीति ॥ २१ ॥

वि० आकाशं निरूपयितुमाह ।

अत्र प्रकारार्थकेतिशब्देनोत्क्षेपणादेरपि यद्द्वयं स्पर्शवतां  
सञ्चारो (निष्क्रमणं प्रवेशनञ्च शून्यात्मकाकाशं विनाऽनुपपद्यमान-  
माकाशनामकं द्रव्यान्तरमनुमापयतीति सांख्यमतम् ॥ २० ॥

तदेतन्मतं निरस्यति ।

तत् निष्क्रमणादिकम् अलिङ्गं आकाशस्य लिङ्गं न भवति  
कर्मणः क्रियाया एकं मूर्त्तं द्रव्यमाश्रयोयस्य तत्त्वात् तथाच मूर्त्त-  
मात्रसमवेतं कर्म न समवायितयाकाशानुमानसमर्थं समवेत-  
कार्यं हि समवायिकारणमाक्षिपति न चाकाशकर्मणोः सम-  
वायिसमवेतभाव इत्यर्थः ॥ २१ ॥

ख० कारणान्तरानुकृतिवैधर्म्याच्च ॥ २२ ॥

उ० ननु चाममवायिकारणतयैवकाशमनुमापयिष्यति नि-  
ष्क्रमणप्रवेशनादीत्यत आह ।

अनुकृतिर्लक्षणम् अनुकल्प्यते जायतेऽनेनेति कल्पत्या,  
कारणान्तरस्य अममवायिकारणस्य चाऽनुकृतिर्लक्षणं तद्-  
वैधर्म्यादित्यर्थः । इत्यन्तावदममवायिकारणं न भवत्येव  
अममवायिकारणता च कारणैकार्थप्रत्यासत्त्या कार्थैकार्थ-  
प्रत्यासत्त्या च, प्रथमा तत्तुरूपानां पटरूपं प्रति, इय-  
ञ्चाममवायिकारणतां महतीति संज्ञां लभते गुह्यपति-  
पत्तिकत्वात्, द्वितीया च यथा आत्मजनःसंयोगस्य जा-  
नादिकं प्रति, इयञ्चाममवायिकारणता लभ्येति संज्ञां  
लभते लघुप्रतिपत्तिकत्वात्, आकाशस्य तु निष्क्रमणप्रवे-  
शनादौ कर्मणि न ममवायिकारणता नाप्यममवायिका-  
रणता तथाच न च कर्माकाशमत्वे लिङ्गमिति ॥ २२ ॥

वि० असमवायिकारणविधयाऽपि न गगनस्य गमकं कर्ममिहाह ।

अनुकृतिरिति क्वद्विहितो भाव इति न्यायात् अनुकृतं वादि-  
प्रतिवाद्यभयसम्मतं यत् कारणान्तरम् असमवायिकारणं गुणः  
कर्म च तद्वैधर्म्यात् द्रव्यत्वरूपतद्वैधर्म्यस्याकाशे सत्त्वात् नास-  
मवायिकारणतयाकाशमनुमापयितुं निष्क्रमणादिकं शक्नोती-  
त्यर्थः ॥ २२ ॥

सू० संयोगाद्भावः कर्मणः ॥ २३ ॥

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणा दृष्टः ॥ २४ ॥

उ० ननु निमित्तकारणमस्तु कर्मण्यकाशम्, दृश्यते ह्या-  
काशे पक्षिकाण्डादीनां सञ्चरणमत आह ।

मूर्त्तसंयोगेन कर्मकारणस्य वेगगुरुत्वादेः प्रतिबन्धात्  
कर्मणोऽभावाऽनुत्पादो न त्वाकाशाभावात् तस्य व्यापक-  
त्वात्, तस्मादाकाशान्वयोऽन्यथाभिद्ध एव नाकाशनिमि-  
त्ततां साधयतीत्यर्थः ॥ २३ ॥

एवं माह्वमते दूषिते शब्दमाकाशे लिङ्गमुपपादयि-  
ष्यन् परिशेषानुमानाय षोडशारचयन्नाह ।

प्रथिव्यादिलक्षणे कार्यं ये विशेषगुणा रूपादयस्ते  
कारणगुणपूर्वका दृष्टाः शब्दोऽपि विशेषगुणः जाति-  
मत्त्वे मति वाह्यैकेन्द्रियमात्रया ह्यत्वात् रूपादिवत् तथाच

वि० निमित्तकारणतयाऽपि नाकाशानुमापकं कर्मत्वाह ।

यतः संयोगात् संयोगानन्तरं कर्मणोऽभावः अनुत्पादः अत-  
स्याकाशं न कर्मणि निमित्तकारणमित्यर्थः । अयं भावः फल-  
पत्रादीनां भूम्यादिसंयोगानन्तरं कर्मानुत्पत्तिदर्शनात् संयोग-  
विशेषाभावादिकमेव कर्मणि निमित्तकारणं न त्वाकाशं तद्वति-  
रेकेण कर्मव्यतिरेकस्यासिद्धेस्तस्य व्यापकत्वादितिभावः ॥ २३ ॥

शब्द एनाकाशानुमापक इत्यभिधातुं भूमिकामारचयति ।

कार्यस्य यो विशेषगुणः स कारणगुणपूर्वक एव दृष्ट  
यथा घटरूपादिः कपालरूपादिपूर्वकः, तथाच शब्दरूपो

सू० कार्यान्तरात्प्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः  
॥ २५ ॥

उ० तादृशं कार्यं नोपलभ्यते यत्र कारणगुणपूर्वकः शब्दः  
स्यादित्यर्थः ॥ २४ ॥

ननु वीणावेणुमृदङ्गशङ्खपटहादौ कार्यं शब्द उपलभ्यते  
तथाच तत्कारणगुणपूर्वकः स्यादत आह ।

भवेदेवं यथा तन्तुकपालादिषु रूपरमाद्यनुभूयते  
तत्सजातीयञ्च रूपरमाद्यन्तरं पटघटादावुपलभ्यते तथा  
वीणावेणुमृदङ्गाद्यवयवेषु यः शब्द उपलभ्यस्तत्सजाती-  
यश्चेत् वीणावेणुमृदङ्गाद्यवयवित्यनुपलभ्यते नचैवम्, प्रत्युत  
निःशब्दैरेवावयवैर्वीणाद्यारम्भदर्शनात् नोरूपैस्तु तन्तुकपा-

वि० या विशेषगुणः आत्रेन्द्रियेणोपलभ्यते तस्य कारणगुणपूर्वकत्वा-  
भावात् न कार्यगुणत्वं किन्तु नित्यद्रव्यस्यैव गुणःशब्द इतिश-  
ब्दाधारतया नित्यद्रव्यसिद्धिरित्यर्थः ॥ २४ ॥

ननु भेरीमृदङ्गादावैव कार्यं शब्द उपलभ्यते तथाच तुस्य  
कारणगुणपूर्वकत्वमप्यनायच्याऽङ्गीकार्यमिति सर्वमेतदाकुलमि-  
त्यत आह ।

शब्दो न भेरीदीनां कार्याणां स्पर्शवतां गुणः कुतः कार्यान्तरस्य  
स्वावयवकार्यसजातीयस्य शब्दरूपकार्यान्तरस्य अप्रादुर्भावात्  
अननुभवात् अर्थात् भेरीदी, अयं भावः यथा भेरीदी रूपादद्या  
विशेषगुणाः स्वावयवरूपादिसजाताया अननुभूयन्ते तथा स्वावय-  
वशब्दसजातीयः शब्दो भेरीदी नोपलभ्यते निःशब्दैरपि भेरी-  
द्यवयवैर्भेरीद्यारम्भात् तथाच शब्दस्याकारणगुणपूर्वकत्वमव



सू० परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः ॥ २६ ॥

उ० लादिभिः पटघटाद्यारम्भस्यादर्शनात् किञ्च यदि शब्दः स्पर्शवतां विशेषगुणः स्यात् तदा तत्र-तार तारतर-मन्द-मन्दतरादिभावा नानुभूयेत नञ्चैकात्रयव्याश्रिता रूपा-दयो वैचित्र्येणानुभूयन्ते तस्मान्न सर्गादिशेषगुणः शब्दः ॥ २५ ॥

नन्वात्मगुणो मनोगुणो वा शब्दो भविष्यतीत्यत आह ।

शब्दो यद्यात्मगुणः स्यात् तदाऽहं सुखी चते जाने इच्छामीत्यादिवत् अहं पूर्णं अहं वाद्ये अहं शब्दवा-नित्यादि धीः स्यात् न त्वेषमास्ति, किन्तु शब्दः पूर्यते, वीणा वाद्यते इति प्रतीयन्ति लौकिकाः । किञ्च शब्दो नात्म-गुणः वाह्येन्द्रियग्राह्यत्वात् रूपादिवत्, अपि च शब्दो

त्रि० श्यमङ्गीकार्थम् एवञ्च शब्दो न स्पर्शवद्विशेषगुणः च प कजत्वे सति अकारणगुणपूर्वकप्रत्यक्षत्वादित्यनुमानेन शब्दस्य स्पर्शवद्विशेष-गुणत्वाभावः सिध्यति पाकजरूपादौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तं कपालादिरूपादिजन्ये घटादिरूपादौ व्यभिचारवारणायऽका-रणगुणपूर्वकेति जलादिपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवारणाय प्रत्यक्षेति अवयवविपाकानङ्गीकारेण सत्यन्तं न देयम् ॥ २५ ॥

इदानीं शब्दस्यात्मगुणत्वं मनोगुणत्वञ्च निराकरोति ।

परत्र व्यात्मभिन्ने समवायात् शब्दो नात्मगुणः शब्दो यद्यात्मगुणः स्यात् तदाऽहं सुखीत्यादिवदहं शब्दवानिति लौकिकमानसप्रत्यक्षं

सू० परिशेषास्त्रिंशत्तमाकाशस्य ॥ २७ ॥

उ० यद्यात्मयोग्यविशेषगुणः स्यादधिरेणाप्युपलभ्येत दुःखादि-  
वत् तस्मात् सुहृत्त्वं परत्र संभवाद्यादिति, अमनोगुणत्वे  
हेतुमाह प्रत्यक्षत्वादिति नात्ममनमोर्गुण इति समासे  
कर्त्तव्ये यदसमासकरणं तेन तुल्यन्यायतया प्रत्यक्षत्वादि-  
त्यनेनैव हेतुना दिक्कालयोरपि गुणत्वं शब्दस्य प्रति-  
षिद्धमिति सूचितम् ॥ २६ ॥

यदर्थमयं परिशेषस्तदाह ।

शब्द इति श्रेष्ठः । अत्रापि शब्दः क्वचिदाश्रितो गुण-  
त्वात् रूपादिवदिति सामान्यतोदृष्टाददृष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्य-  
मिद्धः । गुणश्चायं वाच्यैर्कोन्द्रियग्राह्यजातीयत्वात् रूपादि-  
वत् अनित्यत्वे सति विभुमभवेतत्वात् ज्ञानादिवत् अनि-

वि० स्यात् नतु शब्दस्य आवगणप्रत्यक्षम्, अस्ति ह्यनुभवः सर्वेषां, शब्दं  
श्रुणोमीति, मनःपदं दिक्कालयोरप्युपलक्षकं तथाच शब्दे न  
दिक्कालमनसां गुणः प्रत्यक्षत्वात् रूपादिवदिति व्यतिरेकं  
कालपरिमाणादिवदित्यनुमानप्रकारः ॥ २६ ॥

इदानीमुपसंहरति ।

शब्दः क्वचिदाश्रितो गुणत्वात् रूपादिवदिति सामान्यानु-  
मानेन विशेषबाधसहकृतेनाऽदृष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वं शब्दस्य  
सिध्यतीति भावः, गुणत्वञ्च तस्य प्रत्यक्षसिद्धं नच वाय्ववयवेषु  
रूपशब्दक्रमेण कारणगुणपूर्वक एव वायौ शब्दः स्वीकार्य इति  
वाच्यं शब्दे न वायुविशेषगुणः अथावद्-द्रव्यभावितात् सुखा-

सू० द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ २८ ॥  
तत्त्वभावेन ॥ २९ ॥

उ० तालञ्च साधयिष्यते । परिशेषमिदुस्य द्रव्यस्यावयवकल्प-  
नायां प्रमाणाभावान्नित्यत्वं सर्वत्र शब्दोपलब्धेर्विभुत्वम्  
॥ २७ ॥

शब्दलिङ्गस्य द्रव्यस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे अतिदेशेन साध-  
यन्नाह ।

अद्रव्यवत्त्वाद्यथा वायोर्नित्यत्वं तथाकाशस्यापि, गुणव-  
त्त्वाद् यथा वायोर्द्रव्यत्वं तथाकाशस्यापीत्यर्थः ॥ २८ ॥

तत् किं बहून्याकाशानि एकमेव वेत्यत आह ।

व्याख्यातमिति विपरिणतेनान्वयः । भावः सत्ता सा  
यथैका तथाकाशमध्येकमेवेत्यर्थः ॥ २९ ॥

वि० दिवत् व्यतिरेके वायवीयस्पर्शवदित्यनुमानेन वायुविशेषगुण-  
भिन्नत्वसिद्धेः अथावद्द्रव्यभावित्वञ्च स्वाश्रयनाश्रयन्यनाश्रपति-  
योगि यद्यत् तदन्यत्वमिति संक्षेपः ॥ २७ ॥

शब्दाश्रयस्य नित्यत्वं द्रव्यत्वञ्चातिदेशेन साधयति ।

यथा वायुपरमाणोरद्रव्यवत्त्वेन नित्यत्वं गुणवत्त्वेन च द्रव्यत्वं  
तथाकाशस्यापीत्यर्थः ॥ २८ ॥

गगनस्य नानात्वं निराकरोति ।

तत्त्वं तद्व्यक्तित्वम् एकव्यक्तित्वमिति यावत्, भावेन सत्तया व्या-  
ख्यातमिति विपरिणतेनान्वयः सत्ताया यथैकत्वं तथाकाशस्या-  
पीत्यर्थः ॥ २९ ॥

सू० शब्दलिङ्गाविशेषादिशेषलिङ्गाभावाच्च ॥ ३० ॥

उ० \*नन्वुनगतप्रत्यय-महिम्ना सत्ताया एकत्वं सिद्धम् आ-  
काशे कथमेकत्वं तद्दृष्टान्तेन भेत्यतीत्यत आह ।

तत्त्वमाकाशस्य सिद्धमित्यर्थः वैभवे सति\*सर्वेषां शब्दा-  
नां तदेकाग्रयतयैवोपपत्तावाश्रयान्तरकल्पनायां कल्पना-  
गौरवप्रसङ्गः अन्यदपि यदाकाशं कल्पनीयं तत्रापि शब्द  
एव लिङ्गं तच्चाविशिष्टं नच विशेषसाधकं भेदसाधकं  
लिङ्गान्तरमस्ति, आत्मनां यद्यपि ज्ञानादिकंमविशिष्टमेव  
लिङ्गं तथापि व्यवस्थातो लिङ्गान्तरादात्मनानात्वसिद्धि-  
रिति वक्ष्यते ॥ ३० ॥

नन्वाकाशस्य एकत्वं तावदस्तु, वैभवात्\*परममहत्त्व-  
मयस्तु, शब्दाममवायिकारणत्वात् मंथोगविभागावपि स्था-  
ताम् एकपृथक्त्वं कथमत आह ।

वि० ननु सदित्यनुगतप्रतीतिबलादस्तु सत्ताया एकत्वम् आकाशस्य  
तु तत् कथमित्यत आह ।

आकाशस्य तत्त्वमिति पूर्वैर्गान्वयः यथा कुत्रचिदात्मनि कदा-  
चित् सुखरूपमेव कार्यं जायते तदैवान्यस्मिन्नात्मनि दुःख-  
रूपमेव कार्यं जायते इत्यात्मकार्ययोः सुखदुःखयोर्वैलक्षण्या-  
दात्मनानात्वं तथाकाशे शब्दरूपलिङ्गस्य न कश्चिद्विशेषो येना-  
काशनानात्वं सिद्ध्यति न वाकाशनानात्वसाधकं लिङ्गान्तरमस्ति  
तथाच प्रमाणाभावात् लाघवाच्चाकाशस्य न नानात्वं किन्त्वेक-  
व्यक्तित्वमित्यर्थः ॥ ३० ॥

एकपृथक्त्वमप्याकाशस्यैकत्वनिबन्धनमेवेत्याह ।

सू० तदनुविधानादेकपृथक्त्वञ्चेति ॥ ३१ ॥

उ० नियमेनैकपृथक्त्वमेकत्वमनुविधत्ते इत्येकपृथक्त्वमिद्धिः,  
इति आह्निकपरिसमाप्तिरानुविधानाविषयविशेषगुण-  
वद्द्रव्यलक्षणमाह्निकार्थः । तेन पृथिव्यग्नेजावाय्वाका-  
शानां प्रसङ्गत ईश्वरात्मनश्च लक्षणमस्मिन्नाह्निके तेन  
चतुर्दशगुणवती पृथिवी ते च गुणा रूपरसगन्धस्पर्श-  
मह्योपरिमाणपृथक्त्वमयोगविभागपरत्वापरतगुरुत्वाप्रतल-  
संस्काराः । तावन्त एव गन्धमपास्य स्नेहेन महाऽपाम् ।  
एत एव रसगन्धस्नेहगुरुत्वान्यपास्य तेजसः । गन्धरसरूप-  
गुरुत्वस्नेहद्रवत्वान्यपास्य वायोः । शब्देन सह मह्यादिपञ्च-  
गुणवत्वमाकाशस्य । मह्यादिपञ्चकमात्रं दिक्कालयोः ।  
परत्वापरत्ववेगमहितं मह्यादिपञ्चकं मनसः । मह्यादि-  
पञ्चकं ज्ञानेच्छाप्रयत्नाश्वरस्य ॥ ३१ ॥

इति श्रीशङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्तारे द्वितीयाध्याय-  
स्याद्यमाह्निकम् ॥ \* ॥

वि० आकाशस्येत्यादि यत्र यत्र एकत्वं तत्रैकपृथक्त्वमिति व्याप्ते-  
राकाशस्यैकत्वेनैव एकपृथक्त्वमिद्धिरिति, सूत्रे इतीत्याह्निक-  
समाप्तिश्चापनार्थम् । भावनावदवृत्तिविशेषगुणवद्द्रव्यलक्षणमेत-  
दाह्निकार्थः तादृशञ्च त्रयं भूतपञ्चकम् ईश्वरस्येति ॥ ३१ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कप्रदानन-कृतायां कणादसूत्रविवृते  
द्वितीयाध्यायस्याद्यमाह्निकम् ॥ \* ॥

सू० पुष्पवस्त्रयोः सति सन्निकर्षे गुणान्तराप्रादुर्भा-  
वो वस्त्रे गन्धाभाभलिङ्गम् ॥ १ ॥

उ० इदानीं भूतानां लक्षणानि गन्धादीनि परीचिच्छिपु  
र्गन्धादीनां स्वाभाविकत्वमौपाधिकत्वञ्च व्यवस्थापयन्नाह ।  
रूपरसगन्धस्पर्शा यत्र कारणगुणप्रक्रमेणोत्पद्यन्ते तत्र  
स्वाभाविकाः सन्तो लक्षणतामुपयन्ति नान्यथा नहि समी-  
रणे उपलभ्यमानं सौरभं शिलातले उपलभ्यमानं शैत्यं  
जले उपलभ्यमानमौष्ण्यं वा लक्षणं भवति तदेतदाह  
पुष्पवस्त्रयोरिति नहि कनककेतकीकुसुमसन्निकृष्टे वासमि  
कनककेतकीसौरभमुपलभ्यमानं वाससः । नहि वाससः  
कारणगुणप्रक्रमेण तदुत्पन्नम्, किन्तुर्हि कनककेतकीसन्नि-  
धानादौपाधिकं नहि वस्त्रे गन्धाभावे केतकीगन्धाभावे  
लिङ्गम् । किं लिङ्गमत उक्तं गुणान्तराप्रादुर्भाव इति

वि० ननु पृथिव्यादीनां गन्धवत्त्वादिकं लक्षणं पूर्वमुक्तं तत् कथं  
सङ्गच्छते सुरभिभागसंयुक्तवाय्वादेरपि गन्धापलब्धेस्तत्राति-  
थाप्तेरतो वाय्वादौ गन्धादिप्रतीतेरौपाधिकत्वं व्यवस्थापयति ।

गुणान्तरात् तदवयवगुणात् अप्रादुर्भावोऽनुत्पत्तिः गन्धा-  
भावस्य कुसुमीयविजातीयगन्धाभावस्य लिङ्गं हेतुः तथाच  
वस्त्रे उपलभ्यमानो विजातीयो विवादाध्यासितो गन्धो न वस्त्र-  
समवेतः स्वस्त्रावयवगन्धाजन्यगन्धत्वादसन्निकृष्टकुसुमादिगन्धव-  
दित्यनुमानादस्त्रे तादृशगन्धाभावसिद्धिरेवं वाय्वादावपि एवञ्च

सू० व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः ॥ २ ॥

उ० गुणान्तरात् कारणगुणात् अप्रादुर्भावोऽनुत्पत्तिः यदि हि वस्ते चो गन्ध उपलभ्यते स तस्य स्वाभाविकः स्यात्तदा तदवयवेषु तन्तुषु केतकीमन्निकर्षात् पूर्वं तत्र वस्ते चोपलभ्येत न चैवमित्यर्थः तथाच त्रिवादाध्यासितो गन्धो न वस्त्रसमवेतः तदवयवगुणाजन्यविशेषगुणत्वात् शीतोष्ण-स्यर्णादिवत् ॥ १ ॥

स्वाभाविकं गन्धं पृथिव्या लक्षणमाह ।

पृथिव्यां व्यवस्थितोऽयोगान्यद्योगाभ्यां परिच्छिन्नः समानासमानजातीयव्यावर्त्तकतया गन्धेलक्षणमित्यर्थः भवति हि पृथिवी गन्धवत्येव, पृथिव्येव गन्धवतीति, तदेवं समानजातीयेभ्यो जलाद्यष्टभ्योऽसमानजातीयेभ्यो गुणादिपञ्चभ्यो व्यावर्त्तकः स्वाभाविकः पृथिव्यां गन्ध इति व्यवस्थितम् ॥ २ ॥

वि० सुरभिर्वायुरित्यादिप्रतीतिः समवायेन सौरभादिप्रकारिका कुसुमाद्यौपाधिकी भ्रान्तिरेवेति न पृथिव्यादिलक्षणस्य वाय्वादावतिथ्याप्तिरितिभावः ॥ १ ॥

नन्वेवं सुरभि कुसुममित्यादिप्रतीतेरौपाधिकत्वं स्यादित्यत आह ।

व्यवस्थितः बाधकाभावादवधारितः तथाच बाधाभावान्न सुरभि कुसुममित्यादिप्रतीतेरौपाधिकत्वमितिभावः ॥ २ ॥

सू० एतेनोष्णता व्याख्याता ॥ ३ ॥

तेजस उष्णता ॥ ४ ॥

अपसु शीतता ॥ ५ ॥

उ० गन्धस्य स्वाभाविकत्वव्यवस्थापनप्रकारभूषणतायां तेजो-  
लक्षणेऽप्यतिदिशन्नाह ।

अवादि लक्षणे श्रैत्यादावप्ययमतिदेशो द्रष्टव्यः ॥ ३ ॥

तेजोलक्षणं परीक्षते ।

स्वाभाविक्युष्णता तेजोलक्षणमित्यर्थः रूपमपि शुक्ल-  
भास्वरमुपलक्ष्यते ॥ ४ ॥

अपां लक्षणं परीक्षते ।

स्वाभाविकी शीतता अपां लक्षणमित्यर्थः । तथाच  
शिलातलादवावतिव्याप्तिरितिभावः । शीततया  
रूपरमावप्युक्तलक्षणौ स्नेहं सांसिद्धिकद्रव्यत्वञ्चोपलक्ष-  
यति । ननु उद्देशलक्षणक्रमभङ्गः कुत इति चेन्न तेजः-

वि० पृथिवीलक्षणस्यैव उष्णस्पर्शवत्त्वरूपतेजोलक्षणस्यापि न ज-  
लादावतिव्याप्तिरित्याह ।

एतेन गन्धस्य लीयप्रकारेण उष्णतेति श्रैत्यादेरप्युपलक्षकम् ॥ ३ ॥

संक्षेपतस्तेजोलक्षणं जललक्षणञ्च सूत्रद्वयेन परीक्षते ।

तेजस एव उष्णता नान्येषामिति तेजोलक्षणस्य नातिव्याप्ति-  
रितिभावः ॥ ४ ॥

अपसु शीतता नान्यत्रेति न जललक्षणस्य शिलातलादावति-  
व्याप्तिस्तत्र श्रैत्यप्रतीतेरौपाधिकत्वादिति भावः । वायुलक्षणं  
विजातीयस्पर्शवत्त्वमप्युक्तदिशैव परीक्षणीयमिति सूत्रयितुमुद्दे-



सू० अपरस्मिन्नपरं युगपत् चिरं क्षिप्रमिति काल-  
लिङ्गानि ॥ ६ ॥

उ० स्पर्शस्य पृथिवीजलस्पर्शयोरभिभावकत्वसूचनाय, तथा-  
मध्ये तेजःपृरीक्षाया उक्तत्वात् वायुपरीक्षासूचनार्थं वा  
क्रमलङ्घनं तथाचापाकजानुष्णाशीतस्पर्शा वायोः स्वाभा-  
विकः सन् लक्षणमित्युन्नेयमिति तात्पर्यम् ॥ ५ ॥

तदेवं कारणगुणपूर्वकाः स्पर्शवतां विशेषगुणाः गन्धा-  
दयः पृथिव्यादीनां लक्षणानीत्युक्तम् इदानीं क्रमप्राप्तं  
काललक्षणप्रकरणमारभमान आह ।

द्वन्द्विकारो ज्ञानप्रकारपरः प्रत्येकमभिसम्बध्यते तथा-  
चापरमितिप्रत्ययो युगपदितिप्रत्ययः चिरमितिप्रत्ययः  
क्षिप्रमितिप्रत्ययः काललिङ्गानीत्यर्थः । अपरस्मिन्नपर-  
मित्यनेन परस्मिन् परमित्यपि द्रष्टव्यं तेनायमर्थः वज्रतर-  
तपनपरिस्फन्दान्तरितजन्मनि स्थविरे युवानमवधिं कृत्वा  
परत्वमुत्पद्यते तच्च परत्वमसमवायिकारणसापेक्षम्, न च

वि० शक्रमः परित्यक्तः । यत्तूपस्कारकारैस्तेजःस्पर्शस्य पृथिवीजल-  
स्पर्शाभिभावकत्वसूचनाय क्रमलङ्घनमित्युक्तं तन्न मनोरमं सुवर्णे  
चन्द्रकिरणादौ च पृथिवीजलस्पर्शयोस्तेजःस्पर्शाभिभावकत्वस्य  
सर्वसिद्धत्वात् ॥ ५ ॥

काललक्षणमभिधातुमाह ।

इतीत्यनन्तरं ज्ञानानीति पृरणीयं तथाच स्थविरमपेक्ष्य युवा-  
ऽपरः, युगपदुत्पद्यन्ते, चिरं जीवति व्यासः, क्षिप्रं गच्छति वायु-  
रिति ज्ञानानि कालसाधकानि स्थविरोत्पत्त्यधिकरणस्यपरि-

रूपद्वयसमवायिकारणं व्यभिचारात् चयाणीं गन्धादीनां  
 वायौ परत्वानुत्पादकेवात् स्पर्शस्याप्युष्णादिभेदेन भिन्नस्य  
 प्रत्येकं व्यभिचारात् न चावच्छिन्नपरिमाणं तथा तस्य  
 विजातीयानारम्भकत्वात् तपनपरिस्पन्दावाच्च व्यधिकर-  
 णत्वात् तदवच्छिन्नद्रव्यसंयोग एवासमवायिकारणं परि-  
 श्रियते तच्च द्रव्यं पिण्डमार्त्तण्डोभयसंयुक्तं विभु स्यात्  
 आकाशस्य तत्स्वाभाव्यकल्पने क्वचिदपि भेर्यभिघातात्  
 सर्वभेरीषु शब्देत्यत्तिप्रसङ्गः तथाच कालस्यैव मार्त्तण्ड-  
 संयुक्तस्य पिण्डेन संयोगः परत्वासमवायिकारणं काल  
 एव मार्त्तण्डक्रियोपनायकः आत्मनश्च द्रव्यान्तरधर्मेषु  
 द्रव्यान्तरावच्छेदाय स्वप्रत्यासत्त्यतिरिक्तसन्निकर्षापेक्षत्वात्  
 अन्यथा वाषाणसीस्थेन महारजनारुणिन्ना पाटलिपुत्रेऽपि  
 स्फटिकमणेरारुण्यप्रसङ्गात् । कालस्य तु तत्स्वभावतयैव  
 कल्पनादयमदोषः । कालेनापि रागसंक्रमः कथं नेतिचेत्

वि० स्पन्दानन्तरजातत्वज्ञानात् यूनि अपरत्वं जायते ततस्तज्ज्ञानं  
 जायते तत्रापरत्वकार्यं किमसमवायिकारणं न तावद्रूपरसगन्धा-  
 नामन्यतमं तद्भ्रुवितुमर्हति वायौ तदनुत्तिप्रसङ्गात् नापि स्पर्शः  
 पाकजस्पर्शात्तत्तिदशायामपरत्वानुत्तिप्रसङ्गात् स्पर्शवैजात्ये-  
 नापरत्वादिवैजात्यप्रसङ्गाच्च । नाप्यपकृष्टपरिमाणं परिमाणस्य  
 विजातीयगुणानारम्भकत्वात् नापि तपनपरिस्पन्दो व्यधि-  
 करणत्वात् किन्तु पिण्डमार्त्तण्डोभयसंयुक्तकिञ्चिद्भिभुद्रव्यसंयोग  
 एवापरत्वादिकार्यं ऽसमवायिकारणम्, तदृशस्वभावत्वं न  
 गगनादेः, कस्मिंश्चिन्मृदङ्गादावभिघातात् यावन्मदङ्गेषु शब्देत्-

## सू० द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ ७ ॥

उ० नियतक्रियोपनायकत्वेनैव तस्मिद्धः एवं स्वविरमवधिं कृत्वा यून्यि अपरलोत्पत्तिर्निरूपणीया । युगपदिति युगपज्जायन्ते युगपत्तिष्ठन्ति युगपत् कुर्वन्ति इत्यादि-प्रत्ययानाम् एकस्मिन् काले एकस्यां सूर्यगतौ एकस्मिन् सूर्यगत्यवच्छिन्नकाले इत्यर्थः, न चाप्राप्ता एव सूर्यगतये, विशेषणतामनुभजन्ति न च स्वरूपप्रत्यासन्ना एव ताः, तस्मादेतादृशविशिष्टप्रत्ययान्यथानुपपत्त्या विशेषणप्रापकं यद् द्रव्यं स कालः ॥ ६ ॥

ननु सिध्यतु कालः, स तु नित्यो द्रव्यं वेति न प्रमाणमत आह ।

यथा वायुपरमाणो गुणवत्त्वाद्द्रव्यत्वम् अद्रव्यद्रव्यत्वाच्च नित्यत्वं तथा कालस्यापीत्यर्थः ॥ ७ ॥

वि० पत्तिप्रसङ्गः किन्तु तादृशस्वभावतया सिद्धं कालनामकं द्रव्यमेवेत्यपरत्वबुद्धिः कालसाधिका । इदमुपलक्षणं परमिति बुद्धिरपि तथेति मन्तव्यं युगपदिति एकस्यां सूरक्रियायां घटादावेकत्वेकपृथक्त्वादय उतयन्ते इत्यत्र सूरक्रियाया घटैकत्वाद्याधारत्वं प्रतीयते तच्च न साक्षात्-सम्बन्धेन बाधितत्वात् किन्तु स्वाश्रयसंयुक्तकालसंयोगितपनाश्रितत्वसम्बन्धेनेति तत्सम्बन्धघटकतया कालसिद्धिः उत्पत्तिरूपधत्वर्थस्याधारत्वभानेऽपि स्वाश्रयस्थाने स्वाश्रयाश्रयेति वक्तव्यम् एवं चिरं क्षिप्रमित्यादावप्युन्वेयम् ॥ ६ ॥

कालस्य नित्यत्वं द्रव्यत्वञ्च साधयितुमाह ।

वायुपरमाणोरिव कालस्यापि गुणाश्रयत्वाद्द्रव्यत्वं निरवयवत्वाद्भित्यत्वमित्यर्थः ॥ ७ ॥

सू० तत्त्वभावेन ॥ ८ ॥

उ० तथापि सन्तु बहवः काला इत्यत आह ।

व्याख्यातमिति विपरिणतैरान्वयः । चिरादिप्रत्य-  
यानां काललिङ्गानां सर्वत्राविशेषादनेकलिङ्ग्यात्मनामिव  
विशेषलिङ्गाभावात् सत्तावदेकत्वं कालस्येत्यर्थः । नन्वेवं  
क्षणवमङ्गलत्तयामदिवसाहोरात्रपक्षमासर्त्यनसम्भ्रमरा-  
दिभेदेन भूयांसः कालास्तत् कथमेक इति चेन्न भेदभा-  
नस्य उपाधिनिबन्धनत्वात् यथा एक एकस्यटिकमणि-  
र्ज्ज्वातापिञ्जाद्गुपाशुपरागेण भिन्न इव भासते तथैक एव  
कालः सूर्यस्यन्दाद्यवच्छेदभेदेन तत्तत्कार्यावच्छेदभेदेन  
च भिन्न इव भासते इत्यभ्युपगमात् तथाच कालोपाध्य-  
व्यापकः कालोपाधिः, स्वाधेयकादाचित्काभावप्रति-  
योग्यनाधारः कालो वा क्षणः प्रतिक्षणं कस्यचिदुत्पत्तेः  
कस्यचिद्विनाशादेतदध्यवसेयम् । क्षणद्वयञ्च लव इत्याद्या-  
गमप्रसिद्धम् । ननु तथाप्यतीतानागतवर्तमानभेदेन का-  
लत्रयमस्तु श्रूयते हि “त्रैकाल्यमुपावर्तते” “त्रैकाल्या-  
सिद्धिः” इत्यादीति चेन्न वस्तुतत्प्रागभावतत्प्रध्वंसावच्छेदेन

वि० कालस्य नानात्वं निराकरोति ।

भावेन सत्तया तत्त्वं तद्वक्तित्वम् एकत्वमितियावत् व्याख्यातमिति  
वचनविपरिणामादन्वयः कालस्येति शेषः तथाच अणुगतबुद्ध्या-  
दितो साधवाच्च यथा सत्तया एकत्वं तथा कालस्यापीति समुदि-

सू० नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे काला-  
स्थिति ॥ ६ ॥

उ० त्रैकाल्यव्यवहारात् येन हि वस्तुना यः कालोऽवच्छिद्यते  
स तस्य वर्तमानः यत्प्रागभावेन यः कालोऽवच्छिद्यते  
स तस्य भविष्यत्कालः यत्प्रध्वंसेन यः कालोऽवच्छिद्यते  
स तस्यातीतकालः तथाचावच्छेदकत्रित्वाधीनः कालत्रि-  
त्वव्यवहारः ॥ ८ ॥

इदानीं सर्वोत्पत्तिमतां कालः कारणमित्याह ।

इतिशब्दे हेतौ इतिहेतोः कारणे सर्वोत्पत्तिमत्-  
कारणे काल इत्याख्या । हेतुमाह नित्येष्वभावात् अनि-  
त्येषु भावादिति नित्येषु आकाशादिषु युगपज्जातः  
चिरं जातः चिप्रं जातः इदानीं जातः दिवा जातः रात्रौ  
जात इत्यादिप्रत्ययस्याभावात् अनित्येषु घटपटादिषु

वि० तार्थः । क्षणक्षवमुच्छर्त्तयामादिव्यवहारस्य तत्तदुपाधिभेदेनैकेन  
कालेनैव सम्भवात् कालस्य न नानात्वमितिभावः ॥ ८ ॥

इदानीं कालस्य जन्यमात्रजनकत्वमाह ।

.. नित्येषु पद्ममाखादिषु अभावात् तदानीं जातः इदानीं जात  
इत्यादि प्रत्ययानामभावात् अनित्येषु क्षणकादिषु तादृशप्रत्ययानां  
सत्त्वात् कारणे अर्थादनित्यमात्रस्य कारणे कालाख्या काल-  
संज्ञा, तथाच कार्यमात्रं प्रति कालः कारणम् इदानीं घटो जात  
इत्यादि प्रत्ययानाम् एतत् काल प्रयोज्योत्पत्तिमत्त्वस्य घटादावव-  
गाहनात् नहि कारणत्वं विना कार्योत्पत्तिप्रयोजकत्वं सम्भ-  
वतीतिभावः इदमापाततः इदानीं घटो जात इत्यादि प्रत्ययेषु

उ० यौगपद्यादिप्रत्ययानां भावात् अन्वयव्यतिरेकाभ्यां कार-  
रणं\*\*कालु० इत्यर्थः न केवलं यौगपद्यादिप्रत्ययबलात्  
कालस्य सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारणत्वम् अपि तु पुष्पफला-  
दीनां हैमन्तिकवामन्तिकप्रावृषेणादिमंज्रांबलादेतदध्य-  
वसेयम् ॥ ८ ॥

वि० एतत् कालवृत्त्युत्पत्तिमन्त्वेव घटादौ भासते नतु एतत् काल-  
प्रयोज्योत्पत्तिमत्त्वं येन घटाद्युत्पत्तिप्रयोजकतया कालस्य घटा-  
दिकारणत्वं स्यात् न च कालिकसम्बन्धेन कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति  
तादात्म्यसम्बन्धेन कालस्य हेतुत्वानङ्गीकारे कार्याणां कालिक-  
सम्बन्धेन कालवृत्तित्वं न सम्भवति, अस्मन्मते तु कारणतावच्छेदक-  
सम्बन्धेन कारणाधिकरणानिरूपितकार्यतावच्छेदकसम्बन्धाव-  
च्छिन्नवृत्तितयां कार्यगतायां तादृशकार्यकारणभाव एव नि-  
यामक इतिवाच्यम्, तथा सति कार्यगतानां साक्षात्परम्प-  
रारूपनानासम्बन्धावच्छिन्नानादेशवृत्तित्वानां विलयप्रसङ्गात्  
नहि कार्यं येन येन सम्बन्धेन तिष्ठति तेन तेनैव कार्यकार-  
णभावोऽङ्गीकरणीयः तथा सति तद्दृग्दशनन्तरजातचैत्रादिघ-  
टितस्वाश्रयचैत्राद्याश्रयत्वादिसम्बन्धेन तद्दृग्ददेर्भूतलादिवृत्ति-  
त्वभङ्गप्रसङ्गात् तद्दृग्दत्त्युत्पत्तिदशायां चैत्रस्यानुत्पन्नत्वेन तादृश-  
परम्परासम्बन्धेन कार्यकारणभावस्य कल्पयितुमशक्यत्वात् एवं  
संयोगसम्बन्धेन घटादेर्भूतलादिवृत्तित्वमपि विलायेत उत्पत्तिद-  
शायां द्रव्यस्य गुणाभावेन संयोगेन कुत्राप्यसत्त्वात् संयोगसम्बन्धे  
कार्यतावच्छेदकसम्बन्धत्वस्य स्वीकर्तुमशक्यत्वाच्चेति संक्षेपः ।  
वस्तुतस्तु कालस्य कार्यमात्रकारणतायां “कालादुत्पद्यते सर्वम्”  
इत्याद्यागमा एव मानमिति विभावनीयम् ॥ ८ ॥

सू० इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् ॥ १० ॥

उ० काललिङ्गप्रकरणं समाप्य इदानीं दिग्लिङ्गप्रकरण-  
मारभमाण आह ।

दिश इदं दिश्यं दिगनुमापकम् इतोऽल्पतरसंयुक्त-  
संयोगाश्रयादिदं बह्वतरसंयुक्तसंयोगाधिकरणं परम् इतश्च  
संयुक्तसंयोगाभ्यस्त्वाधिकरणादिदं संयुक्तसंयोगाल्पीयस्त्वा-  
धिकरणमपरमिति नियतदिग्देशयोः समानकालयोः  
पिण्डयो र्यतो द्रव्याद्भवति सा दिगित्यर्थः । नहि तादृशं  
द्रव्यमन्तरेण भूयसां संयुक्तसंयोगानामल्पीयसां वा पि-  
ण्डयोरुपनायकमन्यदस्ति न च तदुपनयमन्तरेण तत्तद्वि-  
शिष्टबुद्धिः न च तामन्तरेण परत्वापरत्वयोरुत्पत्तिः न च  
तदुत्पत्तिं त्रिना तद्विशिष्टप्रत्ययव्यवहारौ । न च काल एव  
संयोगापनायकोऽस्तु किं द्रव्यान्तरेणेति वाच्यं कालस्य  
नियतक्रियापनायकत्वेनैव सिद्धेः, अनियतपरधर्मीपना-  
यकत्वकल्पनायान्तु काश्मीरकुङ्कुमपङ्करागं कार्णाटका-  
मिनीकुचकलसं प्रत्युपनयेत् आकाशात्मनोरपि तथा पर-  
धर्मीपसंक्रामकत्वे स एव प्रसङ्गः, दिशस्तु नियतपरधर्मी-

वि० इदानीं क्रमप्राप्तदिग्लिङ्गप्रकरणमारभते ।

इतइदमिति परमपरं वेतिशेषः तथाचास्मादिदं दूरम् अ-  
स्मादिदमन्तिकमिति दैशिकपरत्वापरत्वबुद्धिर्यतस्तद्दिश्यं दिग्-  
लिङ्गं तथा च कालवत् दैशिकपरत्वापरत्वासमवायिकागण-

उ० पसंक्रामकतयैव सिद्धत्वान्नातिप्रसङ्गः एवञ्च क्रियोपनाय-  
 कात्कालात् संयोगोपनायिका दिक् पृथगेव । किञ्चास्मात्  
 पूर्वमिदम् अस्माद्दक्षिणमिदम् अस्मात्पश्चिममिदम् अस्मा-  
 दुत्तरमिदम् अस्माद्दक्षिणपूर्वमिदम् अस्माद्दक्षिणपश्चि-  
 ममिदम् अस्मात्पश्चिमोत्तरमिदम् अस्मादुत्तरपूर्वमि-  
 दम् अस्मादधस्तादिदम् अस्मादुपरिष्ठादिदम् इत्येते  
 प्रत्यया इतद्दमितीत्यनेन संगृहीताः एतेषां प्रत्ययानां  
 निमित्तान्तरामभवात्, किञ्च नियतोपाधुन्नायकः कालः  
 अनियतोपाधुन्नायिका दिक्, भवति हि यदपेक्षया यो  
 वर्त्तमानः स तदपेक्षया वर्त्तमान एव, दिगुपाधो तु  
 नैवं नियमः यं प्रति या प्राची तं प्रत्येव कदाचित्तस्याः  
 प्रतीचीत्वात् एवमुदीच्यादिष्वपि वाच्यम्, यदपेक्षया सूर्या-  
 दयाचलमन्निहिता या दिक् सा तदपेक्षया प्राची यद-  
 पेक्षया सूर्यास्ताचलमन्निहिता या दिक् सा तदपेक्षया  
 प्रतीची, मन्निधानन्तु संयुक्तसंयोगान्पीयस्त्वं ते च सूर्य-  
 संयोगा अन्पीयांशो भूयांशो वा दिगुपनेयाः । एवं प्राच्य-

वि० संयोगाश्रयतया दिक् सिद्ध्यति, सा च एकापि उपाधिभेदात्  
 प्राच्यादिव्यवहारं सम्पादयति उपाधिश्च तदीयोदयगिरिसन्नि-  
 हिता या दिक् सा तदीयप्राची, तदीयोदयगिरिव्यवहिता तु  
 तदीयप्रतीची, तदीयसुमेरुसन्निहिता या दिक् सा तदीयोदीची,  
 एवं सुमेरुव्यवहिता अवाची, उदयगिरिसन्निहिता सुमेरु-  
 व्यवहिता आग्नेयी, सुमेरुव्यवहितोदयगिरिव्यवहिता च नैर्ऋती,



सू० द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ ११ ॥

तत्त्वभावेन ॥ १२ ॥

उ० भिमुखपुरुषवामप्रदेशावच्छिन्ना दिग्दीची, तादृशपुरुष-  
दक्षिणभागावच्छिन्ना दिक् दक्षिणा, वामत्वदक्षिणत्वे तु  
शरीरादयववृत्तिजातिविशेषौ । गुरुत्वासमवायिकारण-  
कक्रियाजन्यसंयोगाश्रयोदिक् अधः । अदृष्टवदात्मसंयोग-  
जन्याभिक्रियाजन्यसंयोगाश्रयोदिकूर्द्धा एवञ्चेन्द्राग्रियम-  
निर्द्धतदरुणवायुमोमेशाननागब्रह्माधिष्ठानोपलक्षिता दश  
दिश इति व्यपदेशान्तरं प्राच्यादिव्यपदेशात् ॥ १० ॥

दिशो द्रव्यत्वं नित्यत्वञ्च वायुपरमाणुवदित्याह ।

गुणवत्त्वाद्द्रव्यत्वम् अनाश्रितत्वाच्च नित्यत्वमित्यर्थः ॥ ११ ॥

एकत्वमतिदिशन्नाह ।

दिग्लिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च सत्त्वावदेकत्वं त-  
दनुविधानादेकपृथक्त्वम् ॥ १२ ॥

वि० सुमेरुसन्निहिता उदयगिरिव्यवहिता च वायवो, सुमेरुसन्नि-  
हिता उदयगिरिसन्निहिता च शैशानी, अदृष्टवदात्मसंयोग-  
जन्याभिक्रियाजन्यसंयोगाश्रयः ऊर्द्धम्, पतनजन्यसंयोगाश्रयः  
अधः । “सर्वेषामेव वर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थित” इत्यादिवचनात्,  
एवमेव मुक्तावलीकारः ॥ १० ॥

दिशि द्रव्यत्वं नित्यत्वञ्च कथयति ।

एतत्पूर्वं पूर्ववद्वाख्येयम् ॥ ११ ॥

पूर्व्यन्नानात्वं निराकरोति ।

एतस्यापि पूर्ववदेव व्याख्यानम् ॥ १२ ॥

सू० कार्यविशेषेण नानात्वम् ॥ १३ ॥

आदित्यसंयोगाद्भूतपूर्वाद्भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥ १४ ॥

उ० ननु यद्येकैव दिक् कथं तर्हि दश दिश इति प्रतीतिव्यवहारवित्यत आह ।

कार्यविशेषः कार्यभेदस्तेन नानालोपचार इत्यर्थः ॥

॥ १३ ॥

तमेव कार्यभेदं दर्शयन्नाह ।

प्राक् अस्यां मृत्विता अच्यतीति प्राची तथाच यस्यां दिशि मेरुप्रदक्षिणक्रमेण भ्रमत आदित्यस्य प्रथमं संयोगो भूतपूर्वा भविष्यन् वा भवन् वा सा दिक् प्राची अत्र पुरुषाभिमन्धिभेदमाश्रित्य कालत्रयोपवर्णनम्, भवति हि कस्याचित्पूर्वैद्युः प्रातरस्यां दिशि आदित्यसंयोगः प्रथमं

वि० दिश एकत्वेऽपि प्राच्यादित्यवहारमुपपादयति ।

कार्यविशेषेण जन्यमूर्त्तरूपोपाधिना नानात्वं प्राच्यादिनानाव्यवहारः, वस्तुत एकैव दिगित्यर्थः ॥ १३ ॥

कार्यविशेषं दर्शयति ।

आदित्यसंयोगादिति प्राथमिकादित्यादि, भूतपूर्वात् अतीतात्, भूतादिति आदिकर्मणि निष्ठाप्रत्ययः वर्त्तमानादित्यर्थः । प्रथममस्यामादित्योऽक्षतीति प्राची तथाच प्राथमिकादित्यसंयोगाधार एव प्राचीव्यवहारनियामकोपाधिः तादृशसंयोगज्ञानं च पूर्वैद्युरत्र प्रथममादित्यसंयोगो जात इत्याकारकमतोतसं-

सू० तथा दक्षिणा प्रतीची उदीची च\* ॥ १५ ॥

उ० वृत्त इतीयं प्राचीति प्राचीव्यवहारः कस्यचिदपरेद्यु-  
रक्षां आदित्यसंयोगः प्रथमं भावीत्यभिमन्थाय प्राची-  
व्यवहारः कस्यचिदिदानीं अक्षां आदित्यसंयोगे भव-  
न्सतीत्यभिमन्थाय प्राचीव्यवहारः भूतादिति आदिकर्मणि  
क्तप्रत्ययः तेनाभिमन्थेरनियमात् यदाप्यादित्यसंयोगो  
नास्ति रात्रौ मध्याह्नादौ वा तत्रापि प्राचीव्यवहारानु-  
गमः सिद्ध्यतीतिभावः ॥ १४ ॥

दिगन्तरव्यवहारेऽपीममेव प्रकारमतिदिशन्नाह ।

तद्वदेव दक्षिणदिग्वर्त्तिनगादिना सहादित्यसंयोगा-

वि० योगविषयकं कस्यचिद्भवहर्तुं भवति, कस्यचिच्च इदानीमत्रा-  
दित्यसंयोगः प्रथमं भवतीति वर्त्तमानविषयकम् कस्यचिच्चा-  
त्रादित्यसंयोगः अत्र प्रथमं भविष्यतीति भविष्यद्विषयकं भव-  
तीति ज्ञापनाय पक्षम्यन्तत्रयम्, तादृशसंयोगाधारतया ज्ञायमान  
उदयगिरिस्तत्सन्नहितत्वज्ञानात्प्राचीव्यवहार इति हृदयम्,  
इदन्ववधातयम् उदयगिरावुदयगिरिसन्नहिततात्त्वभावात् कथं  
प्राचीव्यवहारः न च व्यवधानराहित्यमेव सन्नहितत्वं तच्च तत्रा-  
बाधितमिति वाच्यं तथा सति उदयगिरेः स्वापेक्षया प्राचीत्वा-  
पत्तेरिति ॥ १४ ॥

प्रतीच्यादिव्यवहारेऽपीयमेव रीतिरित्याह ।

दक्षिणादिव्यवहारेऽपि तथा कश्चिदुपाधिमादाय निर्व्विह्य  
इत्यर्थः उपाधिस्तु इतद्दमित्यादिसूत्रयाख्यायां दृश्यः ॥ १५ ॥

\* उदीचीति चेत्यपि पाठः ।

सू० एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि ॥ १६ ॥

इतपूर्वाङ्गविद्यतो भूतादा दक्षिणाव्यवहारः एवं प्रती-  
च्युदीचोरपि व्यवहार उन्नेयः । वामत्वदक्षिणत्वे निरुक्ते  
एव ॥ १५ ॥

दिगन्तरालव्यवहारेऽपीममेव प्रकारमतिदिशन्नाह ।

उ० प्राचीदक्षिणयोर्दिशोर्लक्षणमाङ्गव्येण दक्षिणपूर्वा दि-  
गिति व्यवहारः एवं दक्षिणपश्चिमा पश्चिमोत्तरा उत्तर-  
पूर्व्वेत्युक्तम् एते चादित्यसंयोगा येन विभुना द्रव्येणो-  
पनीयन्ते सा दिगिति कणादरहस्ये व्युत्पादितं विस्तरतः  
॥ १६ ॥

चतुर्णां भूतानां रूपादीनि लक्षणानि कारणगुण-  
पूर्व्वकतया तात्त्विकानि अन्यथात्वापाधिकानीति व्यवस्थितं  
पूर्व्वमेव, विशेषगुणग्रहण्यविभुलिङ्गञ्चोक्तम् इदानीमाकाशस्य  
लिङ्गं शब्दः परीक्षणीयः सन्ति चात्र तात्त्विकाणां विप्रति-  
पत्तयः, केचिच्छब्दं द्रव्यमाचक्षते, केचिद्गुणम्, गुणत्वे सत्य-  
येके नित्यमाहुः अपरे त्वनित्यम्, अन्ये तु शब्देऽपि स्फोटाख्यं  
शब्दान्तरमाहुः । तदत्र परीक्षामारभमाणः परीक्षाप्रथ-  
माङ्गं संशयमेव तावत्संज्ञतः कारणतश्च व्यवस्थापयन्नाह ।

अनयेव रीत्या आग्नेयादिव्यवहार उपपादनीय इत्याह ।

वि० दिगन्तरालानीत्युपलक्षणम् ऊर्द्धमधश्चापि ज्ञेयम् ॥ १६ ॥

इदानीं शब्दं परीक्षित्तिष्ठः परीक्षाङ्गसंशयस्य कारणं निर्दि-  
शति ।

सू० सामान्यप्रत्यक्षादिशेषाप्रत्यक्षादिशेषस्मृतेश्च सं-  
शयः ॥ १७ ॥

उ० सामान्यप्रत्यक्षादिति सामान्यवतो धर्मिणः प्रत्यक्षात्  
ग्रहणात् मतुलोपात्, विशेषाप्रत्यक्षादिति विशेषस्य पर-  
स्यरथावर्त्तकस्य धर्मस्य वक्रकोटरादेः शिरःपाण्यादे-  
श्चाप्रत्यक्षादग्रहणात् विशेषस्मृतेः विशेषस्य कोटिद्वयस्य  
स्थाणुत्वं पुरुषत्वलक्षणस्य स्मरणात् स्मरणमपि ग्रहणपरं  
क्वचिदनुभूयमानधर्मयोरपि कोटित्वात् चकारादहृ-  
ष्टादेः संशयकारणस्य संग्रहः, असाधारणोधर्मोऽनध्ववसा-  
यात्मकज्ञानजनक इति नोक्तः, यद्वा असाधारणस्यापि  
व्यावृत्तिद्वारा कारणत्वं सपक्षविपक्षव्यावृत्तिः साधारण-  
धर्म एवेति नोक्तः, विप्रतिपत्तिरपि विरुद्धप्रतिपत्तिद्वयजन्यं  
वाक्यद्वयं शब्देनित्य इत्येकं शब्देऽनित्य इत्यपरं तदुभयं  
तदुभयजन्यञ्च ज्ञानद्वयमयुगपद्भावित्वात् सम्भूय न संश-  
यकमतस्तत्रशब्दादिरसाधारणः, सत्त्वप्रमेयत्वादिः साधा-  
रणो वा धर्मः संशयक इति पृथङ्ज्ञोक्ता समानतन्त्रे गौ-  
तमीयेऽनध्ववसायज्ञानस्थानभुपगमात् असाधारणोधर्मः

वि० सामान्यस्य साधारणधर्मस्य प्रत्यक्षात् ज्ञानात् विशेषस्य  
एककोटिस्थाप्यस्य अप्रत्यक्षात् अज्ञानात् विशेषस्य कोटिद्वयस्य  
स्मृतेर्ज्ञानात् संशयो भवतीति शेषः । तथाच संशयं प्रति साधा-  
रणधर्मज्ञानम् एककोटिस्थाप्यनिश्चयाभावः कोटिद्वयज्ञानञ्च

उ० संशयकारणत्वेनोक्तः विप्रतिपत्तेर्विरुद्धवाक्यद्वयस्यान्व-  
यव्यतिरेकशुलितया संशयकारणत्वमुक्तम्, न्यायभाष्ये च  
उपलभ्यमानत्वं यत् संशयकारणमुक्तं सदप्युपलभ्यते अमद-  
प्युपलभ्यते इति उपलभ्यमानमिदं सदसद्देभि यच्चानुप-  
लभ्यमानत्वं सदपि नोपलभ्यते मूलककीलकादि, अमदपि  
नोपलभ्यते गगनारविन्दादि, तथाच पञ्चविधः संशय इति  
तदेतत्सामान्यमेवेति सामान्यप्रत्यक्षादित्यनेनैव गतार्थम् ।  
न्यायवार्तिकेऽपि यत् कारणभेदेन संशये त्रित्वमुक्तं  
तदपि न सम्भवति व्यभिचारेण समानधर्मादीनां त्रयाणां  
कारणत्वस्यैवाम्भवात् नहि तृणारणिमणिजन्यवज्ज्ञौ  
वैजात्यवदत्रापि वैजात्यं कल्पनीयं संशयत्वावच्छिन्नकार्यं  
प्रति समानधर्मत्वेनैव कारणतायाः कल्पनात्, यच्च प्रधान-  
विधिकोऽटित्वप्रधाननिषेधकोऽटित्वादि वैजात्यमुक्तं तदननु-  
गतत्वान्नावच्छेदकं तथाच संशयो न त्रिविधो न वा पञ्च-  
विधः किन्त्वेकविध एव, प्रकारान्तरेण तु द्वैविध्यं सूत्ररुदेव  
स्पष्टयति । ननु जिज्ञासाजनकज्ञानं संशय इति न लक्ष-  
णम् अनध्यवसायेऽपि गतत्वात्, संस्काराजनकज्ञानं संशय  
इत्यपि निर्विकल्पकसाधारणं विशिष्टज्ञानत्वेन संशयस्यापि  
संस्कारजनकत्वात् । संशयत्वञ्च जातिरपि न लक्षणं धर्म्यशे

वि० हेतुरित्यर्थः, चकारात् न्यायसूत्रोक्तयोः असाधारणधर्मज्ञान-  
विप्रतिपत्तिवाक्यज्ञानयोः संयहः, साधारणादिधर्मज्ञानानां का-

## सू० दृष्टञ्च दृष्टवत् ॥ १८ ॥

उ० संशयत्वाभावेन तदंशे तज्जात्यभावात् जातेऽद्याव्याप्य-  
वृत्तित्वान्भुपगमात् इति चेत् एकस्मिन् धर्मिणि विरो-  
धिनानाप्रकारकं ज्ञानं संशय इति तन्नचणात् ॥ १७ ॥

द्विविधः संशयो वहिर्विषयकोऽन्तर्विषयकश्च वहि-  
र्विषयकोऽपि दृश्यमानधर्मिकोऽदृश्यमानधर्मिकश्च तत्र  
दृश्यमानधर्मिको यथा ऊर्ध्वत्वविशिष्टस्य धर्मिणो दर्शनात्  
अयं स्याणुः पुरुषो वेति, अदृश्यमानधर्मिको यथा अरण्ये  
झाटाद्यन्तरिते गोगवयादिपिण्डे विषाणमात्रदर्शनात्  
अयं गौर्गवयो वेति वस्तुतस्तत्रापि विषाणधर्मिक एव  
मन्देहो विषाणमिदं गोसम्बन्धि गवयसम्बन्धि वेति, त्रिवचा-  
मात्रात्तु द्वैविध्याभिधानम् । यत् सामान्यं संशयहेतुस्तद-  
नेकत्र दृष्टं संशयकम् एकत्र धर्मिणि वा दृष्टं संशयहेतु-  
रित्यत्र प्रथमां विधामाह ।

दृष्टमूर्द्ध्वं संशयहेतुः दृष्टवदिति वतिप्रत्ययः तेन

वि० र्यंतावच्छेदककौटौ कारणाद्यवहितोत्तरत्वस्य निवेशान्न व्यभि-  
चारः, कारणस्य त्रैविध्यात् संशयस्त्रिविध इतिभावः ॥ १७ ॥

कौटिहयसहचरितो धर्मः साधारणधर्मः स च क्वचिद्द-  
र्भिदये गृह्यमाणः संशयकः क्वचिच्चैकत्रैव धर्मिणीति, तत्राय-  
माह ।

यत्र पुरोवर्तिनि वस्तुनि दृष्टं अयं स्याणुः पुरुषो वेति संशय-  
कत्वं दृष्टं वस्तु, तत्र पूर्वं स्याणुपुरुषयोर्दृष्टं यदूर्ध्वत्वादिकं तदत्

सू० यथादृष्टमथथादृष्टत्वाच्च ॥ १६ ॥

उ० दृष्टाभ्यां स्थाणुपुरुषाभ्यां तुल्यं वक्तते पुरोवर्त्तिनि यदू-  
र्द्ध्वं तदृष्टं संशयहेतुरित्यर्थः ॥ १८ ॥

एकधर्मविषयं यदृष्टं तदुदाहरति ।

संशयहेतुरिति शेषः चकारः पूर्वोक्तसमुच्चयार्थः अथथा-  
दृष्टत्वाद्धेतोर्यथादृष्टमपि संशयकं यथा चैत्रो यथादृष्टः  
केशवान्, कालान्तरे अथथादृष्टः केशविनाक्ततोदृष्ट  
इत्यर्थः । क्रमेण तत्रैव चैत्रे वस्त्रावृतमस्तके दृष्टे सति भवति  
संशयश्चैत्रोऽयं सकेशो निष्केशो वेति, तत्र हि चैत्रत्वं समा-  
नोधर्माः संशयकः सचैकत्रैव दृष्ट इत्यभिन्न एव धर्मिणि  
दृष्टः संशयहेतुः ॥ १६ ॥

वि० तदाश्रयः तथाच धर्मिद्वये कोटिद्वयसहचरितत्वेन गृह्यमाणं  
यदूर्द्धत्वादिकं तज्ज्ञानादेव पूर्वोक्तः संशय इति भावः ॥ १८ ॥

एकत्र कोटिद्वयसहचरितं धर्मसाह ।

भवति हि प्रावृत्तशिरसि चैत्रे अयं केशवान् निष्केशो त्रित्या-  
दिसंशयः तत्कारणञ्च केशतदभावसहचरितचैत्रत्वज्ञानं तदुभय-  
साहचर्यज्ञानञ्च चैत्ररूपैकधर्म्यन्तर्भावैव चैत्रत्वे भवती-  
त्याह यथादृष्टमिति केशसहचरितत्वेन दृष्टमेव चैत्रत्वम् अथ-  
थादृष्टत्वात् केशाभावसहचरितत्वेन कदाचिद्दृष्टत्वात् संशय-  
प्रयोजकमिति शेषः केशनखादीनां शरीरावयवत्वाभावात् तद-  
पचये न पृथ्वंशरीरनाशः, यद्यपि बाल्यादिभेदेन चैत्रशरीरं  
नाना तथाप्यत्र चैत्रादिशरीरगतं तत्तद्भक्तित्वमेव साधारणा धर्म  
इति न किञ्चिदनुपपन्नम् ॥ १६ ॥



## सू० विद्याऽविद्यातश्च संशयः ॥ २० ॥

उ० उपलभ्यमानत्वं समानमेव धर्मं संशयकारुणमाह ।

आन्तरसंशयोद्धि विद्याऽविद्याभ्यां भवति यथा मौङ्ग-  
र्त्तिकः सम्यगादिश्रुति चन्द्रोपरागादि, असम्यगपि, तत्र स्व-  
ज्ञाने संशयोऽस्य जायते सम्यगादिष्टमसम्यग्वेति, यदा ज्ञा-  
हि क्वचिद्विद्या भवति क्वचिच्चाविद्या अप्रमा भवति । अत्र  
ज्ञायमानत्वात् सदिदमसद्वेति संशयो जायते, पुनः संश-  
यग्रहणमिहापि सामान्यप्रत्यक्षादेव संशयो नतु निमि-  
त्तान्तरादिति सूचनार्थं तथाच “समानानेकधर्मापपत्ते-  
र्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः  
संशयः” इति गौतमीये लक्षणे उपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थेत्यस्य  
पृथगेव संशयकारणत्वं कैश्चिदुक्तं तन्निरस्तम् ॥ २० ॥

वि० प्रामाण्यादिसंशयस्यापि साधारणधर्मज्ञानसहकृतस्यैव वि-  
षयसंशयकत्वमित्याह ।

अत्र घट्यास्तसिः विद्याऽविद्ययोः प्रमाभ्रमयो र्यः प्रमात्वभ्रम-  
त्वयोः संशयः, चकारात् विषयसंशयश्च सामान्यप्रत्यक्षादेव  
भवतीतिशेषः तथाच पर्वतो वङ्गिमान् ऋदोवङ्गिमानित्यादि-  
प्रमाभ्रमयो र्यः प्रमात्वभ्रमत्वसंशयः स ज्ञानत्वरूपसाधारणधर्म-  
ज्ञानाद्भवति एवं तादृशसंशयोत्तरं पर्वतो वङ्गिमान्वा ऋदोव-  
ङ्गिमान्नेत्यादिसंशयोऽपि ज्ञायमानत्वरूपसाधारणधर्मज्ञानादेव  
भवति, प्रमात्वादिसंशयश्चाऽऽह्यहीतप्रामाण्यविपरीतनिश्चयस्य  
संशयविरोधितया तद्विघटने उपयुज्यते नतु तन्मात्राद्विषयसंशय  
इति भावः ॥ २० ॥

सू० ओत्रग्रहणो योऽर्थः स शब्दः ॥ २१ ॥

उ० एवं लक्षणतः स्वरूपतश्च परीक्षाप्रथमाङ्गं संशयं व्युत्पाद्य इदानीं परीक्षाविषयं शब्दं धर्मिणं दर्शयन्नाह ।

ओत्रं ग्रहणं ग्रहकरणं यस्य स ओत्रग्रहणः, अर्थ इति धर्मीत्यर्थः तथाच शब्दवृत्तिधर्मेषु ओत्रयाह्येषु शब्दवृत्तारत्वादिगुणत्वमत्त्वादिषु नातिव्याप्तिः अर्थपदेन धर्मिपरेण जातिधर्मित्वम् अभिप्रेतम् अतः स्फोटनामा शब्दसमवेतः शब्दे नास्तीति सूचितम् । नन्वेकं पदम् एकं वाक्यमिति प्रतीतिबन्नादवश्यं स्फोटोऽङ्गीकर्तव्यः नहि बङ्गवर्णात्मके पदे बङ्गवर्णात्मके वा वाक्ये भवत्येकत्वप्रत्ययः, स्फोट इति चार्थस्फुटीकरणाधीना संज्ञा, वर्णानां प्रत्येकं तावदर्थप्रत्ययाजनकत्वमेव, मिलनन्त्वेकवक्त्रकाणामाशुतरविनाशिनामसम्भवीति स्फोटादेवार्थप्रत्ययः तज्ज्ञानमन्तरेणार्थस्फुटीभावाभावात्, स च स्फोटो यद्यपि पदभावेनावस्थितेषु सर्वेष्वेव वर्णेषु तथापि चरमवर्णे स्फुटीभवति । मैवं सङ्केतवद्वर्णत्वं पदत्वं तथाच सङ्केतबलादेव पदादर्थ-

वि० इदानीं शब्दं धर्मिणं लक्षणमुखेन व्यवस्थापयति ।

ओत्रेण गृह्यतेऽसौ अवयोन्द्रियजन्यलौकिकप्रत्यक्षविषय इत्यर्थः । शब्दत्वादेरपि तादृशत्वादर्थ इति जातिमानइति तदर्थस्तथाच अवयोन्द्रियजन्यलौकिकप्रत्यक्षविषयवृत्तिसगुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वमेव शब्दलक्षणं पर्यवसितम्, तेनाश्रुतशब्दे नाव्याप्तिर्नवा सत्त्वगुण-

सू० तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषु विशेषस्य उभयथा  
दृष्टत्वात् ॥ २२ ॥

उ० प्रतीतौ किं स्फोटेन वर्णानाम्बह्वनामथेकार्थप्रतिपाद-  
कत्वमेकं धर्म्ममभिप्रेत्य एकं पदमिति भाक्तो व्यवहारः  
एवं वाक्येऽपि, यदि वर्णातिरिक्तः पदात्मा कश्चित् प्रत्यक्ष-  
तो गृह्येत स्वीक्रियेतापि स्फोटः सोऽयं स्फोटवादसुच्छत्वा-  
दुपेक्षितः सूत्रकृता ॥ २१ ॥

तदेवं शब्दे धर्म्मिण्युपस्थिते गुणत्वे सत्येव तस्याकाशलि-  
ङ्गत्वम् अतो गुणत्वव्यवस्थापनाय त्रिकोटिकं संशयमुपपादय-  
न्नाह ।

शब्दे संशय इतिशेषः । शब्दे शब्दत्वं आत्रग्राह्यत्वं  
चापलभ्यते, तच्च तुल्यजातीयेषु त्रयोविंशतौ गुणेषु अर्था-  
न्तरभूतेषु द्रव्येषु कर्म्मसु च विशेषस्य व्यावृत्तेः उभयथा  
उभयत्र दर्शनात् शब्दः किं गुणोद्रव्यं कर्म्म वेति संशय-  
जनयति सामान्यविशेषसमवायकोटिकत्वन्तु सत्त्वकाणाव-  
त्त्वादिवैधर्म्म्यदर्शनान्न भवति, ननु चासाधारणधर्म्मस्याऽन-

वि० त्वादिकमादाय गुणान्तरेष्वतिव्याप्तिरित्यञ्च प्रत्यक्षसिद्धः शब्दो  
धर्म्मि न शक्योऽपलपितुमितिभावः ॥ २१ ॥

कोचित्तु सूक्ष्मः शब्दः, महाशब्द इत्यादिव्यवहाराद्द्रव्यमेव  
शब्द इत्याहुस्तन्मतं निराकर्त्तुमारभते ।

शब्दे गृह्यमाणस्य शब्दत्वादेर्विशेषस्य तुल्यजातीयेषु रूपा-  
दिषु त्रयोविंशतौ गुणेषु, अर्थान्तरेषु द्रव्येषु कर्म्मसु च उभयथा

सू० एकद्रव्यत्वात्तद्रव्यम् ॥ २३ ॥

उ० ध्वसायजनकत्वात् संशयजनकत्वं प्रतिषिद्धं शब्दत्वं आत्र-  
याह्यत्वञ्चासाधारण एव धर्मः कथं संशयं जनयिष्यतीति  
चेत्सत्यं व्यावृत्तिरस्य सजातीयसजातीयसाधारणीति  
व्यावृत्तेः साधारणस्यैव धर्मस्य संशयजनकत्वेनोक्तत्वात्  
शब्दत्वप्रतियोगिकी व्यावृत्तिः समानो धर्मः उभयगतव्या-  
वृत्तिप्रतियोगित्वञ्च शब्दत्वमसाधारणो धर्मः तदुक्तं वि-  
शेषस्योभयथा दर्शनादिति अत्र हि विशेषस्य व्यावृत्तेरु-  
भयत्र सजातीये विजातीये च दर्शनस्य संशयहेतुत्वेनो-  
पादानात् स च समान एव धर्म इति ॥ २२ ॥

तदेवं संशयं दर्शयित्वा द्रव्यत्वकोटिव्युदासायाह ।

एकं द्रव्यं समवायि यस्य तदेकद्रव्यं द्रव्यञ्च किम-  
प्येकद्रव्यममवायिकारणकं न भवतीति द्रव्यवैधर्म्यान्नायं  
शब्दो द्रव्यमित्यर्थः ॥ २३ ॥

वि० उभयत्र द्रव्यत्वादिमत्तया निश्चितेषु तदभाववत्तया निश्चितेषु च  
अदृष्टत्वात् अदर्शनात् शब्दो द्रव्यं नवेति संशय इति पूरणीयं  
तथाच निश्चितोभयकोटिमद्वाराह्यत्वरूपासाधारण्यस्य शब्दत्वा-  
दौ सत्त्वात् तज्ज्ञानं तादृशसंशयं जनयतीति भावः ॥ २२ ॥

इदानीं शब्दस्य द्रव्यत्वं निरस्यति ।

शब्दो न द्रव्यम् एकद्रव्यत्वात् एकमात्राश्रितत्वात् न ह्येक-  
मात्राश्रितं किमपि द्रव्यं प्रसिद्धम् ॥ २३ ॥

सू० नापिकर्माऽचाक्षुषत्वात् ॥ २४ ॥

गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् ॥ २५ ॥

उ० ननु कर्मैकद्रव्यमेव तथाच शब्दः कर्म स्यादित्यत आह ।  
प्रत्ययस्य शब्दविषयकस्याचाक्षुषत्वात् चक्षुर्भिन्नवह्नि-  
रिन्द्रियजन्यत्वादित्यर्थः तथाच शब्दत्वं न कर्मवृत्ति चा-  
क्षुषप्रत्यक्षावृत्तिजातित्वात् ररात्वादिवदितिभावः ॥ २४ ॥  
ननु शब्दः कर्म आशुतरविनाशित्वात् उत्क्षेपणादिव-  
दितिचेदत्राह ।

अपवर्गः आशुनाशः स च गुणत्वेऽपि द्वित्वादिवदाशु-  
भाविनाशकमन्निपाताधीन इति कर्मभिः साधर्म्यमात्र-  
मस्य नतु कर्मत्वमेव तदुक्तहेतोरशुतरविनाशित्वस्य द्वित्व-  
ज्ञानसुखदुःखादिभिरनैकान्तिकत्वमितिभावः ॥ २५ ॥

वि० शब्दत्वरूपासाधारणधर्मज्ञानात् शब्दे सन्दिग्धं कर्मत्वमपि  
निराकरोति ।

शब्दे न कर्म अचाक्षुषत्वात् चाक्षुषप्रत्यक्षावृत्तियोग्यजाति-  
मत्त्वात् ग्रन्थादिवदिति पूरणीयं मनःक्रियागतवैजात्यादि-  
वारणाय योग्येति अपिना सत्त्वादिसत्त्वान्न सामान्यादिकमिति  
सूचितम् ॥ २४ ॥

ननु शब्दस्याशुविनाशित्वेन कर्मत्वं साधनीयमत आह ।

सत उभयवाद्यङ्गीकृतस्य गुणस्य अपीतिशेषः अपवर्गः आ-  
शुविनाशः कर्मभिः साधर्म्यं नतु स कर्मत्वव्याप्यः द्वित्वादावु-  
भयवादिसिद्धगुणे व्यभिचारादित्यर्थः ॥ २५ ॥

सू० सतो लिङ्गाभावात् ॥ २६ ॥  
नित्यवैधर्म्यात् ॥ २७ ॥

उ० ननु सिद्धत्वं शब्दो गुणस्तथापि नासावकाशलिङ्गम्  
आकाशं हि तदाऽनुमापयेत् यदि तस्य कार्यः स्यात्  
किन्तु नित्य एवायं कदाचिदनुपलभ्यस्तु व्यञ्जकाभावप्रयुक्त  
इत्याशङ्क्याह ।

यदि हि उच्चारणात् प्रागुद्धं शब्दः सन्स्थात् तदा  
सतोऽस्य लिङ्गं प्रमाणान्तरं स्यात् न चाश्रवणदशर्यां शब्द-  
सत्त्वे प्रमाणमस्ति तस्मात् कार्यं एवायं न व्यञ्ज्य इति ॥ २६ ॥

इतश्च न व्यञ्ज्योऽसावित्याह ।

नित्येन सहास्य शब्दस्य वैधर्म्यमुपलभ्यते यतश्चैत्रो  
वक्तोत्यादाहृतोऽपि चैत्रमैत्रादिवचनेनानुमीयते न च व्य-  
ञ्जकः प्रदीपादिव्यञ्ज्येन घटादिना क्वचिदनुमीयते तस्मा-  
च्चान्य एवायं न व्यञ्ज्य इतिभावः ॥ २७ ॥

वि० शब्दो न जन्यते किन्तु नित्य एव सः, कदाचिदप्रत्यक्षन्तु तस्य  
व्यञ्जकवैधुर्थादिति मोमांसकमतं निरस्यति ।

सतो नित्यस्य शब्दस्य लिङ्गाभावात् शब्दनित्यतासाधक-  
प्रमाणाभावादिति फलितार्थः ॥ २६ ॥

साधकाभावमुक्त्वा बाधकमप्याह ।

नित्यवैधर्म्यात् विनाशित्वात् शब्दो न नित्यस्तद्वशात् प्रत्यक्ष-  
सिद्धत्वादितिभावः ॥ २७ ॥

सू० अनित्यश्चायं कारणतः ॥ २८ ॥

नचासिद्धं विकारात् ॥ २९ ॥ . . .

उ० व्यङ्ग्यत्वे बाधकमुक्त्वा सम्प्रत्यनित्यत्वे हेतुमाह ।

कारणत उत्पत्तेर्दृष्टत्वादिति शेषः । उपलभ्यते हि भेरीदण्डसंयोगादिभ्यः प्रादुर्भवन् शब्दः, तथाचोत्पत्तिमत्त्वादनित्योऽयमिति यद्वा कारणत इति कारणवत्त्वहेतुमुपलक्षयति ॥ २८ ॥

ननु च कारणवत्त्वं शब्दस्य स्वरूपाभिद्धमत आह ।

शब्दस्य कारणवत्त्वमभिद्धमिति न वाच्यं तीव्रमन्दादिभावेन विकारस्य दर्शनात् भेरीदण्डाभिघातस्य तीव्रतया तीव्रस्य मन्दतया मन्दस्य शब्दस्योपलम्भात् न ह्यभिव्यञ्जकतीव्रत्वाद्यधीनोऽभिङ्ग्यतीव्रत्वादिः तथाच कारणतो विकारादनुमीयते जन्योऽयं नत्वभिव्यङ्ग्य इति ॥ २९ ॥

वि० शब्दस्यानित्यत्वे हेतुन्तरमाह ।

शब्दोऽनित्यः कारणतः कारणात् कारणवत्त्वादिति यावत् नहि नित्यानि कारणवन्ति भवन्ति इत्यर्थः ॥ २८ ॥

अत्र स्वरूपासिद्धिं निराकरोति ।

शब्दस्य कारणवत्त्वं नासिद्धं विकारात् तीव्रमन्दादिभावात् नहि भेरीदण्डाद्यभिघातस्य तीव्रमन्दादित्वाभावे शब्दस्य तीव्रमन्दादिभावः केनचिदुपलभ्यते नाप्यभिव्यञ्जकस्य तीव्रमन्दादिभावेन शब्दे तीव्रमन्दादिभावो भवितुमर्हति अतो भेरीदण्डाद्यभिघातादिरूपकारणजन्यत्वं शब्दस्याकामेनापि वाच्यमिति नासिद्धिरिति भावः ॥ २९ ॥

सू० अभिव्यक्तौ दोषात् ॥ ३० ॥

ननु व्यञ्जकस्यैवायं महिमा यत्तीव्रमन्दादिभावेनाभिव्यनक्ति भेरीदण्डाद्यभिहतो वायुरेव तीव्रोऽमन्दश्च तथा प्रत्ययमाधत्ते अत आह ।

शब्दस्याभिव्यक्तौ समानदेशानां समानेन्द्रिययाह्याणां प्रतिनियतव्यञ्जकव्यङ्ग्यत्वं दोषः स्यात् नच तादृशानां प्रतिनियतव्यञ्जकव्यङ्ग्यत्वं क्वचिदृष्टम् अत्र यदि तथा न स्वीक्रियेत तदा ककाराभिव्यक्तौ सर्व्ववर्णाभिव्यक्तिप्रसङ्गः । ननु समानदेशानामपि 'सत्त्वनरत्वब्राह्मणत्वानां स्वरूपभेदसंस्थान-योनिव्यङ्ग्यानां प्रतिनियतव्यञ्जकव्यङ्ग्यत्वं दृष्टमेवेति चेन्न तेषां समानदेशत्वाभावात् नहि यावान् देशः सत्त्वस्य तावानेव नरत्वस्य ब्राह्मणत्वस्य वा ॥ ३० ॥

अभिव्यक्तिस्वीकारोऽपि न सम्भवतीत्याह ।

वि० अभिव्यक्तिस्वीकारे दोषात् ककाराभिव्यक्तिदशायां यावद्दर्शाभिव्यक्तिरूपदोषप्रसङ्गात् न च वर्णानां नैकं व्यञ्जकं किन्तु प्रतिवर्णं भिन्नभिन्नमेव स्वीकारार्थम्, समानेन्द्रिययाह्याणां समनियतानामेकव्यञ्जकव्यङ्ग्यत्वनियमात् अन्यथा चालोकसंयोगदशायां घटादिगतसंख्यापरिमाणाद्यभिव्यक्तिर्न स्यात् तत्रापि व्यञ्जकभेदप्रसङ्गात् रूपरसगन्धस्पर्शानां समानेन्द्रिययाह्यत्वाभावात् घटीयपटीयरूपादीनां सत्त्वमनुष्यत्वब्राह्मणत्वादीनाञ्च समनैयत्याभावादेव व्यञ्जकभेदस्वीकारादिति संक्षेपः ॥ ३० ॥



सू० संयोगाद्भिभागाच्च शब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः ॥ ३१ ॥  
लिङ्गाच्चानित्यः शब्दः ॥ ३२ ॥

उ० इतश्च नाभिव्यङ्ग्यतेत्याह ।

संयोगात् भेरीदण्डादिसंयोगात् विभागात् वंशे पा-  
च्यमाने तत्र संयोगस्तावन्नाद्यस्य शब्दस्य कारणं तदभा-  
वात् तस्मात् वंशदलद्वयविभागो निमित्तकारणं दला-  
काशविभागश्चासमवाधिकारणम् । यत्र च दूरे वीणादा-  
वुत्पन्नः शब्दः तत्र सन्तानक्रमेण उत्पद्यमानः शब्दः  
कर्णशङ्कुल्यवच्छिन्नमाकाशदेशमासादयन् गृह्यते तेन श-  
ब्दादपि शब्दनिष्पत्तिरिति ॥ ३१ ॥

अनित्यत्वे हेत्वन्तरं समुच्चिनोति ।

वर्णात्मकः शब्दोऽनित्यः जातिमत्त्वे सति श्रोत्रग्राह्य-  
त्वात् वीणादिध्वनिवदित्यर्थः ॥ ३२ ॥

वि० अभिघातस्य व्यञ्जकत्वं न सम्भवतीत्याह ।

संयोगात् भेरीदण्डाद्यभिघातात् विभागात् पाच्यमानवं-  
शदलद्वयविभागात् तदुभयजन्यशब्दसन्तानाच्च शब्दनिष्पत्तिः  
शब्दोत्पत्तिरित्यर्थः अभिघातमात्रस्य व्यञ्जकत्वस्वीकारे वंश-  
दलद्वयविभागस्थले दूरदेशस्थितभेरीदण्डाद्यभिघातादिस्थले च  
शब्दस्योपलब्धिर्न स्यात् इतिभावः ॥ ३१ ॥

वर्णानित्यतासाधकं हेत्वन्तरमाह ।

शब्दः इति वर्णात्मक इत्यादि तथाच वर्णात्मकः शब्दोऽनित्यः  
सत्त्वे सति अवयवेन्द्रियग्राह्यत्वात् गृहङ्गादिध्वनिवदित्यर्थः ॥ ३२ ॥

सू० द्वयोस्तु प्रवृत्त्योरभावात् ॥ ३३ ॥

उ० "इदानीम् नित्यत्वे सिद्धान्तिनोक्तान् हेतुन् दूषयितुमाह ।

तुशब्दः पूर्वोक्तव्यवच्छेदकः पूर्वपक्षाभिव्यक्त्यर्थः । द्वयोराचार्यान्नेवासिनोरध्यापनेऽध्ययने च प्रवृत्तिर्दृश्यते तस्या अभावात् अभावप्रसङ्गात् अध्यापनं हि सम्प्रदानं सम्प्रदीयते गुरुणा शिष्याय वेदः स यदि स्थिरो भवति तदा तस्य सम्प्रदानं सम्भवति । ननु सम्प्रदीयमानं गवादि दाहप्रतिग्रहीत्रोरन्तराल उपलभ्यते न च वेदादि गुरुशिष्ययोरन्तराले उपलभ्यत इति नाध्यापनं सम्प्रदानमिति चेत् अन्तरालेऽपि तत्रस्थपुरुषश्रोत्रेण तदुपलम्भात् किञ्चाभ्यासादपि शब्दस्य नित्यता, यथा पञ्चकलो रूपं पश्यतीति स्थिरस्य रूपस्याभ्यासो दृष्टः तथा दशकलोऽधीतोऽनुवाकः विंशतिकलोऽधीत इत्यभ्यासः स्थैर्यं शब्दस्य प्रमाणम्, सिद्धे च स्थैर्यं विनाशकानुपलम्भेः "तावत्कालं -

मीमांसकः प्रत्यवतिष्ठते ।

वि० द्वयोरुक्तशिष्ययोः प्रवृत्त्याः गुरोरध्यापने प्रवृत्तिः शिष्यस्य तु अध्ययने तयोरभावात् अभावप्रसङ्गात् गुरुः शिष्यान् वेदमध्यापयति शिष्येभ्यो वेदं ददाति इत्यादिवाक्यानामेकार्थकत्वानुभवेन अध्यापनं दानमेव तथाच शब्दस्याशुविनाशित्वे तस्य दानप्रतिग्रहयोरसम्भवात् अध्यापने अध्ययने च प्रवृत्तिर्न स्यात् अतः शब्दस्यावश्यं स्थैर्यं स्वीकार्यं नाशकानुपलम्भेच्च तन्नाशे

सू० प्रथमाशब्दात् ॥ ३४ ॥

सम्प्रतिपत्तिभावाच्च ॥ ३५ ॥

स्थिरञ्चैनं कः पश्चान्नाशयिष्यति” इति नित्यतैव पर्यवसन्नेति भावः ॥ ३३ ॥

हेत्वन्तरं शब्दस्य नित्यत्वे आह ।

उ० “त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्” इति प्रथमोत्तमयोः सामिधेन्योस्त्रिरुच्चारणं स्थैर्यं विनाऽनुपपन्नमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

शब्दनित्यत्वे हेत्वन्तरमाह ।

उ० सम्प्रतिपत्तिः प्रत्यभिज्ञा तद्भावात् तत्सद्भावादित्यर्थः प्रतिपत्तिशब्दादेव तद्विशेषस्य प्रत्यभिज्ञाया लाभात् सम्पूर्वः सत्यत्वमाह तथाच यैव गाथा मैत्रेणोच्चा-

वि० प्रमाणाभावात् “तावत् कालं स्थिरञ्चैनं कः पश्चान्नाशयिष्यति” इतिन्यायेन नित्यतैव फलितेति भावः ॥ ३३ ॥

शब्दनित्यतायां हेत्वन्तरमुपन्यस्यति ।

शब्दस्यावश्यं नित्यत्वमुपेयम् “त्रिःप्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमामन्वाह” इतिश्रुतौ प्रथमोत्तमयोः सामिधेन्योः त्रिरुच्चारणस्य विहितत्वात् नहि स्थैर्यमन्तरेण त्रिरुच्चारणं सम्भवतीति पूर्वोक्तन्यायेन नित्यतायाः सिद्धेरित्यर्थः ॥ ३४ ॥

इतश्च शब्दनित्यत्वेत्याह ।

शब्दस्यावश्यं स्थैर्यं सम्प्रतिपत्तेः प्रत्यभिज्ञाया भावात् सत्त्वात् यः श्लोकश्चैत्रेण पठितस्तमेव मैत्रः पठति, स श्वायं गकार-

सू० सन्दिग्धाः सति बहुत्वे ॥ ३६ ॥

उ० रिता तात्रेवायमुच्चरति तमेव श्लोकं पुनः पुनः पठति  
उक्तमेव वचनं पुनः पुनरभिधत्ते यदेव वाक्यं परारि परुच्च  
त्वयोक्तं तदेवेदानीमपि ब्रूषे स एवायं गकार इत्यादि-  
प्रत्यभिज्ञाबलात् स्थैर्यं शब्दस्येति ॥ ३५ ॥

सर्वानिमान् चेतून् दूषयन्नाह ।

सन्दिग्धा अनैकान्तिका इत्यर्थः तदुक्तं “विरुद्धागिद्ध-  
सन्दिग्धमलिङ्गं काश्यपोऽब्रवीत्” इति तथाच बद्धत्वे  
नानात्वेऽपि अध्ययनमभ्यसनं प्रत्यभिज्ञानञ्च दृष्टमित्य-  
नैकान्तिकत्वं चेतूनां तथाहि नृत्यमधीते नृत्यमभ्यस्यति  
द्विरनृत्यत् यदेव नृत्यं परुदकार्षीं रैषमोऽपि तदेव  
करोषि यदेव नृत्यमेकेन चारणेन कृतं तदेवायमपि  
करोतीति नृत्ये दृष्टत्वात् तस्य च कर्मविशेषस्य त्वयाऽपि  
स्थैर्यानभ्युपगमात् ॥ ३६ ॥

वि० इत्यादि प्रत्यभिज्ञा शब्दस्य स्थिरतामन्तरेणानुपपन्नेतिभावः  
॥ ३५ ॥

मीमांसकमतं दूषयति ।

नृत्यादीनामङ्गक्रियाविशेषाणां बद्धत्वेऽपि नानात्वेऽपि अस्थै-  
र्यपीति यावत्, सति अध्यापनाभ्यासप्रव्यभिज्ञानां दर्शनात्  
अध्यापनाद्याः स्थैर्ये साध्ये सन्दिग्धा अनैकान्तिकाः नृत्यमधीते  
त्रिरुच्यति यदेव नृत्यं चैत्रेण कृतं मैत्रस्तदेव करोतीत्यनुभवस्य  
सर्वसिद्धत्वादित्यर्थः ॥ ३६ ॥

## सू० संख्याभावः सामान्यतः ॥ ३७ ॥

उ० ननु पञ्चाशद्वर्णा अष्टाचरो मन्त्रः चर्चा मन्त्रः अष्टा-  
चराऽनुष्टुप्त्वित्यादिसंख्या कथं वर्णानामनित्यत्वे उच्चारण-  
भेदेनानन्त्यसम्भवादित्यत आह ।

संख्यायाः पञ्चाशदादिसंख्याया भावः सद्भावः सा-  
मान्यतः कत्वगत्वादिजातित इत्यर्थः ककारादीनामान-  
न्त्येऽपि कत्वगत्वाद्यवच्छिन्नानां पञ्चाशत्त्वं त्रिलमष्टत्वं वा  
द्रव्यगुणादीनामान्तर्गणिकभेदेनानन्त्येऽपि नवलचतुर्विंशति-  
त्वादिवदिति भावः । ननु स एवायं गकार इति प्रत्यभि-  
ज्ञैव स्थैर्यमाधिका नचैषा तीव्रो गकारो मन्दो गकार इति  
प्रतीत्या विरुद्धधर्म्मं गोचरयन्त्या बाध्यते तीव्रत्वादेस्तत्रौ-  
पाधिकत्वात् नचोपाधिभेदादपि भेदो माभूत् तर्हि जवा-  
तापिञ्जादिसंयोगान्नीलपीतादिभावेन प्रथमानः स्फटिक-  
मणिरपि नानाकृपाणमणिदर्पणेषु दीर्घादिभावेन भास-  
मानं मुखमपि वा नाना न भासेत । ननु कस्यायं तीव्रत्वा-  
दिधर्म्मो गकारोपाधिक इति चेन्न वायुधर्म्मो नादधर्म्मो-

वि० ननु वर्णानामनित्यतया नानात्वे पञ्चाशत्त्वसंख्या स्मृत्याद्युक्ता  
कथं सङ्गच्छते अत आह ।

सामान्यतः सामान्येषु कत्वगत्वादिषु जातिषु संख्यायाः पञ्चा-  
शत्त्वादिसंख्यायाः भावः सद्भावः तद्युक्तं पञ्चाशद्वर्णा इत्यादौ  
जातिगतैव संख्या विवक्षिता पञ्चमूर्त्ता इत्यादाविवेतिभावः लून-  
पुनर्जातकेशादौ तस्यवामी केशा इत्यादिवत् स एवायं गकार

उ० ध्वनिधर्मा वा भविष्यति किं तत्र विशेषचिन्तया त्वयापि तारत्वादेः क्लगत्वादिना परापरभावानुपपत्त्या स्वाभाविकत्वाभ्युपगमादिति चेन्नैवं । उत्पन्नो गकारः, नष्टो गकारः, श्रुतपूर्वगकारो नास्ति, निवृत्तः कोलाहल इत्यादि विरोधिप्रतीतौ सत्यामपि चेत् इयं प्रत्यभिज्ञा न निवर्तते तदास्या जातिविषयताकल्पनात् अन्यथा व्यक्ति स्मैर्यमालम्बमानायाम् अस्यां सत्यां उक्तविरोधिप्रत्यया एव नेत्पद्येरन् नचायं वायुधर्म-स्तद्धर्माणं श्रोत्राविषयत्वात् नापि नादधर्मः, नादो यदि वायुरेव तदा दोषस्योक्तत्वात् अन्यस्य निर्वक्तुमशक्यत्वात् नापि ध्वनिधर्मः, शब्दादिध्वनावनुपलभ्यमानेऽपि गकारे तारत्वादिप्रतीतेः । स्वाभाविकत्वे तु न जातिमाङ्ग्यं गत्वादिव्याप्यस्य तस्य नानात्वाभ्युपगमात् किञ्च शुक्रमारिकामनुष्यप्रभवेपु गकारादिपु स्फुटतरा रूपभेदप्रयाऽस्ति, एवं स्त्रीपुंसप्रभवेपु स्त्रीपुंसभेदप्रभवेपु च, यतः काण्डपटाद्यावृता अपि शुक्रा-

वि० इत्यादि प्रत्यभिज्ञापि साजात्यविषयिण्येव न स्मैर्यसाधिकेति । अपिच शब्देऽनित्यः कृतकत्वाद्घटादिवदित्याद्यनुमानतः शब्दस्यानित्यत्वं सिद्धतीति । तत्र शब्देत्यत्ति वीचीतरङ्गन्यायेनेति केचित् तेषां मते भेरीदण्डाद्यभिघातात् तद्देशवच्छेदेन आद्यशब्दस्योत्पत्तिः अनन्तरं तद्वहिर्दृशदिगवच्छेदेन प्रथमशब्दात्तद्यापको द्वितीयः शब्दः, ततस्तद्वहिर्दृशदिगवच्छिन्नस्तृतीयः शब्दे द्वितीयशब्दाद्भवतीत्येवंक्रमेण चतुर्थादिशब्दानामप्युत्पत्तिर्विधा

उ० दयोनमीयन्ते औपाधिकत्वन्वस्य नानुभूयमानोपाधिनि-  
वन्धनं कुङ्कुमारुणा तरुणीतिवत् नाथौपपत्तिकमौपाधिक-  
त्वम् उपपत्तेस्तादृशप्रमाणस्याभावादिति संक्षेपः ॥ ३७ ॥

इति वैशेषिकसूत्रोपस्तारे शाङ्करे द्वितीयाऽध्यायः  
द्वितीयमाह्निकम् ॥ \* ॥

॥०॥ समाप्तश्चायं द्वितीयाध्यायः ॥०॥

वि० केचित्तु कदम्बगोलकन्यायात् शब्दस्योत्पत्तिरिच्छाः एतन्मते  
द्वितीयादिशब्देनैको नवा दशदिगवच्छिन्नः किन्तु दशसु दिक्षु  
द्वितीयाद्याः शब्दा दश उत्पद्यन्ते इति विशेषः ॥ ३७ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-कृतायां कणादसूत्रविरचितौ  
द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ \* ॥

॥०॥ समाप्तश्चायं द्वितीयाध्यायः ॥०॥



सू० प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः ॥ १ ॥

उ० तदेवं द्वितीयाध्याये वहिर्द्रव्यपरीक्षामुपपाद्य उद्देश-  
शक्रमादिदानोमात्मपरीक्षायै पीठमारचयितुमाह ।

इन्द्रियाणामर्थां गन्धरसरूपस्पर्शशब्दा वाह्यैकैकेन्द्रिय-  
याह्याः तत्र श्रात्रग्रहणे योऽर्थः स शब्द इति शब्द-  
प्रसिद्धौ दर्शितायामर्थाङ्गन्धादौ स्पर्शपर्यन्ते प्रसिद्धि-  
दर्शितेत्यर्थः तथाहि घ्राणग्रहणे योऽर्थः स गन्धः, रसन-  
ग्रहणे योऽर्थः स रसः, चक्षुर्मात्रग्रहणे योऽर्थः तद्रूपम्,  
त्वगिन्द्रियमात्रग्रहणो योऽर्थः स स्पर्शः, सर्वत्र चाऽर्थ-  
शब्देन धर्मी भावभूत उच्यते तेन गन्धत्वादौ गन्धाद्यभावे  
च नातिव्याप्तिः तदेवं घ्राणग्रहणवृत्तिगुणत्वावान्तरजा-  
तिमत्त्वं गन्धत्वम् एवं रसादावपि वाच्यं तेन नातीन्द्रि-  
यगन्धाद्यनुपग्रहः ॥ १ ॥

वि० यदीयकरुणां विना वहति जाद्यजालं जन-  
स्तथान्तरतमोऽर्थवं तरति यत् कृपालेशतः ।  
कणादनयनोरधौ मम निमज्जतः साऽधुना  
निहन्तु विपदान्तिं विबुधवासि वाग्देवता ॥ १ ॥

उद्देशक्रमप्राप्तामात्मपरीक्षामिदानोमारभते ।

इन्द्रियार्थाः रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाः, प्रसिद्धाः प्रत्यक्षनिश्चय-  
विषया इत्यर्थः तथाच रूपादिविषयकः साक्षात्कारः सर्व-  
सिद्ध इतिभावः ॥ १ ॥



सू० इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्यो ऽर्थान्तरस्य  
हेतुः ॥ २ ॥

उ० इन्द्रियार्थप्रसिद्धेरात्मपरीक्षायामुपयोगमाह ।

हेतुर्लिङ्गमर्थान्तरस्य आत्मनः इन्द्रियार्थेभ्य इति  
इन्द्रियेभ्योऽर्थेभ्यश्च रूपादिभ्यस्तद्दृग्भ्यश्च यदर्थान्तरं आत्मा  
तस्य लिङ्गमित्यर्थः । यद्यपि ज्ञानमेव लिङ्गमिह विव-  
क्षितं तथापीन्द्रियार्थप्रसिद्धे रूपादिसाक्षात्कारस्य प्रसिद्ध-  
तरतया ताद्रूप्येणैव लिङ्गत्वमुक्तं तथाहि प्रसिद्धिः क्वचि-  
दाश्रिता कार्यात्वात् घटवत् गुणत्वाद्वा क्रियात्वाद्वा साच  
प्रसिद्धिः करणजन्या क्रियात्वात् किंदिक्रियावत् यच्च प्रसि-  
द्धेः करणं तदिन्द्रियं तच्च कर्तृप्रयोज्यं करणत्वात् वास्या-  
दिवत् तथा यत्रेयं प्रसिद्धिराश्रिता, यः घ्राणादीनां कर-  
णानां प्रयोक्ता स आत्मा ॥ २ ॥

वि० एतावतात्मनः क्रियायातमित्यत आह ।

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिः रूपादिसाक्षात्कारः इन्द्रियार्थेभ्यः इन्द्रि-  
येभ्यः अर्थेभ्यश्च अर्थान्तरस्य भिन्नस्वात्मनामकद्रव्यस्य हेतुः सा-  
धिकेत्यर्थः तथाच रूपादिसाक्षात्कारो द्रव्याश्रितो गुणत्वाद्भूषव-  
दित्यनुमानेन इतरबाधसहस्रतेन आत्मनः सिद्धिरिति भावः ।  
यद्यपि प्रसिद्धेः पक्षतया हेतुत्वकथनमसङ्गतं तथापि हेतुपद-  
मन्वानुमितिजनकपरामर्शविशेष्यपरमिति न किञ्चिदनुपपन्नम् ।  
॥ २ ॥

सू० सोऽनपदेशः ॥ ३ ॥

कारणाज्ञानात् ॥ ४ ॥

उ० ननु शरीरमिन्द्रियाणि वा प्रसिद्धेराश्रयोऽस्तु प्रसिद्धिं प्रति तदुभयान्नयव्यतिरेकयोः स्फुटतरत्वात् किं तदन्याश्रयकल्पनया तथाहि चैतन्यं शरीरगुणः तत्कार्यत्वात् तद्रूपादिवत् एवमिन्द्रियगुणत्वेऽपि वाच्यमित्याशङ्क्याह ।

अपदेशो हेतुः तदाभासोऽनपदेशः तथाच तत्कार्यत्वं प्रदीपजन्यज्ञानादावनैकान्तिकत्वादनपदेश, इत्यर्थः ॥ ३ ॥

ननु तत्कार्यत्वं चैतन्यत्वावच्छिन्नस्यैव कार्यत्वं विवक्षितं प्रदीपादीनाञ्च समस्तमेव चैतन्यं न कार्यमिति न व्यभिचार इत्याशङ्क्याह ।

शरीरकारणानां करचरणादीनां तदवयवानां वा अज्ञानात् ज्ञानशून्यत्वादित्यर्थः पृथिव्यादिविशेषगुणानां

वि० ननु रूपादिप्रसिद्धिर्देहाश्रिता तत्कार्यत्वात् तदीयरूपादिवदित्यनुमानेन देहवृत्तित्वे सिद्धे नाऽतिरिक्तात्मसिद्धिरित्यत आह ।

सः देहवृत्तित्वसाधको हेतुः, अनपदेशः हेत्वाभासः, देहकार्यत्वस्य घटपटादौ सत्त्वेन तत्र देहाश्रितत्वाभावात् उक्तहेतोर्यभिचारित्वात् प्रसिद्धेर्देहवृत्तित्वसिद्धिरित्यर्थः ॥ ३ ॥

ननु ज्ञाननिष्ठं यद्देहकार्यत्वं तदेव हेतुर्भविष्यति व्यतिरेकेण घटादेर्दृष्टान्तत्वसम्भवादित्यत आह ।

कारणेषु देहकारणेषु अवयवेषु अज्ञानात् ज्ञानाभावात्

## सू० कार्येषु ज्ञानात् ॥ ५ ॥

उ० हि कारणगुणपूर्वकता दृष्टा तथाच शरीरकारणेषु यदि ज्ञानं स्यात्तदा शरीरेऽपि सम्भाष्येत नचैवम्, नन्वशरीरकारणेष्वपि चैतन्यमिति चेन्न ऐकमत्याभावप्रसङ्गात् नहि बह्वनाञ्चेतनानामैकमत्यं दृष्टम्, करावच्छेदेनानुभूतस्य करच्छेदेऽस्मरणप्रसङ्गात् यतो “नान्यदृष्टं स्मरत्यन्यः” इति किञ्च शरीरनाशे तत्कतर्हिंसादिफलानुपभोगप्रसङ्गात् नहि चैत्रेण कृतस्य पापस्य फलं मैत्रेा भुङ्क्ते ततश्च कृतहानिरकृताभ्यागमश्च श्यात् ॥ ४ ॥

ननु शरीरकारणेषु सूक्ष्ममात्रया ज्ञानमस्ति शरीरे तु स्फुटमतो नाऽकारणगुणपूर्वकता नन्वैकमत्यानुपपत्तिरित्याशङ्काह ।

यदि हि शरीरमूलकारणेषु, परमाणुषु चैतन्यं स्यात् तदा तदारब्धेषु कार्येषु घटादिष्वपि स्यात् किञ्च पार्थिव-

वि० तथाच ज्ञानं न शरीरविशेषगुणः अपाकजले सति अकारणगुणपूर्वकत्वात् शब्दवदित्यनुमानेन ज्ञानसामान्यस्य देहवृत्तित्वाभावसिद्धिः प्रागुक्तशरीरकार्यत्वहेतोरप्रयोजकत्वमेवेति भावः ॥ ४ ॥

ननु शरीरावयवेषु सूक्ष्मज्ञानक्रमेण शरीरे स्फुटतरं ज्ञानं कारणगुणपूर्वकमेव स्वीकार्यमतः प्रागुक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वान्न देहावृत्तित्वसाधकत्वमत आह ।

यदि शरीरे चैतन्यं कारणगुणपूर्वकं स्वीक्रियते तदा तत्प-

सू० अज्ञानाच्च ॥ ६ ॥

उ० विशेषगुणानां सर्वपार्थिववृत्तितयाव्याप्तेः कार्येष्वपि घटा-  
दिषु चैतन्यं स्थानं च तत्र चैतन्यमुपलभ्यते इत्यर्थः ॥ ५ ॥

ननु घटादावपि सूक्ष्मात्रया चैतन्यमस्येवेत्या-

शङ्काह ।

सर्वैः प्रमाणैरज्ञानात् कुम्भादौ न चैतन्यमित्यर्थः  
सर्वप्रमाणगोचरस्याप्यभ्युपगमे शशविषाणादेरस्यभ्युपगम-

वि० रमागुणव्यवश्यं ज्ञानं स्वीकार्यं तथाच शरीरनाशे तत्पर-  
माणवारब्धेषु कार्यान्तरेष्वपि ज्ञानात् ज्ञानप्रसङ्गात् गन्धादिव-  
दित्यर्थः ॥ ५ ॥

ननु तत्तत्कार्येषु सूक्ष्ममेव ज्ञानं स्वीकार्यमतो नोपलब्धिरि-  
त्यत आह ।

अज्ञानात् केनापि प्रमाणेन तत्तत्कार्यगतज्ञानस्य ज्ञाना-  
जननात् तथाच निष्प्रमाणकत्वान्न तत्तत्कार्येषु ज्ञानमित्यर्थः  
चकारो गौरवं समुच्चिनेति तथाच नानावयवेषु नानाचैतन्य-  
कल्पनापेक्षया चैतन्याधारतया एकं त्रयान्तरमेव कल्पयितुमु-  
चितमितिभावः । इदमुपलक्ष्यं देहे चैतन्यस्वीकारे बाल्येऽनु-  
भूतस्य यौवनादौ स्मरणानुपपत्तिस्तदानीमनुभवितुरभावात्  
परिमाणनाशेन बाल्यशरीरनाशाभ्युपगमस्यावश्यकत्वात् एवं  
अद्यजातबालकस्य स्तनपाने प्रवृत्तिर्न स्यात् प्रवृत्तिजनकस्य इष्ट-  
साधनत्वानुभवस्य तदानीमसम्भवात् एवं गर्भनिःसरणदशायां  
बानरशिश्रूनां शाखावलम्बने प्रवृत्तिरपि नोपपद्यते तदानीमि-  
ष्टसाधनत्वानुभावकाभावात् अतिरिक्तचेतनवादिमते च जन्मा-

सू० अन्यदेवहेतुरित्यनपदेशः ॥ ७ ॥

उ० प्रसङ्गः नहि घटादौ चैतन्यं केनापि प्रमाणेन ज्ञायत इति ॥ ६ ॥

ननु श्रोत्रादिभिः करणैरधिष्ठाताऽनुमीयते इत्युक्तं तदयुक्तं नहि श्रोत्रादिभिरात्मनस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्न नच ताभ्यामन्तरेणाऽविनाभावसिद्धिः नचाविनाभावमन्तरेणाऽनुमितिरित्यत आह ।

हेतुः साध्यादन्य एव भवति नतु साध्यात्मा साध्याविशेष-  
प्रसङ्गात् तस्मात्तादात्म्यघटितो हेतुरहेतुरनपदेश इत्य-  
र्थः ॥ ७ ॥

वि० न्तरीयेष्टसाधनत्वानुभवजनितसंस्कारवशात् स्मरणसम्भवेन स्तन-  
पाने शाखावलम्बने च पूर्वोक्ताप्रवृत्तिर्नाऽनुपपन्ना नच जन्मा-  
न्तरानुभूतान्मन्त्येषामपि स्मरणं कथं न भवतीति वाच्यं उद्यो-  
धकाभावात् अत्र त्वनायच्यार्जाऽनादृष्टमेवोद्योधकं कल्पते अन्य-  
था शुष्ककरुतया उच्चपतनेन च बालस्य मरणप्रसङ्गादित्यादिकं  
द्रष्टव्यमिति संक्षेपः ॥ ६ ॥

ज्ञानस्य गुणत्वहेतुना द्रव्याश्रितत्वं कथं सिद्ध्यति अतदात्म-  
नस्तदनुत्पन्नस्य वा तदसाधकत्वादिति सांख्यैकदेशिनामाशङ्कां  
निरस्यति ।

अन्यदेव साध्यादन्यदेव वस्तु हेतु भवति इति हेतौ यतः सा-  
ध्याभिन्नोऽनपदेशः हेत्वाभासः, साध्यस्यासिद्धत्वेन तदभिन्नस्या-  
प्यसिद्धत्वादितिभावः ॥ ७ ॥

सू० अर्थान्तरं चार्थान्तरस्याऽनपदेशः ॥ ८ ॥

उ० ननु श्रौचादिभिरिन्द्रियैरात्मनो यथा न तादात्म्यं तथा तदुत्पत्तिरपि नास्ति नहि बद्धधूम इव आत्मनः श्रौचादिकरणमुत्पद्यते इत्यत आह ।

हि यतः कार्यं धूमादि यथा रासभादेरर्थान्तरं तथा कारणाद्बद्धादेरप्यर्थान्तरमेव तथा चार्थान्तरत्वाविशेषात् धूमो रासभं न गमयति किन्तु बद्धमेव गमयतीत्यत्र स्वभावविशेष एव नियामकः, स च स्वभावो यदि कार्यादन्यस्यापि भवति तदा सोऽप्यपदेशो भवत्येव तथाच कार्यमविवक्षितस्वभावभेदम् अनपदेशः, तथाच तादात्म्यतदुत्पत्ती एवाऽविनाभावः तयोरेवाऽविनाभावपर्यवसानं ताभ्यां समानोपायो वा तदुभयमात्रग्रहाधीनग्रहो वेति स्वश्लिष्यव्यामोहनाय परिभङ्गामात्रमितिभावः ॥ ८ ॥

सम्पत्त्यऽविनाभावस्य तदुभयव्यभिचारमेव स्फुटयितुमाह ।

वि० ननु साध्यादनुत्पन्नस्य गुणत्वस्य कथमनुमापकत्वम्, तथा सति धूमादिना बद्धादेरिव रासभादेरप्यनुमानापत्तेरित्यत आह ।

हि हेतौ यतोऽर्थान्तरं वस्तुन्तरम् अर्थान्तरस्य वस्तुन्तरस्य अनपदेशः अहेतुः रासभादेर्यामित्शून्यो हि धूमादिः रासभादौ साथ्ये हेत्वाभासः ननु बद्धादौ, तद्व्याप्यत्वस्य तत्र सत्त्वात् प्रकृतेश्च व्याप्तिसत्त्वान्नागमकत्वमितिभावः ॥ ८ ॥

ननु गुणत्वहेतौ व्याप्यत्वमपि दुर्घटं व्याप्यत्वस्य तादात्म्यतदुत्पत्तिनियतत्वादित्यत आह ।

सू० संयोगिसमवाय्येकार्थसमवायिविरोधि च ॥ ६ ॥

उ० शरीरं त्वग्वत् शरीरत्वादित्यं हेतुः संयोगी, वृद्धि  
 क्षयवद्द्रव्यसहजावरणं हि त्वगित्युच्यते तच्च न शरीरस्य  
 कार्यं कारणं वा किन्तु सहोत्पत्तिकमात्रं नियतसंयोग-  
 वत् । एवं समवायि यथाकाशं परिमाणवद् द्रव्यत्वात् घटा-  
 दिवदिति अत्र परिमाणं साध्यं द्रव्यत्वेनाकाशसमवायिना  
 धर्मेण साध्यते यद्वा परिमाणतारतम्यं क्वचिद्विश्रान्तमि-  
 त्यनेनाऽणुत्वं परिमाणविशेषः मिद्धः तेन तदाश्रयः परमा-  
 णुरनुमीयते, शब्दादिना त्वाकल्पस्य, ज्ञानादिना त्वात्मनो-  
 ऽनुमानं कार्यैणैव कारणानुमानमिति नोदाहृतम् ॥ ६ ॥  
 एकार्थसमवायिनं सूत्रकृदुदाहरति ।

वि० संयोगि संयोगानुयोगि लिङ्गमिति सर्वशेषः । तथाच सं-  
 योगानुयोगि संयोगप्रतियोगिनो लिङ्गं व्याप्यं कथमन्यथा अयं  
 देशः सारथिमान् विलक्षणगतिमद्रथादिव्यादावनुमितिः सा-  
 ध्यतावच्छेदकसम्बन्धश्चात्र स्वसंयुक्तसंयोगः एवं समवाय्यपि सम-  
 वेतस्य लिङ्गं कथमन्यथा पश्चाद्यवयवमात्रदर्शनदशायां वि-  
 शिष्टावयवनेनाऽवयविनः पश्चादेरनुमितिः नचावयवचक्षुःसंयोग-  
 दशायामवयविन्यपि संयोगसत्त्वात् तस्यापि प्रत्यक्षं दुर्वारमिति-  
 वाच्यं तथापि सिद्धाधयिषया तादृशानुमानसम्भवात् तथाच  
 सारथ्यादिभिन्नस्य सारथ्याद्यकार्यसः च रथादेः सारथ्यादेर्व्या-  
 प्यत्वात् व्याप्यत्वं न तादात्म्यतदुत्पत्तिनियतमिति भावः ॥ ६ ॥

एकार्थसमवायिनो लिङ्गस्योदाहरणं स्वयमेव दर्शयति ।

सू० कार्यं कार्यान्तरस्य ॥ १० ॥

विरोधभूतं भूतस्य ॥ ११ ॥

उ० कार्यं रूपं कार्यान्तरस्य स्पर्शस्य लिङ्गम्। उपलक्षण-  
च्चैतत् अकार्यमप्याकाशैकत्वम् आकाशैकपृथक्त्वे लिङ्गम्  
एवं परममहत्त्वे ॥ १० ॥

विरोधिलिङ्गमुदाहरति ।

अभूतं वर्षं, भूतस्य वाय्वभ्रसंयोगस्य लिङ्गम् एवं स्फो-  
टादेर्विरोधी मन्त्रपाठः तथाचाऽभूतमनुत्पन्नं स्फोटादि  
भूतस्य मन्त्रपाठस्य लिङ्गम् ॥ ११ ॥

विरोधिलिङ्गस्योदाहरणान्तरमाह ।

वि० कार्यं पृथिव्याः कार्यं गन्धादिकं कार्यान्तरस्य रसादे लिङ्ग-  
मितिशेषः एकार्थसमवायः समवायघटितसामानाधिकरणम्  
एवं नित्यरसादिकमपि नित्यरूपादेर्लिङ्गं द्रष्टव्यम्, तथाच  
गन्धादे रसाद्यभेदस्य रसादिजन्यत्वस्य चाऽभावात् व्याप्तेस्तदुभ-  
यनैयत्वं बाधितमेवेति भावः ॥ १० ॥

विरोधिना व्याप्यत्वमुदाहरति ।

अभूतम् असन्निहितं विरोधि विरोध्यसन्निधानमिति यावत्  
भूतस्य जातस्य स्थितस्य वा विरोधिनालिङ्गमितिशेषः अत्र-  
मनुमानप्रकारः अयं काष्ठो दाहवान् वज्रिसंयुक्तत्वे सति मण्याद्य-  
सन्निधात्वात् भस्मीभूतवस्त्वन्तरवत् अयं देशो निर्भयाहिमान्  
अहिमत्त्वे सति नैकुलश्रुत्यत्वात् तादृशनिश्चितदेशान्तरवदि-  
त्यादिः ॥ ११ ॥

विरोध्यन्तरमुदाहरति ।



द्व० भूतमभूतस्य ॥ १२ ॥

भूतोभूतस्य ॥ १३ ॥

उ० भूतं स्फोटादिकम् अभूतस्य मन्त्रपाठस्य लिङ्गम् एवं भूतो वाय्वभ्रसंयोगो ऽभूतस्य वर्षस्य लिङ्गम् एवं भूतो दाहो ऽभूतस्य भग्नादिसमवधानस्य लिङ्गमेवमन्यदप्यूह्यम् ॥ १२ ॥

लिङ्गान्तरमुदाहरति ।

विद्यमानेनैव विरोधिना विद्यमानस्यैव विरोधिनः क्वचिदनुमानं यथा विस्फूर्जन्तमहिं दृष्ट्वा झाटाऽर्निरितस्य नकुलस्य अत्र हि विस्फूर्जन्तमहिर्भूतो विद्यमानो झाटान्तरितो नकुलोऽपि विद्यमान एवेति भवति भूतो भूतस्य लिङ्गमित्यर्थः वर्षवाय्वभ्रसंयोगयोस्तु नैकस्मिन् काले विद्यमानता न वा स्फोटमन्त्रपाठयोरिति ॥ १३ ॥

इदानीं परिगणनस्य प्रयोजनमाह ।

वि० भूतमूलात् स्थितं वा अभूतस्य विरोधिना विरोधसन्निधानस्य लिङ्गमित्यर्थः यथायं काष्ठो मण्णायसन्निहितो दाहवत्त्वात् अयं देशो नकुलशून्यः भीतिरहिताहिमत्त्वादित्यादि ॥ १२ ॥

सहिविरोधिनः सहिविरोधिलिङ्गत्वमुदाहरति ।

भूतो वर्त्तमानो विरोधी भूतस्य वर्त्तमानस्य विरोधिना लिङ्गमित्यर्थः यथा विस्फूर्जनवदहिदर्शनेन गुल्फायन्तरितस्य विद्यमानस्य नकुलस्यानुमानम् ॥ १३ ॥

ननु क्त्वस्त्रेषु अनुमितिर्न भवत्येव व्याप्तिविरहादित्यत आह ।

## सू० प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य ॥ १४ ॥

उ० प्रसिद्धिः स्मर्यमाणा व्याप्तिः, अपदेशो हेतुवचनं, तेन स्मर्यमाणव्याप्तिविशिष्टो हेतुर्हेतुवचनेनोपनयवचनेन बोध्यते इति भवति प्रसिद्धिपूर्वकोऽपदेश इति तथाच  
 • ओत्रादिनाकरणेनाऽधिष्ठातुः, ज्ञानादिना च गुणेन तदाश्रयस्यात्मनो यदनुमानमुक्तं तत्र सर्वत्र व्याप्तिरस्ति, लघातुशरीरकार्यत्वेन हेतुना ज्ञानस्य यच्छरीरगुणत्वं साधितं तत्र न व्याप्तिरितिभावः । ननु केयं व्याप्तिर्न तावदव्यभिचारितसम्बन्धः • • अव्यभिचारस्य साध्यात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यानधिकरणत्वस्य केवलान्वयिन्यप्रसिद्धेः साध्यानधिकरणानधिकरणत्वस्यापि केवलान्वयिन्यसम्भवात् धूमादेरपि यत्किञ्चित्साध्यानधिकरणाधिकरणत्वात् । नाप्यविनाभावः । स हि साध्यं विनाऽभावे वा हेतोः, अविना, साध्यान्वये सति भावे वा, धूमस्यापि क्वचिद्रासभाभावेऽभावात् रासभसत्त्वे सत्त्वाच्च नियतव्यतिरेको नियतस्याऽन्वयोविवक्षित इतिचेत् न नियमस्यैव निरूप्यमाणत्वात् नापि कार्त्स्न्येन सम्बन्धः, स यदि कृत्स्नस्य

वि० प्रसिद्धिर्याप्तिप्रमा तत्पूर्वकत्वात् तदधीनत्वात् अपदेशस्य सङ्घेतुद्भावनस्य तथा चोक्तस्यलेषु सन्न्यायप्रयोगस्य कथकसम्बन्धादयसिद्धत्वात् तन्निर्व्वाहकव्याप्तिप्रभोपपादकव्याप्तिस्वीकारावश्यक इतिभावः । व्याप्तिस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नं

उ० साध्यस्य साधनसम्बन्धः, स विषमव्याप्ते धूमादावपि नास्ति  
 अथ कृत्स्नस्य साधनस्य साध्यसम्बन्धः, सोऽप्येकस्य साध्यस्य  
 कृत्स्नसाधने सम्बन्धाभावादनुपपन्नः अथ कृत्स्नस्य साध्यस्य  
 कृत्स्नेन साधनेन सम्बन्धः, एतदप्ययुक्तं नहि कृत्स्नेन साध-  
 नेन कृत्स्नस्य साध्यस्य क्वचिदपि सम्बन्धः सम्भवति, प्रत्येक-  
 मेव साध्यसाधनयोः सम्बन्धात् विषमव्याप्ते चाऽव्याप्तेः नापि  
 स्वाभाविकः सम्बन्धः, स्वभावो हि स्वस्यभावो वा स्वमेव  
 भावो धा, तत्र तज्जन्यत्वञ्चेत्तद्धितार्थः, तदा समवायलक्ष-  
 णार्था व्याप्तावव्याप्तेः, तदाश्रितत्वञ्चेत्तद्धितार्थः, तदापि  
 समवायेऽव्याप्तिः नहि समवायः क्वचिदाश्रितः संयो-  
 गस्याऽपि हेतुधर्मधूमत्वाद्यनाश्रितत्वात् हेतुधर्मधूमत्वाद्य-  
 जन्यत्वाच्च नाप्यऽनौपाधिकः सम्बन्धः उपाधेरेव दुर्बल-  
 त्वात्, सुवचने ऽपि दुर्ग्रहत्वात्, सुग्रहत्वे ऽप्यऽन्योन्याश्रयात्  
 साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वादेर्वाप्तिग्रहाधी-  
 नग्रहत्वात् नापि सम्बन्धमात्रं व्याप्तिः, व्यभिचारि-  
 सम्बन्धस्यापि देशविशेषकालविशेषगर्भतया व्याप्तिरूप-  
 त्वेऽपि तज्ज्ञानस्यानुमितावतन्त्रत्वात् अनुमितिकारणी-  
 भूतज्ञानविषयव्याप्तेरेव निरूपयितुमुचितत्वात् नापि

वि० यत् साध्यवत्त्वं तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकस्याऽन्योन्याभावस्य स्वप्रति-  
 योगितावच्छेदकवत्त्वबुद्धिविरोधिताघटकसम्बन्धेन यदधिकरणं  
 तन्निरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितानवच्छेदकहेतुता-  
 वच्छेदकधर्मवत्त्वं, केवलान्वयिस्थले सत्तावान् • जातेरित्यादि-

उ० साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यं  
 व्याप्तिः तत्रैरपि धूमवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात्  
 नहि धूमवति महानसे पर्वतीयवक्त्रे नाऽत्यन्ताभावः  
 इदं संयोगि द्रव्यत्वादित्यादौ संयोगात्यन्ताभावस्य साधन-  
 समानाधिकरणत्वादव्यापकताप्रसङ्गात् प्रतियोगिविरुद्ध-  
 स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधि-  
 करण्यं व्याप्तिः संयोगात्यन्ताभावस्य प्रतियोगिविरु-  
 द्धत्वाभावादिति चेन्न संयोगात्यन्ताभावस्यापि प्रति-  
 योगिविरुद्धत्वात् अन्यथाऽवच्छेदभेदकल्पनावैयर्थ्यात् नहि  
 कृतकत्वानित्यत्वयोर्द्वैतमवच्छेदभेदः कल्प्यते नापि सा-  
 ध्यवैयधिकरणानधिकरणत्वं केवलान्वयिनिर्माध्यवैयधिक-  
 रणाप्रसिद्धेः साध्यानधिकरणाधिकरणत्वं हि तत्, नापि  
 यत्सम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वं यस्य तस्य सा व्याप्तिः  
 वक्त्रित्वस्यापि धूमसम्बन्धितावच्छेदकत्वात्, अधिकदेशवृत्ति-  
 तया तन्न तथेति चेत् व्यापकतावच्छेदकस्याऽधिकदेशवृत्तेर-  
 ष्यभ्युपगमात् धूमत्वस्याऽपि गगनतलावलम्बिधूमवृत्तितया-  
 ऽधिकदेशवृत्तित्वात्, अतएव तद्धारणार्थं विशेषणमिति  
 चेत् तर्हि यद्, व्याप्यतावच्छेदकं तदेव सम्बन्धितावच्छेद-  
 कत्वेनाभिमतमित्यभिमतं तथाचात्माश्रयः । एवञ्च यत्

वि० स्थले च व्याप्तिभ्रमाकेवाऽनुमितिः आकाशादिहेतौ व्याप्तिरभ्येव  
 परन्तु पक्षधर्मत्वविरहादसद्भेदतुल्यव्यवहारः अथवा यादृशप्रति-  
 योगितावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नरूपक-

उ० सामानाधिकरण्यावच्छेदकरूपवत्त्वं यस्य तस्य सा व्याप्तिरित्यप्युक्तदोषाक्रान्तमिति चेत् अत्रोच्यते अनौपाधिकः सम्बन्धो व्याप्तिः अनौपाधिकत्वन्तु यावत् स्वव्यभिचारिव्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरणं यावत्समामानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिप्रतियोगिकात्यन्ताभावसमामानाधिकरणसाध्यसामानाधिकरणं वा, यावत् साधनाव्यापकां व्याप्यसाध्यसामानाधिकरणमिति निरुक्तिद्वयार्थः, यावत्साध्यव्यापकव्यापकत्वं वा, वज्रघ्नीहिणा दुर्ग्रहमिदमिति चेत् अतएव तत्र भूयोदर्शनापेक्षा तर्कापेक्षा च । यद्वा साधनसमामानाधिकरणात्यन्ताभावांप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरणं व्याप्तिः अत्यन्ताभावश्च बह्विधादिसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताको विवक्षितः तेन महानसोयधूमे पर्वतीयबह्वत्यन्ताभावसामानाधिकरणेऽपि न दोषः धूमवति बह्विर्नास्तीति प्रतीतेरनुदयात्, द्रव्यत्वन्तु संयोगित्वात्यन्ताभावासमामानाधिकरणमेव नहि भवति द्रव्यं न संयोगीतिप्रतीतिः, संयोगानां प्रत्येकमव्याप्यवृत्तित्वेऽपि संयोगित्वसामान्यस्य व्याप्यवृत्तित्वात् तस्यैव च व्यापकत्वात् । नन्वनौपाधिकत्वमुपाधिविरहः उपाधिरेव दुष्परिकतनीय इति चेन्न साध्यव्यापकत्वे सति

वि० ताकाधिकरणतावदन्यत्वं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणतावत् स्तिरूपितसाध्यतावच्छेदकताघटकसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताग्रन्थं यत् साध्यताव-

उ० साधनाव्यापकस्योपाधित्वात् तदुक्तं “साधने सोपाधिः साध्ये” निरुपाधिरुपाधिः” । ननु केवलसाध्याव्यापकोपाध्यव्यापकमेतत् यथा वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्यशाश्रयत्वादि-त्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वम्, स श्यामोमित्राततयत्वाद्धित्यत्र शाकपाकजलम्, न ह्युद्भूतरूपवत्त्वं प्रत्यक्षत्वव्यापकम् आत्मनि गुणकर्मादौ च प्रत्यक्षे तदभावात् नापि शाकपाकजलं श्यामत्वव्यापकं काककोकिलजलदजम्बूफलादौ श्यामे तदभावा-दिति चेन्न पर्यवसितसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वस्य तथा विवक्षितत्वात्, पर्यवसितञ्च साध्यं यद्गुर्भावच्छेदेनोपाधेरव्यापकत्वममग्नं तद्गुर्भावच्छिन्नम्, प्रकृते वहिर्द्रव्यत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्वस्योद्भूतरूपवत्त्वं व्यापकम्, अन्यथयतिरेकाभ्यां गृहीतम्, औत्पत्तिकनरश्यामत्वावच्छिन्नं साध्यं प्रति चरकसुश्रुतादौ शाकपाकजलस्य व्यापकत्वावधारणा-देवमन्यत्राप्युक्तम् । ननु नायमुपाधिपदवाच्यः, यद्गुर्भा-ऽन्यत्र भासते स उपाधिः यथा स्फटिकादौ जवाकुसुमादि विषमव्याप्तोपाधौ च व्याप्यत्वाभावात्तद्गुर्भस्य साधनाभि-मतेऽनवभासनादिति चेत् सत्यं समव्याप्त एवार्द्रैर्न्यनप्रभवव-ल्लिमत्त्वादौ मुख्य उपाधिपदप्रयोगः, अन्यत्र तु गौणः, गुणः

वि० च्छेदकं तदवच्छिन्ननिरूपकताकाधिकरणतावदृत्तिरिति यत् हेतु-तावच्छेदकं तद्वत्त्वं व्याप्तिः, गुरुधर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्व-स्वीकाराच्च कम्बुपीवादिमत्त्वान् द्रव्यत्वादिव्यादौ नातिव्याप्तिः, काष्ठी घटवीन् महाकाण्ठादिव्यादौ महाकाण्ठान्यत्वविशिष्ट-

उ० व्यभिचारोन्नायकत्वम्, यद्धि यज्ञापकव्यभिचारि तस्य तद्व्यभिचारित्वनियमात्, भवति च साध्यव्यापकस्योपधेर्व्यभिचारि साधनम्, अतः साध्यव्यभिचारीति, यज्ञापकाव्याप्यं यत् तत् तदव्याप्यम् इति व्याप्यत्वासिद्ध्युन्नायकत्वं वा सप्रतिपत्तोत्थापकत्वं वा पक्षे उपाधेः साध्यथापकस्याभावात् साध्याभावसाधनात् तदुक्तं “वाद्युक्तसाध्यनिष्पत्त्युत्ताऽपि कथकैरुपाधिरुद्धाव्यः पर्यवसितं नियमयन् दूषकताबीजसाभ्यात्” इति, उन्नीयते चायं वाधव्यभिचारानुकूलतर्काभावप्रतिकूलतर्कैः । यत्तु यद्व्यभिचारित्वेन साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वं स उपाधिरिति तत्र तृतीया न करणे न हेतौ न प्रकारे न लक्षणे, न च यद्व्यभिचारित्वे न ज्ञातेन साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वं ज्ञायते इति पूरणीयम् अज्ञायमानोपाध्यव्यापनात् स्फुटव्यभिचारस्यलोपाध्यव्यापनात्, योग्यतागर्भा तु दुर्निरूपा, व्यभिचारोन्नायकत्वमव्यवस्थाप्य उपाध्युद्भावनाशक्यत्वाच्च पक्षेतरत्वन्तु उपाधिलक्षणाक्रान्तमपि स्वव्याघातकत्वान्नोपाधिः यथा पक्षे सन्दिग्धानैकान्तिकत्वम्, यदि हि तत्र न सन्देहस्तदा न पक्षता, यदि पक्षता तदा सन्देहस्यावश्यकतया सन्दिग्धानैकान्तिकत्वप्रैव्यात् अवशिष्टं मयूखेऽन्नेष्टव्यम् ॥ १४ ॥

वि० घटाद्यभावप्रतियोगितामादाय लक्षणसमन्वयः, उक्तयोर्लक्षणयोः सम्बन्धादिनिवेशशास्त्रेः सुधीभिरुहनीया विल्लरभयात् परित्यक्ताऽस्माभिः ॥ १४ ॥

सू० अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसन् सन्दिग्धश्चानपदेशः ॥

॥ १५ ॥

उ० इदानीं वृत्तानां वर्त्तिथ्यमाणाणाञ्च हेतूनां हेत्वा-  
भासाद्विकेकाय हेत्वाभासप्रकरणमारभमाण आह ।

अप्रसिद्ध इति अव्याप्तोऽग्रहीतव्याप्तिको विपरीतव्याप्ति-  
कश्च विरुद्धः एतेन व्याप्यत्वामिद्धविरुद्धयोः संग्रहः, अमन्

वि० प्रसङ्गात् हेत्वाभासं निरूपयति ।

अप्रसिद्धः अप्रमितः व्याप्या पक्षधर्मतया च तथाच यत्र व्याप्तिः  
पक्षधर्मत्वं वा नास्ति स अप्रसिद्ध इतियावत्, असन् साध्यव-  
तीत्यादि साध्यवदवृत्तिविरुद्ध इति फलितार्थः सन्दिग्ध इति  
यतः पक्षे साध्यरूपोधर्म इत्यादिः तथाच साध्यसन्देहजनक-  
पक्षधर्मताज्ञानविषय इत्यर्थः सत्यभिचार इति तु फलितार्थः ।  
चकारादनृक्तयोः गौतमीयतन्त्रोक्तयोः सत्यप्रतिपक्षबाधितयोः  
संग्रहः तथाच हेत्वाभासाः पक्ष अप्रसिद्धविरुद्धसत्यभिचारसत्-  
प्रतिपक्षबाधिताः तादृशपञ्चान्यतमत्वं हेत्वाभाससामान्यलक्षण-  
मित्यर्थः । “विरुद्धासिद्धसन्दिग्धमलिङ्गं काश्यपोऽववीत्” इत्य-  
चाप्युपलक्षणं ज्ञेयम् एवमेव वृत्तिकारः । हेतुवदाभासन्ते इति  
व्युत्पत्त्या हेत्वाभासपदं दुष्टहेतुपरं, हेतोरभासा इति व्युत्पत्त्या  
तु हेतुदोषबोधकमेव तत्, तत्र दोषा अपि पक्षे, तत्र दोषसा-  
मान्यलक्षणं प्रकारान्तरमपि सम्भवति, तथाहि अनाहार्थ्याप्रमा-  
ण्यज्ञानानास्त्वन्दिग्धवृत्तित्वविशिष्टयादृशविशिष्टविषयिता-  
व्याप्तिका पक्षे साध्यवान् साध्यव्याप्यहेतुमांश्वेति समूहालम्बना-  
नुमितित्वव्यापकप्रतिबन्धनानिरूपितप्रतिबन्धकता तादृशविशि-



उ० इति पक्षेऽसन् अपक्षधर्म इत्यर्थः स च क्वचित् स्वरूपविर-  
हात् क्वचित् सन्देहमिषाधयिषयोरभावात् सिद्धसाधने,  
सन्दिग्ध इति पक्षे साध्यसदसत्त्वकोटिकमंशयजनकः, स च  
मंशयः समानधर्मादर्शनात् क्वचिदसाधारणधर्मादर्शनात्

वि० इत्वं हेतुदोषत्वम्, अत्र तादृशविशिष्टान्तराघटितत्वे सतीति  
विशेषणं देयं तेन प्रमेयत्वविशिष्टव्यभिचारादौ नातिप्रसङ्गः  
यद्यपि विशेषगुणसामान्याभाववान् द्वितीयक्षणावच्छिन्नो घटो  
गुणसामान्याभाववानित्यादौ बाधघटिताया आश्रयासिद्धेरसं-  
ग्रहस्तथापि स्वावच्छिन्नविषयकत्वावच्छिन्न यत्किञ्चित् प्रतिबन्ध-  
कतावच्छेदकविषयिताकविशिष्टानिरूपितविषयित्वात्पक्षेऽप्यसा-  
वच्छिन्ननिरूप्यताकधर्मवत्त्वं हेतुदोषत्वमित्यस्य विवक्षितत्वान्न  
दोषः, लक्षणसङ्गमनादिकन्तु सुधीभिः स्वयमूहनीयं विस्तरभ-  
यादुपेक्षितमस्माभिः । निर्व्वङ्गिः पर्व्वतो वङ्गिमानित्यादौ तु  
हेतुदोषो न स्वीक्रियते, अविज्ञाताख्यनियत्तैव वादिनस्तत्र  
नियत्तात् अथवा तादृशविशिष्टविषयकानाहार्थाप्रामाण्य-  
ज्ञानानास्कन्दितनिश्चयोत्तरानुमितित्वव्यापकः विरोधिविषय-  
ताप्रयुक्तः पक्षविशेष्यतानिरूपितसाध्यप्रकारत्व तादृशविशेष्य-  
तानिरूपितसाध्यव्याप्यहेतुप्रकारत्वाभयाभावः तादृशविशिष्टत्वं  
हेतुदोषत्वम् अत्रापि निरुक्तबाधघटिताश्रयासिद्धिसंग्रहाय  
प्रमेयत्वादिविशिष्टदोषवारणाय च स्वविषयताप्रयोज्यविशिष्टा-  
न्तरविषयत्वाप्रयोज्य तादृशोभयाभावप्रयोजकभावाधिकरण-  
ताकत्वं विवक्षणीयं लक्षणसङ्गमनादिकं सुधीभिः स्वयमूहनीयं  
ग्रन्थगौरवभयादिरन्व्यतेऽस्माभिः । तत्रासिद्धिदोषस्त्रिविधः  
स्वरूपासिद्ध्याश्रयासिद्धिव्याप्यत्वासिद्धिभेदात् पक्षे हेत्वभावः

सू० यस्माद्विषाणी तस्मादश्वः ॥ १६ ॥

उ० क्वचित् पक्ष एव हेतोः साध्यतदभावमाह चर्यदर्शनात् आद्यः  
साधारणानैकान्तिकः, द्वितीयस्वसाधारणानैकान्तिकः  
द्वितीयोऽनुपसंहारी ॥ १५ ॥

तत्र व्याप्यत्वासिद्धिविरुद्धस्वरूपाभिद्धानामुदाहरणमाह ।

यत्र रामभण्डं पक्षीकृत्यायमसावश्वः विषाणित्वात्

वि० स्वरूपासिद्धिः, पक्षे पक्षतावच्छेदकाभाव आश्रयासिद्धिः, व्यर्थ-  
विशेषणघटितं हेतुतावच्छेदकम्, साध्ये साध्यतावच्छेदकाभावः,  
साधने साधनतावच्छेदकाभावश्च व्याप्यत्वासिद्धिः, यत्र योऽसि-  
द्धिस्तत्र तद्वाप्योप्यसिद्धिरेव तावदन्यतमत्वम् असिद्धित्वम्, हेतौ  
साध्यसामानाधिकरण्याभावतद्वाप्यौ साध्ये हेतुसामानाधिकर-  
ण्याभावतद्वाप्यौ च विरोधः, तावदन्यतमत्वं विरोधत्वम्, साधार-  
णसाधारणानुपसंहार्यभेदात् व्यभिचारस्त्रिविधः, हेतौ साध्या-  
भाववदृत्तित्वतद्वाप्यौः साधारण्यम् साध्यव्यापकीभूताभावप्रति-  
योगिप्रकृतहेतुरसाधारण्यम्, अव्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यादिकं  
हेतौ व्यतिरेकव्याप्यभावश्चानुपसंहार्यम्, अत्रापि व्याप्योविवक्ष-  
णीयः, साधारण्यद्वित्रितयान्यतमत्वं व्यभिचारत्वम्, साध्याभाव-  
व्याप्यवान् पक्षः सत्यतिपक्षः, साध्याभाववान् पक्षोबाधः,  
असिद्ध्यादिपक्षदोषान्यतमत्वं हेतुदोषत्वं स्वज्ञानविषयप्रकृत-  
हेतुतावच्छेदकवत्वसम्बन्धेन दोषवान् हेतुर्दुष्ट इत्यपि केचित् ॥  
॥ १५ ॥

हेत्वाभासानामुदाहरणमाह ।

यत्र शशादिः पक्षः अश्वत्वं सार्थं विषाणित्वं हेतुस्तत्र पक्षैव  
हेतुदोषाः सन्ति तत्समन्वयः स्वयमृहनीयः ॥ १६ ॥

सू० यस्माद्विषाणी तस्मान्नौरिति चानैकान्तिक-  
स्योदाहरणम् ॥ १७ ॥

उ० यस्तु नृश्वो नामौ विषाणी, यथा शशशृङ्गालनरवानरा-  
दिरिति व्यतिरेकसहचारदर्शनाहितव्यामोहः प्रयुङ्क्ते, तत्र  
व्याप्यत्वामिद्धस्वरूपामिद्धविरुद्धानामुदाहरणमिदम् ॥ १६ ॥  
अनैकान्तिकमुदाहरति ।

यत्र महिषं पक्षयित्वा अयं गौर्विषाणित्वादिति साध-  
यति तत्र साधारणानैकान्तिकता, यदा त्वाकाशं नित्यं  
शब्दाश्रयत्वादिति साधयति तदाऽस्यासाधारणानैकान्ति-  
कता, एवं शब्देऽनित्यः शब्दत्वादित्याद्यप्यगृह्यमाणदशा-  
यामसाधारणानैकान्तिकमेव, यदा तु विपक्षबाधकतर्का-  
वतारात् पक्ष एव साध्यं मिञ्चेत् तदा सपक्षवृत्तितान्त्रान-  
दशायां सङ्घेतुरेव पक्षस्यापि सपक्षत्वात् तत्र व्याप्तपक्ष-  
धर्मतयाऽप्रमितोऽमिद्धः स च त्रिविधः व्याप्यत्वामिद्धः स्वरू-  
पामिद्धः आश्रयामिद्धश्च तत्रागृहीतव्याप्तिकोव्याप्यत्वा-  
मिद्धः, सत्या एव व्याप्तेरग्रहात् व्याप्तेरभावाच्च उभयथाऽ-  
पि, तेनानुकूलतर्काभावादयोऽमिद्धभेदाः, सचायमसमर्थ-  
विशेषणा समर्थविशेष्या समर्थोभय सन्दिग्धासमर्थविशेषण-

वि० सव्यभिचारस्योदाहरणमाह ।

अत्र यदि गोपिण्डस्य पक्षता तदा बाधः सत्यतिपक्षश्च नास्ति यदि  
महिषपिण्डादिः पक्षः तदा तावपि विद्येते अत्र गौत्वाभाववृत्ति-

उ० सन्दिग्धासमर्थविशेष्य सन्दिग्धासमर्थाभयभेदप्रपञ्चेन सह-  
स्रधा भिद्यते, सर्वत्र चात्र सिद्धिविरह एवोद्भाव्यः । अत्रेदं  
तत्त्वम् हेतुस्त्वावत् केवलान्वय्यन्वयव्यतिरेकिकेवलव्यतिरे-  
किभेदान्निविधः तत्र सर्वधर्मिगतो धर्मः केवलान्वयी  
यथा प्रमेयत्वाभिधेयत्वविशेष्यत्वविशेषणत्वनिवृत्त्यात्यन्ता-  
भावाश्रयनाशनाश्रयणादिध्वंसात्यन्ताभावादयः, न ह्यस्ति  
तादृशं किञ्चित्, यत्रैते धर्मा न विद्यन्ते, तथाच सर्वगतत्वम्  
अत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं वा केवलान्वयित्वम् एतेषाञ्च  
स्वात्मवृत्तित्वेऽपि न दोषः तदुक्तं “प्रमाणं शरणं वृत्तौ  
न भिन्नो भिन्नते यतः” इति केवलान्वयिसाध्यकोहेतुः  
केवलान्वयी अस्य च सप्तसत्त्वसप्तसत्त्वाबाधिमत्वासत्प्रति-  
पक्षितत्वानि चत्वारि रूपाणि गमकतौपयिकानि, अन्व-  
यव्यतिरेकिणस्तु हेतोर्विपक्षासत्त्वेन सह सञ्च, केवलव्यतिरे-  
किणः सप्तसत्त्वव्यतिरेकेण चत्वारि, तथाच यस्य हेतो-  
र्यावन्ति रूपाणि गमकतौपयिकानि तदन्यतररूपहीनः  
स हेतुराभासः एवञ्च गमकतौपयिकान्यतररूपपूहन्यत्वं  
हेत्वाभासत्वं तेनान्यतररूपपूहन्यत्वस्य निश्चयवत्सन्देहोऽ-  
प्यनुमितिप्रतिबन्धकः वादिहेतोरसाधकतासाधकः नच  
केवलान्वयिकेवलव्यतिरेकिणोर्हेत्वादन्यतररूपपूहन्यतया हे-  
त्वाभासत्वापत्तिः केवलान्वयिनि विपक्षामत्वस्य केवलव्य-

वि० विषयित्वं साधारण्यम्, गोत्वव्यतिरेकव्याप्त्यभाववद्द्विषयित्वम्  
अनुपसंहर्त्यम्, असाधारण्यं तु अत्र नास्ति एवं गोत्वव्याप्त्यभा-

७० तिरेकिणि सपक्षसत्त्वस्य गमकत्वौपयिकत्वाभावात् एवञ्चा-  
 श्रयासिद्धस्वरूपासिद्धभागासिद्धानां पक्षसत्त्वरूपविरहादा-  
 भासत्वम्, व्याप्यत्वासिद्धविरुद्धसाधारणानैकान्तिकानां वि-  
 पक्षसत्त्वरूपवैकल्यात्, असाधारणानैकान्तिकानुपसंहारि-  
 णोः सपक्षसत्त्ववैकल्यात्, बाधितसत्प्रतिपक्षितयोरबाधि-  
 तत्वासत्प्रतिपक्षितत्वविरहात्, एवं सोपाधित्वाप्रयोजकत्वयो-  
 रपि विपक्षसत्त्वनिश्चयाभावादगमकत्वम्, अनुकूलतर्का-  
 भावप्रतिकूलतर्कयोरपि विपक्षसत्त्वनिश्चयविरहात्, एवं  
 साध्यविकलसाधनविकलोभयविकलदृष्टान्ताभासानां यदि  
 हेत्वाभासविधया दोषत्वं तदा संपक्षसत्त्वानिश्चयात्, यदि  
 स्वातन्त्र्येण दृष्टान्ताभासतया तथापि द्वारं हेतोः सपक्ष-  
 सत्त्वानिश्चय एव, अनुपदर्शितान्वयानुपदर्शितव्यतिरेकास्तु  
 न्यूनाप्राप्तकालनियहस्थानपर्यवसन्ना एव, आत्माश्रयान्यो-  
 न्याश्रयचक्रकानवस्थास्तु व्याप्तिनिश्चयं विघटयन्तः सपक्ष-  
 सत्त्वविपक्षसत्त्वान्यतररूपविकला एव हेत्वाभासतामासा-  
 दयन्ति, तत्र पक्षे साध्यसदसत्त्वकोटिकसंशयजनको हेत्वा-  
 भासः सव्यभिचारः, पक्षे साध्याभावनिश्चयफलको हेत्वा-  
 भासो विरुद्धः, व्याप्तिपक्षधर्मताप्रमितिविरहोऽसिद्धः, बाध-  
 सत्प्रतिपक्षौ तु काश्यपीये मते न स्वतन्त्रौ तत्र बाध  
 आश्रयासिद्धावनैकान्तिके वा पर्यवस्यति तदुक्तं “बाधा-

वि० ववद्विषाशिलं व्याप्यत्वासिद्धिरप्यत्र वर्तते हेत्वाभासविशेषायां  
 सत्त्वम् उदाहरणञ्च स्वयमूह्यं विस्तरभयात्त्वक्तमस्माभिः ॥ १७ ॥

सू० आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्यन्निष्पद्यते तदन्यत् ॥

॥ १८ ॥

उ० यामपक्षधर्माहेतुरनैकान्तिको वा” इति सत्प्रतिपक्षोऽप्य-  
न्यतरत्र व्याख्यादिसंशयमापादयन् अनैकान्तिकादावेव  
पर्यवस्यति । वृत्तिकारस्तु “अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसन् सन्दि-  
ग्धज्ञानपदेश” इति सूत्रस्य चकारस्य बाधसत्प्रतिपक्षसमुच्च-  
यार्थतामाह तेन “सव्यभिचार विरुद्ध प्रकरणसम साध्य-  
समातीतकालाः पञ्च हेलाभासा” इति गौतमीयमेव मत-  
मनुधावति, परन्तु “विरुद्धासिद्धसन्दिग्धमलिङ्गं काश्च-  
पोऽब्रवीत्” इत्याद्यभिधानात् सूत्रकारस्वरसोहेलाभास-  
त्रिले, चकारसूत्रसमुच्चयार्थ इति तत्त्वम्, यन्त्यगौरवभयात्  
प्रपञ्चो न कृतो मयूखे विस्तरोऽन्वेष्टव्यः ॥ १७ ॥

इदानीं हेलाभासविवेचनस्य फलमाह ।

आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षान्तावज्ज्ञानमुत्पद्यते .तच्चात्मनि  
लिङ्गम् असिद्धविरुद्धानैकान्तिकेभ्योऽन्यत् अनाभासमि-  
त्यर्थः । तथाहि ज्ञानमात्मन्युभयथा लिङ्गम्, ज्ञानं कचि-  
दाश्रितं कार्यत्वाद्रूपादिवदिति वा, प्रत्यभिज्ञारूपतया वा  
योऽहमद्राचं सोऽहं स्पृशामीति, तत्र ज्ञानगतं कार्यत्वं ना-

वि० आत्मनि प्रमाणान्तरमपि दर्शयति । यद्वात्मसाधकोहेतुर्न  
हेलाभास इत्याह ।

आत्मरूपो य इन्द्रियार्थस्तत्र यः सन्निकर्षः अर्थात्मनसः, आत्म-  
मनःसंयोग इति यावत् तस्मात् यज्ज्ञानमुत्पद्यते अहं सुखीत्या-

उ० सिद्धं यन्निष्पद्यत इत्यभिधानात्, न विरुद्धं सामान्यतोदृ-  
ष्टेऽत्र विरोधाभावात्, न चानैकान्तिकम्, तत एव, तथाच  
स्वगतकार्यत्वगुणत्वद्वारा सामान्यतोदृष्टेन ज्ञानमेवात्म-  
नि लिङ्गम्, प्रत्यभिज्ञानन्तु भिन्नकर्मकेभ्योव्यावर्त्तमानमे-  
ककर्मकतायां पर्यवस्यति नच बुद्धिचेतन्येऽपि कार्यकारण-  
भावनिवन्धनमेव प्रतिसन्धानम्, शिष्यगुरुबुद्धोरपि प्रतिसं-  
न्धानप्रसङ्गात् । उपादानोपादेयभावस्तत्र नास्ति स च  
प्रतिसन्धानप्रयोजक इति चेदुपादानत्वस्य द्रव्यधर्मतया  
बुद्धावसम्भवात्, सम्भवे वा बुद्धीनां क्षणिकतया पूर्वानुभूत-  
प्रतिसन्धानानुपपत्तेः, नहि पूर्वबुद्ध्या उत्तरासु बुद्धिषु  
कश्चित् संस्कार आधीयते, स्थिरस्य तस्य त्वयाऽनभ्युपगमात्,  
क्षणिकबुद्धिधारारूपस्य च कालान्तरस्यैतौ प्रतिसन्धानेवा-  
ऽसामर्थ्यात्, आलक्ष्यविज्ञानसन्तानः प्रवृत्तिविज्ञानसन्ताना-  
दन्य एव स्मर्त्ताच प्रतिसन्धाता चेति चेत् स यदि स्थिरः तदा  
सिद्धं नः समोहितम्, क्षणिकबुद्धिधारारूपस्येत् तदा पूर्व-  
दोषानतिवृत्तेः, नहि तत्रापि स्थिरः कश्चित् संस्कारः । किञ्च  
प्रवृत्तिविज्ञानातिरिक्ते तत्र प्रमाणाभावः । अहमिति  
बुद्धिधारैव प्रमाणमिति चेत् भवतु तत्र यदि प्रवृत्तिविज्ञा-

वि० याकारकं तदन्यत् तत् ज्ञानम् अनुमानादन्यत् आत्मनि प्रमाणा-  
मिति शेषः आत्ममनःसंयोगजन्यज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वज्ञापनाय एवं  
वक्रोक्तिः, इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमिति प्रत्यक्षत्वज्ञानात्,  
यद्यपि तादृशप्रत्यक्षं न शरीरादिभिन्नात्मसाधकं तथाप्यात्म-

उ० नान्यालयविज्ञानमेव चेदुपादत्ते तदा प्रवृत्तिविज्ञाना-  
नामुपादानताविरहे निमित्तताऽपि न स्यात् उपादा-  
नताव्याप्तत्वात्निमित्ततायाः, माऽस्तु निमित्तताऽपीति चेत्  
तर्हि सत्त्वमपि गतम्, अर्थक्रियाकारित्वस्य सञ्चलक्षणत्वात्  
प्रवृत्तिसन्तानालयविज्ञानसन्तानाभ्यां सम्भूय सन्तान-  
द्वयमुपादीयत इति चेत् तर्हि किमपराद्भूमवयवि-  
संयोगादिभिः, व्यासज्यवृत्तितयास्वयाप्यभ्युपगमात् त-  
स्माज्ज्ञानेनाश्रयतयाऽनुमितमात्मानं प्रतिसन्धानं स्थिर-  
त्वेन साधयतीति न किञ्चिदनुपपन्नम् । यद्वा नित्या  
बुद्धिर्नात्मानं कारणत्वेन गमयितुमर्हतीति-साङ्ख्यमत-  
निरासाय सूत्रमिदमुपतिष्ठते “आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्  
यन्निष्पद्यते तदन्यत्” बुद्धितत्त्वं यत्त्वयोच्यते तज्ज्ञानमेव,  
बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानमिति हि पर्यायाभिधानं, तच्चात्मा-  
दिसन्निकर्षादुत्पन्नम् अन्यदेव त्वदभ्युपगतादन्तःकरणा-  
दित्यर्थः तथाच भवति तत् आत्मनोलिङ्गमितिभावः ॥

॥ १८ ॥

वि० मात्रसाधकतायास्त्वन्न निराबाधतैवेतिभावः अथवा यन्निष्पद्यते  
इत्यन्तेन ज्ञानमेव प्रतिपाद्यते, तदन्यदित्यस्य च तत् ज्ञानम्  
आत्मानुमापकं हेत्वाभासादन्यत् इत्यर्थः, तथाच ज्ञानं द्रव्याश्रितं  
गुणत्वादित्यस्माकं यच्चात्मसाधको हेतुः स न हेत्वाभासः किन्तु  
ज्ञानं शरीराश्रितं तत्कार्यत्वादित्यादिना त्वयोद्भावितो हेतुरेव  
हेत्वाभास इतिभावः ॥ १८ ॥



सू० प्रवृत्तिनिवृत्तौ च प्रत्यगात्मनि दृष्ट परत्र लिङ्गम् ॥ १६ ॥

उ० आत्मन्यनुमानमभिधाय इदानीं परात्मानुमानमाह ।  
प्रत्यगात्मनीति स्वात्मनीत्यर्थः, इच्छाद्वेषजनिते प्रवृत्तिनिवृत्तौ प्रयत्नविशेषौ ताभ्याञ्च हिताहितप्राप्तिपरिहारफलके शरीरकर्माणी चेष्टालक्षणे जन्येते तथाच परशरीरे चेष्टां दृष्ट्वा इयं चेष्टा प्रयत्नजन्या चेष्टात्वात् मदीयचेष्टावत्, स च प्रयत्न आत्मजन्यः आत्मनिष्ठो वा प्रयत्नत्वात् मदीयप्रयत्नवदिति परात्मानुमानम् ॥ १६ ॥

इति शाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्कारे तृतीयाध्यायस्याद्यमाङ्गिकम् ॥ \* ॥

वि० परात्मनि प्रमाणमाह ।

प्रवृत्तिरुत्कटरागजन्यः प्रयत्नविशेषः निवृत्तिरुत्कटद्वेषजन्यो यत्नविशेषः ते च प्रत्यगात्मनि स्वात्मनि दृष्टे साक्षात्कृते परत्र परात्मनि लिङ्गमिति सौत्रमेकवचनं परात्मसाधकानुमितिसम्पादिके इत्यर्थः, चैत्रशरीरादिगता चेष्टा चेतनप्रयत्नसाध्या चेष्टात्वात् मच्छरीरचेष्टावदित्यनुमाने साध्यतावच्छेदककोटौ परात्मनः सिद्धेरिति । यद्यपि गमनादिक्रियायां प्रवृत्तिरेव हेतुर्दृश्यते नतु निवृत्तिरिति तथापि हिंसादिनिवृत्तितो गन्तव्यदेशावस्थितानां क्षुद्रजनूनां व्यजनादिना अपसारणादिरूपा चेष्टाऽपि दृश्यत एवेति नानुपपत्तिरिति संक्षेपः ॥ १६ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-कृतायां कणादसूत्रविरतौ तृतीयाध्यायस्याद्यमाङ्गिकम् ॥ \* ॥

सू० आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावाऽभावश्च  
मनसोलिङ्गम् ॥ १ ॥

उ० हेतुहेत्वाभासविवेकः आङ्गिकार्थः । इदानीमात्मप-  
रीक्षाशेषं वर्त्तयिष्यन् उद्देशक्रमलङ्घनेन मनःपरीक्षामव-  
तारयन्नाह ।

मनोगतिमात्मनोलिङ्गं वक्ष्यति तद् यदि मनो ज्ञान-  
करणत्वेन मूर्त्तत्वेन च परीक्षितं भवति तदा यत्पेरितं  
मनः इन्द्रियान्तरादभिमतविषयग्राहिणि इन्द्रिये सम्बध्यते  
स आत्मेति सिद्धं भवतीत्येतदर्थं क्रमलङ्घनम् । आत्मेन्द्रि-  
यार्थसन्निकर्षे सति यस्मिन् इन्द्रियसन्निकृष्टे ज्ञानस्य भावः  
उत्पादः, असन्निकृष्टे ज्ञानस्याभावोऽनुत्पादस्तन्मन इत्यर्थः  
ननु मनोवैभवेऽपि करणधर्मात्वादेव ज्ञानाद्योगपद्यमुपपद्यते  
किञ्च मनो विभु विशेषगुणशून्यद्रव्यत्वात् कालवत् ज्ञाना-  
समवायिकारणसंयोगाधारत्वादात्मवत् स्पर्शात्यन्ताभाव-  
वत्त्वादाकाशवदित्यादि वैभवसाधकं प्रमाणमिति चेत्  
मैवं यदि मनो विभु स्यात्तदा सर्व्वेन्द्रियसन्निकृष्टात्ततः  
सर्व्वेन्द्रियकमेकमेव ज्ञानं स्यात्, कार्य्यविरोधान्नैवमिति चेन्न

वि० आत्मपरीक्षाशेषसम्पादकं मनो निरूपणमारभते ।

आत्मा च इन्द्रियस्य अर्थश्च ते आत्मेन्द्रियार्थास्तेषु यः सन्निकर्ष-  
स्तस्मिन् सतीत्यर्थः अत्रात्मनि इन्द्रिये च मनसः संयोगरूपः  
सन्निकर्षः, अर्थे च रूपादौ चक्षुरादेः सन्निकर्षो बोध्यः तथाच

उ० नहि सामग्री विरोधाविरोधमाकलयति येन चाक्षुषत्व-  
 रासनत्वादिविरोधाय विभेत्, चित्ररूपवत् चित्राकार-  
 मेव वा स्यात्, भवत्येव दीर्घशक्कुलोभचर्णस्थले इति चेन्न  
 तत्रापि व्यासङ्गदर्शनात्, तर्हि रूपरसगन्धस्पर्शान् युगपत्  
 प्रत्येमीति कथमनुव्यवसाय इति चेन्न शीघ्रसञ्चारिमनो-  
 जनितेषु पञ्चसु सृष्ट्युपनीतज्ञानेषु यौगपद्याभिमानात्,  
 व्यासङ्गेऽपि करणधर्माधीन इति चेन्न उक्तोत्तरत्वात्,  
 बुभुक्षाधीनो व्यासङ्ग इति चेन्न सर्व्वबुभुक्षायां सर्व्वविषय-  
 कसर्व्वीदयप्रसङ्गात् बुभुक्षाया अपि अभिमतार्थग्राहीन्द्रि-  
 यमनःसम्बन्धमात्रफलकत्वात् तस्माज्ज्ञानायैगपद्यान्यथा-  
 नुपपत्त्या सिध्यति अणु मनः, ततो धर्मिग्राहकमानवाधिताः  
 वैभवहेतवः किञ्च मनोवैभवे पादे मे सुखं शिरसि मे वेद-  
 नेति प्रादेशिकत्वं सुखादीनां न स्यात् विभुकार्याणाम-  
 समवायिकारणावच्छिन्नदेशे उत्पादनियमात्, तवापि  
 सुखादीनामणुदेशापत्तिरिति चेन्न असमवायिकारणं विभु-  
 कार्यां स्वदेशे जनयत्येवेति नियमात् तथाच निमित्त-

वि० चक्षुर्मनोयोगदशायां सत्यां रासनप्रत्यक्षसामग्र्यां चाक्षुषमेव  
 भवति न रासनादिकमिति तन्नियामकतयाऽवश्यं अणु मनः  
 स्वीकार्यं तथाच मनसोऽणुतया नैकदा द्वाभ्यामिन्द्रियाभ्यां योगः  
 किन्तु येन योगस्तदेव प्रत्यक्षं जनयति नेतरत्, न च ज्ञानसा-  
 मान्यं प्रति त्वङ्गनोयोगस्य हेतुतया चक्षुर्मनोयोगदशायां कथं  
 त्वङ्गनोयोग इति वाच्यं त्वगिन्द्रियस्य देहव्यापित्वेन मनसश्चक्षुषा

सू० तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥ २ ॥

उ० चन्दनाद्यवच्छेदादधिकदेशेऽपि जननाविरोधात्, ममापि निमित्तसमवधानानुरोध इति चेन्न उक्तनियमभङ्गप्रसङ्गात् किञ्चात्मना विभुनो मनसः संयोगेऽपि कथं स्यात्, अजोऽसाविति चेन्न विभागस्याप्यजत्वप्रसङ्गात्, अवच्छेदभेदेनो- भावष्यविरुद्धाविति चेन्न संयोगविभागयोरवच्छेदभेदस्य स्वकारणाधीनत्वात् अजयोस्तु तदभावादितिदिक् ॥ १ ॥

ननु सुखाद्युपलब्धिः करणसाध्या क्रियात्वात् रूपोपल-  
ब्धिवदित्याद्यनुमानात्. युगपज्ज्ञानानुत्पत्त्या वा यन्मनः  
सिद्धं तत्करणतया तथाच तस्य द्रव्यत्वं नित्यत्वञ्च कुत इत्यत  
आह ।

यथाऽवयवविद्रव्यानुमितो वायुपरमाणुर्गुणवत्त्वात् क्रियाव-  
त्त्वाच्च द्रव्यम्, तथा युगपज्ज्ञानानुत्पत्त्याऽनुमितं मनो गुण-  
वत्त्वाद्द्रव्यं, नहि तस्य दन्द्रियसंयोगमन्तरेण ज्ञानोत्पादकत्वं

वि० संयोगदशायां त्वचापि संयोगसम्भवात् नच चाक्षुषकाले त्वचा-  
पत्तिरिति वाच्यं त्वचं प्रति चाक्षुषसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वस्थाना-  
यत्त्या कल्पनात् चर्ममनःसंयोगस्यैव ज्ञानसामान्यं प्रति हेतु-  
तायाः पक्षधरमिन्द्रादिसम्मतत्वेनोक्तापत्त्यसम्भवाच्चेति संक्षेपः  
॥ १ ॥

ननु भवतु मनसः सिद्धिस्तथापि मनसो नित्यत्वं द्रव्यत्वञ्च कथं  
स्वीकर्त्तव्यमित्यत आह ।

यथा वायवोयपरमाणौ अरम्भकसंयोगादिरूपगुणवत्त्वाद्

सू० प्रयत्नायौगपद्याज्ञानायौगपद्यासैकम् ॥ ३ ॥

उ० येन गुणवत्त्वं न स्यात् किञ्च सुखादिमाचात्कारः इन्द्रिय-  
करणकः साचात्कारत्वात् रूपादिमाचात्कारवदितोन्द्रि-  
यत्वेन मनः सिद्धम्, इन्द्रियत्वञ्च ज्ञानकारणमनमर्थो -  
अथत्वमित्यतस्मिद्धमेव मनसोद्रव्यत्वम्, नित्यत्वञ्च ज्ञान-  
नाश्रितत्वात्, तस्यावयवकल्पनायां प्रमाणाभावाद्नाश्रित-  
त्वमिति ॥ २ ॥

तत् किं प्रतिशरीरमेकमनेकं वेति सन्देहे निर्णायक-  
माह ।

मनः प्रतिशरीरमितिशेषः यद्येकैकस्मिन्नपि शरीरे  
बहूनि मनांसि स्युस्तदा ज्ञानप्रयत्नानां यौगपद्यं स्यात्  
यत्तु नर्त्तकीकरचरणाङ्गुलीषु युगपत् कर्मदर्शनाद्युगपदेव  
बहवः प्रयत्ना उत्पद्यन्ते इति मृतं तदयुक्तं मनसः शीघ्रस-

वि० द्रव्यत्वं तदवयवकल्पनायां प्रमाणाभावान्नित्यत्वं तथा ज्ञानजनक-  
संयोगादिरूपगुणवत्त्वात् तदुत्पादविनाशयोः प्रमाणाभावाच्च  
मनस्यपि द्रव्यत्वं नित्यत्वञ्चेत्यर्थः ॥ २ ॥

प्रतिशरीरं मनस एकत्वं व्यवस्थापयति ।

यदङ्गेन मनसः संयोगो यदा भवति तदा तदङ्गावच्छेदेन प्रयत्न  
उत्पद्यते नान्यावच्छेदेन एवञ्च मनसो नानात्वे एकदाऽङ्गद्वयेनापि  
एकैकस्य मनसः संयोगसम्भवात् प्रकलद्वयमुत्पद्येत् नच विंशत्य-  
ङ्गुल्यवच्छेदेन एकदैव विंशतिः प्रयत्ना उत्पद्यन्ते कथमन्यथा एक-  
दैव तेषां क्रिया उत्पद्यन्ते इति वाच्यम् उत्पन्नपञ्चशतव्यतिभेद इव

उ० स्रारादेव तदुपपत्तेः अविनश्यदवस्थयोग्यात्मविशेषगु-  
णानां यौगपद्यानभ्युपगमात् । एतेनैकस्मिन्नपि शरीरे पञ्च  
मनांसि तेषां द्वित्रिचतुःपञ्चानां तत्तदिन्द्रियसंयोगे  
द्वे त्रीणि चत्वारि पञ्च वा ज्ञानानि युगपज्जायन्ते इति  
मतं निरस्तं कल्पनागौरवप्रसङ्गात्, यौगपद्याभिमानस्तु  
समर्थित एव, रसनेन्द्रियावच्छेदेन त्वगिन्द्रियसम्बन्धेन मन-  
सस्तिक्तो गुड इति ज्ञानद्वययौगपद्यापत्तिरपि करणध-  
र्मत्वादेव नास्ति, द्वित्रिच्छिन्नगोधाभुजगादावपि अवयव-  
द्वये कर्म खङ्गाद्यभिघाताद्वा मनस आशु स्रारादा  
तदानीमेक्षादृष्टेन पाण्डमनोन्तरग्रहणाद्वा । यत्तु मनो-  
व्ययव्येव जलौकावत् तत्सङ्कीचविकाशाभ्यां ज्ञानयौगपद्या-

वि० तासु यौगपद्यप्रतीति र्भ्रमरूपत्वात् मनस आशु स्रारादेव भिन्न-  
भिन्नक्षणेषु तासामुत्पादात्, एवं मनसो नानात्वे युगपदेव प्राण-  
रसनादिभिः सह तेषामेकैकस्य संयोगसम्भवात् प्राणज रासना-  
दीनामपि युगपदुत्पादापत्तिरतः प्रतिशरीरं मन एकमेव नतु  
नानेत्यर्थः । ननु च्छिन्नवृश्चिकादिखण्डद्वय एव क्रियादर्शनात्मन-  
सो नानात्वमावश्यकमिति चेन्न तदानीमदृष्टब्रह्मेण मनोन्तर-  
सन्निवेशादेव तत्सम्भवात् अन्यत्र प्रयत्नायौगपद्यस्य ज्ञानायौ-  
गपद्यस्य च प्रामाणिकत्वेन मनसो नानात्वस्वीकारस्य कर्तुमश-  
क्यत्वादिति । कूर्मशुण्डादिवत् मनसः सङ्कीचविकाशाभ्यामेव  
प्रयत्नानां ज्ञानानाञ्च यौगपद्यायौगपद्ययोर्निर्व्वाहः वस्तुत एकमे-  
वैकस्मिन् शरीरे मन इति केचित् तदपि न मनोरमम् अच्यन्ता-  
वयवानां तत्प्रागभावानां तत्प्रध्वंसानाम् अनन्ततत्परमाणूनाञ्च

सू० प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रिया-

उ० यौगपद्ये इति तत् तदवयवकल्पनागौरवप्रतिहतमिति  
दिक् ॥ ३ ॥

इदानीं कमलङ्घनप्रयोजनमादर्शयन्नेवात्मपरीक्षाशेषं  
वर्त्तयिष्यन्नाह ।

प्रसिद्धिज्ञानमेव केवलमात्मनो लिङ्गमिति न मन्तव्यं  
प्राणादयोऽपि सन्ति आत्मनो लिङ्गानि तथाहि शरी-  
रान्तश्चारिणि समीरणे प्राणापानलक्षणे ऊर्द्धाधोगतो  
उत्क्षेपणावक्षेपणे मुषलादावित्रप्रयत्नं विनाऽनुपपद्यमाने  
यस्य प्रयत्नाद्भवतः स नूनमात्मा, नहि तिर्यग्गमन-  
स्वभावस्य वायोरेवं स्वभावविपर्ययोऽविना प्रयत्नात्, न च  
विरुद्धदिक्क्रिययोर्वाय्वोः सलिलयोरिवोर्द्धगतिः स्यादिति  
वाच्यम् एवं सत्यूर्द्धगमनमेव स्यान्नलधोगमनं फुत्कारादौ  
वा तिर्यग्गमनम्, तथाचास्ति कश्चित्, यः प्रयत्नेन वायु-  
मूर्द्धमधो वा प्रेरयति, सुषुप्तिदशायां कथं प्राणापानयोर्-

वि० कल्पने महागौरवादिति संक्षेपः । एकमित्यनेन प्रथमसूत्रस्थस्य  
मनस इत्यस्य विभक्तिविपरिभागेन प्रथमान्ततयाऽन्वयः ॥ ३ ॥

आत्मसाधकानि लिङ्गान्तराख्यपि सन्तीत्याह ।

प्राणादयोऽपि आत्मनो लिङ्गानि तथाहि तिर्यग्गमनस्वभाव-  
वायुविशेषस्य प्राणस्योर्द्धगमनम् अधोपानस्याधोगमनं वा चेतन-  
प्रयत्नसाध्यम् ऊर्द्धगतित्वात् अधोगतित्वाद्वा लोष्टाद्यूर्द्धाधोगति-  
वत् इत्यनुमानेनात्मसिद्धिः, न च सुषुप्तौ प्रयत्नाभावेन तदानी-

सू० न्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाद्यात्मनो  
लिङ्गानि ॥ ४ ॥

उ० उर्द्धाधोगती इति चेन्न तदानीं योग्यप्रयत्नाभावेऽपि प्रयत्नान्तरस्य सद्भावात् स एव जीवनेयानिः प्रयत्न इत्युच्यते एवं निमेषोन्मेषावपि शरीरस्थाधिष्ठातारमनुमापयतः तथाहि निमेषस्तावत् अक्षिपक्ष्णोः संयोगजनकं कर्म उन्मेषस्तयोरेव विभागजनकं कर्म एते च कर्मणी नोदनाभिघातादिदृष्टकारणमन्तरेण निरन्तरमुत्पद्यमाने प्रयत्नं विना नोत्पद्येते यथां दारुपुत्रकनर्त्तनं कस्यचित् प्रयत्नात् तथाऽक्षिपक्ष्णनर्त्तनमपि, तेन प्रयत्नवाननुमीयते, एवं जीवनमप्यात्मलिङ्गं तथाहि जीवनपदेन लक्षण्या जीवने कार्यं वृद्धिचतस्रसंरोहणादि लक्षयति । तथाच यथा गृहपति भग्नस्य गृहस्य निर्माणं करोति, लघीयो वा गृहं वर्द्धयति तथा देहाधिष्ठाता गृहस्थानीयस्य देहस्याहारादिना वृद्धिमुपचयं करोति चतस्र भेषजादिना प्ररोहयति भग्नञ्च करचरणादि संरोहयति तथाच गृहपतिरिव देह-

वि० न्तनतादृशक्रियायामंशतोबाध इति वाच्यं तदानीमपि जीवनेयोनियत्नस्य सत्त्वात् एवमक्षिपक्ष्णयोः संयोगजनकं कर्म निमेषः तयोर्विभागजनकं कर्म उन्मेषस्तयोरपि दारुपुत्रकनर्त्तनदृष्टान्तेन चेतनप्रयत्नसाध्यत्वनुमानं बोध्यम्, तथा जीवनं देहस्य वृद्धिचतस्रसंरोहणादिकं जीवनकार्यमित्यर्थः तच्चाधिष्ठातारमनु-



उ० स्याद्यधिष्ठाता सिध्यतीति, एवं मनोगतिरप्यात्मलिङ्गं तथाहि मनस्तावन्मूर्त्तमणु चेति पूर्वप्रकरणे साधितम्, तस्य चाभिम-  
 तविषयग्राहिणि इन्द्रिये निवेशनम् इच्छाप्रणिधानाधीनम्,  
 तथाच यस्मिच्छाप्रणिधाने मनः प्रेरयतः स आत्मेत्यनुमी-  
 यते यथा गृहकोणावस्थितोदारकः कन्दुकं लाक्षागुटकं वा  
 गृहाभ्यन्तर एव इतस्ततः प्रेरयति, ननु दारुपुत्रनर्त्तयित्वा  
 गृहपतिं दारको वा न शरीरादन्यो यो दृष्टान्तः स्यात् किञ्च  
 शरीरमेव चैतन्याश्रयः अहङ्कारास्पदत्वात्, भवति हि गौ-  
 रोऽहं मूलोऽहमित्याद्यहङ्कारसामानाधिकरणेन प्रत्ययः  
 यत्तु बाल्येऽनुभूतं यौवने वार्द्धके वा स्मरति तत्र चैत्रमैत्रव-  
 च्छरीरभेदेऽपि स्मरणं न स्यात् “नान्यदृष्टं स्मरत्यन्य” इति  
 तत्र चैत्रमैत्रयोर्भिन्नसन्तानत्वेन प्रतिसन्धानं माऽस्तु बाल्य-  
 कौमारभेदेऽपि सन्तानैकत्वात् कार्यकारणभावेन प्रतिस-  
 न्धानमुपपत्स्यत इति तत्र ब्रूमः पित्राऽनुभूतस्य पुत्रेणापि  
 स्मरणप्रसङ्गः, तत्र शरीरभेदग्रहाबाधक इति चेत् वृद्धेन  
 बालशरीराद्भेदेनैव स्वशरीरस्य ग्रहात् प्रतिसन्धानानुपपत्तेः  
 अनुपलब्धपितृकस्य बालस्य शरीरभेदाग्रहस्यापि सत्त्वात्

वि० मापयति यथा गृहाधिष्ठाता ऋखं गृहं वर्द्धयति भग्नश्च  
 संस्फुरते तथा देहस्याहारादिना र्वाजं जनयति भग्नश्च करचर-  
 णादिकम् औषधादिना संरोद्धयति कश्चित्तनोऽधिष्ठातेति,  
 एवमगुणतया व्यवस्थितस्य मनसोऽभिज्ञितज्ञानसाधनेन्द्रिये गति-  
 रपि चेतनाभिजायाधीनेति साप्यात्मनि लिङ्गं यथा गृहकोणा-

उ० मम शरीरमिति ममकारसामान्येनाहङ्कारस्य भानात्, ममात्मैत्यत्रापि तथेति चेन्न तत्र ममकारस्यौपचारिकत्वात् राक्षोः शिर इतिवदभेदेऽपि षष्ठ्युपपत्तेः, हिंसादिफलञ्च कर्त्तरि न स्यात् शरीरस्यान्यान्यत्वात्, पातकभिच्छतोभूतचै- तनिकस्य कृतहानमकृताभ्यागमस्य दोष इति दिक् । इन्द्रियान्तरविकारात् खल्वपि दृश्यते हि नागरङ्गस्य चिर- विज्ञस्य वा रूपविशेषमदृशितं रसविशेषमनुभूय पुनस्ता- दृशं फलमुपलभमानस्य रसगर्द्धिप्रवर्त्तितो दन्तोदकसंज्ञवः, स च नास्तरसानुमितिमन्तरेण, अनुमितिर्न व्याप्तिस्त्विति- मन्तरेण, सा च न संस्कारं विना, स च न व्याप्यनुभवमन्त- रेण, स च न भूयोदर्शनमन्तरेणेति इयं ज्ञानपरम्परा नैकं कर्त्तारमन्तरेण कार्यकारणभूता सम्भवतीति तथाच गौतमीयं सूत्रम् “इन्द्रियान्तरविकारात्” इति । सुखा- दयस्य ज्ञानवदेवात्मलिङ्गानि द्रष्टव्याः । तथाहि सुखा- दिकं क्वचिदाश्रितं द्रव्याश्रितं वा कार्यवस्तुत्वात् गुणत्वाद्वा रूपादिवदितीतरबाधसहकृतं सामान्यतोदृष्टमेव अष्टद्र- व्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वं विषयीकरोति नहि पृथिव्याद्यः- युकानाश्रिता इच्छा द्रव्याश्रितेति प्रतिज्ञा अष्टद्रव्याति-

वि० वस्थितो बालकः कन्दुकादिकं गृहमध्य एव इतस्ततः प्रेरयति तथात्माऽपि देहावस्थिते इन्द्रिये मनः प्रेरयतीति । ननु इन्द्रिये- ख्वव चैतन्यं स्वीकार्यं देहाधिष्ठातृत्वमपि तेषामेवेत्यत आत्मन इन्द्रियातिरिक्तत्वं साधयति इन्द्रियान्तरविकारा इति चिरवि-

सू० तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना वास्थान्ते ॥ ५ ॥

उ० रिक्तद्रव्याश्रितत्वं प्रकारमनादाय पर्यवस्यति यत्र तु प्रथमं न बाधावतारस्तत्राष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वं व्यतिरेकिमाध्यमिति विभागः, व्यापकतावच्छेदकप्रकारिकैवानुमिति रिति तु तुच्छम्, येन विना प्रतीतिर्न पर्यवस्यति तस्यैतत्र प्रकारत्वात् अन्यथा ज्यणुकं कार्यानाश्रितं सत् क्वचिदाश्रितम् अवयवित्वादित्यादावकार्याश्रितत्वप्रकारिकाऽनुमितिर्न स्यात् ॥ ४ ॥

ननु सिद्धत्वात् आत्मा स्थिरः, स तु नित्य इति कुतः, कुतश्च द्रव्यमित्यत आह ।

यथा वायुपरमाणोरवयवकल्पनायां न प्रमाणमतो नित्यत्वं तथात्मनोऽपि, यथा गुणवत्त्वाद्वायुपरमाणुर्द्रव्यं तथात्माऽपीत्यर्थः ॥ ५ ॥

पूर्वपक्षमाह ।

वि० क्लृप्तद्रव्ये दृष्टे तद्रसस्मरणात् दन्तोदकसंज्ञवरूपरसनेन्द्रियविकारादिन्द्रियव्यतिरिक्ते आत्मा सिद्धतीत्यर्थः सुखादीनां पञ्चानामात्मलिङ्गत्वं ज्ञानवदेव बोध्यम् ॥ ४ ॥

सिद्धे इन्द्रियादिव्यतिरिक्ते आत्मनि तस्य नित्यद्रव्यत्वमतिदोषेन साधयति ।

यथा वायुपरमाणो निर्वयवत्वात् गुणवत्त्वाच्च नित्यद्रव्यत्वं तथात्मनोऽपीत्यर्थः ॥ ५ ॥

पूर्वोक्तमात्मानुमानमाक्षिपति ।

सू० यज्ञदत्त इति सन्निकर्षे प्रत्यक्षाभावादृष्टं लिङ्गं  
न विद्यते ॥ ६ ॥

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥ ७ ॥

उ० सन्निकर्षे सति अयं यज्ञदत्त इति चेत् प्रत्यक्षं नास्ति  
तदा दृष्टं प्रत्यक्षतो गृहीतव्याप्तिकं लिङ्गं नास्ति यथा  
वक्त्रेण प्रत्यक्षेण सहचरितो गृहीतो धूमो वक्त्रो दृष्टं लिङ्गं  
तथात्मसाधकं लिङ्गं दृष्टं नास्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥

ननु प्रत्यक्षदृष्टव्याप्तिकस्य दृष्टलिङ्गस्याभावेऽपि सामा-  
न्यतोदृष्टमेव लिङ्गं भविष्यति नहि ततो नानुमितिरि-  
त्याशङ्क्य पुनः पूर्वपक्षी आह ।

सामान्यतोदृष्टमपि लिङ्गं भवति नतु तत आत्मत्वेन

वि० यज्ञदत्तशरीरे चक्षुरादिसन्निकर्षे सत्यपि तदधिष्ठातुरात्म-  
नश्चाक्षुषाद्यभावात् दृष्टं व्याप्यत्वेन प्रत्यक्षविषयीभूतं लिङ्गं  
नास्तीत्यतः कथमात्मानुमानं सुघटम, वज्रादौ सन्निकर्षे तत्प्र-  
त्यक्षानन्तरं तद्व्याप्तिप्रत्यक्षादज्ञायनुमानन्तु निराबाधमेवेति-  
भावः ॥ ६ ॥

ननु द्रव्यस्वरूपेण द्रव्यान्तरस्य प्रत्यक्षाद्द्रव्याश्रितत्वव्याप्यत्वस्य  
गुणत्वादौ प्रत्यक्षसम्भवादात्मानुमानं न दुर्घटं सामान्यधर्मा-  
वच्छिन्नव्याप्यत्वज्ञानादपि इतरबाधादिस्थले विशेषधर्मप्रकारे-  
णानुमिति सम्भवादित्यत आह ।

सामान्यतोदृष्टात् सामान्यधर्मावच्छिन्नव्याप्यत्वग्रहात् अवि-

## सू० तस्मादागमिकः ॥ ८ ॥

उ० अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वेन वा स्यादात्मसिद्धिः किन्तु तेने-  
च्छादीनां क्वचिदाश्रितत्वमात्रं सिद्धोत् तच्च नात्ममननौप-  
यिकमित्यर्थः तदेतदाह अविशेषं इति ॥ ७ ॥

तत् किं योऽपहतपाप्मा स आत्मा इत्याद्यागमोऽनर्थक  
एवेत्याशङ्क्य स एवाह ।

आगममात्रसिद्ध एवात्मा नत्वनुमेयः दृष्टसामान्यतो-  
दृष्टयोर्लिङ्गयोरभावात् तस्मात् सम्यगुपनिषदां श्रवणात्  
तत्त्वसाक्षात्कार उत्पद्यते नतु मननप्रणालिकया, तथाच  
मननप्रयोजनकमिदं तन्त्वमतन्त्वम्, दृष्टं हि भूतदशक-  
नदीसन्तरणादावुपदेशमात्रादेव साक्षात्कारिज्ञानम् ॥  
॥ ८ ॥

तदेवं त्रिभिः सूत्रैः पूर्वपक्षे सिद्धान्तवाद्याह ।

वि० शेषः विशेषधर्मप्रकारेण नानुमितिः व्यापकतावच्छेदकत्वग्रह-  
स्यैवानुमितिविधेयतावच्छेदकत्वे तन्त्वत्वादित्यर्थः ॥ ७ ॥

पूर्वपक्षी उपसंहरति ।

आगमिक इत्यस्य आत्मेत्यादि यतो गृहीतव्याप्तिकलिङ्गाभा-  
वादात्मनोऽनुमितिर्न सम्भवति अत आत्मा आगममात्रप्रमाणक  
इत्यर्थः । तथा चात्ममननार्थमेतच्छास्त्रं विफलमितिभावः ॥ ८ ॥

समाधत्ते ।

सू० अहमितिशब्दस्य व्यतिरेकान्नागमिकम् ॥ ६ ॥

उ० नागममात्रं प्रमाणमात्मनि किन्त्वहमिति-पदमात्म-  
पदं वा साभिधेयं पदत्वात् घटादिपदवत् इत्यनुमाना-  
दप्यात्मसिद्धिः । ननु पृथिव्याद्येव तदभिधेयं स्यादित्यत  
आह व्यतिरेकादिति पृथिव्यादितोऽहमिति पदस्य व्यति-  
रेकाद्यावृत्तेरित्यर्थः । नहि भवत्यहं पृथिवी अहमापः  
अहन्तेजः अहं वायुः अहमाकाशम् अहं कालः अहं दिक्  
अहं मन इति व्यपदेशः प्रत्ययो वा, शरीरे भवतीति चेन्न  
परशरीरेऽपि तत्प्रसङ्गात्, स्वशरीरे भवतीति चेन्न स्वस्यात्म-  
भिन्नस्यानिरुक्तेः मम शरीरमिति वैयधिकरणेन प्रत्ययाच्च  
नान्वदमपि सामान्यतोद्दृष्टमेव तच्च विशेषार्थवमन्नमिति  
दूषितमेवेति चेन्न अहम्यदेऽहन्वमात्मत्वमेव प्रकारः तथाच  
पक्षधर्मताबलादेवाऽहन्त्वस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वं पर्थवमन्नं  
तच्चानन्यसाधारणमेवेति विशेषमिद्धेः एवं सामान्यतोद्दृष्टा-  
दपि बाधसहकृताद्विशेषमिद्धिः यच्चोक्तं श्रवणादेव साक्षा-  
त्कारः किमनेनेति तदयुक्तम् नहि मननमन्तरेण सङ्कशु-  
कस्याश्रद्धामलचालनम्, नच तदन्तरेण तत्र निदिध्या-

वि० आगमिकमिति आत्मवस्तु इतिशेषः आत्मरूपं वस्तु न आ-  
गमिकम् आगममात्रप्रमाणकम् अहमिति शब्दस्य व्यतिरेकात्  
पृथिव्यादिषु अस्तुषु द्रव्येषु अययोगात् तथाचाहमिति-पदं सप्र-  
वृत्तिनिमित्तकम् साधुपदत्वात् घटपदवदित्यनुमानादहम्यदे

उ० सनाधिकारः, नच निदिध्यासनमन्तरेण सवासनमित्या-  
 ज्ञानोन्मूलनचमस्तत्त्वसाक्षात्कारः, अभ्यासादेव हि का-  
 मातुरस्याकस्मात् कामिनीसाक्षात्कारः; नहि शाब्दमा-  
 नुमानिकं वा ज्ञानं मित्याज्ञानोन्मूलनक्षमं दिङ्मोहादौ  
 दृष्टमितिभावः । ननु तथापि परीचे आत्मनि कथं सङ्घे-  
 ग्रह इति चेत् कएवमाह नात्मा प्रत्यक्ष इति, किन्तु मनसो  
 संयोगप्रत्यासत्त्यात्मग्रहः कथमन्यथाऽहं सुखी जानामि  
 च्छामि यते दुःखीत्यादिप्रत्ययः नह्ययमवस्तुकः सन्दिग्ध-  
 वस्तुको वा, नीलादिप्रत्ययवत् अस्यापि निश्चितवस्तुकत्वात्,  
 नच लैङ्गिकः, लिङ्गज्ञानमन्तरेणापि जायमानत्वात्, नापि  
 शाब्दः, तदनुसन्धानाननुविधानात्, प्रत्यक्षाभासोऽयमिति  
 चेत्, तर्हि क्वचिदनाभासविषयोऽपि नह्यप्रमितमारोप्यते  
 इत्यावेदयिष्यते ॥ ८ ॥

वि० आत्मत्वावच्छिन्नशक्तत्वस्य सिद्धौ आत्मापि सिध्यतीत्यर्थः । न  
 चात्रापि सामान्यधर्मं व्यापकतावच्छेदकत्वग्रहाद्विशेषधर्मप्र-  
 कारेण कथमनुमितिरिति वाच्यम् इतरबाधादिस्थले व्यापकता-  
 वच्छेदकत्वेनागृहीतस्यापि विशेषधर्मस्य विधेयतावच्छेदकत्वक्षी-  
 कारात् अन्यथा महानसीयवज्जीतरवज्ज्ज्भाववान् पर्वत इत्या-  
 दीतरबाधसहकृतेन वज्जिपरामर्शेन जनिताया अनुमिते भ्रम-  
 त्वानुपपत्तेरिति संक्षेपः । इदमुपलक्षणं पूर्वोक्तानि ज्ञानादि-  
 लिङ्गकान्यनुमानान्यपि दर्शितशीत्यात्मनि प्रमाणाणि वेदितव्यानि  
 ॥ ८ ॥

सू० यदि दृष्टमन्वक्षमहं देवदत्तोऽहं यज्ञदत्त इति ॥

॥ १० ॥

दृष्टयात्मनि लिङ्गे एक एव दृढत्वात् प्रत्यक्षवत्

प्रत्ययः ॥ ११ ॥

उ० एवञ्चेत् किमनुमानेनेति पूर्वपक्षवादी आह ।

इति शब्देज्ञानप्रकारमाह दृष्टमिति भावे-क्तप्रत्यया-  
न्तम्, अन्वक्षमित्यध्यक्षं तेनायमर्थः अयं देवदत्तः अयं  
यज्ञदत्त इति प्रकारकं दृष्टं दर्शनं अध्यक्षमेवास्ति यदि  
किमनुमानप्रयासेन “नहि करिणि दृष्टे चीत्कारेण तम-  
नुमितेऽनुमातारः” ॥ १० ॥

अत्र सिद्धान्धाह ।

दृष्टे प्रत्यक्षेण गृहीते आत्मनि लिङ्गे सम्भूतसामर्थिके

वि० ननु मनःसंयोगरूपसन्निकर्षेण आत्मनो लौकिकमानसप्रत्य-  
क्षमेवात्मनि प्रमाणावस्तीति प्रमाणान्तरगवेषणं व्यर्थमित्याशङ्कते ।

अन्वक्षं प्रत्यक्षं दृष्टं दर्शनं ज्ञानमिति यावत् भावे निष्ठाप्रत्य-  
यात् तथाच अहं देवदत्तः अहं यज्ञदत्तः सुखी दुःखी वेत्या-  
द्याकारकं प्रत्यक्षमेव ज्ञानं यदि वर्तते तदा भवतामनुमान-  
प्रयासः किमर्थमिति समुदितार्थः, सिद्धिदर्शायां सिधाधिष-  
याऽनुमितेः सम्भवेऽपि तस्या अनावश्यकत्वात् तत्रैव नोदेति  
तदुक्तं तात्पर्यटीकायां वाचस्पतिमिश्रैः “नहि करिणि दृष्टे  
चीत्कारेण तमनुमितेऽनुमातारः” इति ॥ १० ॥

आशङ्कां निरस्यति ।

दृष्टे मनसा गृहीते आत्मनि लिङ्गे अनुमाने सति प्रत्यक्षवत्



उ० सति एक एव एकवैषयिक एव प्रत्ययः, प्रत्यय इति निर-  
 खसमस्तविभ्रमाशङ्कित्वाह, कुत एवमित्यत आह दृढत्वात्  
 प्रमाणसंज्ञवेनान्यथाभावशङ्कानिवर्त्तनपटुत्वात्, तत्र दृष्टा-  
 न्तमाह प्रत्यक्षवदिति यथा दूरात्तोयप्रत्यक्षे सत्यपि सवा-  
 दार्थं बलाकालिलिङ्गेनाऽपि तदनुमानं तदुक्तम् “प्रत्यक्षपरिक-  
 खितमप्यनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिका” इति, इदमत्राकू-  
 तम् यद्यात्मा कदाचित् प्रत्यक्षे चैतसे भासत एव तथापि  
 अहं गौरः अहं ह्यश इत्यादिविरोधिप्रत्ययान्तरतिरस्त्रतो  
 न तथा स्त्रेमानमासादयति विद्युत्सम्पातसञ्जातज्ञानवत्, तत्र  
 लिङ्गेन अनन्यथासिद्धेन ज्ञानान्तरमुत्पद्यमानं पूर्वज्ञान-  
 मेव स्थिरीकरोति । किञ्च “श्रोतव्यो मन्तव्य” इत्यादि वि-  
 धिवोधितस्यात्मननस्य दृष्टसाधनत्वावगतौ अनुमित्यस्य ऽ-  
 वश्यमात्मन्यनुमानप्रवृत्तिः तद्व्यतिरेके निदिध्यासनासम्भवे

वि० प्रत्यक्षसमानकारक एक एव मुख्य एव प्रत्ययः भवतीतिशेषः  
 मुख्यत्वं कुतः दृढत्वात् अप्रामाण्यशङ्कानिवर्त्तनक्षमत्वात् मुख्यत्वञ्च  
 गृहीतप्रामाण्यकत्वम्, यथा दूरस्थे सरोवरादिसखिले दृष्टेऽपि  
 मरीचिकादिसन्देहात्तादृशप्रत्यक्षेऽप्रामाण्यशङ्का उदेति, ततो  
 बलाकालिलिङ्गेन तदनुमाने सति सम्बादेन तत्र प्रामाण्यग्रहा-  
 तादृशशङ्का निवर्त्तते, तथात्मनि दृष्टेऽपि विपरीतसम्भावना-  
 दिना तज्ज्ञानेऽप्रामाण्यशङ्का सञ्जायते ततोऽनुमानेनात्मनि  
 गृहीते सम्बादेन तत्र प्रामाण्यग्रहादप्रामाण्यशङ्कानिवर्त्तनक्ष-  
 मत्वरूपं दृढत्वं तादृशग्रहस्य सुघटमेव तदुक्तं मिश्रैः “प्रत्यक्ष-  
 परिकलितमप्यनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिका” इति ॥ ११ ॥

सू० देवदत्तो गच्छति यज्ञदत्तो गच्छतीत्युपचारा-  
च्छरीरे प्रत्ययः ॥ १२ ॥

उ० साक्षात्काराभावेऽपवर्गासम्भवादिति भावः । अहं देवद-  
त्तोऽहं यज्ञदत्त इति प्रतीतिद्वयाभिधानमात्मनः प्रत्या-  
त्मवेदनीयत्वं सूचयितुम् ॥ ११ ॥

ननु यदि यज्ञदत्तोऽहमिति प्रत्यय आत्मनि तदा  
यज्ञदत्तो गच्छतीति गमनसामानाधिकरण्यभाजननुपपन्न-  
मित्यत आह ।

अस्ति हि अहं गौरः अहं स्थूल इति प्रत्ययः अस्ति च  
मम शरीरमिति भेदप्रत्ययः तत्र देवदत्तो गच्छतीति गति-  
सामानाधिकरणीनुभवा व्यवहारस्य भाक्तः, ममेति प्रत्य-  
यस्य यथार्थत्वात् यद्यपि देवदत्तत्वं शरीरवृत्तिर्जातिस्तेन  
देवदत्तो गच्छतीति मुख्य एव प्रयोगो यथार्थ एव च प्रत्य-

वि० नन्वहं यज्ञदत्त इत्यादिप्रत्ययं यद्यात्मविषयकं तदा यज्ञ-  
दत्तो गच्छतीति प्रत्ययः कथं स्यादात्मनि गतिमत्त्वस्याभावादित्यत  
आह ।

देवदत्तो गच्छतीति वाक्यजन्यप्रत्ययः देवदत्तादिपदस्य शरीरे  
लक्षणाग्रहाद्भवति देवदत्तो जानाति इच्छति करोति द्वेषोत्यादि  
प्रयोगानां मुख्यतया देवदत्तादिपदस्य विजातीयशरीरावच्छि-  
न्नात्मनि शक्तेरावश्यकत्वात्तदर्थे भूरिप्रयोगसत्त्वेन गौरवस्याऽ-  
किञ्चित्करत्वात् गच्छतीत्यत्ररख्यातस्य यथार्थकत्वे तादृशप्रयोगस्य  
मुख्यत्वमपि सम्भवतीत्यपि द्रष्टव्यम् ॥ १२ ॥

सू० सन्दिग्धस्तूपचारः ॥ १३ ॥

अहमिति प्रत्यगात्मनि भावात् परत्राभावाद्-

र्थान्तरप्रत्यक्षः ॥ १४ ॥

उ० यः तथापि देवदत्तपदं तदवच्छिन्नात्मनि प्रयुक्तञ्चेत् तदौ-  
पचारिको बोद्धव्यः ॥ १२ ॥

अत्र शङ्कते ।

तुशब्दः पूर्वपक्षद्योतकः । आत्मशरीरयोस्तावदह-  
मिति प्रत्ययः प्रयोगश्च दृश्यते तत्र क्व मुख्यः क्व वैपचारिक  
इति सन्देहः ॥ १३ ॥

समाधत्ते ।

अर्थान्तरमात्मस्वरूपं प्रत्यक्षं यत्र प्रत्यये स प्रत्ययो-  
ऽर्थान्तरप्रत्यक्षः अयमर्थः अहमिति प्रत्ययस्य प्रत्यगा-  
त्मनि स्वात्मनि भावात् परत्र परात्मनि अभावात् अर्था-  
न्तरे स्वात्मन्येव मुख्यः कल्पयितुमुचितः यदि तु शरीरे

वि० ननु देवदत्तो जानातीति प्रयोगस्यौपचारिकत्वं देवदत्तो  
गच्छतीत्यस्य वेत्तत्र किं विनिगमकमित्याशङ्कते ।

उपचारः सन्दिग्धः देवदत्तादिपदस्यात्मनि शरीरे वैपचा-  
रिक्तत्वमिति सन्देहः तुशब्द आशङ्काद्योतकः ॥ १३ ॥

समाधत्ते ।

अहमिति अहं यद्यदत्तः सुखीत्यादिव्यवहारः अर्थान्तर-  
प्रत्यक्षः अर्थान्तरस्य शरीरादिभिन्नस्य प्रत्यक्षं ज्ञानं यस्मात्  
शरीरादिभिन्नविषयकशब्दबोधजनक इति फलितार्थः तथाच

उ० मुख्यः स्यात् तदा वह्निरिन्द्रियजः स्यात् नहि शरीरं मानसप्रत्यक्षं, मानसश्चायमहमिति प्रत्ययः वह्निरिन्द्रिय-  
व्यापारमन्तरेणापि जायमानत्वात् अहं दुःखी अहं सुखी जाने यते इच्छाम्यहमिति योग्यविशेषगुणोपहितस्यात्मनो मनसा विषयीकरणान्, नायं लैङ्गिको लिङ्गानुमन्धान-  
मन्तरेणापि जायमानत्वात्, न शाब्दः शब्दाकलनमन्तरे-  
णापि जायमानत्वात्, तस्मान्मानस एव मनसश्च वह्निर-  
स्वातन्त्र्येण शरीरादावप्रवृत्तेरितिभावः । किञ्च यदि शरीरे स्यात् परशरीरे स्यात्, स्वात्मनि यदि स्यात् तदापि परात्मनि स्यादिति चेन्न परात्मनः परस्यातीन्द्रियत्वात् तद्विशेषगुणानामयोग्यत्वात् योग्यविशेषगुणोपग्रहेण तस्य योग्यत्वात्, न क्वलमात्मन इदं शीलं किन्तु द्रव्यमात्रस्य, द्रव्यं हि योग्यविशेषगुणोपग्रहेणैव प्रत्यक्षं भवति, आकाशमपि तर्हि शब्दोपग्रहेण प्रत्यक्षं स्यादिति चेत् स्यादेवं यदि श्रोत्रं द्रव्यग्राहकं भवेत्, आकाशं वा रूपवत् स्यात्, आत्मनोऽपि नोरूपत्वं तुल्यमिति चेत् वह्निरद्रव्यमात्र एव

वि० शरीरादिभिन्न एवात्मनि तादृशप्रयोगो मुख्यः शरीरे त्वीपचारिकः, कुत एवमत आह प्रत्यगात्मनि स्वात्मनि भावात् अर्थात् सुखादेः सत्त्वात् परञ्च शरीरेऽभावात् सुखादेरसत्त्वात् तथाच भूरिप्रयोगस्यात्मन्येव सत्त्वात्तत्रैव तादृशप्रयोगस्य मुख्यत्वं शरीरादावौपचारिकत्वमिति न सन्देहगन्धोऽपीति, न चाहं सुखीत्यादौ अवच्छेदकतासम्बन्धेन सुखादेर्विशिष्टं शरीरे भासत इति

सू० देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादभिमानात्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहङ्कारः ॥ १५ ॥

उ० प्रत्यक्षतां प्रति रूपवत्त्वस्य तन्त्रत्वात्, प्रत्यगित्ययं शब्दोऽन्यथावृत्तमाह ।

पुनः शङ्कते ।

अहङ्कारोऽहमिति प्रत्ययः स च शरीरप्रत्यक्षः शरीरं प्रत्यक्षं विषयो यत्र स शरीरप्रत्यक्षः । देवदत्तो गच्छतीत्युपचारात्तावत् प्रयोगः प्रत्ययो वा त्वया समाहितः सचोपचार आभिमानिकः यतोऽहं गौरः अहं कृशः सौभागिनोऽहं पुनरुक्तजन्मेत्यादयः प्रत्ययाः प्रयोगाश्चोपचारेण समन्वयितुमशक्या इत्यर्थः ॥ १५ ॥

वि० वाचम्, करोऽहं सुखीत्यादेरपि प्रामाण्यापत्तेः करादेरप्यवच्छेदकतासम्बन्धेन सुखादिमत्त्वात् अहमित्यस्मच्छब्दस्यात्मन्येव शक्ततया शरीरादौ तदभेदस्यासम्भवाच्च ॥ १४ ॥

पुनरादिपति ।

अहङ्कारः अहमितिप्रयोगः शरीरप्रत्यक्षः शरीरस्य प्रत्यक्षं प्रतिपत्तिर्यस्मात् सः शरीरप्रतिपादक इति यावत्, तथाच यद्देवदत्तोऽहमिति सामानाधिकरणानुभवात् यद्देवदत्तादिपदमपि शरीरप्रतिपादकमेव तावदिति हेतौ तस्मात् यद्देवदत्तो गच्छतीत्युपचारादिति यदुक्तं तदभिमानात् नतु तद्वास्तवं भवितुमर्हति अहं गौरः अहं स्थूल इत्यादिभूरिप्रयोगानां शरीरपरताया आवश्यकतया अस्मच्छब्दस्य तत्सामानाधिकरणयद्देवदत्तादिशब्दस्य च शरीरे शक्तत्वादिति पर्यवसितार्थः ॥ १५ ॥

सू० सन्दिग्धस्तूपचारः ॥ १६ ॥

उ० सिद्धान्तमाह ।

तुशब्दोऽयं सिद्धान्तमभिव्यनक्ति उपचारोऽयमाभि-  
मानिकः किन्तु शरीर एवायमहम्प्रत्यय इति यदुक्तं  
तत्रापि सन्देह एवेत्यर्थः तथाच प्रत्ययस्योभयत्रापि कूट-  
साक्षित्वेन विशेषावधारणाय यतितव्यं तत्र यत्ने क्रियमाणे  
निमीलिताक्षस्याप्यहमिति-प्रत्ययदर्शनात् शरीरभिन्ने वहि-  
रिन्द्रयागोचरे वस्तुनि स मन्तव्यः, शरीरे भवन् परशरी-  
रेऽपि स्यात् चक्षुर्नरपेक्ष्येण च न स्यात्, अहं कृशः स्थूलो वा  
सुखीति कथं सामानाधिकरण्यमिति चेन्न सुखाद्यवच्छेद-  
कत्वेनापि तत्र शरीरभानसम्भवात् सिंहनादवदिदं गहन-  
मितिवत्, अहन्त्वमात्रं शरीरे समारोप्यते मनसोपस्थितम्,  
त्वगिन्द्रियोपनीतमौष्यम् उष्णं जलम् उष्णं शरीरमिति-  
वत् ॥ १६ ॥

वि० आशङ्कां निरसितुमाह ।

उपचारः सन्दिग्धः, किं यज्ञदत्तो गच्छतीत्यत्रोपचारः उत  
यज्ञदत्तोऽहं सुखीत्यत्र, शरीरे आत्मनि च भूरिप्रयोगस्यावि-  
शिष्टत्वेनैकशेषस्य कर्तुमशक्यत्वादित्यर्थः, तुशब्दः सिद्धान्तद्योत-  
नार्थः ॥ १६ ॥

ननु सन्देह एव किं भवतां सिद्धान्तः, किञ्च यज्ञदत्तो गच्छती-  
त्यत्रोपचारो भवद्भिः पूर्वमभिहितस्तत्र प्रतिज्ञाहानिस्तदवस्थै-  
वेत्यत आह ।

सू० नतु शरीरविशेषाद् यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञान-  
विषयः ॥ १७ ॥

उ० सिद्धान्तमुपवृंहयन्नाह ।

ज्ञानमिति योग्यं सुखदुःखादिकमात्मगुणमुपलक्ष्यति,  
यथा यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोः शरीरं परस्परभिन्नं त  
ज्ञानसुखादिकमपि भिन्नमेव तथाच यथा यज्ञदत्तस्य  
शरीरं तथा यज्ञदत्तस्य ज्ञाने सुखादौ वाऽनुत्पन्ने अहं  
सुखी जाने यते इच्छामीति ज्ञानादिकं विषयो भवति  
योग्यशरीरविषयकत्वेन तदोचरूपादिवत्तदोच्यज्ञानादी-  
नामपि प्रत्यक्षत्वसम्भवात् न च सम्भवति, तस्मात् ज्ञानसु-  
खादीनां शरीरादन्य एवाश्रयो वक्तव्य इतिभावः । शरीर-  
विशेषात् शरीरस्य भेदादित्यर्थः तथाच शरीरभेदं प्राप्य  
ज्ञानं नतु विषय इति ल्यहोपे पञ्चमी ॥ १७ ॥

वि० नतु नहि शरीरविशेषात् शरीरविशेषविषयकत्वात् यज्ञदत्त-  
विष्णुमित्रयोर्ज्ञानमपि विषयो भवति शरीरसाक्षात्कारे इत्यर्थः  
ज्ञानपदं योग्यात्मविशेषगुणसामान्यपरम्, तथाच यथाऽस्माक-  
मात्मसाक्षात्कारे ज्ञानादिकं विषयो भवति अहं जानामि इच्छामि  
यते सुखी दुःखी वैश्रीत्याद्यनुभवस्य सर्वसिद्धत्वात् तथा शरीर-  
चाक्षुषादावपि ज्ञानादेर्भानं स्यात् यदि शरीरमहम्पदवाच्यं ज्ञा-  
नादिगुणकश्च स्यात्, नहि स्थूलो यज्ञदत्तोऽहं जानामीति चाक्षुष-  
प्रत्यक्षं कस्यचिद्भवति, तस्माच्छरीरेऽहमादित्यवहार औपचारिक  
एवेति नास्माकं प्रतिज्ञाहानिरितिभावः ॥ १७ ॥

सू० अहमिति मुख्ययोग्याभ्यां शब्दवद्द्यतिरेकाव्य-  
भिचाराद्विशेषसिद्धेर्नागमिकः ॥ १८ ॥

उ० नन्वात्मा न प्रत्यक्षः नीरूपद्रव्यत्वात् निरवयवद्रव्यत्वाद्वा  
आकाशवत्, तथाचाहं कृशो गौर इति बुद्धेः शरीरमेव  
विषयो वाच्यः, क्वचिदहं सुखीत्यादिधीरपि यद्यप्यस्ति,  
तथाप्याश्रयमन्तरेण भाममानानां सुखादीनां शरीरे समा-  
रोप इत्येव कल्पयितुमुचितम्, यद्येषां सुरभिजलम् इत्या-  
श्रयमन्तरेण प्रतीयमानयोरौष्यसौरभयोर्जले समारोपः,  
नत्वेतदनुरोधेन जलप्रत्ययस्यापि प्रसिद्धजलमन्तरेणान्यवि-  
षयत्वम्, तथाऽहमित्यप्यहन्वं शरीर एव वास्तवम्, सुखादि-  
कन्तु कदाचिच्चत्वारोप्यते तेनात्मनि प्रत्यक्षाकारं ज्ञानं  
नास्त्येव सुखाद्याधारत्वेन यत्कल्पनीयं तदागमसिद्धं भव-  
तु न तत्रापि ग्रह इत्यत आह ।

अयमर्थः अहं सुखी अहं दुःखीति प्रत्ययो नागमिको  
न शाब्दो नापि लैङ्गिकः शब्दलिङ्गयोरनुमन्वानमन्तरे-

वि० वेदान्तिनस्तु नित्यविज्ञानमेवात्मा “अविनाशी वाऽरेऽयमात्मा-  
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” इति श्रुतेः स च वस्तुगत्या एकोऽपि मा-  
याकार्याणां अन्तःकरणरूपोपाधीनां भेदान्नानेव प्रतिभाति  
“एकमेवाद्वितीयम्” इति “एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं  
रूपं प्रतिरूपो बभूव” इत्यादिश्रुतेरिवाज्जस्तन्मतं दूषयति ।

अहमितीति प्रत्ययविषय इति शेषः, तथाचाहं सुखीत्यादि-  
लैङ्गिकमीनसप्रत्यक्षविषयः न आगमिकः “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म”



उ० णापि जायमानत्वात् प्रत्यक्षत्वे च नीरूपत्वं निरवयवत्वञ्च यद्वाधकमुक्तं तद्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षतायां भवति तत्र हि रूपवत्त्वानेकद्रव्यवत्त्वयोः प्रयोजकत्वात्, मानसप्रत्यक्षता च तदन्तरेणापि । ननु स्यादेवं यद्यात्मनि प्रमाणं स्यात् तदेव तु नास्तीत्यत आह शब्दवद्वातिरेकाव्यभिचाराद्विशेषसिद्धेरिति यथा चित्वादिषु द्रव्येषु शब्दस्य व्यतिरेकोऽव्यभिचारी नियतस्तेन तदाश्रयस्याष्टद्रव्यातिरिक्तस्याकाशरूपस्य विशेषस्य सिद्धिः एवमिच्छायाः पृथिव्यादिषु व्यतिरेकस्याव्यभिचारात् तदाश्रयेणापि अष्टद्रव्यातिरिक्तेन भवितव्यम् । नन्वेतावताऽप्यानुमानिकं एव आत्मा न तु प्रत्यक्ष इत्यत आह अहमिति मुख्ययोग्याभ्यामिति अहमित्येति कारणेन ज्ञानाकारमाह तेनाहमिति ज्ञानं शब्दलिङ्गा-

वि० इत्याद्यागमप्रतिपाद्येश्वराभिन्नः अत्र हेतुमाह मुख्ययोग्याभ्यामित्यादि, मुख्यं सत् यद् योग्यं सुखं दुःखञ्च ताभ्यां विशेषसिद्धेश्वरभेदसिद्धेः, इष्टेषु सुखस्य मुख्यत्वम् अन्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वात्, दुःखस्य तु द्विष्टेषु मुख्यत्वम् अन्यदेषानधीनदेषविषयत्वात्, योग्यत्वञ्च प्रत्यक्षविषयत्वम् एतत्कथनञ्च हेत्वसिद्धिशङ्कानिरासार्थम् ईश्वरे नित्यसुखाङ्गीकारपक्षे व्यभिचारवारणार्थञ्च नित्यसुखायोग्यत्वात् तथाच जन्यं सुखं दुःखञ्च जीवस्येश्वरभेदसाधकम् । उपलक्षणञ्चेति ननु ज्ञानेच्छायत्ना द्वेषश्च ईश्वरभेदसाधका द्रष्टव्याः । ननु अहमिति प्रत्यक्षविषय आत्मा ईश्वरभिन्नः जन्यसुखवत्त्वादिबाधौ दृष्टान्ताभावेन अन्यवयसश्चारापह्वात् व्याप्तिज्ञानं दुर्घटमन उक्तं व्यतिरेकाव्यभिचारा-

उ० नुमन्धानमन्तरेण निमीलिताक्षस्य यदुत्पद्यते तन्मुख्येन  
अहन्त्ववता योग्येन प्रमाणसिद्धेन उपपादनीयम्, नतु  
शरीरादिना, तत्रेच्छाया व्यतिरेकाव्यभिचारात् मुख्ययो-  
ग्याभ्यामित्यनन्तरम् उपपादनीयमिति पूरणीयम् आ-  
त्मनि प्रमाणानि बहूनि ग्रन्थगौरवभिया त्यक्तानि मयू-  
खेऽन्वेष्टव्यानि ॥ १८ ॥

आत्मपरीक्षाप्रकरणं समाप्य इदानीमात्मनानात्वप्रक-  
रणमारभते तत्र पूर्वपक्षसूत्रम् ।

वि० दिति व्यतिरेकव्याप्तेरित्यर्थः, प्रयोज्यत्वं पञ्चम्यर्थस्तस्य च विशेष-  
सिद्धावन्वयः तथाचान्वयदृष्टान्ताभावेऽपि व्यतिरेकेण ईश्वरस्य  
दृष्टान्तत्वसम्भवेन व्यतिरेकसहचारग्रहाधीनव्यतिरेकव्याप्तिग्र-  
हादेवोक्तस्यलेऽनुमितिः सम्भवतीतिभावः, ननु व्यतिरेकव्या-  
त्येश्वरभेदसाधकत्वं न दृष्टचरमित्याशङ्कानिरासायोक्तं शब्दव-  
दिति शब्दादिवेत्यर्थः आकाशस्य यथा शब्दरूपाद्धेतो र्यति-  
रेकव्याप्तिप्रकारेण ज्ञायमानादीश्वरभेदसिद्धिस्तथात्मनो जन्य-  
सुखादिमत्त्वात् तत्सिद्धिरित्यर्थः ॥ १८ ॥

ननु “एकमेवाद्वितीयम्” “तत्त्वमसि श्वेतकेतो” इत्यादि श्रु-  
तिबलात् जीवेश्वरयोरभेदोऽवश्यं स्वीकार्यः, नचोक्तानुमानाद्भेद-  
सिद्धिरिति वाच्यं सुखदुःखादीनामन्तःकरणधर्मत्वेन स्वरूपा-  
सिद्धत्वात् तथाच श्रुतिः “कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा अज्ञाऽअ-  
ज्ञादृष्टिरदृष्टिं क्रोधीर्भौरेतत् सर्वं मन एव” इति, अत्र कामश-  
ब्दस्य सुखपरत्वात् धीशब्दस्य दृष्टिरूपज्ञानपरत्वात्, दुःखस्यापि  
सुखसामानीधिकरणेन प्रतीतेरात्मधर्मत्वाभावादित्याशङ्कते ।

सू० सुखदुःखज्ञाननिष्पत्त्यविशेषादैकात्म्यम् ॥ १९ ॥  
व्यवस्थातो नाना ॥ २० ॥

उ० एकमेव आत्मा चैत्रमैत्रादिदेहभेदेऽपि, कुतः सुखदुःख-  
ज्ञानानां निष्पत्तेरुत्पत्तेरविशेषात् सर्वशरीरावच्छेदेन  
सुखदुःखज्ञानानामुत्पत्तिरविशष्टैव यतः । यद्यात्मभेद-  
साधकं लिङ्गान्तरं भवेत्तदा सिद्धोदात्मभेदः, नच तदस्ति,  
यथा तत्तत्प्रदेशावच्छेदेन शब्दनिष्पत्तावपि शब्दलिङ्गा-  
विशेषादेकमेवाकाशम् यौगपद्यादिप्रत्ययलिङ्गाविशेषादेक  
एव कालः पूर्वापरादिप्रत्ययलिङ्गाविशेषादेकैव दिक् ॥  
॥ १९ ॥

सिद्धान्तमाह ।

नाना आत्मानः कुतः व्यवस्थातः व्यवस्था प्रतिनियमः  
यथा कश्चिदाढ्यः, कश्चित् रङ्गः, कश्चित् सुखी, कश्चिद्दुःखी,  
कश्चिदुष्ठाभिजनः, कश्चिन्नीचाभिजनः, कश्चिद्विद्वान्, क-

वि० सुखदुःखज्ञानानां निष्पत्त्या निश्चयेन अविशेषात् जीवात्मनः  
ईश्वरभिन्नत्वासिद्धेः उक्तश्रुत्या मनस्येव तेषां सिद्धत्वेन आत्मन्य-  
सिद्धत्वादितिभावः ॥ १९ ॥

आशङ्कान्तिरस्यति ।

नाना नात्मैक्यं जीवात्मा न ईश्वरीभिन्न इति यावत्, कुतः य-  
वस्थातः व्यवस्था निश्चयः तस्याः सुखदुःखज्ञानानामात्मनीतिशेषः  
नहि सुखादयो मनसो धर्मा क्तस्य महत्त्वाभविन सुखादीनाम-

सू० शास्त्रसामर्थ्याच्च ॥ २१ ॥

उ० श्चित् जाल्म इतीयं व्यवस्था आत्मभेदमन्तरेणानुपद्यमाना साधयत्यात्मनां भेदम्, नच जन्मभेदेन बाल्यकौमारवार्द्ध-  
क्यभेदेन वा, एकस्याप्यात्मनो यथा व्यवस्था तथा चैत्रमैत्रा-  
दिदेहभेदेऽपि स्यादिति वाच्यं कालभेदेन विरुद्धधर्मा-  
ध्याससम्भवात् ॥ २० ॥

प्रमाणान्तरमाह ।

शास्त्रं श्रुतिः तथाऽप्यात्मनो भेदप्रतिपादनात् श्रूयते हि  
“द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये” इत्यादि तथा “द्वा सुपर्णा सयुजा

वि० प्रत्यक्षत्वापत्तेः ज्ञानायौगपद्यनियामकतया मनसोऽणुत्वस्या-  
वश्यमङ्गीकार्यत्वात् “कामः सङ्कल्पः” इत्यादिश्रुतिस्तु “आयु-  
र्घृतम्” इत्यादिवत् मनसः कामादिजनकत्वमवगमयति नतु  
तदाधारत्वं तदभेदं वेति ॥ २० ॥

इतोऽपि जीवस्थेश्वरभिन्नत्वमित्याह ।

शास्त्रस्य श्रुतेः सामर्थ्यात् जीवेश्वरयोर्भेदबोधकत्वात् तथाहि  
“द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये” “द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं  
परिषस्रजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाहृत्ति च्छनन्नन् अन्योऽभिचा-  
कशीति” इत्यादिश्रुतेः जीवेश्वरयोर्भेदोऽवश्यमङ्गीकार्यः । नच  
“तत्त्वमसि श्वेतकेतो” “ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति” इत्यादिश्रुतीनां  
का गतिरिति वाच्यम् “तत्त्वमसि” इति श्रुतेस्तदभेदेन तदीयत्व-  
प्रतिपादनेनैभेदभावनापरत्वात् “ब्रह्मविद् ब्रह्मैव” इति श्रुतिश्च

उ० सखाया समानं वृत्तं परिषस्वजाते" इत्यादि च ॥२१ ॥

इति श्रीशाङ्करे कणादसूत्रोपस्कारे तृतीयाध्यायस्य  
द्वितीयाह्निकम् ॥ \* ॥

समाप्तश्चायं तृतीयाध्यायः ॥०॥

वि० निर्दुःखत्वादिनेश्वरसाम्यं जीवस्याभिधत्ते नतु तदभेदम् "निर-  
प्लनः परमं साम्यमुपैति" इति श्रुतेर्गतन्तरासम्भवात् अस्ति हि  
लौकिकवाक्येषु सम्पदाधिक्ये पुरोहितोऽयं राजा संवत्त इत्यादिषु  
सादृश्यपरेषु अभेदोपचारः । नच मोक्षदशायामज्ञाननिवृत्तौ  
अभेदो जायते इति वाच्यं भेदस्य नित्यत्वेन नाशायोगात्  
भेदनाशङ्कीकारेऽपि व्यक्तिद्वयावस्थानस्यावश्यकत्वाच्चेति संक्षेपः  
भेदसाधकानि युक्त्यन्तराणि श्रुत्यन्तराणि च यथ्यगौरवभिया  
परित्यक्तानि ॥ २१ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-कृतायां कणादसूत्रविवृतौ  
तृतीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ \* ॥

समाप्तश्चायं तृतीयाध्यायः ॥०॥



सू० सदकारणवन्नित्यम् ॥ १ ॥

उ० पृथिव्यादीनां नवानामुद्देशं लक्षणं परीक्षां निर्व्वर्त्त्य प्रकृतेर्मूलकारणतां साह्याभिमतां निराचिकीर्षुः परमाणूनां मूलकारणत्वं पृथिव्याद्यन्तर्भावञ्च सिषाधयिषु नित्यत्वसामान्यलक्षणं तावदाह ।

न कारणवदकारणवत् पदसंस्कारात् तदेवं घटादीनां व्यवच्छेदः । तथापि प्रागभावेऽतिव्याप्तिरित्यत आह सदिति सत्तायोगीत्यर्थः । समवायविशेषपदार्थयोः सत्तैकार्थसमवाय एव सत्तायोगः सामान्यान्तरस्य सत्तायाश्च सप्रत्ययविषयतैव सत्तायोगः स च प्रत्ययेऽवस्तुस्वरूप-

वि० “यः शङ्करोऽपि प्रलयं करोति स्थाणुस्तथा यः परपूरुषोऽपि ।  
उमाऽऽहीतोऽप्यनुमाऽऽहीतः पायादपायात् सहि नः स्वयम्भुः॥  
असतः सज्जायते इति केचिद्वदन्ति तेषामयमभिप्रायः, बीजादि-  
नाङ्कुरादिकार्यजनकः तथा सति कुशूलस्य बीजादेरप्यङ्कुराद्यापत्तेः  
किन्तु क्षीनादौ स्थितस्य बीजस्यावयवविभागेन प्रध्वंसानन्तर-  
मेवाङ्कुरोत्पादात् बीजादिप्रध्वंस एवाङ्कुरादेः कारणमिति तथा च  
गौतमीयं पर्व्वपक्षसूत्रम् “अभावाद्भावोत्पत्तिर्नानुपपद्य प्रादुर्भा-  
वात्” इति तदेतन्मतं निराकुर्व्वन्नेव परमाणवादिक्रमेणारम्भ-  
वादं द्रष्टव्यम् ।

सत् भावरूपं किञ्चित्, अकारणवत् अजन्यं, नित्यं विनाशा-  
प्रतियोगि वस्तु, अवयविनां मूलकारणं नासत् इत्यर्थः प्रध्वं-  
सस्य कारणत्वे चूर्णीकृतादपि बीजादङ्कुरापत्तेरितिभावः ॥ १ ॥

सू० तस्य कार्यं लिङ्गम् ॥ २ ॥ .

उ० मात्रनिबन्धन इत्यन्यदेतत् नचान्यत्रापि तथैवास्तु किं सत्त-  
येति वाच्यम् अनुगतमंतेस्तत्सिद्धेरुक्तत्वात् ॥ १ ॥

नित्यसामान्यमभिधायेदानीं, परमाणुमधिकृत्याह ।

तस्य परमाणोः, कार्यं घटादि, लिङ्गम्, तथाच गौ-  
तमीयं सूत्रम् “व्यक्तात् व्यक्तस्य निष्पत्तिः प्रत्यक्षप्रामा-  
ण्यात्” इति, अवयवावयविप्रसङ्गस्तावदनुभूयते स यदि  
निरवधिः स्यात् तदा मेरुसर्षपयोः परिमाणभेदे न स्यात्  
अनन्तावयवारब्धत्वाविशेषात् न च परिमाणप्रचयविशे-  
षाधीनो, विशेषः स्यादिति वाच्यं सङ्ख्याविशेषाभावात्त-  
योरप्यनुपपत्तेः, प्रलयावधिः स्यादिति चेत् अन्यस्य कस्य-  
चिन्निरवयवत्वे प्रलयस्यैवानुपपत्तेः अवयवविभागविनाश-  
योरैव द्रव्यनाशकत्वात्, विभागश्च नावधिः तस्यैकाग्रयत्वा-  
नुपपत्तेः तस्मान्निरवयवं द्रव्यमवधिः स एव परमाणुः ।  
न च त्रसरेणुरेवावधिः, तस्य चाक्षुषद्रव्यत्वेन महत्त्वादेत-  
द्रव्यवत्त्वाच्च, महत्त्वस्य चाक्षुषप्रत्यक्षत्वे कारणत्वम् अनेक-

वि० ननु तादृशे मूलकारणे किं मानमत आह ।

तस्य मूलकारणस्य, कार्यं त्रसरेणवादि कार्यद्रव्यम्, लिङ्गम् चनु-  
मापकम्, तथाहि अवयवावयविधाराया अनन्तत्वे मेरुसर्षपयो-  
रपि साम्यप्रसङ्गः अनन्तावयवारब्धत्वाविशेषात् अतः क्वचि-  
द्विश्रामो वाच्यः नच त्रसरेणौ विश्रामः ; त्रसरेणुः सावयवः  
चाक्षुषद्रव्यत्वात् घटवदित्यनुमानेन ह्यणकरूपतदवयवसिद्धेः, नापि

सू० कारणभावात् कार्यभावः ॥ ३ ॥

उ० द्रव्यवत्त्वमादायैकं अन्यथा महत्त्वमेव न स्यात् कस्य कारण-  
त्वम्भवेत्, न च त्रसरेणोरवयवा एव परमाणवः, महद्द्रव्या-  
रम्भकत्वेन तेषामपि सावयवत्वानुमानात् तन्तुवत् कपाल-  
वच्च तस्मात् यत् कार्यद्रव्यं तत् सावयवम्, यच्च सावयवं तत्  
कार्यं द्रव्यम्, तथाच यतोऽवयवात् कार्यत्वं निवर्तते तत्र  
सावयवत्वमपीति निरवयवपरमाणुसिद्धिः तदुक्तं प्रशस्तदे-  
वचार्यैः “साच द्विविधा नित्या चानित्या च” इति ॥ २ ॥

इदानीं परमाणौ रूपादिसिद्धये प्रमाणमाह ।

रूपादीनां कारणे सद्भावात् कार्ये सद्भावः कारणगुण-  
पूर्वका हि कार्यगुणा भवन्ति घटपटादौ तथा दर्शनादि-  
त्यर्थः ॥ ३ ॥

वि० द्यगुक् एव विश्रामः, त्रसरेणोरवयवाः सावयवा महदवयवत्वात्  
कपालवदित्यनुमानेन द्यगुक्सावयवस्य परमाणुरूपस्य मूलकार-  
णस्य सिद्धेः, नचैवं क्रमेण तदवयवधाराऽपि सिद्धेत्, अनव-  
स्थाभयेनानुकूलतर्काभावेन च तत्कल्पनाया असम्भवात्, ममनु-  
चनेकद्रव्यवत्त्वप्रयोज्यं त्रसरेणोर्जन्यमहत्त्वमेवानुकूलतर्कसम्पाद-  
कमिति संक्षेपः ॥ २ ॥

अभावस्य मूलकारणत्वे बाधकमाह ।

कारणस्य मूलकारणस्य भावात् कार्यगणाम् अवयवविनां भावः  
सत्ता, अन्यथा तदुपादानकस्य न्यग्रयत्ववत् असदुपादानकत्वेन  
कार्यगणामवयवविनामसत्त्वप्रसङ्गादित्यर्थः ॥ १ ॥



सू० अनित्य इति विशेषतः प्रतिषेधभावः ॥ ४ ॥

उ० इदानीं सर्वानित्यतावादिनिराकरणायाह ।

विशेषत इति षष्ठ्यन्तात्तमिः विशेषस्य नित्यस्य प्रतिषेधस्तदा स्यात् यद्यनित्य इति प्रत्ययः शब्दप्रयोगश्च न स्यात् नत्र उत्तरपदार्थनिषेधार्थत्वात् तत् कथं नित्याभावेऽनित्य इति स्यात् भवति च ततो नित्यमस्तीति सिद्धम्, यद्वा अनित्य इति न नित्यः परमाणुरित्यनेन प्रकारेण नित्यस्य त्वया प्रतिषेधः कर्त्तव्यः अनेन च प्रकारेण प्रतिषेधो न सिद्ध्यति सिद्ध्यसिद्धिप्रतिहतत्वात् सूत्रञ्चैवं योजनीयम् अकारः स्वतन्त्र एव प्रतिषेधवचनः “अमानोनाः प्रतिषेधवचनाः” इति तथाचानित्य इति न नित्य इत्यर्थः प्रतिषेधभावः प्रतिषेधस्वरूपं तेन न नित्य इति विशेषस्य नित्यस्य प्रतिषेधस्वरूपम्, तच्च न सम्भवतीतिशेषः ॥ ४ ॥

ननु परमाणुर्न नित्यः मूर्त्तत्वात् घटवत् एवं रूपवत्त्वरसवत्त्वादयः प्रत्येकं हेतव उन्नेयाः एवं षट्केन युगपद्-

वि० सर्वमेवानित्यं नहि किञ्चिदपि नित्यमिति मतं निरस्यति ।

अ इति नञ्समानार्थकमथयम्, तथाच न नित्य इति प्रतिषेधस्य भावो भवनं विशेषतः वस्तुविशेषमाश्रित्य तथाचावयवी न नित्य इति प्रतिषेधो भवति नतु सर्वः पदार्थो न नित्य इति सामान्यतः प्रतिषेधः सम्भवति, प्रतियोगिनो नित्यस्य सिद्ध्यसिद्धिभ्यां पराहतत्वादिति समुदितार्थः ॥ ४ ॥

सू० अविद्या ॥ ५ ॥

उ० योगात् परमाणोः षडंशता तथाच सावयवत्वात् अव्या-  
प्यवृत्तिसंयोगाश्रयत्वात् । किञ्च परमाणोर्मध्ये यद्याकाश-  
मस्ति तदा सच्छिद्रत्वेनैव सावयवत्वम्, अयं नास्ति, तदा-  
काशस्यामर्ष्वगतत्वप्रसङ्गः । किञ्च ह्यायावत्त्वात् आवृत्तिम-  
त्त्वात् । अपिच यत् सत् तत् क्षणिकमित्यादिक्षणिकत्वमाध-  
कानुमानादपि परमाणोरनित्यता, तथा चैतावती चेद-  
नुमितिपरम्परा तदा कथमुच्यते परमाणु नित्य इत्यत  
आह । . . .

परमाणोरनित्यत्वविषया सर्वाप्यनुमितिः अविद्या भ्रम-  
रूपा आभासप्रभवत्वात् आपाततो धर्मिग्राहकमानवाधः  
सर्वत्र विपक्षबाधकप्रमाणशून्यत्वाद्वाप्यत्वामिद्धिः क्वचित्  
स्वरूपामिद्धिरित्यादि समानतन्त्रेऽन्वेष्टव्यम् ॥ ५ ॥

ननु यदि परमाणुरस्ति कथमिन्द्रियेण न गृह्यते रूपव-  
त्त्वस्पर्शवत्त्वाद्यस्यैन्द्रियकत्वप्रयोजकास्त्वथैवोपपादिता इत्यत  
आह ।

वि० ननु परमाणुरनित्यः द्रव्यत्वात् मूर्च्छत्वात् रूपवत्त्वात् सावय-  
वत्वात् अव्याप्यवृत्तिसंयोगाश्रयत्वाद्वा घटवदित्याद्यनुमानसा-  
म्भाव्यात् परमाणोरनित्यत्वं सेत्स्यतीत्यत आह ।

अविद्या अप्रमा अर्थात् परमाणोरनित्यत्वानुमितिः दुष्ट-  
हेतुजन्यत्वात् पूर्वज्ञानां हेतूनामनैकान्तिकत्वादितिभावः ॥ ५ ॥

ननु परमाणोः सत्त्वे कथं तस्य न वाक्षुषादिकमत आह ।

## सू० महत्यनेकद्रव्यवत्त्वात् रूपाद्योपलब्धिः ॥ ६ ॥

उ० महति महत्ववति द्रव्ये महच्छब्दात् परिमाणवाचकात् गुणवाचकानां मतुषो लोपात्, अनेकद्रव्यवत्त्वादिति अनेकं द्रव्यमाश्रयो यस्य तदनेकद्रव्यम्, तद्यस्यास्ति तदनेकद्रव्यवत् तद्भावस्तस्मात् अनेकद्रव्यवत्त्वात्, एवं सति वायुरपि प्रत्यक्षः स्यादत उक्तं रूपाच्चेति उद्भूतादनभिभूतादिति वक्ष्यते, उपलब्धिरिति वाहेरिन्द्रियेणेशेषः तथाच परमाणोर्महत्त्वाभावादानुपलब्धिरित्युक्तं भवति, अनेकद्रव्यवत्त्वञ्च अनेकद्रव्याश्रिताश्रितत्वम् अवयववहुत्वाधीनमहत्त्वाश्रयत्वं वा । न च महत्त्वेनैवानेकद्रव्यवत्त्वमन्यथामिद्धमिति वाच्यं वैपरीत्यस्यापि सम्भवात्, जन्येन जनकस्यान्यथामिद्धि नंतु जनकेन जन्यस्येति चेन्न जन्यजनकयोर्युगपदन्वयव्यतिरेकग्रहेऽन्यथामिद्धाभावात् अन्यथा, भ्रामणादिना दण्डादीनामन्यथामिद्धिप्रसङ्गात्, महत्त्वात्कर्षात् प्रत्यक्षतोत्कर्षा दूरादाविति चेन्न अनेकद्रव्यवत्त्वात्कर्षस्यापि तत्र सम्भवाद्दिनि-

वि० उपलब्धिः चाक्षुषं स्पर्शनञ्च प्रत्यक्षम्, महति महत्परिमाणवति भवतीतिशेषः तथाच परमाणोर्महत्त्वाभावात् प्रत्यक्षमिति भावः । ननु वाद्यादेरपि महत्परिमाणसत्त्वात् कथं न प्रत्यक्षमत उक्तं रूपादिति उद्भूतरूपादित्यर्थः तेन चक्षुरादी रूपसत्त्वेऽपि न प्रत्यक्षम्, ननु त्रसरेण्वादावेव कथं महत्त्वं न परमाणावित्यत उक्तम् अनेकद्रव्यवत्त्वादिति तथाच जन्यमहत्त्वं प्रति अनेकद्रव्यवत्त्वस्य प्रयोजकत्वात् परमाण्वादी च तदभा-

सू० सत्यपि द्रव्यत्वे महत्त्वे रूपसंस्काराभावाद्वायो-  
रनुपलब्धिः ॥ ७ ॥

उ० गमनाविरहात् किञ्च मर्कटकीटसूत्रजाले हस्तचतुष्टयादि-  
मिते दूरादप्रत्यक्षे मर्कटमात्रप्रत्यक्षताऽनेकद्रव्यवत्त्वोत्क-  
र्षाधीनैव महत्त्वोत्कर्षस्य जाले वर्त्तमानत्वात् एवं सूक्ष्म-  
तन्तुघटितपटादौ दूरत्वे महत्त्वोत्कर्षेऽपि खल्पपरिमाण-  
मुद्गरादिप्रत्यक्षे द्रष्टव्यम् ॥ ६ ॥

नन्वेवमपि मध्यन्दिनोक्ताप्रकाशस्य चानुपस्य रश्मेर्वा-  
योर्व्या स्पर्शसमवायेन रूपसमवायिनो महत्त्वोपलम्भः  
स्यात् अत आह ।

रूपसंस्कारपदेन रूपसमवायो रूपोद्भवो रूपानभिभ-  
वञ्च विवक्षितः । तेन यद्यपि वायौ य एव स्पर्शसमवायः  
स एव रूपसमवायः तथापि रूपनिरूपितो नास्ति तत्र

वि० वायु महत्त्वम् अनेकद्रव्यवत्त्वञ्च अनेकसमवेतसमवेतत्वमिति  
अनेकद्रव्यवत्त्वादिति पञ्चम्याः प्रयोज्यत्वमर्थः अन्यथास्य महत्-  
परिमाणे तत्र च उपलब्धिप्रयोजकत्वं तात्पर्यबलात् पारतन्त्र्येण  
भासते अतो न चकारासङ्गतिरिति ध्येयम् ॥ ६ ॥

ननु समवाय एक एव स्पर्शस्य रूपस्य च तथाच वायौ स्पर्श-  
सत्त्वेन रूपवत्त्वमप्यावश्यकं सम्बन्धसत्तायाः सम्बन्धिसत्ताप्रयो-  
जकत्वात्, इत्यञ्च कथं न वायोः प्रत्यक्षमत आह ।

रूपसंस्कारः संस्कृतं रूपं क्वद्विहित इतिन्यायात् उद्भूतान-  
भिभूतरूपमिति यावत् तदभावात् तादृशरूपत्वावच्छिन्नाधि-  
करणत्वाभावाद्वायोः उपलब्धिः प्रत्यक्षमित्यर्थः । न च सम्बन्धस-

उ० रूपात्यन्ताभावसत्तात् चाक्षुषे च रश्मौ रूपसंस्कारः रूपो-  
द्भवो नास्ति मध्यन्दिनेोल्काप्रकाशे च रूपसंस्कारो रूपान-  
भिभवो नास्ति इति न तेषां प्रत्यक्षता, एवं शीघ्राग्निभर्जन-  
कपालानलकनकादिषु रूपसंस्कार उन्नेयः । वृत्तिकृतसु  
रूपञ्च रूपसंस्कारश्चेत्येकरूपपदलोपः तेन रूपाभावाद्वा-  
योरनुपलब्धिः, रूपसंस्काराभावाच्चक्षुरादीनामनुपलब्धि-  
रित्याहुः ॥ ७ ॥

एवं परमाणुनित्यताप्रकरणान्तरं परमाणुलिङ्गत-  
योपोद्घातसङ्गत्या वहिर्द्रव्यप्रत्यक्षता प्रकरणं समाप्य उपो-  
द्घातेन गुणप्रत्यक्षताप्रकरणं वृत्तयिष्यन्नाह ।

वि० ज्ञायाः सम्बन्धिसत्तानियामकत्वात् कथं न वायौ रूपाधिकरणत्व-  
मिति वाच्यं वायौ रूपं नास्तीति प्रत्यक्षसिद्धेन रूपाभावेन  
विरोधित्वात् वायू रूपवानिति प्रत्ययासत्त्वेन तदधिकरणतायां  
साधकाभावाच्च, यत्र तु न बाधकं किन्तु साधकान्तरं तत्रैव  
सम्बन्धसत्ता, सम्बन्धिसत्तानियामिका इत्यभ्युपगमस्यावश्यकत्वात्,  
द्रव्यत्वस्य सत्त्वकथनन्तु रूपसम्बन्धसत्त्वज्ञापनार्थम्, महत्परिमाण-  
सत्ताभिधानन्तु प्रत्यक्षकारणसम्पत्त्यर्थम्, उद्भूतत्वविशेषणं भ-  
र्जनकपालादिस्यवह्निशीघ्राग्निचक्षुराद्युपलब्धिवारणार्थम्, अ-  
भिभूतत्वविशेषणम् मध्यन्दिनेोल्काप्रकाशादिप्रत्यक्षवारणार्थमिति  
संक्षेपः ॥ ७ ॥

ननु परमाण्वादीनां प्रत्यक्षं न भवतु तद्रूपस्य तु प्रत्यक्षं कथं  
न भवति वहिर्द्रव्यप्रत्यक्ष एव महत्परिमाणोद्भूतानभिभूतरूपयो-  
र्हेतुत्वादन्वया घटरूपादीनामपि प्रत्यक्षं न स्यादित्यतो गुणप्रत्य-  
क्षताप्रकरणमारभते ।

सू० अनेकद्रव्यसमवायात् रूपविशेषाच्च रूपोप-  
लब्धिः ॥ ८ ॥

उ० रूपगतो विशेषो रूपविशेषः " तच्चोद्भूतत्वमनभिभूतत्वं  
रूपत्वञ्च तस्माद्रूपस्योपलब्धिः । नन्वेवं परमाणोर्द्वाणुकस्य  
च रूपं गृह्येतेत्यत उक्तमनेकद्रव्यसमवायादिति अनेकपदं  
भूयस्त्वपरं तेनानेकानि भूयांसि द्रव्याणि आश्रयतया यस्य  
तदनेकद्रव्यं त्रसरेणुप्रभृति तत्समवायात्, घटादयोऽप्यवय-  
वद्वयारम्भाः परम्परयाऽनेकद्रव्याश्रया एव, रसस्पर्शादौ-  
रूपत्वविरुद्धात् चाक्षुषत्वाभावः चाक्षुषे तेजसि च उद्भू-  
तत्वविरुद्धात्, उद्भवः रूपादिविशेषगुणगतो जातिविशेष-  
एव रूपत्वादिव्यप्यः । नन्वेवं शुक्लत्वसुरभित्वकटुत्वादिभि-  
रपि परापरभावानुपपत्तिरेव तत्तद्भाष्यतन्नानात्वकल्पने  
तु कल्पनागौरवम् उद्भवपदस्य नानार्थत्वञ्चेति चेन्न वाच्यै-  
कैकेन्द्रियग्रहणयोग्यगुणत्वस्यैवोपाधेरुद्भवत्वात् तदुपाधिवि-  
रुद्धस्यैवानुद्भवत्वात्, अनुद्भवाभाव एव उद्भव इति केचित्  
तच्चिन्त्यम् अनुद्भवस्याप्येवं व्यवस्थापयितुमशक्यत्वात् अती-

वि० अनेकं द्रव्यमाश्रयो यस्य तदनेकद्रव्यम् अनेकाश्रितमित्यर्थः  
तत्समवायात् अनेकसमवेतसमवेतत्वादिति यावत् तादृशसम-  
वेतत्वञ्च जन्यमहत्त्वप्रयोजकमिति महत्परिमाणमेवात्र विव-  
क्षितम्, रूपविशेषोऽदभूतानभिभूतरूपम्, तस्मात् पञ्चमर्थो  
जन्यत्वं तथाच रूपप्रबन्धे महत्परिमाणमुद्भूतानभिभूतरूपञ्च  
सामानाधिकरणसम्बन्धेन कारणं तत्कार्यतावच्छेदकान्तु वहि-

सू० तेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम् ॥ ६ ॥

उ० इन्द्रियविशेषगुणत्वमनुद्भूतत्वमिति चेत् एवं तर्हि ऐन्द्रियक-  
विशेषगुणत्वस्यैवोद्भवत्वापत्तेः । ऐन्द्रियकत्वावच्छेदकं कि-  
मिति चेत् तुल्यम्, विशेषगुणेष्वेकेवाद्भूतत्वं जातिः गुणगत-  
जातौ परापरभावानुपपत्तिर्न दोषाद्येत्यपि वदन्ति ॥ ८ ॥

स्पर्शातिरिक्तानां रूपसामानाधिकरण्यमेव वहिरि-  
न्द्रिययाह्यताप्रयोजकमिति रूपप्रत्यक्षसामग्रीमभिधाय ता-  
मन्यत्रातिदिशन्नाह ।

तेनेति रूपप्रत्यक्षज्ञानेनेत्यर्थः यथा रूपविशेषात् रूप-  
त्वानभिभूतत्वोद्भूतत्वाद्रूपोपलब्धिस्तथा रसविशेषात् रस-  
त्वानभिभूतत्वोद्भूतत्वलक्षणात् रसोपलब्धिः एवमितरत्रापि  
द्योष्यम् अनेकद्रव्यसमवायस्यातिदेश्यः, घ्राणरसनत्वगिन्द्रि-  
याणामनुद्भवाद्गन्धरसस्पर्शानामग्रहणम्, पाषाणादावनुद्भ-

वि० इन्द्रियजन्यद्रव्यसमवेतप्रत्यक्षत्वम् तथाच परमाणुरूपादौ मह-  
त्त्वस्य ग्रीष्मोष्मादिरूपादौ उद्भूतानभिभूतरूपस्य सामानाधि-  
करण्यसम्बन्धेनासत्त्वात् न तेषां प्रत्यक्षमिति भावः ॥ ८ ॥

परमाण्वादिगतगुणान्तराणामपि प्रत्यक्षमतएव न भवती-  
त्याह ।

तेन रूपस्थलीयहेतुकथनेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं प्रत्यक्षं व्या-  
ख्यातमुक्तप्रायमित्यर्थः तथाच परमाणुद्वयगुगतानां रसगन्ध-  
स्पर्शानां महत्त्वाभावान्न प्रत्यक्षम्, यद्यपि रूपस्य कार्यताव-

उ० वाङ्मन्धरसयोः, तद्भस्मानि तयोरूपलम्भात्, तयोः पाषा-  
णादावुपलम्भ एव नतु स्पष्ट इत्येके । विभक्तावयवाप्यद्रव्य-  
रूपानुद्भवात्तदग्रहणम् एवं रसस्यापि, उष्णजले तेजोरू-  
पस्थानुद्भवात् स्पर्शस्य चाभिभवात् विततकर्पूरचम्यकादौ  
रूपरसस्पर्शानामनुद्भवादनूपलम्भः । कनकादौ रूपमुद्भूत-  
मेव शुक्लत्वभास्वरत्वे परमभिभूते, रूपमप्यभिभूतमित्येके  
कनकग्रहणन्तु रूपान्तरसाहचर्यात्, अभिभवश्च बलवत्स-  
जातीयग्रहणकृतमग्रहणं नतु बलवत्सजातीयसम्बन्धमा-  
त्रम्, बलवत्सजातीयसम्बन्धस्याप्यग्रहणनिरूप्यतया अग्रह-  
णस्यैवोपजीव्यत्वात् नंचाग्रहणप्रयोजकत्वेन बलवत्सजातीय  
एवोपजीव्यः, अग्रहणस्य ग्रहणप्रागभावस्य तदत्यन्ताभावस्य  
वा तदप्रयोज्यत्वात् ग्रहणध्वंसस्य च तत्राभावात्, तवापि  
तर्हि बलवत्सजातीयग्रहणकृतमग्रहणमनुपपन्नमेवेति चेत्  
अस्त्वेवं तथापि सजातीयस्य बलवत्त्वे दुर्बलत्वे वा तादृश-  
सम्बन्धसत्त्वे वा ग्रहणाग्रहणे एव प्रयोजकं इति स एवा-  
भिभवपदार्थः ॥ ६ ॥

वि० श्लेदकं नोक्तप्रत्यक्षत्वं वायूपनीतसुरभिभागादेर्गन्धस्य वाक्यादेः  
स्पर्शस्य च प्रत्यक्षानुपपत्तेस्तथापि द्रव्यसमवेतचाक्षुषं प्रति  
उद्भूतानभिभूतं रूपं सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन कारणम्, तथा-  
विधरासनं प्रति उद्भूतानभिभूतरसः, तथाविधघ्राणजं प्रति  
उत्कटगन्धः, तादात्म्यसम्बन्धेन तथाविधस्पर्शनं प्रति उद्भूतान-  
भिभूतस्पर्शः सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन हेतुरिति विशेष्यैव  
कार्यकारणभावो वक्तव्यः ॥ ६ ॥



सू० तस्याभावादव्यभिचारः ॥ १० ॥

उ० ननु गुरुत्वमप्यनेकद्रव्यसमवेतं रूपमहत्त्वसमानाधिकरणञ्चेति कथं न प्रत्यक्षमत आह ।

तस्य रूपत्वादेः सामान्यस्य उद्भवस्य च गुरुत्वेऽभावाच्च गुरुत्वं प्रत्यक्षम् । ननु माभूत् तत्र रूपत्वादिकं तथापि तत्प्रत्यक्षं स्यादत आह अव्यभिचार इति एकैकेन्द्रियग्राह्यत्वं प्रति रूपत्वादीनां पञ्चानां जातीनाम् अव्यभिचारो नियम एव यत्रैव रूपत्वादिपञ्चकान्यतमं तत्रैव वाह्यैकेकेन्द्रियग्राह्यत्वं तद्व्यतिरेकादित्यर्थः, सूत्रे 'तु गुरुत्वाधिकारस्यास्फुटत्वात् प्रशस्तदेवैरतीन्द्रियेषु मध्ये परिगणितमपि वक्ष्यभाचार्यैः स्पर्शनमुक्तं गुरुत्वम् ॥ १० ॥

वि० ननु गुरुत्वादेः कथं न प्रत्यक्षं महत्त्वस्य उद्भूतरूपस्य च सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तत्र सत्त्वादित्यत आह ।

अत्र तत्पदेन अप्रक्रान्तस्यापि कारणकलापस्य परामर्शः कार्योत्पत्तिप्रयोजकतया तस्य प्रसिद्धत्वात् तथाच तस्य कारणकलापस्य अभावात् असत्त्वात् अव्यभिचारः उद्भूतरूपादेः कार्यकारणभावकल्पनायां गुरुत्वादौ नान्वयव्यभिचार इत्यर्थः तथाच लौकिकविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षसामान्यं प्रत्येवातीन्द्रियग्राणां गुरुत्वादीनां गुरुत्वत्वादिना प्रतिबन्धकतास्वीकारस्यावश्यकत्वेन तदन्योन्याभावस्य गुरुत्वादावसत्त्वेन सामग्र्यभावाच्च गुरुत्वादेः प्रत्यक्षमितिभावः । वक्ष्यभाचार्यैस्तु एतत्प्रश्नमन्यथैव व्याख्यातं स्वीकृतञ्च गुरुत्वादेः स्पर्शनप्रत्यक्षमिति सैक्षेपः ॥ १० ॥

सू० संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ  
परत्वापरत्वे कर्म च रूपिद्रव्यसमवायात् चाक्षु-  
षाणि ॥ ११ ॥

उ० एवमेकैकेन्द्रियग्राह्यानाभिधाय द्वीन्द्रियग्राह्यानाह ।

एतेषां चाक्षुषत्वे स्पर्शनत्वे वा परस्परानपेक्षत्वसूच-  
नायासमासः । यद्यपि महत्त्वापेक्षाऽस्ति तथापि न परि-  
माणत्वेन, चकारः स्नेहद्रवत्ववेगानामुपसंग्रहार्थः; चाक्षुषा-  
णीति स्पर्शनत्वमप्युपलक्षयति यद्वा चकार एव चाक्षुषाणि  
चेत्यत्राऽपि योज्यः । सञ्ज्ञा इति बह्वचनम् एकत्वादिकाः  
सर्वा एव सञ्ज्ञाः संगृह्णाति, एकत्वं सामान्यमेव न तु गुण  
इति चेत् तद् यदि द्रव्यमात्रवृत्ति तदा द्रव्यत्वेन सहा-  
न्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वम्, अथ गुणकर्मणोरपि वर्तते तदा  
सत्तया सहान्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वम्, कथं तर्हि गुणादा-  
वप्येकत्वादिप्रत्यय इति चेत् आरोपितेनैकत्वेन, एकार्थ-  
समवायप्रत्यासत्त्या सम्यगेवैकत्वप्रत्ययो वा । तदेतदेकत्वं नि-  
त्वाद्रव्येषु नित्यम् अनित्येषु च कारणैकत्वसमवायिका-

वि० द्वीन्द्रियग्राह्यानाह ।

चाक्षुषाणीत्यत्रापि पूर्वचकारो योजनीयः तेन सञ्ज्ञादीनि  
कर्मपर्यन्तानि रूपधद्द्रव्यसमवेतानि चाक्षुषाणि स्पर्शनानि  
चेत्यर्थः । कर्मचेति चकारात् उद्भूतरूपवद्द्रव्याणां योग्य-  
गतानां स्नेहवेगद्रवत्वानां जालीनाश्च संग्रहः । रूपिपदं

सू० तत्पुनः पृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरे-  
न्द्रियविषयसंज्ञकम् ॥ १ ॥

उ० स्पर्शवद्द्रव्यपरीक्षार्थं चतुर्थाध्याये मूलकारणपरमा-  
णुपरीक्षानन्तरं कार्यद्वारा स्पर्शवन्त्येव द्रव्याणि परी-  
क्षित्तिपुराह ।

तत्र शरीरत्वं प्रथमवदात्मसंयोगासमवाधिकारणवत्-  
क्रियावदन्यावयवित्वम् उपाधिभेदः, नतु शरीरत्वं जातिः  
पृथिवीत्वादिना परापरभावानुपपत्तेः, इन्द्रियत्वञ्च स्थित्य-  
जनकज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वम्, शब्देतरोद्भूतविशेष-  
विशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वं  
वा, नक्तञ्चरनयनरग्निस्तु तेजोन्तरमेव चतुष्टुतु शब्दरूपे-

वि० परमाणुरूपमूलकारणपरीक्षां प्रथमाङ्गिके सम्पाद्य कार्यद्रव्यं  
विभजते ।

अत्र शरीरत्वम् अन्यावयविमात्रवृत्तिचेष्टावद्वृत्तिजातिमत्त्वं  
हस्तत्वपृथिवीत्वद्रव्यत्वसत्त्वादिवारणाय प्रथमवृत्त्यन्तम्, घटत्वा-  
दिवारणाय चेष्टावद्वृत्तीति, घटशरीरसंयोगादिवारणाय जा-  
तीति मनुष्यत्वचैत्रत्वादजातिमादाय मानुषादिशरीरे लक्ष-  
णसमन्वयः वृक्षादावपि चेष्टाऽस्त्येव आध्यात्मिकवायुसम्बन्धात्  
अन्यथा भग्नक्षतसरोहणादिकं न स्यात्, कल्पभेदेन वृत्सिंह-  
शरीरस्य नानात्वात् वृत्सिंहत्वजातिमादाय तत्र लक्षणसमन्वयः  
नतु शरीरत्वं जातिः पृथिवीत्वादिनां सङ्करात्, नापि चेष्टाश्रय-  
त्वम्, निश्चेष्टशरीरेऽप्याप्तेः । इन्द्रियत्वमपि न जातिः, पृथिवी-  
त्वादिना सङ्करप्रसङ्गात् किन्तु शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्र-

७० तरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सतीति देयम्, नत्विन्द्रियत्वं जातिः, पृथिवीत्वादिना परापरभावानुपपत्तेः । विषयत्वञ्च यद्यपि प्रतीयमानभागसाधनत्वम्, तच्च लौकिकसाक्षात्कारविषयत्वमेव द्रव्यगुणकर्म्मसामान्याभित्तिसाधारणम्, तथापि सूत्रानुरोधाल्लौकिकसाक्षात्कारविषयकार्यद्रव्यत्वं द्रष्टव्यम्, पृथिव्यादिकार्यद्रव्यं त्रिविधमिति हि सूत्रम्, तथाच विषयत्वमपि न जातिः ॥ १ ॥

इदानीं शरीरस्य त्रैभौतिकत्वचातुर्भौतिकत्वप्रवादं निराकर्तुमाह ।

वि० यत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वम् इन्द्रियमनःसंयोग-  
चर्म्ममनःसंयोगात्ममनःसंयोगा ज्ञानकारणानीति चर्म्मण्णात्मनि  
चातिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम्, श्रात्रेऽव्याप्तिवारणाय शब्दे-  
तरेति व्याघ्रादिनयनरश्मेश्चक्षुःस्वीकारे तु रूपेतरैव्यपि वक्त-  
व्यम् घ्राणादौ गन्धादिसत्त्वादुद्भूतेति शुक्लत्वादिव्याप्यम् अनुद्भू-  
तत्वं जातिर्नानैव तदभावकूटवत्वमुद्भूतत्वं तच्च संयोगेऽप्यस्तौत्य-  
सम्भववारणाय विशेषेति कालदिगादावतित्याप्तिवारणाय ज्ञान-  
कारणेति चक्षुरवयवविषयसंयोगस्यापि चक्षुर्विषयसंयोगद्वारा  
ज्ञानजनकत्वस्वीकारात् चक्षुरवयवादौ चक्षुःसंयुक्तकालविशेष-  
णतायाः कालादौ रूपाभावचाक्षुषस्य जनकतया तद्घटकसंयोग-  
स्यापि स्वाश्रयविशेषणतासम्बन्धेन चाक्षुषकारणत्वात् तमादाय  
कालादौ चातिव्याप्तिवारणाय मनःपदम् । विषयत्वञ्च साक्षात्-  
परम्परया वेदभोगसाधनत्वे सति जन्यद्रव्यत्वम्, तस्य शरीरे-  
न्द्रियवृत्तित्वेऽपि शिष्यबुद्धिवैषद्यार्थं तयोः पृथगुत्कीर्त्तनमिति  
संक्षेपः ॥ १ ॥

सू० प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां संयोगस्याप्रत्यक्षत्वात् पञ्चात्मकं न विद्यते ॥ २ ॥

उ० गन्धक्लेदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पाञ्चभौतिकं यदि शरीरं भवेत् तदाऽप्रत्यक्षं भवेत् यथा प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां वायुवनस्पतीनां संयोगोऽप्रत्यक्षस्तथा शरीरमप्यप्रत्यक्षं स्यादिति दृष्टान्तद्वारकं सूत्रं, पञ्चात्मकं न विद्यत इति शरीरमितिशेषः। क्लेदपाकादयस्तु उपपद्यन्तकजलानलगतता एव, चातुर्भौतिकोऽप्येवम्। नन्वस्तु त्रैभौतिकम्, त्रयाणां भूतानां प्रत्यक्षत्वादिति चेन्न विजगतीयारम्भस्य प्रतिषेधात्। एकस्य गुणस्यावयविनि गुणानारम्भकत्वात् तद् चादं पृथिवीजलाभ्यामारम्भः स्यात् तदा तदारब्धमगन्धमरसञ्च स्यात् एवं पृथिव्यनलाभ्यामगन्धमरूपमरसञ्च स्यात् पृथिव्यनिलाभ्यामगन्धमरसमरूपमस्पर्शञ्च स्यादित्याद्युक्तम् ॥ २ ॥

वि० शरीरस्य चातुर्भौतिकत्वं पाञ्चभौतिकत्वञ्च निराकुरुते ।

“गन्धक्लेदपाकव्यूहावकाशदानेभ्यः पाञ्चभौतिकम्” इति न्यायपूर्वपक्षसूत्रं मानुषादिशरीरेषु गन्धादीनां भूतपक्षककार्याणां पञ्चानां सत्त्वात् तानि पाञ्चभौतिकान्येवेति केचिद्वदन्ति, तन्मतं खण्डयति, पञ्चात्मकं शरीरं न विद्यते प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणां संयोगस्याप्रत्यक्षत्वात् तदारब्धस्याप्यप्रत्यक्षतापत्तेः नहि वायोराकाशस्य वा प्रत्यक्षं कस्यचिद्भवति तस्माच्छरीरं न पाञ्चभौतिकमित्यर्थः, चातुर्भौतिकत्वमपि अनया युक्त्या खण्डनीयम् ॥ २ ॥

सू० गुणान्तराप्तादुर्भावाच्च न त्यात्मकम् ॥ ३ ॥

अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः ॥ ४ ॥

उ० एतदेवाह ।

पृथिव्यग्नेजसां प्रत्यक्षाणामेवारब्धं शरीरं प्रत्यक्षं स्या-  
दपि, यदि तत्र गुणान्तरं कारणगुणपूर्वकं प्रादुर्भवेत्, न  
त्वेतदस्ति एकस्य गन्धादेरनारम्भकत्वस्योक्तत्वात् तथाच न  
व्यात्मकमपि शरीरं न रूपवद्भूतत्रयारब्धमपीत्यर्थः ॥ ३ ॥

कथं तर्ह्येकस्मिन्नेव शरीरे पाकादीनामुपलम्भ इत्यत  
आह ।

मिथः पञ्चानां भूतानां परस्परमुपलम्भकतया संयोगो  
न निषिध्यते, किन्तु विजातीययोरण्वोर्द्रव्यं प्रत्यक्षमवाधि-

वि० ननु पृथिव्यादीनां त्रयाणां प्रत्यक्षत्वात् त्रैभौतिकत्वमेव मानु-  
षादिशरीराणामङ्गीकार्यमित्यत आह ।

चकारस्त्वर्थं मानुषादिशरीरं न व्यात्मकं, पृथिव्यादित्रयार-  
ब्धम्, गुणान्तरस्य स्नेहस्य चित्ररूपस्य चित्रस्पर्शस्य चाप्रादुर्भावा-  
दनुत्पत्तेः, यथा स्नेहवदवयवारब्धस्यावयविनः स्नेहः कारणगुण-  
पूर्वको दृश्यते, यथा वा नानावर्णावयवैरारब्धस्यावयविनश्चित्र-  
रूपमुत्पद्यते तथा मानुषादिशरीरेऽपि कथं न भवति कारण-  
स्याविशेषात् ॥ ३ ॥

ननु कथं तर्हि शरीरे गन्धक्लेदपाका भूतत्रयजन्या अनुभूयन्ते  
इत्याशङ्क्याह ।

अणूनां पार्थिवजलीयतैजसानां परस्परं संयोगस्तु न प्रति-  
षिद्धः नास्माभिर्निषिध्यते किन्तु तादृशसंयोगरूपादसमवाधि-

सू० तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्च ॥ ५ ॥

कारणं संयोगो नेष्यते, तथाच तदुपष्टम्भात् पाकादीनां शरीरे भवत्युपलम्भ इति तर्हि किञ्चकृतिकमिदं मानुष-शरीरमित्यत्र गौतमोयं सूत्रमुपतिष्ठते “पार्थिवं तद्विशेषगुणोपलब्धेः” पृथिवीविशेषगुणो गन्धो मानुषशरीरे आनाशमनपायी दृश्यते, पाकादयस्तु शुष्कशरीरे नोपल-भ्यन्ते इति तेषामौपाधिकत्वं गन्धस्य स्वाभाविकत्वमिति पार्थिवत्वव्यवस्थितेः ॥ ४ ॥

शरीरं विभजते ।

उ० तत्र पार्थिवाद्यादिशरीरेषु मध्ये पार्थिवं शरीरं द्विवि-  
के ते द्वे विधे इत्यत्राह योनिजमयोनिजञ्चेति आप्यतैजस-  
यवोयशरीराणां वरुणादित्यवायुलोकेषु प्रसिद्धानाम्

वि० कारणाद्द्रव्यान्तरमेवेत्यर्थः तथाच मानुषादिशरीरेषु जल-  
जलपृष्ठम्भकत्वस्वीकारात् क्लेदपाकादीनां नासङ्गतिः, एकस्य  
शरीरस्य आत्मकत्वे पृथिवीत्वजलत्वादिजातीनां परस्परसाङ्कर्य-  
प्रसङ्गादिति भावः । न च साङ्कर्यभयात् किं पार्थिवत्वं स्वीकार्यम्  
उत जलीयत्वं वेत्यत्र किं विनिगमकमिति वाच्यं स्वाभाविक-  
गन्धवत्त्वस्यैव पार्थिवत्वे विनिगमकत्वात् अनुभूयते हि शुष्कश-  
रीरेऽपि गन्धः नतु क्लेदादिरिति गन्धस्य स्वाभाविकत्वम्, तथाच  
गौतमसूत्रम् “पार्थिवं तद्विशेषगुणोपलब्धेः” इति ॥ ४ ॥

पार्थिवं शरीरं विभजते ।

योनिजमपि द्विविधं जरायुजमण्डजञ्च जरायुजं मनुष्यपञ्चा-  
दीनाम् अण्डजं पक्षिसर्पादीनाम् । अयोनिजं खेदजोद्भिज्जादिकं

उ० निजत्वमेव अयोनिजत्वं शुक्रशोणितसन्निपातानपेक्षत्वम् ।  
 अयोनिजञ्च देवानामृषीणाञ्च, श्रूयते हि 'ब्रह्मणो मानसा  
 मन्यादय' इति । कारणमन्तरेण कथं कार्यमिति चेत् योनेः  
 शरीरत्वावच्छेदेनाकारणत्वात् उभजकमिमशुक्रादिशरीरे  
 व्यभिचारात् संस्थानविशेषवत्त्वस्य चासिद्धेः देवर्षिशरीरा-  
 पेक्षयाऽस्मदादिशरीराणामन्यादृशत्वात्, योनिजमपि द्वि-  
 विधं जरायुजमण्डजञ्च, जरायुजं मानुषपशुमृगाणां गर्भा-  
 शयस्य जरायुत्वात् पत्तिसरोसृषाणामण्डजं परिणतः सर्पण-  
 शीलत्वात् सर्पकीटमत्स्यादयोऽपि सरोसृषा एव यद्यपि  
 वृक्षादयोऽपि शरीरभेदा एव भोगाधिष्ठानत्वात् न खलु  
 भोगाधिष्ठानत्वमन्तरेण जीवन-मरण-स्वप्न-जागरणभेष-  
 जप्रयोग-वीजसजातीयानुबन्धा नुकृन्नापगम-प्रतिकूलाप-  
 गमादयः सम्भवन्ति वृद्धिचतमग्रसंरोहणे च भोगोपपा-  
 दके स्फुटे एव, आगमोऽप्यस्ति ।

“नर्म्मदातीरसम्भूताः शरत्कार्जुनपादपाः ।

नर्म्मदातोयसंस्पर्शात् ते यान्ति परमां गतिम्” ।

इत्यादिः ।

वि० खेदजं दंष्ट्रमशुक्रादीनाम् उद्भिज्जं तरुगुल्मादीनाम्, मानसञ्च  
 शरीरं सप्तर्षीणाम् मन्यादीनाञ्च तैजसमेव ननु पार्थिवम्,  
 वृक्षादीनां शरीरत्वे मानसञ्च “शरीरजैः कर्मदेवै र्याति स्थाव-  
 रतां नरः” इति मनुवचनम् ।

“गुरुं त्वङ्गृत्य ऊङ्गृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः ।

श्रीशाने जायते वृद्धः कङ्कगृध्रादिसेवितः” ॥



सू० अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् ॥ ६ ॥

उ० “शशाने जायते वृक्षः कङ्कटध्रादिभेवितः” ।  
इत्यादिश्च तथापि चेष्टावत्त्वमिन्द्रियवत्त्वञ्च नोद्भिदां स्फुट-  
तरमतो न शरीरव्यवहारः ॥ ५० ॥

अयोनिजशरीरोत्पत्तिकारणमाह ।

अनियतदिग्देशाः परमाणवो धर्माविशेषजनितकर्माण-  
स्तत्पूर्वकत्वादयोनिजशरीराणाम् ॥ ६ ॥

वि० इत्यादिवचनञ्चेति संक्षेपः ॥ ५ ॥

ननु मन्वादीनामयोनिजं शरीरं कथमुत्पद्यते शुक्रशोणित-  
रम्भकपरमाणूनामेव विशिष्टशरीरारम्भकत्वेन तत्र तदभावा-  
दित्याशङ्क्यायामाह ।

अनियतौ दिग्देशौ येषां ते अनियतदिग्देशाः परमाणवस्त-  
त्पूर्वकत्वात् तदधीनत्वात्, “सन्त्ययोनिजाः” इति दशमसूत्रेण  
पञ्चम्यन्तानां चतुर्णां सूत्राणामन्वयः । तथाच वरुणलोकादौ अ-  
योनिजा अप्या तैजसा वायवीया मानसाश्च देहाः सन्ति तेषां  
शुक्रशोणिताद्यनपेक्षोत्पत्तिकानामारम्भकाः परमाणवः कुत  
आगच्छन्ति योनिजेषु शुक्रशोणितपरमाणव एवारम्भका दृष्ट्या  
इत्याशङ्कानिरासार्थमुक्तमिदम्, पार्थिवा जलीया तैजसा वायवी-  
याश्च परमाणवः सर्वास्तु दिक्षु सर्वेषु देशेषु च सन्ति तेषां  
दिग्देशनियमाभावात् अयोनिजशरीरोत्पत्तौ न परमाणु-  
दुर्भिक्षम्, नहि शुक्रशोणितपरमाणुभिन्नाः परमाणवो न देहा-  
रम्भकाः दशमशकतरुगुल्मादिदेहानुत्पत्तिप्रसङ्गादित्यर्थः ॥ ६ ॥

सू० धर्मविशेषाच्च ॥ ७ ॥

समाख्याभावाच्च ॥ ८ ॥

उ० ननु परमाणूनां कर्म विना कथं द्रव्याममवाधिकारणं संयोगमन्तरेण द्रव्योत्पत्तिरत आह ।

अदृष्टवदात्मसंयोगादेव सर्गादौ परमाणूनां कर्म तेन च कर्मणा मन्भूय परमाण्वो ह्यणुकादिप्रक्रमेण अयोनिजं देवर्षीणां शरीरमारभन्ते इत्यर्थः, उपलक्षणञ्चैतत् अधर्मविशेषाच्च लुद्रजन्तूनामुभयजानां मशकादीनां यातनामयानि शरीराण्युत्पद्यन्ते इत्यपि द्रष्टव्यम् ॥ ७ ॥

देवर्षीणामयोनिजे शरीरे प्रमाणान्तरमाह ।

समाख्या अन्यथा संज्ञा श्रुतिस्मृतौतिहासपुराणादिषु

वि० नन्वयोनिजशरीरारम्भपरमाणूनां ह्यणुकारम्भकसंयोगेषु असमवायिकारणानां तादृशपरमाणुकर्मणां कथमुत्पत्तिस्तदसमवायिकारणस्याभावादत आह ।

धर्मविशेषात् स्वयमानप्राणिनां पुरुषविशेषादेव तेषामयोनिजानि शरीराण्युत्पद्यन्ते, तादृशादृष्टवदात्मसंयोगेन परमाणूनां क्रिया भवन्ति, ततः परमाणूनां ह्यणुकारम्भकाः संयोग जायन्ते, ततो ह्यणुकादिक्रमेणयोनिजानि शरीराण्युत्पद्यन्ते इत्यर्थः ॥ ७ ॥

नन्वयोनिजशरीराणां संज्ञा कथम्भवति पित्रादीनामभावात् अन्यभूयन्ते हि लोके चैत्रमैत्रादिसंज्ञाः पित्रादिनिवेशिता इत्याशङ्कयामाह ।

समाख्या संज्ञा तस्या भावात् पत्न्यात् वीजिपित्रादिकं विनै-

सू० संज्ञाया आदित्वात् ॥ ६ ॥

उ० प्रसिद्धा, तथाहि दुर्व्वासःप्रभृतयो मानसाः अहङ्कारेभ्यः  
समभवंदङ्गिरा इत्यादिका, तथाऽपि ज्ञायते सन्त्ययोनि-  
जानि शरीराणि देवर्षीणामिति ॥ ८ ॥

प्रमाणान्तरमाह ।

सर्गादौ या ब्रह्मादिसंज्ञा आदिभूता प्राथमिकी  
तथा ज्ञायते अस्ययोनिजं शरीरमिति नहि तदा ब्रह्मणो  
मातापितरौ स्तः याभ्यां ब्रह्मादिसंज्ञा कृता स्यादिति  
भावः ॥ ९ ॥

उपसंहरति ।

वि० वेतिशेषः । नहि सर्वाः संज्ञाः पित्रादिनैव निवेशिताः घट-  
दिरंसंज्ञानन्त्यात्वाभावात् तथाच येनेश्वरेण घटपटाद्यचेत-  
नेषु संज्ञा निवेशितास्तेनैव मनुमरीच्यादिसंज्ञा अयोनिजेषु  
शरीरेषु निवेशिता इति भावः ॥ ८ ॥

ननु ईश्वरे प्रमाणाभावात् कथं घटपटादिसंज्ञानां तत्कृत-  
त्वमित्यत आह ।

संज्ञाया आदित्वात् कारणत्वात् ईश्वरस्येतिशेषः तथाच  
“संज्ञाकर्म्मत्वस्मिदिशिष्टानां लिङ्गम्” इति सूत्रेण संज्ञाकर्त्त-  
त्वेनेश्वरसिद्धेरुक्तत्वादोश्वरस्य संज्ञाकर्त्तृत्वं निरानाधमेवेति  
भावः ॥ ९ ॥

इदानीं चतुर्णामुक्तानां सूत्राणां सार्धं निर्दिशति ।

सू० सन्ध्ययोनिजाः ॥ १० ॥  
वेदलिङ्गाच्च ॥ ११ ॥

उ० शरीरविशेषा इति शेषः ॥ १० ॥

उपसंहृतेऽतिदार्ढ्यार्थं प्रमाणान्तरमाह ।

वेदो मन्त्रः स च लिङ्ग्यते ज्ञाप्यतेऽनेनेति वेदलिङ्गं ब्राह्मणम्, ततोऽप्यथोनिजं शरीरं प्रतिपद्यते इत्यर्थः । तथाहि ब्राह्मणम् “प्रजापतिः प्रजा अनेका असृजत् स तपोऽतप्यत प्रजाः सृजेयमिति स मुखतो ब्राह्मणमसृजत् बाङ्गभ्यां राजन्यमरूभ्यां वैश्यम् पद्भ्यां शूद्रम्” इति, वेदोऽपि “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाङ्गं राजन्यः कृतः ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत” इत्यादिः, तदेवं योनिजंमयोनिजञ्च पार्थिवशरीरमुक्तम्, आप्यं तैजसं वायवीयञ्चायोनिजमेव, शुक्रशोणितयोर्नियमेन पार्थिवत्वात् पार्थिवेन च पाथमी-

वि० मनुमरीचादीनां देहविशेषा इति शेषः ॥ १० ॥

अयोनिजशरीरविशेषसन्त्वे वेदा अपि प्रमाणतामासादयन्तीत्याह ।

वेदरूपं यल्लिङ्गं ज्ञापकं तस्मात् तथा “ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्” स मुखतो ब्राह्मणमसृजत्” इत्यादिकेभ्यो वेदेभ्य एव अयोनिजाः शरीरविशेषाः सन्तीति ज्ञायते । परन्तु जलीय-तैजसवायवीयशरीराणां पार्थिवभागोपलम्भादुपभोगसाधनत्वम् । पार्थिवम् इन्द्रियं घ्राणं तच्च गन्धस्य गन्धगतजातीनाञ्च ग्राहकम्, घ्राणेन्द्रियं पार्थिवं रूपादिषु मध्ये गन्धस्यैव श्लेष्मकत्वात् कुङ्कुमगन्धाभिव्यञ्जकत्वादिवत् वायूपनीतसुरभिभागवद्वा, रस-नेन्द्रियं जलीयं परकीयरूपाद्यथङ्गकत्वे सति परकीयरसव्यञ्जक-

उ० यानारम्भात् इन्द्रियन्तु पार्थिवं घ्राणं सर्वप्राणस्य साधारणं जलाद्यनभिभूतैः पार्थिवभागैरारब्धं घ्राणम्, घ्राणं पार्थिवं रसाद्यव्यञ्जकत्वे सति, गन्धव्यञ्जकत्वात् मृगमदगन्धव्यञ्जककुक्कुटाचारवत्, एवं रसनमायं रूपाद्यव्यञ्जकत्वे सति रसस्यैव व्यञ्जकत्वात् सक्कुरमाभिव्यञ्जकमलिलवत्, एवञ्चक्षुस्सैजसं रसाद्यव्यञ्जकत्वे सति रूपस्यैव व्यञ्जकत्वादा लोकवत्, त्वगिन्द्रियं वायवीयं गन्धाद्यव्यञ्जकत्वे सति स्पर्शस्यैव व्यञ्जकत्वात् अङ्गसङ्गिमलिलशैत्याभिव्यञ्जकव्यजनवातवत् । विषयस्तु पार्थिवे मृत्पाषाणस्यावरलक्षणः तत्र भूप्रदेशाः प्राकारेष्टकादयो मृद्विकाराः, अद्रिमणिहीरकगैरिकादयः पाषाणाः, स्यावरास्तृणौषधिवृक्षगुल्मलतावतानवनस्यतयः । आप्यास्तु विषयाः सरित्समुद्रहिमकरकादयः । तैजसस्तु

वि० त्वात् सक्कुरसाभिव्यञ्जकोदकवत् एतच्च रसस्य तद्रूपजातीनाञ्च ग्राहकं द्रव्यग्रहणे घ्राणरसनयोर्न सामर्थ्यम्, चक्षुरिन्द्रियं जसं गन्धाद्यव्यञ्जकत्वे सति रूपव्यञ्जकत्वात् दीपप्रभावात्, इदञ्च इन्द्रियं संयोगरूपसन्निकर्षेण उद्भूतरूपवन्ति महत्त्वविशिष्टानि च द्रव्याणि गृह्णाति, संयुक्तसमवायरूपसन्निकर्षेण तादृशद्रव्यवृत्तीनि रूपसंख्यापरिमितिरुचक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्ववेगक्षेहद्रवत्वकर्मसामान्यानि च गृह्णाति, संयुक्तसमवेतसमवायरूपसन्निकर्षेण योग्यवृत्तिवृत्तीनि सामान्यानि गृह्णाति, संयुक्तविशेषणतासंयुक्तसमवेतविशेषणतादिभिर्योग्यप्रतियोगिकान् संसर्गाभावान् योग्यगतान् व्ययोग्यप्रतियोगिकानप्यन्यान्याभावान् गृह्णाति, कात्यादनये समवायस्य प्रत्यक्षं न भवति । त्वगिन्द्रियं देहव्यापि उद्भूतस्पर्शग्राहकं तद्रूपसामान्यग्राहकञ्च

उ० विषयो भौमदिव्योदर्याकरजभेदाच्चतुर्विधः । भौमं का-  
 ष्ठेन्धनप्रभवम्, दिव्यम् अविन्धनं विद्युदादि, उदर्यम् अन्वा-  
 दिरमार्जनक्षमं जाठरम्, आकरुजञ्च हिरण्णादि, वाय-  
 वीयसु विषयः उपलभ्यमानस्यर्शाश्रयोवायुः, वायोश्चतुर्थः  
 कार्यः प्राणाख्यः शरीरे रसमलधातूनां प्रेरणादिहेतुरेकः  
 सन् क्रियाभेदादपानादिसंज्ञां लभत इति ॥ ११ ॥

इति शाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपकारे चतुर्थाध्यायः समाप्तः ॥\*॥

वि० एवं रूपभिन्नान् रूपमात्रगतसामान्यभिन्नांश्च चतुर्थाह्यान्  
 गृह्णाति, वायुमपि गृह्णातीति नव्याः । सन्निकर्षस्तु पूर्ववत्, तदे-  
 तदिन्द्रियं वायवोयं रूपांश्च व्यञ्जकत्वे सति स्पर्शव्यञ्जकत्वात् अङ्गस-  
 ङ्गिसलिलश्रैत्यव्यञ्जकव्यजनवातवदित्यादिरनुमानप्रकारः । सर्व-  
 धूक्तानुमानेषु आत्ममनःप्रभृतिषु व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम्,  
 एवं सन्निकर्षं व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वे सतीति विशेषणं देयम्,  
 कर्णशृङ्गुल्यवच्छिन्नं नभः श्रोत्रमिन्द्रियं तच्च समवायेन शब्दान्  
 समवेतसमवायेन तद्गतानि सामान्यानि च गृह्णाति, यदिन्द्रियं  
 यद्ग्राहकं तत्प्रतियोगिकसंसर्गभावानां तद्गतानामन्योन्याभावा-  
 नाच्च ग्राहकमपि तदिन्द्रियं भवति इति वाच्चेन्द्रियाणि पञ्च,  
 मनस्तु अन्तरिन्द्रियं तच्च संयोगेन आत्मानं विशेषगुणोपरक्तमेव  
 गृह्णाति, संयुक्तसमवायेन बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषयतान् आत्मत्व-  
 जातिश्च गृह्णाति \*संयुक्तसमवेतसमवायेन बुद्ध्यादिगतानि सा-  
 मान्यानि गृह्णातीत्यन्यत्र विस्तरः ॥ ११ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-कृतायां कणाद-  
 सूत्रविहृतौ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयमाङ्गिकम् ॥ \* ॥

समाप्तश्चायं चतुर्थाध्यायः ॥

\* आत्मैकत्वमपि गृह्णातीति केचित् ।

सू० आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ॥ १ ॥

उ० कर्मपरीक्षा पञ्चमाध्यायार्थः । प्रयत्ननिष्पाद्य-कर्मपरीक्षा प्रयत्नान्त्रिकार्थः । तत्राप्युत्क्षेपणप्रकरणम्, अप्रयत्नमिद्धोत्क्षेपणप्रकरणम्, पुण्यहेतुकर्मप्रकरणम्, पुण्यपापोदासीन-कर्मप्रकरणञ्च । चेष्टाविशेषमधिकृत्याह ।

संयोगश्च प्रयत्नश्च संयोगप्रयत्नौ आत्मनः संयोगप्रयत्नौ ताभ्यां हस्ते समवायिकारणे कर्म, तस्य च कर्मणः प्रयत्नवदात्मसंयोगोऽसमवायिकारणम्, प्रयत्नश्च निमित्तकारणम्, इयमेव चेष्टा, प्रयत्नवदात्मसंयोगासमवायिकारणक्रियायाश्चेष्टात्वात् स्वासमवेतस्वातिरिक्तस्यैवदन्यप्रयत्न्यक्रियाया वा ॥ १ ॥

वि० “सरस्वती मम मङ्गली विवर्द्धताम्,  
तथा मतिःस्फुरतु गभीरगाहिनी ।  
ह्यपावती भवतु भवप्रिया सदा,  
ददातु नः शुभनिवहं भवोऽभवः” ॥

कर्मपरीक्षाभ्यामाह ।

आत्मनः संयोगेन प्रयत्नेन च शरीरे तदवयवे च चेष्टारूपं कर्म भवतीत्यर्थः हस्ते इत्युपलक्षणम् अत्र चेष्टारूपकर्मणि शरीरतदवयवादिकं समवायिकारणम्, आत्मसंयोगोऽसमवायिकारणम्, प्रयत्नो निमित्तकारणम् । तदुक्तम् ।

“आत्मजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या भवेत् कृतिः ।

कृतिजन्या भवेच्छेष्टा तज्जन्यैव क्रिया भवेत्” ॥

इति ॥ १ ॥

सू० तथा हस्तसंयोगाच्च मुषले कर्म ॥ २ ॥  
 अभिघातजे मुषलादौ कर्मणि व्यतिरेकादका-  
 रणं हस्तसंयोगः ॥ ३ ॥

उ० हस्तोत्क्षेपणमुक्त्वा तदधीनं मुषलोत्क्षेपणमाह ।  
 चकारेण गुरुत्वं निमित्तकारणान्तरं समुच्चिनोति  
 तथेति तादृशमुत्क्षेपणरूपमेवेत्यर्थः । यद्वा तथाहस्तसंयो-  
 गादुत्क्षेपणवद्भक्तसंयोगादित्यर्थः अत्र च प्रयत्नवंदात्मसं-  
 युक्तेन हस्तेन मुषलस्य संयोगोऽसमवायिकारणम्, मुषलं  
 समवायिकारणम्, प्रयत्नं गुरुत्वे निमित्तकारणे ॥ २ ॥  
 उदूखलाभिघातस्य मुषलस्याकस्माद् यदुत्पन्नं जायते  
 तत्र कारणमाह ।

अत्र यद्यपि मुषलेन उत्पत्तता हस्तस्य संयोगोऽप्यस्ति त-  
 थाऽपि स संयोगोऽन्यथासिद्धः किन्तु उदूखलाभिघात एव

वि० चेष्टाजन्यां क्रियामाह ।

तथाहस्तसंयोगात् प्रयत्नवदात्मसंयुक्तचेष्टावद्भक्तसंयोगात्  
 मुषले कर्म भवतीति शेषः चकारेणानुक्तस्य गुरुत्वादेः संग्रहः ।  
 तथाच मुषलकर्मणि मुषलं समवायिकारणम्, तादृशहस्त-  
 संयोगोऽसमवायिकारणम्, आत्मप्रयत्नहस्तचेष्टादीनि निमित्त-  
 कारणानीत्यर्थः ॥ २ ॥

हस्तचेष्टादिकं विनाऽपि मुषले उत्पत्तनाख्यं कर्म भवतीत्याह ।  
 उदूखलाद्यभिघातजन्ये मुषलस्योत्पत्तनाख्ये कर्मणि हस्त-



सू० तथात्मसंयोगो हस्तकर्मणि ॥ ४ ॥

उ० असमवायिकारणम्, कुत एवमित्यत आह व्यतिरेकादिति प्रयत्नस्य व्यभिचारादित्यर्थः । यदि तदा प्रयत्नः स्यात् मुषलस्यैवाकस्मिकमुत्पत्तनं न भवेत् विधारकेण प्रयत्नेन मुषलस्य धारणेमेव भवेत् चेष्टाधीनं मुषलस्य पुनरुत्पत्तनं वा भवेत् इति भावः ॥ ३ ॥

मुषलेन सहेत्यततोहस्तस्य कर्मणि कारणविशेषमभिधातुं प्रयत्नवदात्मसंयोगस्यासमवायिकारणत्वं निराकर्तुमाह ।

मुषलेन सहेत्यततोहस्तस्य कर्मणि आत्मसंयोगः प्रय-

वि० संयोगोऽकारणं नासमवायिकारणम्, संयोग इत्युपलक्षणं प्रयत्नचेष्टा च न निमित्तकारणमित्यपि बोध्यम् । अत्र हेतुमाह व्यतिरेकादिति विलक्षणहस्तसंयोगप्रयत्नचेष्टाव्यतिरेकेऽपि जायमानत्वात् दृढतरहस्तसंयोगप्रयत्नविशेषविलक्षणहस्तचेष्टानां सत्त्वे प्रद्युत मुषलस्योत्पत्तनमेव न भवतीति तेषां प्रतिबन्धकत्वमेव न तु कारणत्वं प्रयत्नजन्यं मुषलस्योद्ब्रूखलादुत्पत्तनन्तु आकस्मिकोत्पत्तनात् विलक्षणमेवेति भावः ॥ ३ ॥

उद्ब्रूखलाभिहतमुषलेन सह हस्तस्य यदाकस्मिकमुत्पत्तनं तत्र प्रयत्नवदात्मसंयोगो न कारणमित्याह ।

हस्तकर्मणि उद्ब्रूखलप्रतिहतमुषलसंयुक्तस्य हस्तस्य उत्पत्तनाख्ये कर्मणि आत्मसंयोगः प्रयत्नवदात्मसंयोगस्तथा नासम-

सू० अभिघातान्मुषलसंयोगाद्दस्ते कर्म ॥ ५ ॥

उ० ढवदात्मसंयोगस्तथा अकारणमित्यर्थः अकारणमिति पूर्व-  
सूत्रस्य तथेत्यतिदिश्यते ॥ ४ ॥ :

कुतस्त्विह हस्ते तदेत्यतनमत आह ।

यथा मुषले उत्पतति मुषलमुखस्य लोहमुत्पतति तथा  
हस्तोऽपि तदेत्यतति अत्राभिघातशब्देन अभिघातजनितः  
संस्कार उच्यते उपचारात्, उत्पततो मुषलस्य पटुतरेण  
कर्माणा अभिघातसहकृतेन स्वाश्रये मुषले संस्कारो जनित-  
स्तत्कृतं संस्कारमपेक्ष्यं हस्तमुषलसंयोगादसमवायिकार-  
णाद्दस्तेऽप्युत्पतनं नतु तदुत्पतनं प्रयत्नवदात्मसंयोगासम-  
वायिकारणकम्, अवशोहि हस्तो मुषलेन सहेत्यततीति-  
भावः ॥ ५ ॥

वि० वायिकारणमित्यर्थः तथा शब्देन पूर्वसूत्रे प्रकान्तस्य अकारणस्य  
परामर्शात्, इदमुषलक्षणं प्रयत्नोऽपि नासाधारणनिमित्तमित्यपि  
बोध्यम् ॥ ४ ॥

किन्तुहि तादृशकर्मकारणमित्यत आह ।

अभिघातादिति प्रयोज्यत्वं पञ्चम्यर्थः तच्च स्वजन्यमुषलगत-  
वेगजन्यत्वम् अन्वयश्चास्य कर्मणि तथाच उदूखलाभिघातान्मुषले  
वेगो जायते वेगवन्मुषलसंयोगाच्च हस्तेऽपि वेगो भवतीति तेन  
हस्तेत्यतनम्, एवञ्च वेगवन्मुषलसंयोगो वेगश्च द्वयमेव हस्ते-  
त्यतनस्य कारणं नतु प्रयत्नस्तद्ददात्मसंयोगो वेतिभावः ॥ ५ ॥

## सू० आत्मकर्म हस्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥

उ० ननु शरीरे शरीरावयवे वा चत्कर्मापिचते तत्र प्रयत्न-  
वदात्मसंयोगः कारणं प्रकृते कथं न तथेत्यत आह ।

आत्मशब्दः शरीरावयवपर उपचारात् अन्वयानुप-  
पत्तिरेवोपचारबीजम्, तथाचात्मनः शरीरावयवस्यापि  
हस्तस्य यत् कर्म तत् हस्तमुषलसंयोगात्, चकार च वेग-  
समुद्भवः, हस्तकर्माणि हस्तसंयोगस्तावदसमवायिकाः तत्र  
व्यभिचारो नास्ति स च क्वचित् प्रयत्नवदात्मसंयोगः क्वचि-  
द्देगवन्मुषलादिहस्तसंयोगो यद्यत् वातूलस्य शरीरावयव-  
कर्मातिभावः ॥ ६ ॥

प्रयत्नानधीनकर्मप्रकरणमारभते ।

वि० ननु शरीरतदवयवकर्म्मसु प्रयत्नवदात्मसंयोगस्यास्य वि-  
कारणतानियमो भव्येत्यत आह ।

आत्मशब्दस्यात्र चेष्टाश्रयोऽर्थः ।

“आत्मायत्नोऽस्ति बुद्धिः स्वभावो ब्रह्मवर्धं च”

इतिकोषात् वर्ध्मपदमपि चेष्टावत्त्वेन शरीरतदवयवपरं तथाच  
शरीरतदवयवकर्म्म प्रयत्नवदात्मसंयोगात् वेगवद्द्रव्यसंयोगाच्च  
भवति, हस्तेन संयोगो हस्तस्य संयोगो वा हस्तसंयोगः हस्तपदं  
चेष्टावत्परं चेष्टावद्देगवद्द्रव्ययोः संयोग इति क्लृप्तार्थः  
तथाह व्यभिचारादुक्तनियम अप्रामाणिक इति भावः ॥ ६ ॥

प्रयत्नवदात्मसंयोगं विनाऽपि गुरुत्वहेतोः पतनाख्यकर्म्मणा  
निव्यत्तेर्नोक्तनियमः प्रामाणिक इत्याह ।

सू० संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥ ७ ॥

उ० संयोगपदेन प्रतिबन्धकमात्रमुपलक्षयति तेन प्रतिबन्धकाभावे गुरुत्वाद्ममवायिकारणात् पतनम् अर्धःसंयोगफलिका क्रिया जायते, तत्र गुरुत्ववति फलादौ प्रतिबन्धकः संयोगः, विहङ्गमादौ तु विधारकः प्रयत्नः पतनप्रतिबन्धकः, काण्डादौ चिप्रे संस्कार एव पतनप्रतिबन्धकः, एतेषामभावे गुरुत्वाधीनं पतनमित्यर्थः । अभिधानादिना घिषादेरन्तरीक्षस्थापने अदृष्टवदात्मसंयोगो मन्वादिरेव वा प्रतिबन्धकस्तेषामपि संयोगपदेन संग्रहः ॥ ७ ॥

ननु गुरुत्वाद् यदि पतनं तदा लोष्टादेरुक्लिप्तस्य क्वचिद्दृङ्गं क्वचिच्च तिर्यग्गमनं कथम्भवेदित्यत आह ।

वि० दृक्षाद्युच्चदेशारूढस्य देहस्य अवलम्बनशाखादिभङ्गेन दैवात् स्थलनादिना वा यत् पतनं भवति तत्र गुरुत्वमेव कारणं ननु प्रयत्नवदात्मसंयोगः तस्य पतनाप्रयोजकत्वात् क्वचित् प्रतिबन्धकत्वाच्च अतएव विहायसि विहरतां विहङ्गमादीनां प्रयत्नवदात्मसंयोगादेव प्रतिबन्धान्न पतनम् एवं प्रयत्नवदोश्वरसंयोगात् प्रतिबन्धादेव भूरादिलोकानां न पतनम्, यत्र तु प्रतिबन्धकसंयोगादिकं नास्ति तत्र पतनकर्म्मणि गुरुत्वमसमवायिकारणं भवताऽपि लोकार्थमित्युक्तनियमे व्यभिचारः स्फुट एवेति भावः ॥ ७ ॥

ननु गुरुत्वस्यापि पतने कारणत्वं न सम्भवति गुरुत्ववतोऽपि लोष्टादेरुक्लिप्तस्योर्द्धगमनदूर्ध्वनात् एवञ्च दृक्षादितः स्थलितदेहादेः कथं लोष्टादिवत् तिर्यग्गमनमूर्द्धगमनं वा न भवतीत्यत आह ।

सू० नोदनविशेषाभावान्नोद्धं न तिर्य्यग्गमनम् ॥

॥ ८ ॥

प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः ॥ ९ ॥ नोदनविशेषादुदसंनविशेषः ॥ १० ॥

उ० गुरुत्वतोऽपि लोष्टकाण्डादे र्यदूद्धं तिर्य्यक् च गमनं तन्नोदनविशेषात् तीव्रतरान्नोदनात् तथा च फलपक्षिवाणादौ संयोगप्रयत्नसंस्काराभावे यत् पतनं तत्र नोदनविशेषो नास्ति तेन न तिर्य्यङ्गोद्धं गमनमितिभावः ॥ ८ ॥

ननु नोदनविशेष एव कुत उंत्पद्यते तत्राह ।

तिर्य्यक् ऊद्धं दूरम् आसन्नं वा क्षिपामीतीच्छाकारणकः प्रयत्नविशेषः तज्जनितो नोदनविशेषस्ततो गुरुत्वतो

वि० स्थलितस्य देहादे नोद्धं गमनं न वा तिर्य्यग्गमनम् । नोदनविशेषस्य वाणादेस्तिर्य्यग्गमनप्रयोजकसजातीयस्य लोष्टादेरूद्धं गमनप्रयोजकसजातीयस्य वा नोदनस्याभावात् तथाचोद्धं गमनादिहेतुभूतस्य नोदनविशेषस्यासत्त्वात् तत्कार्यमूद्धं गमनादिकं न भवति, यत्र तु तादृशनोदनादिकं वर्त्तते भवत्येव तत्रोद्धं गमनादिकमितिभावः ॥ ८ ॥

ननु स्थलितदेहादौ नोदनविशेष एव कथं न जायते नोदनविशेषस्योद्धं गमनादौ हेतुत्वं वा कथमङ्गीक्रियते इत्याशङ्गायां सूत्रद्वयमुपतिष्ठते ।

प्रयत्नविशेषात् ऊद्धं मुत्क्षिपामीत्यादीच्छाजनितान् विलक्षणप्रयत्नात् नोदनविशेषो जायते इति तादृशप्रयत्नाभावात् स्थल-

सू० हस्तकर्मणा दारककर्म व्याख्यातम् ॥ ११ ॥

उ० द्रव्यस्य लोष्टादेरुर्द्धं तिर्यक्च गमनमुपपद्यते उदसनं दूरो-  
त्क्षेपणम् ॥ ८ ॥ १० ॥

उदूखलाभिघातात् मुषलेन सह हस्ते यत्कर्म उत्पन्नं  
तत्तावत् प्रयत्नपूर्वकं न भवति नापि पुण्यपापहेतुरतस्तनु-  
ष्यतां बालकस्य क्रीडाकरचरणादिचालनं यत्तत्रातिदि-  
शति ।

बालकस्य यद्यपि करचरणादिचालनं प्रयत्नपूर्वक-  
मेव तथापि हिताहितप्रतिफलकं न भवति न वा पुण्य-  
पापहेतुरित्यतिदेशार्थः ॥ ११ ॥

वि० नादिस्थले न नोदनविशेष इत्यर्थः ॥ ८ ॥ नोदनविशेषात् पूर्वो-  
क्तप्रयत्नजनितविजातीयनोदनात् उदसनम् ऊर्द्धोत्क्षेपणम् ऊर्द्ध-  
गमनं भवतीतिशेषः तथाचान्वयव्यतिरेकाभ्यां नोदनविशेषस्य  
ऊर्द्धगमनहेतुत्वं सिद्धतीति उदसनमित्युपलक्षणं तिर्यग्गमना-  
दिकमपि बोध्यम् ॥ १० ॥

ननु कोडस्थितस्य बालकस्य करचरणादिक्रिया तिर्यगूर्द्धगमन-  
रूपा कथमुत्पद्यते तत्कारणस्य नोदनविशेषस्य तत्रासत्त्वादित्यत  
आह ।

लोष्टात्क्षेपणकालीनेन हस्तकर्मणा उत्क्षेपणाद्यात्मकेन दार-  
कस्य बालकस्य कर्म करचरणाद्युत्क्षेपणं व्याख्यातम् उपपादितं  
तथाच उदसनमात्रेण नोदनविशेषोहेतुः किन्तु उदसनविशेष-  
एवेति न बालकस्य करचरणाद्युत्क्षेपणानुपपत्तिः अन्यथा लोष्टा-  
द्युत्क्षेपः करौद्युत्क्षेपणानुपपत्तेरित्यर्थः ॥ ११ ॥

सू० तथा दग्धस्य विस्फोटने ॥ १२ ॥  
यत्नाभावे प्रसुप्तस्य चलनम् ॥ १३ ॥

उ० इदानीं प्रयत्नपूर्वकेऽपि कर्माणि यत्र पूण्यपापहेतुत्वं  
तत्र दारककर्मांतुल्यतामतिदिशंज्ञाह ।

आततायिना केनाप्यगारे दाह्यमाने तत्र दग्धस्य पु-  
षस्य विस्फोटे वक्रिहते जाते मति तस्याततायिनो बधानुकू-  
लेन प्रयत्नेन हस्तादौ यत्कर्मा जनितां तन्न पूण्यहेतुर्न वा  
पापहेतुः यथाहुः ।

“नाततायिबधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।

प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युच्छति” ॥

“अग्निदोगरदस्यैव शस्त्रपाणिर्धनीपहा ।

क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः” ॥ १२ ॥

इदानीं यत्नं विना यानि कर्माणि भवन्ति तान्याह ।

प्रसुप्तस्येति चैतन्याभावदशामुपलक्षयति तेन मूर्च्छितस्य  
जीवतोऽचैतन्येऽपि वायुकृतं चलनं द्रष्टव्यमत्र ॥ १३ ॥

वि० ऊर्द्धमुत्तिष्ठामीत्यादीच्छाजनितप्रयत्नविशेषानधीनोदनादपि  
क्वचित् उत्त्तेषणादिकम्भवतीत्याह ।

दग्धस्य शरीरगृहफलादे विस्फोटने तदवयवानां तिर्थगूर्द्ध-  
गमने तथा न प्रयत्नविशेषजनितनोदनं हेतुरित्यर्थः ॥ १२ ॥

प्रयत्नानधीनं कर्मान्तरमपि दर्शयति ।

ऊर्द्धं क्षिपामीत्यादीच्छाजनितप्रयत्नाभावेऽपि प्रसुप्तस्य सुषुप्त-

सु० तृणे कर्म वायुसंयोगात् ॥ १४ ॥

मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् ॥ १५ ॥

उ० शरीरकर्माणि व्याख्याय तदितराण्याह । :

दणपदेन दृत्तगुल्लतावतानादिकं सर्वमुपलक्षयति ॥

॥ १४ ॥

अदृष्टाधीनं कर्म परिगणयन्नाह ।

मणिपदेन कांस्यादिकमुपलक्षयति तेनाभिमन्वितं मणिकांस्यादि तस्कराभिमुखं यद् गच्छति तत्र गमने म-  
ण्यादि समवायिकारणंम्, अदृष्टवत्तस्करात्ममणिसंयोगो-  
ऽसमवायिकारणम्, तस्करस्य पापं निमित्तकारणम् ।  
सूच्यभिसर्पणमिति सूचीपदेन लौहमात्रं दणञ्चोपलक्षयति ।  
तथाचायस्कान्ताभिमुखं यत्सूच्यादेर्गमनं दणकान्ताभि-

वि० वस्थान्वितस्य शरीरस्य चलनं तिर्यग्गूर्द्धाङ्गचालनादिकर्म उत्पद्यते  
इत्यर्थः तथाच प्रयत्नविशेषो न सर्वत्र हेतुरितिभावः ॥ ११ ॥

अन्यान्यप्येतादृशानि कर्माणि दर्शयति ।

प्रयत्नविशेषाभावेऽपि वायुसंयोगात् तृणे कर्म उत्पद्यते दण-  
पदमन्येषामप्युपलक्षकम् ॥ १४ ॥

प्रयत्नविशेषानधीनानि अदृष्टविशेषाधीनानि कर्माणि प्र-  
दर्शयति ।

मणिपदेन जलपूर्णकाञ्चनादिमयपात्राण्यभिप्रेतानि चौर्य-  
धनसम्बन्धे तादृशपात्रे मान्दिकं मन्त्रप्रयोगः क्रियते, तादृश-



उ० मुखं यत् हणस्य गमनं तत्र सूच्यादि समवायिकारणम् । य  
 हितमहितं वा तेन हणसूच्यादिगमनेन, तददृष्टवदात्म-  
 संयोगोऽसमवायिकारणम्, तददृष्टमेव निमित्तकारणम्,  
 एवमन्वदप्युच्यते, तद्यथा वज्रैरूर्ध्वज्वलनं वायोस्तिर्य-  
 ग्गमनं सर्गादौ परमाणुकर्मादि ॥ १५ ॥

ननु शरविहङ्गमालातचक्रादीनामुपरमपर्यन्तमेकमेव  
 कर्म नाना वेति संशये निर्णयहेतुमाह ।

वि० पात्रन्तु भूमौ तिष्ठति तदुपरि अपरेण केनचिद्द्विगहस्तः  
 स्थाप्यते मन्वसामर्थ्यात् तत्पात्रं तादृशहस्तसहितमेव चार्थ-  
 धनावस्थानस्थानाभिमुखं गच्छति तत्र स्थाने गत्वा स्थिरं भव-  
 तीति प्राचां किंवदन्ती, तादृशपात्रगमने न प्रयत्नविशेषो हेतुः  
 किन्तु पूर्वस्वामिनः सुदृढं चोरस्य दुष्कृतं वा निमित्तकारणम्,  
 तादृशादृष्टवदात्मना तादृशपात्रस्य संयोगोऽसमवायिकारणम्,  
 तादृशपात्रन्तु समवायिकारणम्, एवं अयस्कान्तसन्निधाने सति  
 सूचीनां लोहशलाकानां यदयस्कान्ताभिमुखगमनं भवति तत्रापि  
 अदृष्टमेव हेतुः, ननु कस्यादृष्टेन सूच्यादीनां गमनमिति चेत्  
 तद्गमनेन यस्य हितमहितं वा भवति तददृष्टस्यैव तत्र हेतुत्वम्,  
 सूचीत्युपलक्षणम् अयस्कान्ताकृष्टलोहमात्रमभिप्रेतम्, दृष्टका-  
 न्तमण्णाकृष्टानां दृष्टानां गमने वज्रैरूर्ध्वज्वलने वायोस्तिर्यग्ग-  
 मने सर्गाद्यकालीनपरमाणुकर्मणिचादृष्टकारणत्वमूहनीयमिति  
 संक्षेपः ॥ १५ ॥

विद्विप्तशरादौ यत्कर्म जायते तत् शरपतनपर्यन्तमेकं नाना  
 वेत्यत्राह ।

सू० इषावयुगपत्संयोगविशेषाः

॥ १६ ॥

उ० इषाविति षष्ठ्यर्थे सप्तमी, इदमचाकृतं वेगेन गच्छतां शरादीनां कुडादिसंयोगानन्तरं शरादौ सत्येव गत्युपरमो दृश्यते अत्राश्रयनाशस्तावन्न तन्नाशकः आश्रयस्य विद्यमानत्वात् विरोधिगुणान्तरञ्च नोपलभ्यते तेन स्वजन्यः संयोग एव कर्मानाशक इत्युच्यते स च संयोगश्चतुर्थक्षणे जातः पञ्चमक्षणे कर्म नाशयति तथाहि कर्मात्यन्तिरथविभागः अथ पूर्वसंयोगनाशः उत्तरसंयोगः कर्मानाशः तेनायुगपत्संयोगविशेषाः कर्मानानात्वज्ञापका इत्यर्थः संयोगविशेषा इति संयोगे विशेषः स्वजन्यत्वमेव अन्यथा संयोगमात्रस्य कर्मानाशकत्वे कर्म क्वचिदपि न तिष्ठेत् ॥ १६ ॥

वि० इषौ धनुमुक्तशरे अयुगपत् नानासमयोत्पन्ना ये संयोगविशेषा उत्तरसंयोगा जायन्ते त एव कर्मान्यत्वे शरगतकर्माणां नानात्वे हेतुरित्येकवचनमार्थं हेतव इति विवक्षणीयम्, तथाच कर्मण्यः स्वजन्यस्वचतुर्थक्षयोत्पन्नोत्तरसंयोगनाशत्वनियमात् पञ्चमादि-क्षयोस्त्वस्थानासम्भवेन शरस्याद्यगमनमारभ्य पतनपर्यन्तमेकस्य कर्मणोऽवस्थानासम्भवात् भिन्नभिन्नानि स्वजन्योत्तरसंयोगनाशानि कर्माणि जायन्ते इत्यवश्यमङ्गीकार्यमिति भावः ॥

॥ १६ ॥

सू० नोदनादाद्यभिषोः कर्म तत्कर्मकारिताच्च  
संस्कारादुत्तरं तथोत्तरमुत्तरञ्च ॥ १७ ॥

उ० नोदननिष्पाद्यकर्मप्रकरणानन्तरं संस्कारनिष्पाद्यकर्म-  
प्रकरणमारभते ।

पुरुषप्रयत्नेनाकृष्टया पतञ्जिकया नृनस्त्रेषोराद्यं कर्म  
जायते तत्र नोदनमममवाधिकारणम्, इषुः समवायि-  
कारणम्, प्रयत्नगुरुत्वे निमित्तकारणे, तेन चाद्येन कर्मणा  
समानाधिकरणो वेगाख्यः संस्कारो जन्वते स च वेगेन गच्छ-  
तीति प्रत्यक्षसिद्ध एव तेन संस्कारेण तत्रेषौ कर्म जायते  
तत्रासमवाधिकारणं संस्कारः, समवायिकारणमिषुः, नि-  
मित्तकारणन्तु तीव्रो नोदनविशेषः, एवञ्च यावदिषुपतन-  
मनुवर्त्तमानेन संस्कारेण उत्तरोत्तरः कर्मसन्तानो जायते  
स्वजन्योत्तरसंयोगेन कर्मणि नष्टे संस्कारेण कर्मान्तरजन-

वि० ननु विद्विप्तशरादेराद्यं यत् कर्म तज्जनकस्य धनुषा नोदनस्य  
तेनैव कर्मणा स्वद्वितीयक्षणे नाशोत्पादात् नोदनाभावेन पञ्च-  
मादिक्षणे कथं कर्मान्तराण्युत्पत्त्यन्ते इत्यत आह ।

नोदनात् आकृष्टया पतञ्जिकया सह इधोर्नोदनाख्यसंयोगात्,  
इधोः शरस्य, आद्यं प्राथमिकम्, कर्म गमनरूपम्, तत्कर्मका-  
रिताच्च आद्यकर्मजनितात्, संस्काराद्देगाख्यात्, उत्तरं द्वितीयम्,  
तथा तत्संस्कारात्, उत्तरमुत्तरञ्च द्वितीयचतुर्थादिकञ्च, कर्म जायते

सू० संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥ १८ ॥

उ० नात् एक एव संस्कारः कर्मसन्तानजनकः नतु कर्मसन्तानवत् संस्कारसन्तानोऽप्यभ्युपगन्तुमुचितो गौरवादिति दर्शयितुमाह तथोत्तरमुत्तरञ्चेति तत्कर्मकारिताच्च संस्कारादित्येकवचनञ्च, न्यायनयेतु कर्मसन्तानवत् संस्कारसन्तानस्वीकारे गौरवम्, यत्तु युगपत्प्रक्षिप्तशरयोरेकस्य तीव्रो वेगोऽपरस्य तु मन्दस्तत्र नोदनतीव्रत्वमन्दत्वे निमित्तम् ॥ १७ ॥

ननु संस्कार एक एव चेत् कर्मसन्तानजनकस्तदा कदाचिदपि शरपातो न स्यात् कर्मजनकस्य संस्कारस्य सत्त्वादित्यत आह ।

गुरुत्वन्तावत् पतनकारणमनुवर्त्तमानमेव तच्च गुरुत्वं

वि० इत्यर्थः तथाच प्राथमिके कर्मणि नोदनमसमवायिकारणम्, द्वितीयादौ तु वेग एवेति न द्वितीयादिकर्मेत्यादानुपपत्तिरितिभावः । अत्र पतनपर्यन्तमिधोरेक एव वेगो नतु नाना इति सूचयितुं संस्कारादित्येकवचनम् उत्तरमित्यस्य त्रिरभिधानञ्च, नहि कर्मसन्तान इव वेगसन्तानेऽपि किञ्चिन्कानमस्ति येन स स्वीकरणीय इति ॥ १७ ॥

नन्वेवं शरस्त्रमेव गच्छेत् कदाचिदपि न पतेदित्यत आह । संस्कारस्याद्यकर्मजनितस्य वेगस्य अभावे नाशे सति गुरुत्वात् कारणादेव पतनं शरादौ जायते इत्यर्थः, यादृशवेगवि-

उ० संस्कारेण प्रतिरुद्धं पतनं नाजीजनत् अथ प्रतिबन्धकाभावे  
तदेव गुरुत्वं पतनं करोतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्कारे पञ्चमाध्यायस्य  
प्रथममाह्निकम् ॥ \* ॥

वि० शेषो यावन्तं कालन्तिष्ठति तावानेव कालोऽन्तिमक्षणवच्छिन्न-  
स्तादृशं वेगं नाशयति क्वचित्तु द्रव्यान्तरसंयोगोऽपि वेगनाशकः  
तथाच प्रतिबन्धकस्य वेगस्य सत्त्वादेव पूर्वं शरादेर्न पतनं  
किन्तु गतिसन्तान एवाभूत् उत्तरखालान्तु गमनकर्म्मणः कारणा-  
विनाशान्न गमनं किन्तु प्रतिबन्धकाभावात् पतनमेव भवतीति  
न किञ्चिदनुपपन्नम् ॥ १८ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चान-भट्टाचार्यकृतायां कणाद-  
सूत्रविरचितौ पञ्चमाध्यायस्य प्रथमाह्निकम् ॥ \* ॥

सू० नोदनाभिघातात् संयुक्तसंयोगाच्च पृथिव्यां  
कर्म ॥ १ ॥

उ० नोदनादिनिष्पाद्य कर्मपरीक्षाप्रकरणम् । तत्राह ।

नोदनं संयोगविशेषः येन संयोगेन जनितं कर्म संयोगि-  
निनाः परस्परं विभागहेतु र्न भवति यः संयोगः शब्द-  
निमित्तकारणं न भवति वा । यः संयोगः शब्दनिमित्त-  
कारणं भवति यज्जनितं कर्म संयोगिनाः परस्परविभाग-  
हेतुश्च भवति स संयोगविशेषोऽभिघातः । ताभ्यामपि  
प्रत्येकं कर्म जन्यते पङ्काख्यायां पृथिव्याच्चरणेन नोदनात्  
चरणाभिघाताच्च कर्म जायते तत्र पङ्कः समवायिकारणम्,  
नोदनाभिघातो यथायथमममवायिकारणम्, गुरुत्वविग-  
प्रचक्षा यथासम्भवं निमित्तकारणम् । संयुक्तसंयोगादिति  
नोदनादभिघाताद्वा पङ्के कर्म तत्पङ्कस्थिते घटादावपि  
तत्समकालमेव कर्मदर्शनात् ॥ १ ॥

वि० नोदनाद्यधीन कर्मपरीक्षामारभते ।

पृथिव्यां वंशादौ कदाचिद्वज्रादिनोदनात् कर्म जायते कदा-  
चिच्च कुठाराद्यभिघातात् एवं संयुक्तसंयोगात् चलदश्यादिसं-  
युक्तरञ्जसंयोगात् रथादौ कर्म जायते तत्र प्रथमे वंशादिकर्मणि  
वज्रादिनोदनमममवायिकारणम्, वंशादिः समवायिकारणम्,  
अट्ट्यादिकं निमित्तकारणम्, द्वितीये कुठाराद्यभिघातोऽसम-  
वायिकारणं तृतीयेऽश्वसंयुक्तरञ्जसंयोगोऽसमवायिकारणमिति ॥

॥ १ ॥

२ ॥ २

सू० तद्विशेषेणादृष्टकारितम् ॥ २ ॥

अपां संयोगाभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥ ३ ॥

उ० ननु भूकम्पादौ नोदनाभिघातावन्तरेण जायमाने किमसमवायिकारणमत आह ।

तदिति पृथिवीकर्म परामृशति पृथिव्यामेव कर्म यदि विशेषेण आशयेन भवति तदाऽदृष्टकारितम्, तेन भूक-  
म्पेन यस्य दुःखं सुखं वा भवति अदृष्टवत्तदात्मसंयोगस्त-  
त्रासमवायिकारणम्, भूः समवायिकारणम्, अदृष्टं निमि-  
त्तकारणम्, यद्वा तदा नोदनाभिघातौ परामृशति विशे-  
षो व्यतिरेकः तथाच नोदनाभिघातव्यतिरेकेण यत् पृथिव्यां  
कर्म तददृष्टकारितमित्यर्थः ॥ २ ॥

इदानीं द्रवद्रव्यसमवेतकर्मापरीक्षाप्रकरणम्, तत्राह ।

अपां यत् पतनं वर्षणरूपं तद्गुरुत्वासमवायिकारण-

वि० नोदनादिव्यतिरेकेऽपि यद्भूकम्पादिकं जायते तत्र किमसम-  
वायिकारणमित्याकाङ्क्षायामाह ।

तेषां नोदनाभिघातसंयुक्तसंयोगानां विशेषेण व्यतिरेकेण  
जातं यत् भूकम्पादिकं कर्म तत् अदृष्टकारितं अदृष्टवदात्म-  
संयोगासमवायिकारणकमित्यर्थः भूकम्पेन यस्य सुखं दुःखं वा  
भवति तददृष्टस्य तत्रासाधारणकारणत्वादितिभावः ॥ २ ॥

जलादिकर्मपरीक्षामारभते ।

अपां धूमज्योतिःसलिलमरुत्संघातात्मकमेघगतानां जलानां  
संयोगाभावे पतनप्रतिबन्धकसंयोगस्य नाशे सति गुरुत्वादसम-

सू० द्रवत्वात् स्यन्दनम् ॥ ४ ॥

नाद्यो\* वायुसंयोगादारोहणम् ॥ ५ ॥

उ० कम्, तत् संयोगस्य मेघसंयोगस्थीभावे सति भवति तेन संयोगभावस्तन्निमित्तकारणमित्यर्थः ॥ ३ ॥

तेषामेव वृष्टिविन्दूनामन्योन्यसंयोगजनकं कर्म कथ-  
मत आह ।

क्षितौ पतितानामपां विन्दूनां परस्परं संयोगेन मह-  
ज्जलावयवि स्रोतोरूपं यज्जायते तस्य यत् स्यन्दनं दूरसं-  
रणं तत् द्रवत्वादसमवायिकारणादुत्पद्यते गुरुत्वान्नि-  
मित्तकारणादसु समवायिकारणेषु ॥ ४ ॥

ननु यदि भूमिष्ठानामपाम् ऊर्द्धं गमनं भवति तदा  
गुरुत्वात् पतनवर्षणं सम्भाव्यते तदेव तु कुत इत्यत आह ।

कारयन्तीतिशेषः । यदपामूर्द्धमारोहणं तत् नाद्यः

वि० वायिकारणात् पतनम् अधःसंयोगानुकूलं कर्म भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

ननु भूमौ पतितानां जलविन्दूनां मिलनेन स्रोतोरूपेण यद्दूर-  
देशगमनरूपं स्यन्दनं जायते तत्र किमसमवायिकारणमित्याका-  
ङ्क्षायामाह ।

जलादीनां यत् स्यन्दनाख्यं कर्म तत्र त्रयत्वमेवासमवायिका-  
रणमित्यर्थः ॥ ४ ॥

ननु मेघसम्पादकं जलानामूर्द्धगमनं कथं भवतीत्यत आह ।

ताद्यः सूर्यखरकरा वायुसंयोगात् आरोहणम् अपामित्यनुव-



## सू० नोदनापीडनात् संयुक्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥

उ० सूर्यरश्मयो वायुसंयोगात् कारयन्ति ग्रामे वाय्वभिहताः  
सूर्यरश्मय एव आरोहयन्त्यप इत्यर्थः । क्वचित् पाठो  
नाद्यवायुसंयोगादिति स च नाद्यो नाडीसम्बन्धी यो वायु-  
संयोग इत्युपपादनीयः ॥ ५ ॥

ननु सूर्यरश्मीनां कथमयं महिमा यत् भूमिष्ठा अप  
ऊर्द्धं जनयन्तीत्यत आह ।

नोदनेन बलवद्वायुनोदनेन आपीडनादास्कन्दनात्  
वायुसंयुक्तारश्मयस्तत्संयुक्ता अपि ऊर्द्धं धावन्ति यथा  
स्थालीस्था अपः कथ्यमानाः वायुनुन्नवह्निरश्मय ऊर्द्धं  
नयन्ति, चकार इवार्थस्तत्र च उपमानं स्थालीस्था एवापो  
द्रष्टव्याः ॥ ६ ॥

वि० क्तिंते जनयन्तीति शेषः वायुसंयुक्ताः ये तीक्ष्णाः सूर्यकरास्त एव  
भूमिगतानां जलानामूर्द्धगमनं जनयन्तीत्यर्थः । नाद्यवायुसंयो-  
गादिति पाठाऽपि क्वचिद्दृश्यते तत्र नाद्यः नाद्यां भवो यो  
वायुसंयोगः नाडीवाय्वोः संयोग इति यावत् तस्मादपाम् आरो-  
हणं भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

ननु सूरकराणां कथमीदृशसामर्थ्यमत्राह ।

नोदनेन वेगवद्वायुनोदनेन आपीडनात् सम्बन्धात् तथाच  
वेगवद्वायुसंयोगादेव सूर्यकराणामूर्द्धगमनसामर्थ्यम्, ननु  
सूर्यकरस्थो यो वायुसंयोगः स सूर्यकरस्यैवोर्द्धगमनेऽसमवा-  
यिकारणं ननु जलानां व्यधिकरणत्वादत आह संयुक्तसंयो-

सू० दृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् ॥ ७ ॥

उ० ननु मूले सिक्तानामपां वृक्षाभ्यन्तरेणोर्द्धगमनम् अभि-  
तः, तत्र न नोदनाभिघातौ नवादित्यरश्मयः प्रभवन्ति  
तत्कथं तदित्यत्राह ।

अभितः सर्पणमभिसर्पणं तदभिसर्पणं मूले निषिक्ताना-  
मपां वृक्षे तददृष्टकारितं पत्रकाण्डफलपुष्पादिवृद्धिकृतं  
सुखं दुःखं वा येषामात्मनाम्, अदृष्टवत्तदात्मसंयोगादस-  
मवाधिकारणात् अदृष्टान्निमित्तादसु समवाधिकारणेषु तत्  
कर्म भवति येन कर्मणा आप ऊर्द्धं गत्वा वृक्षं वर्द्धयन्ती-  
त्यर्थः ॥ ७ ॥

नन्वपां सांसिद्धिकद्रवत्वं लक्षणमुक्तं तादृशानामेवा-  
पामूर्द्धमधस्तिर्यक्च गमनमुपपादितं हिमकरकादीनाञ्च

वि० गात्रेति वायुसंयुक्ताः ये स्वर्यकरास्तत्संयोगादित्यर्थः तथाच  
जलानामूर्द्धगमने वायुसंयुक्तस्वर्यकरसंयोग एवासमवाधिकारणं  
स्वर्यकरादिगतवायुसंयोगस्तु निमित्तकारणमिति न किञ्चिद-  
नुपपन्नम् ॥ ६ ॥

ननु वृक्षादे मूलस्थानां जलानां कथं वृक्षाभ्यन्तरेणोर्द्धग-  
मनम् उक्तहेतोस्तत्राभावादत आह ।

वृक्षवर्द्धनेन यस्य सुखं दुःखं वा भवति अदृष्टवत्तदात्मसंयोग  
एव मूलस्थजलानां वृक्षाभ्यन्तरेणोर्द्धगमनेऽसम वादिकारणं त  
दृष्टादृष्टं निमित्तकारणमित्यर्थः ॥ ७ ॥

सू० अथां संघातो विलयनञ्च तेजःसंयोगात् ॥ ८ ॥

उ० शैत्यादप्लवमविवादमिद्दम्, तत्कथं तेषां संघातः काठिन्यम्, कथञ्च विलयनमित्येत आह ।

दिव्येन तेजसा प्रतिबन्धादाप्याः परमाणवो ह्यणुकमारभमाणा ह्यणुकेषु द्रवत्वं नारभन्ते ततो द्रवत्वपूह्यैरवयवैर्ह्यणुकादिप्रक्रमेण द्रवत्वपूह्यया हिमकरकादय आरभन्ते. तेन तेषां काठिन्यमुपलभ्यते । नन्वेवं हिमकरकादीनामाप्यले किं प्रमाणमत उक्तं विलयनञ्च तेजःसंयोगादिति तेजःसंयोगेन बलवता हिमकरकारम्भकपरमाणूनां क्रिया क्रियातो विभागस्तत आरम्भकसंयोगनाशप्रत्यक्षरया हिमकरकादिमहावयवविनाशस्तत्र द्रवत्वप्रतिबन्धकतेजःसंयोगविवगमात् त एव परमाणवः ह्यणुकेषु द्रवत्वमार-

वि० ननु हिमकरकादीनां कथं प्रतिरुद्धद्रवत्वं कथं वा तद्विलयनमित्यत आह ।

अथां संघातः विलक्षणसंयोगो हिमकरकादिगत स्तेजःसंयोगात् विलक्षणदिव्यतेजःसंयोगात् भवति, एवं विलयनं शिथिलाख्यसंयोगोऽपि तेजःसंयोगात् पूर्वोक्ततेजोभिन्नतेजःसंयोगाद्भवति, दिव्यतेजःसंयुक्तजलपरमाणुभ्यां यद्दृश्यणुकमारभ्यते तत्रानुद्भूतं द्रवत्वं जायते उद्यम्या विलयनस्थले दिव्यतेजःसंयोगरहितत्वादेवोद्भूतद्रवत्वं दणुकादौ जायते, हिमकरकादौ काठिन्यप्रतीतिस्तु भ्रमरूपा कठिनस्पर्शस्य पृथिवीमात्रवृत्तित्वात् हिमकरकादौ यदनुद्भूतद्रवत्वं तत्रादृष्टविशेषोऽपि हेतुरिति, केचित्तु

सू० तत्र\* विस्फुर्ज्युर्लिङ्गम् ॥ ६ ॥

उ० भन्ते ततो० द्रवत्वतां हिमकरकादीनां विलयनं तत्र च बलवत्तेजोनुप्रवेशो निमित्तम् ॥ ८ ॥

ननु बलवद्दिव्यतेजोनुप्रवेशस्तत्र इत्यत्र किं प्रमाण-  
मित्यत आह ।

तत्र दिव्यासु अप्तु दिव्यानां तेजसामनुप्रवेशे विस्फु-  
र्ज्युर्लिङ्गं वर्जनिर्घोष एव लिङ्गमित्यर्थः आत्यन्तिकविद्युत्-  
प्रकाशस्तावत्प्रत्यक्ष एव तदनुपदञ्च स्फुर्ज्युः सोऽपि प्रत्यक्ष  
एव तेनानुमीयते यस्मान्नेघात् करकाः प्रादुर्भवन्ति तत्र  
दिव्यन्तेजोविद्युद्रूपमनुप्रविष्टं तदुपष्टम्भेन करकारम्बिका-  
णामपां द्रव्यत्वप्रतिबन्ध इति ॥ ६ ॥

वि० हिमकरकादिस्थले दिव्यतेजःसंयोगेन प्रतिबन्धाद्द्रवत्वं नोत्पद्यत  
एवेत्याहुः ॥ ८ ॥

ननु जले दिव्यतेजःसंयोगे किं मानमित्यत्राह ।

विस्फुर्ज्युर्वर्जनिर्घोषः, तत्र दिव्यतेजःसंयोगे लिङ्गम्, आदौ  
विद्युत्प्रकाशस्ततोविस्फुर्ज्युस्तत्समकालमेव करकापतनं भवति  
अतोदिव्यतेजःसंयोगेन करका जाता इत्यनुमीयत इति, केचित्तु  
बलवद्दिव्यतेजसाऽनुद्भूतरूपवत्तेजोविशेषो यदा जलाग्निः सार्थ्यते  
तदैव जलस्य द्रवत्वं नश्यति तादृशतेजोविशेषस्तु हिमकर-  
कादिभिन्नेषु जलेषु सर्वदैवास्ति अनुद्भूतरूपवत्त्वात् तस्य न प्र-  
त्यक्षमित्याहुः ॥ ६ ॥

\* तत्रावस्फुर्ज्युर्लिङ्गं कश्चित् पाठः ।

सू० वैदिकञ्च ॥ १० ॥

अपां संयोगाद्विभागाच्च स्तनयित्नाः ॥ ११ ॥

उ० अत्रैकं प्रमाणान्तरमाह ।

अपां मध्ये तेजानुप्रवेश आगमभिद्भु एवेत्यर्थः तथाहि  
“आपस्ता अग्निं गर्भमादधीरन् या अग्निं गर्भं दधिरे-  
सुवर्णं” इत्यादि ॥ १० ॥

ननु विस्फूर्ज्युः कथमुत्पद्यते संयोगविभागौ यो-  
नी तौच नानुभूयेते इत्यत आह ।

विस्फूर्ज्युरितिशेषः अग्निः स्तनयित्नाः संयोगविभा-  
गनिमित्तकारणीभूय स्तनयित्तोरेवाकाशेन संयोगादस-  
मवायिकारणादाकाशे समवायिकारणे शब्दं गर्जितं ज-  
यतः । क्वचिच्च वायुबलाहकसंयोगविभागौ निमित्तका-  
बलाहकवियत्संयोगविभागावसमवायिकारणे, कर्षवार्-

वि० दिव्यतेजःसंयोगे प्रमाणान्तरं दर्शयति ।

वैदिकञ्च वाक्यं दिव्यतेजःसंयोगे लिङ्गं प्रमाणं, तदाक्यञ्च “आ-  
पस्ता अग्निं गर्भमादधीरन् या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णं”  
इत्यादि ॥ १० ॥

ननु शब्दकारणस्याभिघातस्य विभागविशेषस्यचाननुभवात्  
विस्फूर्ज्युः कथमुत्पद्यते इत्यत्राह ।

अपां जलानां संयोगात् अर्थादायुना अभिघातात्, स्तन-  
यित्ना मेघाच्च विभागात् विस्फूर्ज्युर्भवतीत्यर्थः ॥ ११ ॥

सू० पृथिवीकर्मणा तेजःकर्म वायुकर्मच व्याख्यातम् ॥ १२ ॥

उ० णाधिकारेऽपि प्रासङ्गिकमिदमुक्तम्, यद्वा मेषाकाशसंयोगे विभागे वा शब्दासमवायिकारणे कारणम् अपामेव नोदनाभिघातजनितं कर्मेति, सूचितं कर्मण एवाधिकारप्राप्तत्वात् ॥ ११ ॥

भूकर्म्यं प्रत्यदृष्टवदात्मसंयोगः कारणमुक्तं तत्रेवाकस्मिकदिग्दाहहेतोस्तेजसः आकस्मिकवृक्षादिचोभहेतोश्च प्रभञ्जनस्य कर्म यत् संजायते तत्राप्यदृष्टवदात्मसंयोगोऽसमवायिकारणम्, वायुतेजसो समवायिकारणम्, अदृष्टं निमित्तकारणमित्यर्थः, कर्मशब्दस्य द्वावृत्तिर्भेदोक्त्वादि कर्मसूचनार्था ॥ १२ ॥

अदृष्टवदात्मसंयोगासमवायिकारणकं कर्मान्तरमाह ।

वि० प्रसङ्गात् करकादिकमुक्त्वा पुनरदृष्टवदात्मसंयोगाधीनं कर्मं प्रदर्शयति ।

भूकर्म्यादेरदृष्टविशेषाधीनत्वकथनेन दिग्दाहादिजनकस्य तेजःकर्मणः वृक्षादिवृक्षोभजनकस्य वायुकर्मणश्च अदृष्टाधीनत्वं व्याख्यातमित्यर्थः ॥ १२ ॥

एतादृशं कर्मान्तरं दर्शयति ।

ख० अग्नेरूर्ध्वज्वलनं वायोस्ति\*त्यक्पवनमणूनां  
मनसश्चाद्यं कर्मादृष्टकारितम् ॥ १३ ॥

हस्तकर्म्मणा मनसः कर्म्म व्याख्यातम् ॥ १४ ॥

उ० - आद्यमिति सर्गाद्यकालीनमित्यर्थः, तदा नोदनाभि-  
घातादीनामभावात् अदृष्टवदात्मसंयोग एव तत्रासमवा-  
यिकारणम् आद्यमूर्ध्वज्वलनम् आद्यं तिर्यक्पवनमिति, इत-  
रेषां ज्वलनपवनकर्म्मणां वेगासमवायिकारणकत्वमेव मन्तु-  
मुचितं दृष्टे कारणे सत्यदृष्टकल्पनानवकाशात् ॥ १३ ॥

अनाद्यं कर्माधिकृत्याह । . .

मुषलात्क्षेपणादौ यथा प्रयत्नवदात्मसंयोगासमवायि-  
कारणकं हस्तकर्म्म तथाऽभिमतविषयग्राहिणीन्द्रिये सन्नि-  
कर्षार्थं यन्मनसः कर्म्म तदपि प्रयत्नवदात्मसंयोगासमवा-  
यिकारणकमेव यद्यपीन्द्रियं मनो न साक्षात्प्रयत्नविषय-  
स्तथापि मनोवहनाडीगोचरेण प्रयत्नेन मनसि कर्मात्क-  
न्ति द्रष्टव्या, नाद्यास्तु त्वगिन्द्रियया ह्यलमङ्गीकर्त्तव्यम् अन्य-

व० पवनं गमनम्, आद्यमिति ज्वलनपवनयोरप्यन्वितम्, सर्गाद्य-  
कालीनमिति तदर्थः, अदृष्टकारितमदृष्टवदात्मसंयोगासमवा-  
यिकारणकमित्यर्थः तदानीं कारणान्तरस्याभावादिति भावः ॥१३॥

कर्म्मन्तरं दर्शयति ।

अनाद्यानि मनःकर्माणि प्रयत्नाधीनान्येव यथा मुषलाद्यु-  
त्क्षेपणादौ हस्तकर्माणि, मनसोऽतीन्द्रियत्वेऽपि तद्वहनाद्यास्व-

\* तिर्यग्गमनमिति कश्चित् पाठः ।

हृ० आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखे ॥ १५ ॥

उ० या प्राणवहनाडीगोचरेण प्रयत्नेनाश्रितपीताद्यभ्यवहरण-  
मपि न सम्भवेत् ॥ १४ ॥

ननु मनसि कर्म उत्पद्यत इत्यत्रैव न प्रमाणमत आह ।

सुखदुःखे इत्युपलक्षणं ज्ञानप्रयत्नाद्यपि द्रष्टव्यं मनसो-  
वैभवं पूर्वमेव निराकृतम्, अणुत्वञ्च साधितम्, युगपज्ज्ञाना-  
नुत्पत्तिश्च मनसो लिङ्गमित्युक्तं तेन तत्तदिन्द्रियप्रदेशेन  
मनःसंयोगमन्तरेण सुखदुःखे न स्यातामेव यदि मनसि  
कर्म न भवेत् न भवेच्च पादे मे सुखं शिरसि मे वेदनेत्याद्या-  
कारोऽनुभव इत्यर्थः । यद्यपि मनःसन्निकर्षाधीनः सर्वो-  
ऽप्यात्मविशेषगुणस्तथापि सुखदुःखे तीव्रसंवेगितयाऽतिस्फु-  
टत्वादुक्ते ॥ १५ ॥

नन्वेवं यदि चपलं मनस्तदा चित्तनिरोधाभावाद्योगं

वि० गिन्निययाद्यत्वात् तद्गोचरप्रयत्नेन मनसः कर्म सम्भवति  
प्राणवहनाडीगोचरप्रयत्नेन प्राणादिक्रियाविशेषवत् ॥ १४ ॥

ननु मनसि कर्मात्वादे किं मानमत आह ।

आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकर्षात् सुखदुःखे भवतः तत्रात्मना  
मनसः सन्निकर्ष इन्द्रियैश्च मनसः सन्निकर्षः अर्थेन विषयेषु सह  
इन्द्रियाणां सन्निकर्षो विवक्षितः तथाच मित्रं दृष्ट्वा सुखं वैरिणं  
दृष्ट्वाच दुःखं भवति तादृशदर्शनञ्च न चक्षुर्मनोयोगमात्ममनो-  
योगश्चान्तरेण तादृशयोगोऽपि न मनःक्रियामन्तरेणेति सिद्धं  
मनसः कर्म, सुखदुःखे इत्युपलक्षणम् आत्मविशेषगुणसामान्य-  
न्तु विवक्षितं सर्वत्रात्ममनःसंयोगस्यासमवायिकारणत्वादिति ।



सू० तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः स योगः ॥ १६ ॥

उ० विना नात्मसाक्षात्कारो नवा तमन्तरेण भाव इति शास्त्रारम्भवैफल्यमत आह ।

विषयेष्वलम्पत्ययवत उदासीनस्य वहिरिन्द्रियेभ्यो व्यावृत्तं मनो यदात्मस्थमात्ममात्रनिष्ठं भवति तदा तत्कर्मानुगुणप्रयत्नाभावात् कर्म मनसि नोत्पद्यते स्थिरतरं मनो भवति स एव योगः चित्तनिरोधलक्षणत्वाद् योगस्य, तदनारम्भ इति मनसः कर्मानारम्भ इत्यर्थः, यदा तत्पदेन सुखदुःखे एवाभिधीयते प्रकान्तत्वात्, दुःखाभाव इति दुःखाभावसाधनत्वाद्योग एव दुःखाभावः “अन्नं वै प्राणः” इति वत्, यदा दुःखस्याभावो यत्रेति बह्विद्भिः, शरीरस्येति शरीरावच्छिन्नस्यात्मनः, स योग इति प्रसिद्धिसिद्धतया तत्पदम्, अयं स योगः । यदात्मपदेनात्र प्राण उच्यते उपचारात्

वि० “चक्षुषं हि मनः कृष्ण प्रमाथिबन्धवद्दृढम्” इत्याद्यागमा अपि मनसः कर्मणि मानमिति ॥ १५ ॥

ननु मनश्चेत् चक्षुषस्वभावं तदा तस्य निरोधो न सम्भवति तथाच योगमन्तरेणात्मसाक्षात्कारस्यासम्भवादपवर्गस्यासम्भवेन मननशास्त्रं निष्प्रयोजनमापद्येतेत्याशङ्कायामाह ।

आत्मस्थे मनसि षडङ्गयोगेन इन्द्रियादिकं परित्यज्य मनो यदा आत्मभावे तिष्ठति तदा तदनारम्भः तस्य मनःकर्मण्य चनारम्भः षणुत्पादः, तदा मनो निश्चलं भवति, तदवस्थायां शरीरस्य



सू० अपसर्पणमुपसर्पणमश्रितपीतसंयोगाः कार्या-  
न्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि ॥ १७ ॥  
तदभावे संयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः ॥ १८ ॥

उ० अत्र नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्यामिति नपुं-  
सकनिर्देशः, संयोगपदञ्च तत्कारणे कर्मणि लाक्षणिकम्,  
अपसर्पणं देहारम्भककर्मक्षये देहादेव प्राणमनसोरुत्क्रम-  
णम्, उपसर्पणञ्च देहान्तरोत्पत्तौ तत्र प्राणमनसोः प्रवेश-  
नम्, अश्रितपीतादिसंयोगहेतुश्च कर्म, कार्यान्तरं गर्भशरीरं  
तत्संयोगहेतुश्च यत् कर्म तत् सर्व्वमदृष्टवदात्मसंयोगासम-  
वायिकारणकम्, इतिकारेण धातुमलकर्मणामप्यदृष्टवदा-  
त्मसंयोगासमवायिकारणकत्वं सूचयति ॥ १७ ॥

ननु देहान्तरोत्पत्तेरावश्यकत्वञ्चेत्तदा कथं मोक्ष इत्यत  
आह ।

इदमत्राकूतं योगबलेनात्मतत्त्वसाक्षात्कारे सति तेन च

वि० अपसर्पणं मरणावस्थायां देहान्मनस उत्क्रमणम्, उपसर्पणं  
देहान्तरोत्पत्तौ तत्र मनसः प्रवेशः, अश्रितपीतयोरद्भ्रजलयोः  
संयोगाः कार्यान्तराणामिन्द्रियप्राणानां देहेन सह संयोगाश्च  
यस्मात् कर्मणो भवन्ति इति पूरणीयम् इति एतानि कर्माणि  
अदृष्टकारितानि अदृष्टवदात्मसंयोगासमवायिकारणकाणि ॥  
॥ १७ ॥

ननु देहप्रवाहस्यानाद्यनन्तत्वाद्दृष्टवदात्मसंयोगासमवायिकारणकत्वं  
इत्यत आह ।

तदभावे तस्यादृष्ट्याभावे सति प्रारब्धतरादृष्ट्यानामात्मसा-

उ० स्वामनमिथ्याज्ञाने ध्वस्ते तन्निबन्धनानां रागद्वेषमोहानां  
 दोषाणामपायात् प्रवृत्तेरपाये तन्निबन्धनस्य जन्मनोऽ-  
 पाये तन्निबन्धनस्य दुःखस्यापाय इति तावद्वस्तुगतिः, तत्र  
 योगिना योगजधर्मबलेन तत्तद्देशकालतत्तत्पुरगमतद्गज-  
 भुजङ्गविहङ्गमादिदेहोपभोग्यसुखदुःखासाधारणकारणध-  
 र्माधर्मनिकुरम्बमालोच्य तत्तत्कायव्यूहं निर्वाह्य भोगेन  
 पूर्वोत्पन्नधर्माधर्मयोः क्षयः निवृत्तदोषस्य धर्माधर्मान्तरा-  
 नुत्पत्तावपूर्वशरीरान्तरानुत्पत्तौ पूर्वशरीरेण सहात्मनो  
 यः संयोगाभावः स एव मोक्षः तदभाव इति अनागत-  
 शरीरानुत्पादे संयोगाभाव इत्यर्थः । नन्विममवस्था प्रल-  
 यसाधारणीत्यत आह अप्रादुर्भाव इति यदंनन्तरं शरी-  
 रादेः पुनः प्रादुर्भावो न भवतीत्यर्थः, स मोक्ष इति तस्या-  
 मवस्थायां यो दुःखध्वंसः स मोक्ष इत्यर्थः ॥ १८ ॥

ननु तममोऽपि द्रव्यस्य कर्म दृश्यते चलति च्छायेति-  
 प्रत्ययात् तत्र न प्रयत्नो न वा नोदनाभिघातौ न वा

वि० क्षात्कारेण प्रारब्धानाञ्च भोगेन क्षये सतीति यावत्, संयोगाभावः  
 देहप्रवाहसम्बन्धस्य विच्छेदस्तदनन्तरञ्च अप्रादुर्भावः अर्थाद्दुःख-  
 स्थानुत्पत्तिर्देहरूपस्यादृष्टरूपस्य च कारणस्य विरहादिति तदा-  
 नीमेव मोक्षः अपवर्गः सम्भवतीति नापवर्गस्य शशविषाणसमान-  
 तेतिभावः ॥ १८ ॥

नन्वन्धकारस्यापि कर्मानुभूयते नीलं तमश्चलतीतिप्रतीतेस्तत्र

सू० द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्याद्भावस्तमः ॥ १६ ॥

उ० गुरुत्वद्रवत्वे न वा संस्कारस्तथाच निमित्तान्तरं वक्तव्यं तच्च नानुभूयमानमित्यत आह ।

एतेन नवैव द्रव्याणीत्यवधारणमप्युपपादितं द्रव्यनिष्पत्तिस्तावत् स्पर्शवद्द्रव्याधीना न च तमसि स्पर्शाऽनुभूयते, न चानुद्भूत एव स्पर्शः रूपोद्भूते स्पर्शाद्भवस्यावश्यकत्वात् । पृथिव्यामयं नियमः तमस्तु दशमं द्रव्यमिति चेन्न द्रव्यान्तरस्य नीलरूपानधिकरणत्वात् नीलरूपस्य च गुरुत्वनान्तरीयकत्वात् रसगन्धनान्तरीयकत्वात् । यथाकाशं शब्दमात्रविशेषगुणं तथा तमोऽपि नीलरूपमात्रविशेषगुणं स्यादिति चेन्न चाक्षुषत्वविरोधात् यदि हि नीलरूपवन्नीलं रूपमेव वा तमः स्यात् वाह्यालोकप्रग्रहमन्तरेण चक्षुषा न गृह्येत ॥ १६ ॥

वि० च कर्मणि किमसमवायिकारणं कर्मासमवायिकारणत्वेनोक्तानां नोदनादीनामन्यतमस्य तत्राभावादित्याशङ्क्यामाह

तमोऽभाव एव नतु भावः द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यात् निष्पन्नानां जन्यानां द्रव्यगुणकर्मणां वैधर्म्यादित्यर्थः क्वद्विहित इति न्यायात्, जन्यद्रव्यं हि अवयवारब्धं भवति तमस्तु नावयवारब्धमालोकापसरणे सहसैवानुभूयमानत्वात् स्पर्शनाभावाच्च पृथिव्यामुद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्वेनोद्भूतरूपस्य तमसि स्वीकर्त्तव्यामुद्भूतस्पर्शस्वीकारस्यासम्भवात् गन्धशून्यत्वाच्च न तमः पृथिवी नापि जलादावस्यान्तर्भावः नीलरूपवत्त्वस्वीकारात् अतएव न गुणे न वा कर्मण्यस्यान्तर्भावः आलोकनिरपेक्षचाक्षुषविषय

सू० तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च ॥ २० ॥

दिक्कालावाकाशच्च क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ॥ २१ ॥

उ० तर्हि गतिप्रतीतिः किन्निवन्धनेत्यत आह ।

गच्छता द्रव्यान्तरेणावृते तेजसि पूर्वदेशानुपलम्भाद्-  
ग्रिमदेशे चोपलम्भात्तेजोऽभावस्य गच्छद्रव्यमाधर्म्याद्गति-  
भ्रमो नतु वास्तवी तत्र गतिरित्यर्थः अन्वयव्यतिरेकाभ्यां  
तथा प्रतीतेः, उद्धृतखण्ड्यावन्तेजःसंसर्गाभावस्तमः ॥ २० ॥

एवं द्विसूत्रकं प्रीसङ्गिकं तमःप्रकरणं समाप्य कर्म-  
शून्यताप्रकरणमाह ।

चकारादात्मीसंग्रहः क्रियावता वैधर्म्यं दिगादीनाम-  
मूर्त्तत्वं मूर्त्त्यनुविधानात् क्रियायाः ॥ २१ ॥

वि० त्वाच्च, तर्हि द्रव्यान्तरं भवतु, आवश्यकतेजोऽभावेनैव तमःप्रती-  
त्युपपत्तौ द्रव्यान्तरकल्पनाया अन्याय्यत्वादिति ॥ १६ ॥

ननु तमसोऽभावरूपत्वे कथं चलतीति प्रतीतिरित्यत्राह ।

द्रव्यान्तरेण तेजस आवरणादाच्छादनात्, यतः स्थानादा-  
लोकोऽपसरति तत्रैव तमश्चलतीतिप्रतीतिर्भवति तादृशप्रती-  
तिश्चालोकापसरणोपाधिकी भ्रान्तिरेव नहि भ्रमादस्तुसिद्धि-  
रिति अभावस्तम इति सुकृतम् ॥ २० ॥

कर्मशून्यताप्रकरणमारभते ।

क्रियावद्वैधर्म्यं परममहत्परिमाणमपकृष्टपरिमाणराहित्यं

सू० एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः ॥ २२ ॥

निष्क्रियाणां समवायः कर्मभ्योनिषिद्धः ॥ २३ ॥

उ० गुणकर्मणोर्निष्क्रियत्वमाह ।

एतेनेति क्रियावद्बैधर्म्येणेत्यर्थः क्रियावद्बैधर्म्यममूर्त्तत्वं  
गुणकर्मणोरपीति ते अपि निष्क्रियत्वेन व्याख्याते इत्यर्थः  
॥ २२ ॥

ननु गुणकर्मणी यदि निष्क्रिये तदा ताभ्यां द्रव्यस्य कथं  
सम्बन्धः, संयोगसम्बन्धः सम्भाव्येत स च कर्माधीन एवेत्यत  
आह ।

निष्क्रियाणां गुणकर्मणां समवाय एव सम्बन्धः स च  
कर्मभ्यो निषिद्धः तस्य सम्बन्धस्य उत्पत्तिरेव नास्ति दूरे  
तु कर्माधीनतेत्यर्थः ॥ २३ ॥

वि० वा, चकार आत्मसमुच्चायकः, एतानि द्रव्याणि निष्क्रियाणां  
त्यर्थः ॥ २२ ॥

निष्क्रियान्तरमाह ।

एतेन क्रियावद्बैधर्म्येण अपकृष्टपरिमाणशून्यत्वेन निर्वैगत्वेन  
वा, व्याख्याताः निष्क्रियत्वेन कथिताः, चकारात् सामान्यादि-  
संग्रहः ॥ २२ ॥

ननु गुणकर्मणोर्निष्क्रियत्वे तयोः सम्बन्धः कथं द्रव्ये भवति  
सम्बन्धस्य कर्माधीनत्वात् दृश्यते हि श्येनादेः कर्मणा श्लेलादौ  
सम्बन्धोत्पत्तिरित्यत आह ।

निष्क्रियाणां गुणादीनां द्रव्ये समवायः सम्बन्धः सतु नित्य  
एवातः कर्मभ्यो निषिद्धः न जात इत्यर्थः ॥ २३ ॥

सू० | कारणत्वसमवायिनो गुणाः ॥ २४ ॥

उ० ननु यद्यमूर्त्तत्वात् गुणाः कर्मसमवायिकारणं न भवन्ति तदा गुणैर्गुणाः कर्माणि च कथमुत्पद्यन्ते नहि समवायिकारणातिरिक्तरूपेणापि कारणता संभवतीत्यत आह ।

गुणा असमवायिकारणं नतु समवायिकारणमपि येन कर्माधाराः स्युः, सा चासमवायिकारणता क्वचित् कार्यैकार्यसमवायात् यथात्ममनःसंयोगस्यात्मविशेषगुणेषु संयोगविभागशब्दानां शब्दे, क्वचित् कारणैकार्यसमवायात् यथा कपालादिरूपादीनां घटादिरूपादिषु ॥ २४ ॥

वि० ननु गुणस्य कर्मशून्यत्वे तस्य कर्मकारणता कथं सम्भवति नहि पटशून्यस्य कपालस्य पटकारणता केनापि सम्भावित्यत आह ।

गुणास्तु असमवायिनः कारणं सौत्रत्वादेकत्वं कारणानीत्यर्थः, तथाच गुणानां कर्मणि समवायिकारणताविरहेऽपि असमवायिकारणता निराबाधैव यथाऽवयवसंयोगानामवयव्यनाधारत्वेऽपि तदसमवायिकारणता यथावाऽवयवरूपादीनामवयविरूपाद्यनाधारत्वेऽपि तदसमवायिकारणता तथा गुणानां कर्मानाधारत्वेऽपि तदसमवायिकारणता न विरुद्धा समवायिकारणे समवायसमवायिसमवायान्यतरसम्बन्धेन वृत्तित्वे सति कारणत्वस्यैवासमवायिकारणत्वस्यैवादिभिः ॥ २४ ॥



सू० गुणैर्दिग् व्याख्याता ॥ २५ ॥  
कारणेन कालः ॥ २६ ॥

उ० ननुः इह कर्मात्पद्यते इदानीं कर्मात्पद्यते इत्यादि-  
प्रतीतिबलात् दिक्कालावपि कर्मसमवायिकारणे एव  
कथमन्यथा तत्र तयोराधारतेत्यत आह ।

यथा गुरुत्वादयो गुणा न कर्मसमवायिकारणममूर्त्तत्वात्  
तथा दिगपि न कर्मसमवायिकारणममूर्त्तत्वादेवेत्यर्थः,  
आधारता तु समवायितामन्तरेणापि, कुण्डे वदराणि, कुण्डे  
दधि, वने सिंहनाद इत्यादिवदुपंपद्यत इति भावः ॥ २५ ॥  
उक्तेनैवाभिप्रायेणाह ।

निष्क्रियत्वेन व्याख्यात इति परिणम्यानुषङ्गः, कारणे-  
नेति भावप्रधानो निर्देशः तेन निमित्तकारणत्वेनाधारमात्रं  
कर्मणः कालो न तु समवायीत्यर्थः ॥ २६ ॥

वि ननु प्राच्यां गच्छति इदानीं गच्छतीति प्रतीतिौ कर्माधारतया  
दिकालयोर्भावात् कथं तां निष्क्रियावत आह ।

यथा गुणेषु क्रिया नास्ति अमूर्त्तत्वात् तथा दिश्यपि नास्ति  
प्राच्यां गच्छतीति प्रतीतेः प्राच्यां रीतीतिवत् दिक्कृतविशेषणता-  
सम्बन्धावच्छिन्नाधारतावगाहित्वादित्यर्थः ॥ २५ ॥

उक्तयुक्त्या कालस्यापि न कर्मसमवायित्वमित्याह ।

कारणेन निमित्तकारणेन अभेदे तृतीया धान्तेन धनवानि-  
त्यादिवत्, काल इति गुणैर्निष्क्रियत्वेन व्याख्यात इति लिङ्गवि-

उ० इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्थारे पञ्चमाध्यायस्य  
द्वितीयाह्निकम् ॥ ❀ ॥

समाप्तश्चायं पञ्चमाध्यायः ।

वि० परिणामेनानुषङ्गे बोध्यः तथाच यथा गुणानां निष्कृतत्वमप-  
कृतपरिमाणशून्यत्वात् तथा कालस्यापि इदानीं गच्छतीत्यादि-  
प्रतीतिस्तु इदानीं रवीतीत्यादिप्रतीतिवत् कालिकसम्बन्धाव-  
च्छिन्नाधाराद्येयभावमवगाहते नतु समवायसम्बन्धावच्छिन्नमिति  
सकलमकलङ्कम् ॥ १६ ॥

इति श्री जयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-कृतायां कणा-  
दसूत्रविरचितौ पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ ❀ ॥

समाप्तश्चायं पञ्चमाध्यायः ।



## सू० बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥ १ ॥

उ० संसारमूलकारणयोर्धर्माधर्मयोः परीक्षा षष्ठाध्याया-  
र्थः । धर्माधर्मौ च “स्वर्गकामो यजेत” “न कलञ्जं भक्ष-  
येत्” इत्यादिविधिनिषेधबलकल्पनीयौ विधिनिषेधवाक्य-  
योः प्रामाण्ये सति स्यातां, तत्रामाण्यञ्च वक्तुर्यथार्थवाक्या-  
र्थज्ञानलक्षणगुणपूर्वकत्वादुपपद्यते स्वतः प्रामाण्यस्य निषे-  
धादतः प्रथमं वेदप्रामाण्यप्रयोजकगुणसाधनमुपक्र

वाक्यकृतिर्वाक्यरचना सा बुद्धिपूर्वा वक्तृयथार्थ वा-  
र्थज्ञानपूर्वा वाक्यरचनात्वात् नदीतीरे पञ्चफलानि म  
त्यस्मदादिवाक्यरचनावत्, वेद इति वाक्यसमुदाय इत  
तत्र समुदायिनां वाक्यानां कृतिः पक्षः, न चास्मदादि  
द्धिपूर्वकत्वेनान्यथासिद्धिः, “स्वर्गकामो यजेत” इत्या

वि० . सन्मनःकुमुदस्नानिग्लानिहृत् श्यामलः शश्री ।

उदेतु कोऽपि हृदयाकाशे मम तमोहरन् ॥

“अथातोधर्मं व्याख्यास्यामः” इति सूत्रेण प्रतिज्ञातं परीक्षारूपं  
धर्मस्य निरूपणमिदानीमारभमाणो धर्मस्य वेदप्रमाणकतया  
वेदस्य प्रामाण्योपपादकं गुणजन्यत्वं साधयति ।

वेदे इति सप्तम्यर्थो घटकत्वं तस्य वाक्यकृतावन्वयः वाक्यरूपा  
या कृतिः कार्यमित्यर्थः एतेन मीमांसकाभिमतं शब्दनिव्यत्वं  
निराकृतम्, वेदघटकं यद्वाक्यरूपं कार्यं तद्बुद्धिपूर्वं स्वार्थविषय-  
कवक्तृयथार्थज्ञानरूपगुणजन्यं प्रमाणशब्दत्वात् महाभारता-  
द्यन्तर्गतवाक्यवदित्ययमनुमानाकारः वेदत्वञ्च शब्दतदुपजीवि-

सू० ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम् ॥ २ ॥  
बुद्धिपूर्व्या ददातिः ॥ ३ ॥

उ० विष्टसाधनतायाः कार्यताया वा अस्मदादिबुद्धगोचरत्वात्,  
तेन स्वतन्त्रपुरुषपूर्वकत्वं वेदे सिद्धति, वेदत्वञ्च शब्दतदुप-  
जीविप्रमाणातिरिक्तप्रमाणजन्यप्रमित्यविषयार्थकत्वे सति  
शब्दजन्यवाक्यार्थज्ञानाजन्यप्रमाणशब्दत्वम् ॥ १ ॥

प्रकारान्तरेण वेदवाक्यानां बुद्धिपूर्वकत्वमाह ।

ब्राह्मणमिह वेदभागस्तत्र यत् संज्ञाकर्म नामकरणं  
तत् व्युत्पादकस्य बुद्धिमाक्षिपति यथा लोके लम्बकर्ण-  
दीर्घनास-लम्बयोवादिनामकरणम् ॥ २ ॥

प्रकारान्तरमाह ।

उ० “स्वर्गकामो गां दद्यात्” इत्यादौ यद्दानप्रतिपादनं

वि० प्रमाणातिरिक्तप्रमाणागम्यार्थकत्वे सति शब्दजन्यवाक्यार्थज्ञा-  
नाजन्यप्रमाणशब्दत्वम् ऋगयजुःसामाथर्वान्यतमत्वं वा ॥ १ ॥

इतोऽपि बुद्धिपूर्वकाणि वेदवाक्यानीत्याह ।

ब्राह्मणे वेदभागविशेषे यत् संज्ञाकर्म संज्ञारूपं कार्यं तत्  
सिद्धिलिङ्गं संज्ञाकर्तृवाक्यार्थबोधस्य लिङ्गम्, यथा लोके लम्ब-  
कर्णादिनामकरणं कर्तृस्तदर्थबोधस्य लिङ्गमिति ॥ २ ॥

प्रकारान्तरेण दर्शयति ।

“अमावास्यायां पिबभ्यो दद्यात्” इत्यादौ यद्दानप्रतिपादनं  
तद्दानेष्टसाधनताज्ञानाधीनमिति ददातिरिति धातुबोधकस्य  
तदर्थपरत्वम् ॥ ३ ॥

सू० तथा प्रतिग्रहः ॥ ४ ॥

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ॥ ५ ॥

उ० तद्दानेष्टसाधनताज्ञानंजन्यं ददातिरिति धातुनिर्देशो धा-  
त्वर्थं दानमुपलक्षयति ॥ ३ ॥

प्रमाणान्तरमाह ।

प्रतिग्रहप्रतिपादिका अपि श्रुतयो बुद्धिपूर्विकाः प्रति-  
ग्रहपदं स्वविषयां श्रुतिमुपलक्षयति तेन भूम्यादिप्रतिग्रह-  
प्रतिपादिकाः श्रुतयः प्रतिग्रहीतुः श्रेयःसाधनतापराः  
कृष्णसारचर्मादिप्रतिग्रहप्रतिपादिकाः श्रुतयः प्रतिग्रहीतु-  
रनिष्टसाधनताबोधिकाः नचेष्टानिष्टसाधनते अर्वाचीन-  
पुरुषबुद्धिगोचरौ भवितुमर्हतः ॥ ४ ॥

इदानीं “शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि” इति जैमिनीयं  
सूत्रं संवादयन्माह ।

आत्मान्तरगुणानां यागहिंसादिपुण्यपापानाम् आ-

वि० अन्यदपि दर्शयति ।

प्रतिग्रहपदेन तद्दृष्टितवाक्यमुपलक्षयति “याजनाध्यायनप्रतिग्र-  
हेर्ब्राह्मणोऽधनमर्ज्जयेत्” इत्यादिवाक्यं वक्तुस्तदर्थंज्ञानं साध-  
यति यद्यपि प्रथमसूत्रेणैतत् सर्व्वं गतार्थं तथापि कतिपय-  
धर्मप्रदर्शनार्थमेतावानारम्भः ॥ ४ ॥

धर्मादेः सामानाधिकरण्येन स्वर्गादिसाधनत्वं दर्शयति ।

आत्मान्तरस्य गुणानां पुण्यपापानामात्मान्तरे षकारणत्वात्  
स्वर्गादिफलस्येति शेषः “शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि” इति

७० त्मान्तरे यौ सुखदुःखात्मकौ गुणौ तयोरकारणत्वात् एवञ्च  
 प्रत्यात्मनिष्ठाभ्यामेव धर्माधर्माभ्यां सुखदुःखे न व्यधि-  
 करणाभ्यामन्यथा येन यागहिंसादिकं न कृतं तस्य तत्फलं  
 स्यादिति कृतहानिरकृताभ्यागमेञ्च प्रसज्येत, ननु नायं  
 नियमः पुत्रेष्टिपितृयज्ञादौ व्यभिचारात् तथाहि पुत्रेण  
 कृतस्य आद्धादेः पितरि फलश्रवणात् पित्रा च कृतायाः  
 पुत्रेष्टेः पुत्रे फलश्रवणात्, न च स्वर्गभागिपितृकत्वस्य तेजस्वि-  
 पुत्रकत्वस्य च फलस्य पुत्रपितृगामितया सामानाधिकर-  
 णमेवेति वाच्यं श्रुतिविरोधात् पितृदृष्ट्यादेः पुत्रतेजस्वि-  
 तादेरेव फलस्य श्रवणात् फलान्तरस्य च गौरवपराहतत्वात्,  
 असु तर्ह्यपूर्वं फलं कर्त्तरि, स्वर्गसु पितरोवि चेन्न व्यापा-  
 रस्य फलसामानाधिकरणनियमात् अन्यथा आद्धानन्तरं  
 मुक्ते पुत्रे पितुः स्वर्गो न स्यात्, नस्यादिति चेन्न मुक्ते पितरि  
 साङ्गादपि आद्धात् फलं न स्यादिति तुल्यत्वात् मैवं “शा-  
 स्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि” इत्यस्योत्सर्गत्वात् कश्चिद्वलवता

वि० जैमिनीयतन्त्रोक्तं सूत्रशेषे पूरणीयमन्यथा पशुभ्या अन्वयानुपप-  
 त्तेरिति तथाच यागहिंसादिकार्थ्याणां धर्माधर्मा प्रति फलीभूत-  
 सुखदुःखे प्रति च खान्कूलकृतिमत्त्वसम्बन्धेन हेतुता धर्माधर्म-  
 योश्च सुखदुःखे प्रति समवायेनैवेतिभावः, न च गयाआद्धादितः  
 पितृगतं पुत्रेष्ट्यादितः पुत्रगतं फलं न स्यात् तयोः कर्मकर्तृत्वाभा-  
 वादिति वाच्यं कारणीवच्छेदकसंसर्गघटककृतिसम्बन्धस्य फलभा-  
 गितयोद्देश्यत्वसम्बन्धेन विवक्षितत्वात् निष्कामकृतकर्मणोऽपि

उ० बाधकेनापोद्यत्वात् प्रकृते च पितृपुत्रगतफलश्रवणविषय-  
कत्वात्, तथा मृत्युतिप्रसङ्ग इति चेन्न तादृशश्रुतेरेवातिप्रस-  
ङ्गनिवारकत्वात्। यत्तु महादानादौ स्वर्गमात्रमेव फलं  
तच्च यद्दुद्देशेन क्रियते तद्गतमपि फलं जनयतीति तत्तुच्छं  
तत्रोत्सर्गं बाधकाभावात् बाधकाभावसहितोत्सर्गस्य नि-  
यमत्वात् राजादीनामुपवामाद्यनुष्ठानानापत्तेः परदा-  
रैव तत्तत्कर्माणां स्वगतफलमुद्दिश्यानुष्ठानमस्मत्वात्, मस्यग्-  
मृहस्थाश्रमपरिपालनस्य ब्रह्मलोकावाप्तिरूपे च फले नियम-  
एव प्रातिस्विकफलाभिप्रायेण तत्सर्गाभिधानात्, वृत्तिकार-  
रास्तु “शास्त्रदेशितम्” इत्यादिनियम एव पित्रादीनान्तु  
यत्फलं तच्छ्राद्धादौ भोजितानां ब्राह्मणानामाशीर्भन्तान-  
नुभावात्, “कृतार्थास्ते पितरो भूयास्तुः” इति पितृयज्ञे  
पुत्रेष्टौ तु सन्नुष्ठानामृत्विजामाशीर्दानात् “तेजस्वी वर्च-  
स्थन्नादस्ते पुत्रो भूयात्” इत्यादेः, जाङ्गलिकमन्त्रपाठा-  
दिव संपदष्टस्य विषापहरणमित्याहुः ॥ ५ ॥

वि० मोक्षरूपफलभागितया उद्देश्यत्वं कर्त्तरि निष्प्रत्यूहमेव, आङ्ग-  
पुत्रेष्ट्यादिस्यले फलभागितयोद्देश्यत्वं न कर्त्तुं; किन्तु पितापुत्रयो-  
रिति न काऽप्यनुपपत्तिरेवमन्यत्राप्यूहम्। केचित्तु “शास्त्रदेशितं  
फलमनुष्ठातरि” इत्युत्सर्गः आङ्गादिफलबोधकवाक्यन्तु तदपवाद-  
कमित्याहुः, वृत्तिकृतस्तु पितृवत्यादिफलं न आङ्गादेः किन्तु तत्र  
भोजनादिना ब्रह्मणानां ब्राह्मणानामाशीर्वचनस्यैव, विषहारक-  
मन्त्रस्य विषहरणवत्, आङ्गादेः फलन्तु भोक्तृभोजनशक्त्यादि-  
रूपं कर्त्तुरेव तस्य निष्कामत्वे मोक्षस्यैव फलत्वमित्याहुः कर्त्तुं-

सू० तद्दुष्टभोजनेन विद्यते ॥ ६ ॥  
दुष्टं हिंसायाम् ॥ ७ ॥

उ० अदुष्टानां यथाशास्त्रमनुवर्त्तमानानां भोजनान्तृप्ताना-  
माशीर्दानात्तत्फलं नतु दुष्टानां पात्रत्वेन निषिद्धानामपि  
कुण्डगोलकप्रभृतीनामित्याह ।

तदित्याशीर्दानफलं परामृशति दुष्टा ब्राह्मणाः पात्रा-  
नधिकारिणो यत्र श्राद्धे भोज्यन्ते तत्र पितरि तत्फलं न  
विद्यते न भवतीत्यर्थः श्राद्धफलमेव वा न भवति पितरी-  
त्यर्थः ॥ ६ ॥

के ते दुष्टा इति दुष्टलक्षणमाह ।

हिंसायामिति निषिद्धकर्ममात्रोपलक्षणम्, तेन नि-  
षिद्धे कर्मणि प्रवृत्तं पुरुषं दुष्टं विजानीयादित्यर्थः ॥ ७ ॥

वि० मुक्तत्व इव उद्देश्यस्य मुक्तत्वेऽपि कर्म फलं न जनयतीति विभा-  
वनीयम् ॥ ५ ॥

सम्यगनुष्ठितश्राद्धादिकर्मभ्य एव धर्मरूपं फलं भवति ना-  
न्यथेत्याह ।

तत् साङ्गश्राद्धादिफलं निमन्त्रितदुष्टब्राह्मणभोजनसमये न  
भवति तत्र कर्मणो यथाविध्यनिव्यत्तेरित्यर्थः ॥ ६ ॥

दुष्टाः के इत्याकाङ्क्षीयामाह ।

हिंसापदं निषिद्धकर्ममात्रपरम् तथाच निषिद्धकर्मणि श्रा-  
सक्तं ब्राह्मणं दुष्टं विद्यादित्यर्थः ॥ ७ ॥



सू० तस्य समभिव्याहारतोदोषः ॥ ८ ॥  
तद्दुष्टे न विद्यते ॥ ९ ॥

उ० न केवलं दुष्टब्राह्मणस्य श्राद्धे निमन्त्रितस्य भोजनेन  
फलाभावः किन्तु पापमपि भवतीत्याह ।

तस्य निषिद्धे कर्माणि प्रवृत्तस्य ब्राह्मणस्य समभिव्या-  
हारात् एकपङ्क्तिभोजनसहशयनसहाध्ययनादिलक्षणात्  
दोषः पापमित्यर्थः ॥ ८ ॥

तत् किमदुष्टसमभिव्याहारादपि दोष एव, नेत्याह ।

तत् पापमदुष्टे यथाशास्त्रं व्यवहरमाणे ब्राह्मणे श्राद्धे  
भोजिते न विद्यते न भवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

ननु सत्यान्नाप्रतिलम्भे यत्र श्राद्धदानादौ प्रथमं दुष्टा-

वि० तादृशब्राह्मणसंसर्गात् पापमपि भवतीत्याह ।

तस्य निषिद्धकर्मासक्तब्राह्मणस्य समभिव्याहारतः संसर्गात्  
दोषः पापं भवतीत्यर्थः संसर्गश्च यौनमौखश्रौतादिर्नानाविधः  
तस्य लघुत्वे पापस्य लघुत्वं गुरुत्वे तु पापस्य गुरुत्वमिति विशेषः ॥  
८ ॥

निर्दोषब्राह्मणसंसर्गे तु न दोष इत्यर्थायातमपि स्पष्टार्थ-  
माह ।

तदिति बुद्धिस्थं पापं पराम्भशति निर्दोषब्राह्मणसंसर्गे तु  
पापं न भवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥

सू० पुनर्विंशष्टे प्रवृत्तिः ॥ १० ॥

समे हीने वा प्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

उ० एव निमन्विताः क्रमेण तु सत्यात्रप्रतिशम्भे किं विधेयमित्यत्राह ।

आद्धे प्रतिग्रहे वा विंशष्टा यथाशास्त्रमनुवर्त्तमाना यदि लभ्यन्ते तदा निमन्वितानपि निन्द्यान् परिहृत्य तानेव भोजयेत् “न निमन्वितान् प्रत्याचचीत” इति तु सत्यात्रपरम्, निन्द्यांस्तु निमन्वितान् द्रविणदानादिना सन्तोषयेत् ॥ १० ॥

यत्र स्वापेक्षया विंशष्टा न लभ्यन्ते आद्धदानादौ तत्राह ।

समे स्वसदृशे, हीने स्वापेक्षया गुणादिनां न्यूनै, अदुष्टे पात्रे आद्धदानादौ प्रवृत्तिस्तेषामेवाशीर्द्धानात् पितरि सुखमित्यर्थः । निषिद्धानां परं त्यागो न तदुष्टानां समहीनानामपोतिभावः ॥ ११ ॥

वि० ननु यत्र दुष्टब्राह्मणेन आद्धादिकं सम्पादितं तत्र किं कर्त्तव्यमित्यत्राह ।

पुनर्विंशष्टे अदुष्टब्राह्मणादिद्वारा आद्धादिसम्पादने प्रवृत्तिर्विधेया पूर्वकृतं आद्धन्तु पण्डमेवेतिभावः ॥ १० ॥

ननु यत्र स्वापेक्षया उत्कृष्टो ब्राह्मणो न लभ्यते तत्र किं कर्त्तव्यमित्यत्राह ।

समे आद्धकर्त्तव्ये, हीने स्वापेक्षया न्यूनै वा अदुष्टे ब्राह्मणे प्रवृत्तिः तेन आद्धं सम्पादनीयम्, दुष्टस्तु सर्वथैव त्याज्या इति भावः ॥ ११ ॥

सू० एनेन हीनसमविशिष्टधार्मिकेभ्यः परस्वादानं  
व्याख्यातम् ॥ १२ ॥

उ० आद्धे दानादौ च सम्प्रदानसाद्गुणेन धर्मात्पत्तिम-  
भिधाय तादृशादपादानादपि धर्मात्पत्तिमतिदिशति ।

यथोत्तरं धर्मात्कर्षः, हीनादपि भूम्यादि विग्रहे,  
समादपि, स्वापेक्षया विशिष्टादपि, धार्मिकात् धर्मार्थः  
परस्वादानं परस्मात् स्वस्य धनस्यादानं प्रतिग्रहः । वृत्ति-  
कारास्तु परस्वादानं चौर्यादिना परस्वग्रहणं व्याख्यातं  
तथाच श्रुतिः “शूद्रात् सप्तमि वैश्याद्दशमे चत्रियात्  
पञ्चदशे ब्राह्मणात् प्राणसंशये” इति, क्षुधापीडितमात्मा  
कुटुम्बं वा रक्षितुं सप्त दिनान्याहारमप्राप्य शूद्रभक्ष्या  
हारः कार्यः, एवं दश दिनान्याहारमप्राप्य वैश्यात्,  
दश दिनान्याहारमप्राप्य चत्रियात्, प्राणसंशये ब्राह्मणात्  
भक्ष्यापहरणं न दोषायेत्याहुः ॥ १२ ॥

वि० आद्धदानादौ अपादानस्य साद्गुणादपि सम्प्रदानस्य धर्म-  
विशेषो भवतीत्याह ।

एतेन दानस्थलीयन्यायेन परस्वादानं प्रतिग्रहादपि व्याख्यातम्  
उक्तप्रायमेव तथाच न्यूनसमविशिष्टेभ्यः प्रतिग्रहः कर्त्तव्यस्त-  
चापि फलतारतम्यं नतु कदाचिद्दुष्टादिति समुदितार्थः । पर-  
स्मात् स्वस्य धनस्यादानं परस्वादानं नतु चौर्यादिना परधनस्य  
ग्रहणं तस्य निषिद्धत्वात्, वृत्तिकारैस्तु प्राणसंशयादिसमये चौर्य-  
स्यापि कर्त्तव्यताबोधकमिदं सूत्रमित्युक्तमिति ॥ १२ ॥

सू० तथा किरुद्धानां त्यागः ॥ १३ ॥

हीने परे त्यागः ॥ १४ ॥

समे आत्मत्यागः परत्यागोवा ॥ १५ ॥

उ० न केवलं प्राणसंशये परस्वादानं न निषिद्धं किन्तु तस्यां दशायामपहर्तुं ये न प्रयच्छन्ति तेषां बधोऽपि कार्यो न तावता धर्महानिरधर्मप्रादुर्भावोवेत्याह ।

तस्यां दशायां किरुद्धानां विपरीतमाचरतां त्यागो बधः कार्य इत्यर्थः । तदुक्तम्,

“कर्मणा येन केनापि मृदुना दारुणेन वा ।

उद्धरेद्हीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्” इति ॥ १३ ॥

ननु चाविशेषेणैव परस्य बधः, नेत्याह ।

यदि स्वस्माद्धीनः परो भवति योऽपहर्तुं न ददाति तस्य शूद्रादेस्त्यागो बधः ॥ १४ ॥

सममधिकृत्याह ।

यदि स्वमदृशो ब्राह्मण एव विरोधी भवति तदात्मन

वि० कानिचिन्नन्दितकर्माण्यपि पापं नोत्पादयन्तीत्याह ।

किरुद्धानां हन्तुमद्यतानां त्यागो बधस्तथा न निषिद्ध इत्यर्थः,

“व्याततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्” इति वचनात् ॥ १३ ॥

तत्रापि विशेषमाह ।

हीने स्वापेक्षया हीनवर्णे परे शूत्रो त्यागो बध इत्यर्थः ॥ १४ ॥

अहीने शूत्रो किं कर्तव्यमित्यत्राह ।

समे स्वसमानवर्णे समगुणे च परे इत्यनुषङ्गनीयम् आत्मत्यागः

सु० विशिष्टे आत्मत्याग इति ॥ १६ ॥

उ० एवोपवासादिना त्यागोऽवसादः कर्त्तव्यः; यदि स्वस्य कुटु-  
म्बस्य वा रक्षाप्रकारो न दृश्यते विरोधी च समो भवति  
तदा तस्यैव त्यागो बध इत्यर्थः ॥ १५ ॥

तत् किं स्वापेक्षया यदि विशिष्टो भवति विरोधी  
तदा तस्यापि बध एव कार्यः, नेत्याह ।

स्वापेक्षया विशिष्टे वेदाध्ययनादिना उत्कृष्टे विरोधिनि-  
आत्मन एव त्यागोविधेयः प्राणसंशये सत्यप्यात्ममरणमे-

वि० आत्मावसादः कर्त्तव्यः तत्रापि तादृशपरो यदि पुत्रादिसहितं तं  
हन्तुमुद्यतस्तदा समस्यापि बधः कार्य इति । यदा

“अग्निदीगरदस्यैव शस्त्रपाणिर्धनापहा ।

क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः” ॥

इति वचनोक्तानामाततायिनां धनक्षेत्राद्यपहारकेषु आत्मत-  
आत्मधनादित्यागः अग्निदादीनां हन्तुमुद्यतानां पुनर्बध इत्यर्थः ॥

॥ १५ ॥

स्वापेक्षया उत्तमवर्णं गुणाधिके आततायिनि किं कर्त्तव्यमित्य-  
त्राह ।

विशिष्टे स्वापेक्षया उत्तमवर्णं गुणाधिके च वैरिणि आत्म-  
त्यागः आत्मावसाद एव कार्यो नतु विद्यागुणसम्पन्नब्राह्मणस्य  
वैरिणोबध इत्यर्थः । न च

“गुरुं वा बाणशङ्कं वा ब्राह्मणं वा बद्धयुतम् ।

आततायिनमायान्तं हन्य देवाविचारयन्” ॥

इति वचनेन विरोध इति वाच्यं तस्य क्रैमुतिकन्यायोपपत्त-

उ० वाभिप्रेयात् नतु ब्राह्मणं हन्यादित्यर्थः । इतिराङ्गिक-  
परिसमाप्तौ ॥ १६ ॥

इति शाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्कारे षष्ठाध्यायस्य प्रथ-  
माङ्गिकम् ॥ \* ॥

वि० कतया मितान्तराकारे व्याख्यातत्वात्, अतएव “पापमेवाश्र-  
येदस्मान् हत्वैतानाततायिनः” इति भगवद्गीतावचनमपि  
संगच्छते, पूर्वसूत्रे समं इति द्वयो ब्राह्मणत्वे इतिबोधं तत्रापि  
परत्यागो वेति पारिभाषिकबधपरम्

“वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापयं तथा ।

एषहि ब्रह्मबन्धुनां बधोनान्योऽस्ति दैहिकः” ॥

इतिवचनादधिकमन्यत्रानुसन्धेयम् आङ्गिकसमाप्तिसूचनायेति-  
कारः ॥ १६ ॥

इति श्री जयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य्य कृतायां कणा-  
दसूत्रविरचितौ षष्ठाध्यायस्य प्रथमाङ्गिकम् ॥ \* ॥

सू० दृष्टादृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोजनमभ्युद-  
याय ॥ १ ॥

उ० एवं पूर्वोक्तके वैदिकी प्रमा गुणजन्येति तदुत्पत्तौ  
गुणाभिधानम्, “शास्त्रदेशितं फलमनुष्ठातरि” इति विवेच-  
नम्, निषिद्धाचरणेऽपि प्रत्यवायानुत्पत्तिः कस्याञ्चिद्दशा-  
यामित्यस्य विवेचनञ्च वृत्तमधुना “यतोऽभ्युदयनिःश्रेय-  
समिद्धिः” इति द्वितीयं सूत्रं व्याचिख्यासुर्विशेषतो धर्मा-  
त्पत्तिपरीक्षायां वर्तित्यमाणा यामाह ।

दृष्टप्रयोजनानि कृषिवाणिज्यराजसेवादीनि, अदृष्ट-  
प्रयोजनानि यागदानब्रह्मचर्यादीनि, एतेषां कर्मणां मध्ये  
यत्र दृष्टं प्रयोजनं नापलभ्यते तत्रादृष्टं प्रयोजनं कल्प-  
नीयम्, तच्चाभ्युदयाय तत्त्वज्ञानाय । यद्वा अभ्युदयायेति  
चतुर्थी प्रथमार्थं तेन फलमभ्युदय इत्यर्थः, अदृष्टं फ-  
लपूर्वमेव तद्यदि योगजं तदाऽभ्युदय आत्मसाक्षात्कारः

वि० इदानीं विशेषतो धर्मपरीक्षार्थं कर्मफलं विवेचयति ।

दृष्टादृष्टानि प्रयोजनानि येषां कर्मणां तन्मध्ये दृष्टाभावे  
दृष्टप्रयोजनाभावे च अभ्युदयाय स्वर्गाय स्वर्गफलकं यत् प्रयोजनं  
धर्मरूपं तदेव कल्पनीयम् । दृष्टप्रयोजनानि कर्षणवीजवपन-  
दोहनपचनादीनि, अदृष्टप्रयोजनानि यागदानहोमाचर्चनादीनि,  
यागादीनां दृष्टप्रयोजनासम्भवात् । नच यागादौ दृष्टं दुःख-  
मेव फलम्, तस्य प्रयोजनत्वाभावेन यागादेरनुष्ठानापत्तेः, नापि  
पूजाख्यातिरूपं दृष्टं फलम्, तदप्रेम्भिरपि यागाद्याचरणात्,

सू० अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्र-

च० यदि यागदानादिजं तदाऽभ्युदयः स्वर्गः, तत्रापि यथा  
 दोग्धि पचतीत्यादिक्रिया मद्यःफलिका, वपति कर्षतीत्या-  
 दिक्रियाच विलम्बभाविफला, तथा यजति ददाति ब्रह्म-  
 चर्यं चरतीत्यादिक्रिया तावत् मद्यःफलिका न भवति  
 तादृशस्य फलस्यानुपलब्धेः । न च धार्मिकतया ज्ञानाज्ञा-  
 भादिकमेव फलम्, प्रच्छन्नं ब्रह्मचर्यादि चरतां तत्फलानु-  
 द्देशात् तस्माच्चिरभाविस्वर्गादिकमेव फलं तच्चाणुतरविना-  
 शिन्याः क्रियाया न साक्षादित्यान्तरालिकं क्रियाफलयोः  
 समानाधिकरणमपूर्वं पर्यवस्यति ॥ १ ॥

अदृष्टफलानि कर्माणि परिमञ्चये ।

अदृष्टायेत्यदृष्टलक्षणाय फलाय अदृष्टद्वारा स्वर्गापव-

वि० नापि यागादीनां निष्फलत्वम्, सर्वेषां परलोकार्थिनां तेषु प्रत्य-  
 नुपपत्तेः । न च केनचित् स्वर्गफलकतया यागादिक्रं प्रकृत्य पर-  
 प्रतारणार्थं स्वयमनुष्ठाय धन्विताः लोका यागादिषु प्रवर्तन्ते  
 वस्तुतो यागादिकर्माणि निष्फलान्येवेति वाच्यं परप्रतारणार्थं  
 बह्वित्तव्ययायाससाध्ययागानुष्ठानस्यासम्भवात् क एवं लोको-  
 त्तरः यः परप्रतारणामात्रार्थं बह्वित्तव्ययायासोपवासादि-  
 नात्मानमवसादयेत् तस्मात् स्वर्गादिफलमवश्यं यागादेरङ्गी-  
 कार्थम्, तज्जनकत्वञ्चाशुविनाशिनं कर्मणां न सम्भवतीति तद्-  
 दारीभूतं सुकृतापूर्वमवश्यं कल्पनीयमिति संक्षेपः ॥ १ ॥

तत्रादृष्टफलकानि कर्माणि चिद्व्यक्तकर्माणि प्रदर्शयति ।

एतानि, कर्माणि अदृष्टाय अदृष्टजनकानि । तत्र अभिषे-



## सू० स्थयन्नदानप्रोक्षणदिङ्मन्त्रकालनियमाश्चा- दृष्टाय ॥ २ ॥

उ० गल्लक्षणाद्य फलाद्य वा एतेनादृष्टफलकश्रौतस्मार्त्तमकल-  
कर्मोपसंग्रहः, तत्राभिषेचनं स्नानं “गङ्गायां स्नायात्” इ-  
त्यादिविधिविधेयम्, उपवासः “एकारशीमुपवसेत्” इत्या-  
दिविधिविधेयः, ब्रह्मचर्यं मामान्यत एव धर्ममाधनम्, गुरु-  
कुलवासो ब्रह्मचारिणां वेदाध्ययनमहानाम्नादिब्रतार्थः,  
वानप्रस्थं वयःपरिणामे वनं प्रस्थितानां यत् कर्म, यज्ञो-  
राजसूयवाजपेयादिः, दानं “गां दद्यात्” इत्यादिविधि-  
विधेयम्, प्रोक्षणं “ब्रीहोन् प्रोक्षति” इत्यादिविधिविधेयम्,  
दिक् “प्राचीनस्रवने यजेत” “प्राङ्मुखोऽन्नादि भुञ्जीत”  
इत्यादिविधिविधेया, नक्षत्रं श्राद्धादौ मघादि, मन्त्रः आ-  
षाढिष्ठेत्यादिः, कालः “मासि मासि वोऽशनम्” अमावा-  
स्यायामपराह्णे दद्यात् “द्यौश्चे पञ्चतपाः” “वमन्तेऽग्नीनाद्-  
धीत” इत्यादिविधिविधेयः, नियमो वर्णाश्रमिणां यथा-  
शास्त्रमनुष्ठानम्, तदेवं धर्मस्य आत्मा समवाधिकारणम्,

वि० चनमभिषेको राज्ञाम्, उपवासः शिवरात्र्युपवासादिः, ब्रह्मचर्यं-  
मद्यविधमैथुनादिवर्जनम्, गुरुकुलवासो ब्रह्मचारिणां वेदाध्य-  
यनाद्यर्थः, वानप्रस्थं वयःशेषे वनप्रस्थितानां पुटपाकादिकर्मयज्ञो-  
राजसूयादिः, दानमाषाढ्यादौ, प्रोक्षणां ब्रीहियश्वादीनाम्, दिक्  
प्राङ्मुखभोजनादि, नक्षत्रं मघाश्राद्धादि, मन्त्रः प्रणवगायत्र्यादि-  
जपः, कालः चातुर्मास्यव्रतादिः, नियमाः शौचमन्तोषतपःस्वाध्या-

सू० चातुराश्रम्यनुपधा अनुपधाश्च ॥ ३ ॥

भावदोषउपधाऽदोषोऽनुपधा ॥ ४ ॥

उ० आत्ममनःसंयोगोऽसमवायिकारणम्, अद्वा स्वर्गादिलक्षण-  
प्रयोजनज्ञानञ्च निमित्तकारणमनुमन्वेयम् ॥ २ ॥

एवं धर्मासाधनमभिधाय अधर्मासाधनमपि समुच्चिन्व-  
न्नाह ।

चतुर्णामाश्रमाणां समानं यद्गुर्धर्मासाधनं तत्तावत्  
पूर्वसूत्रेणैवोक्तमितिशेषः । उपधाः भावस्य अद्वायादोषाः  
अनुपधाः अद्वायाभावस्यादोषाः तेऽपि धर्माधर्मयोः  
साधनानि यथास्वमूहनीयानि उपधापदेनाधर्मासाधनानि  
सर्वान्युपसंगृह्येतानि ॥ ३ ॥

उपधानुपधे लक्षणतोविवेचयन्नाह ।

भावः इच्छा रागः प्रमादोऽश्रद्धामदमानासृष्ट्याप्रसृ-  
तयो भावदोषा उपधापदेनोच्यन्ते, अद्वा मनःप्रसादोदे-

वि० येश्वरप्रणिधानानि, चकारादनुक्तानि श्रौतस्मार्त्तान्यपि ॥ २ ॥

प्रसङ्गादधर्मात्मकादृष्टसाधनमप्याह ।

ब्रह्मचारिगृहिवानप्रस्थभिन्नरूपेषु चतुर्षु आश्रमेषु विहितं  
यत्कर्म्म तत् चातुराश्रम्यं पूर्वमुक्तमितिशेषः । उपधा भावदोषाः  
अनुपधा भावादोषाश्च धर्माधर्मासाधनानीत्यर्थः ॥ ३ ॥

उपधादिलक्षणमाह ।

कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यादयो भावदोषा उपधाश्च-

सू० यदिष्टरूपरसगन्धस्पर्शं प्रोक्षितमभ्युक्षितञ्च त-  
च्छुचि ॥ ५ ॥

उ० शितकर्म्मणुष्ठानाध्यवसाय इतिकर्त्तव्यतापरिच्छेदश्यानुप-  
धा, तदेतयोर्धर्म्माधर्म्निमित्तकारणत्वमुक्तम् ॥ ४ ॥

गुच्यगुचिनी चोपधानुपधे तत्र गुच्यगुचिनी विवेचयति ।

दष्टं श्रुत्या स्रष्ट्याच यद्रूपादिकं विहितं यस्य द्रव्यस्य  
तत्तथा तत्र रूपम् “अरूण्या एकहायन्या पिङ्गाच्या गवा  
सोमं क्रीणाति” “श्वेतं कागन्मालभेत” इत्यादौ, प्रो-  
क्षितं मन्त्रेणोदकमित्तम्, अभ्युक्षितं विना मन्त्रमुदकमित्तं  
चकाराव्यायते लब्धं तच्च “याजनाध्यापनप्रतिग्रहैर्ब्राह्म-  
णो धनमर्जयेदित्यादिनिधमविधिवोधितम्” ॥ ५ ॥

अगुचिलक्षणमाह ।

वि० वाचाः अज्ञाऽप्रमादानालस्यमनःप्रसादादयोऽदोषा अनुपधा-  
शब्दवाचा इत्यर्थः ॥ ४ ॥

अनुपधाशब्देन शुच्यपि बोध्यते किं तत् शुचीत्याह ।

इष्टा श्रुतिस्मृतिविहिता रूपरसगन्धस्पर्शा यत्र द्रव्ये तत्  
यथा सोमक्रयादावारुण्यादि, प्रोक्षितं मन्त्रेण जलसित्तम्, अभ्यु-  
क्षितं तूष्णीं जलसित्तं चकारात् वाक्प्रशस्त याजनादिलब्धमूल्य-  
क्रीतादीनां संग्रहः ॥ ५ ॥

एतद्विपरीतमशुचीत्याह ।

सू० अशुचीति शुचिप्रतिषेधः ॥ ६ ॥

अर्थान्तरञ्च ॥ ७ ॥

अयतस्य शुचिभोजनादभ्युदयो न विद्यते नि-

उ० यद्रूपं शुचि तद्विपरीतमशुचीत्यर्थः अप्रशस्तरूपस-  
गन्धस्पर्शमन्त्रप्रोक्षितमनभ्युक्षितं निषिद्धजलाभ्युक्षितं वा  
अन्यायागतम्, कृषिवाणिज्यागतं ब्राह्मणस्य द्रव्यमशुची-  
त्यर्थः ॥ ६ ॥

अशुच्यन्तरमाह ।

प्रशस्तरूपसगन्धस्पर्शमपि प्रोक्षितमभ्युक्षितं न्याया-  
र्जितञ्च यत्तत्रापि वाग्दुष्टं भावदुष्टञ्च यत्तदप्यशुची-  
त्यर्थः ॥ ७ ॥

इदानीं धर्माधर्मौ प्रति सहकार्यन्तरमाह ।

अयतस्य यमरहितस्यासंयतस्येति यावत् “हस्तौ पादौ

वि० शुचिप्रतिषेधः शुचिभिन्नमित्यर्थः, तच्च अविहितरूपादिमद-  
प्रोक्षितानभ्युक्षितान्यायोपार्जितवित्तादि ॥ ६ ॥

अन्यदप्यशुचीत्याह ।

अर्थान्तरं वस्वन्तरं चकारः पूर्वोक्तसमुच्चायकः तथाच शुचि-  
द्रव्यमपि वाग्दुष्टं भावदुष्टञ्चेत्तदप्यशुचीत्यर्थः ॥ ७ ॥

शुचिद्रव्यभक्षणं यमसंहतं धर्मं तदसहकृतस्य धर्मं जन-  
यतीत्याह ।

अयतस्य बाणिपादप्रक्षालनाचमनादिरहितस्य शुचिद्रव्य-

सू० यमाभावात् विद्यते वाऽर्थान्तरत्वाद्यमस्य ॥ ८ ॥  
असति चाभावात् ॥ ९ ॥

उ० प्रक्षाल्यात्म्यवाग्यति भुञ्जीत भोक्ष्यमाणः प्रयतोऽपि द्वि-  
राचामेत्” इत्यादिवोधितयमरहितस्य भोजनं नाभ्युदयाद्य  
किन्तु पापारः, कुत एवमित्यत आह नियमाभावात् निय-  
मस्य सहकारिणोऽभावात्, नियमे सति यत्तदाह विद्यते  
वा यथोक्तयमसहित्येन भोजने भवत्येवाभ्युदयः, कुत इत्यत  
आह अर्थान्तरत्वाद्यमस्य भोजनादर्थान्तरं यतो यमः,  
तथाच सहकारिकारणं विना न फलसिद्धिस्तस्मिन् सति  
फलसिद्धिरित्यर्थः ॥ ८ ॥

ननु यममात्रमेव तन्त्रं तर्हि भोजनमतन्त्रमेवेत्यत आह ।

यमे सत्यपि शुचिभोजनेऽसति अभावादभ्युदयस्येति-  
शेषः तथाच यमोभोजनञ्च द्वयमेव पुण्यकारणमित्यर्थः ।

वि० भक्षणात् अभ्युदयस्तज्जनकसुहृतापूर्वम् आशुर्घृतभित्तिवत् न  
विद्यते न भवति नियमाभावात् यमरूपसहकारिविरहात्,  
संयतस्य तु भवेदेव सुहृतमित्याह विद्यते वेति भवत्येवेत्यर्थः “वा-  
स्यादिकल्पोपमयोरेवार्थे वा समुच्चये” इत्यमरकोषात् यमस्या-  
र्थान्तरत्वात् सहकारित्वात् तथाच यमसहितं शुचिभोजनं धर्मं  
जनयति तद्रहितन्तु पापं जनयतीतिभावः ॥ ८ ॥

नन्वेवं यमसहितमशुचिभोजनं धर्मजनकं न वेत्यत्राह ।

असति अप्रशस्ते “सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च स-  
त्” इति कोषात् अशुचिद्रव्यभक्षणे इति यादत् अभावात् अभ्यु-

सू० सुखाद्रागः ॥ १० ॥

उ० भोजनमित्युपलक्षणं यागदानस्नानहोमादीनामपि श्रौत-  
स्मार्त्तकर्मणां यमनियमौ सहकारिणौ ॥ ९ ॥ :

एवं धर्माधर्मप्रादुर्भावं प्रति यमसहकारिणमभिधाय  
दोषं सहकारिणमभिधातुं दोषनिदानमाह ।

सूक्चन्दनवनितादिविषयसेवनजन्मनः सुखादुत्तरोत्तरं  
तज्जातीये सुखे तत्साधने वा राग इच्छा संजायंते अहि-  
कण्टकादिजन्मनोदुःखात् तत्र तत्साधने वा द्वेष इत्यपि  
द्रष्टव्यम्, रागद्वेषमोहाः प्रवर्त्तकत्वेन दोषा इत्यभिधी-  
यन्ते तथाच गौतमीयं सूत्रम् “प्रवर्त्तनालक्षणा दोषाः”  
इति ॥ १० ॥

वि० दयसाधनस्य धर्मस्याभावात् तथाच निन्दितत्वेनाशुचिद्रव्यभो-  
जनं यमसहकृतमपि धर्मं न जनयति किन्वधर्ममेवेतिभावः ॥  
॥ ९ ॥

दोषस्यापि धर्माधर्मकारणत्वात् तत्कारणं दर्शयति ।

सुखात् सुखभोगादनन्तरं तत्साधने सूक्चन्दनवनितादौ  
राग इच्छा भवतीतिशेषः एवं दुःखभोगानन्तरमपि तत्साधने-  
ऽहिकण्टकादौ द्वेषो जायते इति बोध्यं मोहोऽपि रागद्वेषकार-  
णमिति रागद्वेषद्वारा मोहोऽपि प्रवर्त्तक इति रागद्वेषमो-  
हास्त्रय एव दोषाः धर्माधर्मयोः सहकारिकारणानि तदुक्तं  
गौतमीये “प्रवर्त्तनालक्षणा दोषाः” इति “तल्लैराश्रं रागद्वेष-

सू० तन्मयत्वाच्च ॥ ११ ॥

अदृष्टाच्च ॥ १२ ॥

उ० अत्र सुखदुःखे एव यदि रागद्वेषौ जनयतः तदा तयोर्नाशे कथं तौ स्यातामत आह ।

रागद्वेषौ भवत इतिशेषः विषयाभ्यासजनितो दृढ-  
तरः संस्कारविशेषस्तन्मयत्वं यदशात् कामातुरस्य कामि-  
नीमलभमानस्य सर्वत्र कामिनीदर्शनम्, एकदा भुजङ्गदृष्टस्य  
तत्र दृढतरसंस्कारतः सर्वत्र भुजङ्गदर्शनम्, तदुक्तं “तन्म-  
यत्वं तत्प्रकाशो वाह्याभ्यन्तरतस्तथा” इति ॥ ११ ॥

हेत्वन्तरं समुच्चिनोति ।

रागद्वेषावितिशेषः यद्यद्यदृष्टं साधारणकारणं तथापि  
क्वचित्तौ प्रति असाधारणतामप्यनुभजति यथा तज्जन्मान-  
नुभूतकामिनीसुखस्यापि यौवनोद्भेदे कामिनोरागः अननु-  
भूतभुजङ्गदंशदुःखानामपि भुजङ्गेषु द्वेष इत्याद्युक्त्रियम् ।

वि० मोहार्थान्तरभावात्” इति “तेषां मोहः पापीयान्नामूढस्ये-  
रोत्पत्तेः” इति च ॥ १० ॥

प्रयोजकान्तरमाह ।

तन्मयत्वात् विषयभोगाभ्यासजनितदृढतरसंस्काराच्च रागा-  
दयो भवन्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥

कारणान्तरमपि दर्शयति ।

अदृष्टविशेषात् जन्मान्तरकृतादृष्टविशेषात् कस्यचित् कस्मिं-  
श्चिदनुरागोद्भेदो वा भवति यथा दमयन्त्यादेर्नकादौ, यथा वा

सू० जातिविशेषाच्च ॥ १३ ॥

उ० प्राग्भवीयः संस्कार एवात्र निबन्धनम्, तत्कल्पने तद्द्वौ-  
धकल्पने च प्रमाणाभावात् अदृष्टं स्यावश्यकल्पनीयत्वात् ॥

॥ १२ ॥

सहकार्यन्तरमाह ।

तथाहि मनुष्यजातीयानामन्नादौ रागः मृगजातीयानां  
हृणादौ, करभजातीयानां कण्टकादौ, तत्रापि तच्च जाति-  
निष्यादकमदृष्टमेव तन्त्रं द्वारमात्रन्तु जातिर्जन्मविशेषः  
एवं पारावतादीनामुत्करे रागः । तथा महिषजातीयानां  
तुरङ्गमे द्वेषः, सारमेयाणां शृगाले, नकुलानां भुजङ्गमे  
इत्याद्युत्तरेयम् ॥ १३ ॥

एवं धर्माधर्मनिमित्ततया रागद्वेषनिमित्तानि परि-  
सङ्खाय सम्प्रति दोषाणां धर्माधर्मकारणत्वं प्रवृत्तिद्वारे-  
त्याह ।

वि० दुर्योधनादेर्भीमादौ तदुक्तं “जन्मान्तराधिगतकर्म्मविपाकजन्मै-  
वान्मीलति क्वचन कस्य च नानुरागः” इति ॥ १२ ॥

अन्यदप्याह ।

जातिविशेषात् मनुष्यजातीयानामन्नादौ उष्ट्रादिजातीयानां  
कण्टकादौ रागः नकुलजातीयानां भुजङ्गमे महिषजातीयानां  
तुरङ्गमे द्वेषश्च जातिक्रंत एव, यद्यप्यत्रादृष्टमेव जातिद्वारा रागा-  
द्युत्पादकं तथापि साक्षान्निष्यादकत्वं जातेरेवेति ॥ १३ ॥

रागादे र्धर्माधर्मात्पादने वीजमाह ।



सू० इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मप्रवृत्तिः ॥ १४ ॥  
तत्संयोगोविभागः ॥ १५ ॥

उ० विहिते कर्माणि रागनिबन्धना निषिद्धे कर्माणि हिंसा-  
दौ द्वेषनिबन्धना प्रवृत्तिः, रागनिबन्धना यागादौ प्रवृ-  
त्तिर्धर्मो प्रसूते द्वेषनिबन्धना हिंसादौ प्रवृत्तिरधर्मम् । ता-  
वेतौ रागद्वेषौ संसारमनुवर्त्तयतः तथाच गौतमीयं सूत्रम्  
“प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः” इति वागारम्भोवाचिको  
प्रवृत्तिः सत्यं प्रियं हितमिति पुण्या, असत्यमप्रियमहितमि-  
ति पापा, बुद्धिः बुध्यते ज्ञायतेऽनेनेति मन उच्यते तेन मा-  
नसो प्रवृत्तिर्भूतदयादिः, शारीरो प्रवृत्तिर्दानं परिचर-  
णमित्यादिका दशविधा पापा दशविधा पुण्याचेति ॥ १४ ॥

इदानीं धर्माधर्मयोः प्रयोजनं प्रेत्यभावमाह ।

ताभ्यां धर्माधर्माभ्यां संयोगो जन्म अपूर्वाभिः शरीरे

वि० धर्माधर्मौ तज्जनकयागहिंसादिकर्मणो उपचारात् तत्र या  
प्रवृत्तिः इच्छाद्वेषपूर्विका इच्छाद्वेषजन्या तथाच रागाद्यागादौ  
प्रवृत्तिस्ततो यागादिना धर्मो जायते तथा द्वेषाजिंसायां प्रवृत्ति-  
स्ततोहिंसादिनाऽधर्मो भवतीति रागादेः प्रवृत्तिद्वारकमेव  
धर्मादिजनकत्वमिति औत्सर्गिकाभिप्रायेणैव तेन रागद्वेषादिकं  
विनाऽपि आकास्मिकगङ्गाजलसंसर्गादिना धर्मादिजननेऽपि न  
क्षतिरिति ॥ १४ ॥

धर्माधर्मयोः कार्यं प्रेत्यभावमाह ।

तत्संयोगः ताभ्यां जनितः संयोगः सम्बन्धः अर्थात् अपूर्वशरीर-

सू० आत्मकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः ॥ १६ ॥

उ० न्द्रियवेदनाभिः सम्बन्धः संयोग इहोच्यते । विभागस्तु शरीरमनोविभागो मरणलक्षणः तथा चायं जन्ममरणप्रबन्धः संसारः प्रेत्यभावापरनामा धर्माधर्माभ्यामित्यर्थः अस्यैव च प्रेत्यभावस्याजरञ्जरीभाव इति वैदिकी संज्ञा ॥ १५ ॥

तदेतस्य प्रेत्यभावस्य जन्ममरणप्रबन्धस्य यत्र च पर्यवसानं तं मोक्षं निरूपयितुमाह ।

अयमेव शरीरमनोविभागः आत्मकर्मसु सत्सु मोक्षो भवतीत्यर्थः तत्रात्मकर्माणि तावत् श्रवणं मननं योगाभ्यासेनिदिध्यासनमासनं प्राणायामः शमदमसम्पत्तिः आत्मपरात्मसाक्षात्कारो देहदेशान्तरोपभोग्यपूर्व्वीत्यन्तर्धर्माधर्मपरिज्ञानं तद्भोगानुरूपनानादेहनिर्माणां तयोर्भोगेन प्रत्ययोरागद्वेषलक्षणदोषतुषारदमादयिमध-

वि० प्राणयोराराधः संयोगः जन्नेति यावत् एवं विभागः शरीरचरमप्राणसंयोगध्वंसः मरणमिति यावत् तदपि धर्माधर्माधीनमेव तदेवं धर्माधर्माधीनो जन्ममरणप्रवाहो प्रेत्यभावः स एव पुंसां बन्धलक्षणः तस्य चाजरञ्जरीभाव इति नामान्तरमागमे प्रसिद्धम्, तदुक्तं गौतमीये “पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः” इति ॥ १५ ॥

नन्वेवमनादिरयं प्रेत्यभावः पुरुषं किं न जह्वातीत्यत्राह ।

आत्मकर्मसु श्रवणमनननिदिध्यासनात्मसाक्षात्कारेषु सत्सु मोक्षो व्याख्यातः आगमेऽभिहितः । तत्र आत्मतत्त्वसाक्षात्का-

उ० कर्माधर्मयोरनुत्पादात् प्रवृत्त्यपाये जन्मापायाद्दुःखापाय-  
लक्षणोऽपवर्गस्तत्र षट्पदार्थितत्त्वज्ञानमाद्यमात्मकर्मा ॥ १६ ॥

इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्कारे षष्ठाध्यायस्य  
द्वितीयमाह्निकम् ॥ \* ॥

समाप्तञ्चायं षष्ठाध्यायः ।

वि० रेणापहृते मोहात्मके देहाद्यात्माभेदविषयके मिथ्याज्ञाने राग-  
द्वेषलक्षणस्य दोषस्यापायो भवति ततः प्रवृत्ते धर्माधर्मात्मि-  
काया उच्छेदस्तदभावाच्चापूर्वशरीराद्यप्राणसंयोगरूपजन्मोच्छे-  
दस्तत आत्यन्तिकतापत्रयविनाशो भवतीति स एव मोक्षस्तत्र  
मननशास्त्रमिदं परम्परयोपयुज्यते इति तथाच गौतमीयं सूत्रं  
“दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरीत्तरापाये तदनन्त-  
रापायादपवर्गः” इति, अधिकमन्यत्रानुसन्धेयम् ॥ १६ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-कृतायां कणाद-  
सूत्रविवृतौ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ \* ॥

समाप्तञ्चायं षष्ठाध्यायः ।



सू० उक्ता गुणाः ॥ १ ॥

उ० संसारमूलकारणतया सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारण-  
तया भोगसाधनतया चोत्पन्नितः प्रत्यात्मनियतत्वेन  
परादृष्टस्यापि परस्योपयोगित्वेन च धर्माधर्मौ परीक्ष्ये-  
दानीं गुणान् परीक्षित्तिषुस्तेषामुद्देशं लक्षणञ्च स्मारयन्नाह ।

उद्दिष्टा लक्षिता गुणाश्चेत्यर्थः तत्र रूपादयः सप्तदश  
कण्ठरवेणोक्ताः चशब्दसमुच्चिताः सप्त, तेन चतुर्विंशति-  
रपि गुणा उक्ताः, तत्र नित्यवृत्तिनित्यवृत्तिसत्तासाचा-  
द्वाप्यजातिमत्त्वं गुणत्वं समवायिकारणावृत्तिनित्यवृत्ति-  
सत्तासाचाद्वाप्यजातिमत्त्वं वा असमवायिकारणावृत्तिनि-  
त्यवृत्तिसत्तासाचाद्वाप्यजातिमत्त्वं वा कार्यासमानाधिक-  
रणकर्मावृत्तिजातिमत्त्वं वा ॥ १ ॥

तत्र गुणत्वेन गुणपरीक्षा सप्तमाध्यायार्थः । तत्र प्रथमा-  
ङ्गिके नित्यतया गुणपरीक्षा, अनित्यतया गुणपरीक्षा,  
पाकजगुणपरीक्षा, \*सञ्ज्ञाद्यनेकवृत्तिगुणपरीक्षा, परिमा-  
णपरीक्षा चेति पञ्च प्रकरणानि, तत्र रूपादीनाञ्चतुर्णाम-  
नित्यत्वमाह ।

वि० तदीयसूत्रसंहतिं विद्वेष्यतामधीमताम् ।

शुभाय सन्तु सन्ततं कथादपादरेणवः ॥

सप्तमे गुणान् परीक्षित्तिषुस्तदुद्देशकत्वे स्मारयति । गुणा  
उक्ता उद्दिष्टा लक्षिताश्चेत्यर्थः ॥ १ ॥

० \* संज्ञाद्यनेक इति कश्चित् पाठः ।

सू० पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वाद्-  
नित्याश्च ॥ २ ॥

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ ३ ॥

उ० पृथिव्यादीनां वाय्वन्तानामवयविनां रूपादयश्चत्वारोगुणा अनित्याः । यद्यप्यनेऽपि गुणा अवयवेषु वर्त्तमाना अनित्या एव, तथापि तेषामन्यतोऽपि विनाशः, रूपादयश्चत्वारोगुणा आश्रयनाशादेव नश्यन्ति नतु विरोधिगुणान्तरात्, द्रव्यानित्यत्वादिति द्रव्यस्याश्रयभूतस्यानित्यत्वादाश्रितानामनित्यत्वमित्यर्थः ॥ २ ॥

रूपादीनामनित्यत्वे यद्याश्रयानित्यत्वं तन्न तदा नित्याश्रयवृत्तीनां नित्यत्वमित्याचेपबल्लभ्यमित्याह ।

रूपादीनामेव चतुर्णां नित्येष्वश्रयेषु वर्त्तमानानां नित्यत्वमुक्तम् एतेनेति आश्रयानित्यत्वेनानित्यत्वाभिधा-

वि० रूपादीनाश्चतुर्णां यथासम्भवमनित्यत्वमभिधत्ते ।

पृथिव्या रूपरसगन्धस्पर्शाः, जलस्य रूपरसस्पर्शाः, तेजसो रूपस्पर्शा, वायोः स्पर्शा, एतेषामनित्याश्रितानामनित्यत्वम् आश्रयनाशनाशयत्वात्, चकारादेकत्वैकपृथकत्वपरिमितिगुरुत्वसांनिद्धिकद्रवत्वस्त्रेहानां संग्रहः, तेऽपि अनित्यगता अनित्या एवेत्यर्थः ॥ २ ॥

ननु नित्यगता रूपादयः किमनित्या नित्या वेत्यत्राह ।

एतेन आश्रयानित्यत्वहेतुकानित्यत्वकथनेन नित्येषु आश्रयेषु रूपादीनां नित्यत्वमुक्तमुक्तप्रायमर्थायातत्वादित्यर्थः । नि-

सू० अप्सु तेजसि वायौ च नित्या द्रव्यनित्यत्वात्  
॥ ४ ॥

उ० नेनेत्यर्थः । वृत्तिकृतस्तु नित्येष्वनित्यत्वमुक्तमित्यकारप्र-  
क्षेपस्तथाच पार्थिवपरमाणुष्वग्निसंयोगान्नाश इति व्याचक्रुः  
॥ ३ ॥

तत् किं पार्थिवेऽपि नित्यवृत्तिरूपादीनां नित्यत्वमेवे-  
त्यतो विशिनष्टि ।

आप्यपरमाणौ रूपरमस्पर्शा नित्याः, तैजसपरमाणौ  
रूपस्पर्शा, वायुपरमाणौ स्पर्शा नित्यः, ननु नित्येऽपि वर्त-  
मानानां रूपादीनामनित्यत्वे को विरोधः शब्दबुद्ध्यादी-  
नामिवेत्यतस्त्वेकारेण गुणान्तराप्रादुर्भावोहेत्वन्तरं सूचि-  
तम्, शब्देहि तीव्रमन्दादिभावेन गुणान्तरप्रादुर्भावा-  
ऽनुभूयते, ज्ञानादौ च ज्ञानादिविरोधी संस्कारादिः, आ-  
प्यतैजसवायवीयपरमाणुषु रूपादिविरोधिगुणान्तरं न

वि० त्वेष्वनित्यत्वमिति वृत्तिकारसम्मतः पाठः, तन्मते नित्येषु पार्थिव-  
परमाणुषु रूपादीनामनित्यत्वमग्निसंयोगनाशत्वादित्यर्थः, किन्तु  
तादृशपाठे एतेनेति उक्तमिति च सङ्गतं न भवतीति ध्येयम् ॥ ३ ॥

ननु पार्थिवपरमाणुगतानां रूपादीनामग्निसंयोगनाशत्वात्  
कथं नित्येष्विति सामान्यत उक्तमतो नित्यानि विशेषयुति ।

न खलु नित्यवृत्तिवीगता रूपादयो नित्याः किन्तु नित्यजसते-  
जोवायुगत एव ते नित्याः पूर्वसूत्रे उक्ता इत्यर्थः ॥ ४ ॥

सू० अनित्येष्वनित्या इत्यानित्यत्वात् ॥ ५ ॥

उ० प्रादुर्भवति, यदि प्रादुर्भवेत्तदा तदारभ्येष्वपि द्युणुकादि-  
प्रक्रमेणाद्याद्यवयवेष्वपि पूर्वविजातीयं रूपाद्यनुभूयेत  
नहि प्रकृतरूपविजातीयं रूपं तोयतेजसो नवा शीतोष्ण-  
स्पर्शविजातीयौ स्पर्शा, उष्णं जलं शीतो वायुरित्यादि विजा-  
तिरूपाधिनिबन्धनेतिभावः ॥ ४ ॥

पूर्वं पृथिवीमन्तर्भाव्यानित्येष्वनित्या इत्युक्तमि-  
ति-  
माद्यादिव्येवाह ।

अत्रोद्यवयविरूपादय आश्रयनाशादेव नश्यन्ति  
विरोधिगुणान्तरादपीत्यर्थः ॥ ५ ॥

ननु पृथिव्यामवयविरूपायामपि रूपादयोऽग्नि-  
गादेवोत्पद्यन्ते नश्यन्ति च, तत्र कथमाश्रयनाशमात्रना शा-  
दित्यत आह ।

वि० ननु रूपादिभिन्ना अनित्यगता गुणाः किं नित्यास्तथाच संयो-  
गादिकमपि नित्यं स्यादित्यत आह ।

अनित्येषु ये गुणा वर्तन्ते ते सर्व्व एवानित्या आश्रयानित्य-  
त्वात्, तथाचानित्येषु नित्या गुणा न सन्त्येवेत्यर्थः ॥ ५ ॥

ननु रूपरसगन्धस्पर्शाः किमसमवायिकारणका इत्याकाङ्क्षा-  
यामाह ।

सू० कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्या पाकजाः ॥ ६ ॥

उ० पाकजा इति रूपरसगन्धस्पर्शा इत्यर्थः कारणगुणपूर्वका इति रूपाश्रयस्य घटादे र्यत् समवायिकारणं कपालादि तद्गुणपूर्वकाः तथाच कपालरूपं कारणैकार्थसमवायप्रत्यासत्या घटंरूपाद्यसमवायिकारणम्, एवं रसादावपि, रूपरसगन्धस्पर्शाः रूपत्वादिगुणत्वसाक्षाद्वाप्यजातिमन्तः । ननु चक्षुर्याह्वत्वमेव रूपत्वमुपाधिरिति चेत् इन्द्रियपातमात्रेण रूपमिति-प्रत्ययानुदयप्रसङ्गात् अननुसंहितोपाधेरुपहितप्रत्ययायोगादिति उपाधिस्यात्र चक्षुस्तृप्तातीन्द्रियं याह्वत्वञ्च ग्रहणविषयत्वं तदप्यत्राक्षुषं रूपत्वविशिष्टप्रतीतेश्च । चाक्षुषत्वात्, चक्षुर्मात्रवहिरिन्द्रिययाह्वगुणत्वं रूपत्वम्, अतीन्द्रियरूपाव्याप्तिरिति चेन्न चक्षुर्मात्रवहिरिन्द्रिययाह्वजातिमन्त्वस्य विवक्षितत्वात् तादृशी च जातीरूपत्वं नीलत्वादि काचेति । नन्वेकैका एव नीलपीतादिव्यक्तयो नित्या नतु तत्र नीलत्वादिजातय एकव्यक्तिकत्वादिति चेन्न नीलतरनीलतमादिप्रत्ययानुदयप्रसङ्गात्, धावल्यादिसम्भेदाभावकृतस्तत्र तारतम्यव्यवहार इति चेन्न प्रमाणाभावात् श्यामं रूपं नष्टं रक्तमुत्पन्नमिति प्रती-

वि० रूपरसगन्धस्पर्शाः अवयवविगता इति विवक्षणीयं कारणगुणपूर्वकाः स्वाश्रयस्य यानि कारणानि अवयवा इति यावत् तेषां ये गुणाः स्वसजातीयगुणाः तेभ्यः प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः तथा चावयववृत्तिरूपरसगन्धस्पर्शाणामसमवायिकारणानि अवयव-



उ० तेषु, नच सा समवायोत्पत्तिविनाशकृतेतिवार्थं समवायस्य तचानुस्रेखात् तस्य नित्यत्वाच्च घटादेरप्यनित्यतायामेवं सत्यनाश्चासापत्तेः समवायानित्यत्वेनैव तत्राप्यन्यथामिद्धेः सुवचत्वात्, ननु नीलपीतादयोगुणा द्रव्याभिन्ना एव धर्मधर्मिणोरभेदादितिचेन्न रूपं घटः स्यात्घट इत्यादिव्यवहारप्रसङ्गात्, ननु नेदमनिष्टं यतोभवत्येव शुक्लः पटो नीलः पट इत्यादिप्रतीतिरितिचेन्न मतुलोपादभेदोपचाराद्वा प्रतीत्युपपत्तेः, भेदे प्रमाणे सति कल्पनेयं यथा- कथञ्चिदुपपद्यते इति चेन्न चन्दनस्य रूपं चन्दनस्य गन्ध- इत्यादिव्यपदेशबलाद्भेदमिद्धेः पटस्य रूपाभेदे पटवद्रूप- मपि त्वेगिन्द्रियेण गृह्येत पटमानयेत्युक्ते यत्किञ्चिद्रूप- मानयेत् रूपमानयेत्युक्ते यत्किञ्चिद्रूपमानयेत्, अस्य तर्हि भेदाभेदः अत्यन्तभेदेऽत्यन्ताभेदे च सामानाधिकरणानुप- पत्तेरितिचेन्न अवच्छेदभेदं विना विरुद्धयोर्भेदाभेदयोरैक- चासम्भवात्, अन्योन्याभावत्वमव्याप्यवृत्तिवृत्ति नित्याभाव- वृत्तिधर्मत्वादत्यन्ताभावत्ववदितिचेन्न एकत्र संयोगतदत्य- न्ताभावयोः प्रतीतिबलादत्यन्ताभावस्याव्याप्यवृत्तित्वाभ्यु- पगमात् अन्योन्याभावेतु तथाप्रतीतेरभावात् । तदेतद्रूपं

वि० गता रूपरसगन्धस्पर्शास्तेषां समवायिकारणप्रत्यासन्नत्वन्तु स्वस- मवायिसमवायसम्बन्धेनेतिबोध्यम्, ननु श्यामघटादौ बलव- दग्निसंयोगानन्तरं कथं रक्ताद्युत्पत्तिरित्यत उक्तं पृथिव्यां पा- कजा इति अपीतिशेषः तथाच पृथिव्यां रूपरसगन्धस्पर्शाः

उ० पृथिव्यां नानाप्रकारकम्, पायसि तेजसि च शुक्लमेव, क्वचित्  
 पटादौ च चित्रमपि रूपमधिकम् अन्यथा तदचानुषत्वा-  
 पातात् रूपवत् एव चानुषद्रव्यत्वात् नच विजातीयरूपै-  
 रूपानारम्भः, नीलपीतादीनामारम्भे रूपत्वेनैवः साजात्य-  
 स्थापेक्षितत्वात् अन्यथा, तदचानुषत्वानुपपत्तेरुक्तत्वात् नचा-  
 वयवरूपोपग्रहेणैवावयवविग्रहः अवयवानामपि चित्रतया  
 नीरूपत्वप्रसङ्गात् यच्च वा पाकात् परमाणुषु चित्रं रूपं  
 तत्रैव तत्परम्परारम्भपटादौ चित्ररूपोपपत्तेः, नच ह-  
 रीतक्यां रमोऽपि चित्र इति वाच्यं हरीतक्या नीरसत्वेऽपि  
 दोषाभावात्, षड्रसत्वव्यवहारस्तु तत्तद्रसगुणकारितया ।  
 एवं गन्धोऽपि न चित्रः सौरभासौरभवदवयवद्वयस्यानारम्भ-  
 कत्वात्, कर्कश्यादौ क्वचिदवयवे तैल्यं क्वचिन्माधुर्यं तथाच  
 कतभोरसः कर्कश्यामिति चेन्माधुर्यमेव, गुणविरोधेन कथं  
 तथा स्यादिति चेत् तदवयवे तैल्यभावात्, तथाऽनुभवः  
 कथमिति चेत् कर्कटीभक्षणक्षुभितरसनायवर्त्तिपित्तद्रव्यस्य  
 तिक्रतोपलम्भात् ततएव कदाचिन्मुखमपि तिक्रायते,  
 हरीतक्यामपि कथमिदं न गतिरिति चेन्न तदवयवेषु  
 कषायमाधुर्यलवणादिना नारसानुभवादित्यलं पक्षवेन ।

वि० पाकजा अपि, पाकस्तु रूपादिपराहृत्तिकाफलकविजातीयतेजः-  
 संयोगः, सोऽपि रूपादेरसमवायिकारणम्भवति, तत्र च पर-  
 माणावेव पाकाद्रूपादिपराहृत्तिर्नावयवविनीति पीलुपाकवादिनः,  
 सम्भते विजातीयाभिसंयोगादारम्भकसंयोगनाशेन ह्यशुक्लपथ्य-

उ० तच्च रूपं नयनसहकारि, नन्वेवं वाथै रूपाभावश्च तमसश्च कथं चालुषतेतिचेन्न भावग्रह एव रूपस्य नयनसहकारि-त्वात् विषयालोकसृज्जुषां त्रयाणामपि रूपाणि चालुषप्रती-तिप्रयेजकानि । रमोऽपि रसत्वजातिमान् रसत्वं रस-नेन्द्रियमात्रजन्यसाक्षात्कारविषयजातिः तादृशजातिम-त्त्वञ्च रसत्वं सोऽयं जीवनपृष्ठिवलारोग्यहेतुः रसनसह-कारी, रमनेन्द्रियग्राह्यगुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वं रसत्वं तथा सति नातीन्द्रियरसाव्याप्तिः । घ्राणमात्रग्राह्यो गुणो गन्धः घ्राणमात्रग्राह्यगुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वं गन्धत्वं सच सुरभि-रसुरभिश्चेति द्विविधः, यदा पृथिवीवृत्तिमात्रवृत्तिगुणत्व-साक्षाद्ग्राह्यजातिमत्त्वं गन्धत्वम् । एवं स्पर्शोऽपि स्पर्शत्वजा-तिमान् गुणः लगिन्द्रियमात्रग्राह्यगुणत्वसाक्षाद्ग्राह्यजाति-मत्त्वं स्पर्शत्वं द्रव्यचतुष्टयवृत्तिस्त्रायं अनुष्णाशीतशीतो-ष्णभेदात् त्रिविधः । इदानीं प्रसङ्गात् पाकजप्रक्रिया चि-न्त्यते । तत्र कार्यकारणसमुदाय एव पच्यते इति पिठ-रपाकवादिनः, पीलवः परमाणव एव स्वतन्त्राः पच्यन्ते तत्रैव पूर्वरूपनाशायिमरूपाद्युत्पत्तिः कारणगुणप्रक्रमेण चावयविनि रूपाद्युत्पद्यते इति पीलुपाकवादिनः, अत्रेदं

वि० न्तावयविनाशे सति परमाणौ रक्ताद्युत्पत्तिस्ततोविजातीयाभि-संयोगादारम्भकसंयोगानुगुणक्रियाद्युत्पत्त्यारम्भकसंयोगादिप्रक-मेण पुनर्हायुक्तादिमहावयविवर्धन्तानामुत्पत्तिर्भवतीति । पिठर-पाकवादिनस्तु अवयविनां सञ्चिद्रतया विजातीयाभिसंयोगात्

उ० तत्त्वम् आपाके निःक्षिप्तस्य घटादेरामद्रव्यस्य वज्जिना  
 नोदनादभिघाताद्वा तदारम्भकेषु परमाणुषु द्रव्यारम्भ-  
 कसंयोगविरोधिविभागेनारम्भकसंयोगनाशे द्रव्यनाशाव-  
 श्यम्भावात्, दृश्यते हि स्यात्प्रामीहितानां तण्डुलादीनाम-  
 प्यधःमन्तापनमात्रेण भर्जनात्तदानीमेव नाशः, चीरनी-  
 रादीनाञ्चात्यन्तमुल्लणता, तथाचापाके वज्जिज्वालाजाला-  
 भिहतानां द्रव्याणामवस्थानमिति महती प्रत्याशा, किञ्च  
 यदि द्रव्यानाशस्तदा मध्यभागे पाकानुपपत्तिः नहि दृढ-  
 तरावयवान्तरावरुद्धे मध्यभागे तेजःसंयोगसम्भावना येन  
 तत्र श्यामादिनिवृत्तिः स्यात्, तथाच श्यामा अवयवाः अव-  
 यवो च रक्त इति महद्वैशमम् । ननु सच्छिद्राण्येवावयवि-  
 द्रव्याणि कथमश्वया कुम्भादावन्तर्निहितानां तैलघृता-  
 दीनां स्यन्दनं अपणञ्च, तथाच मध्यभागेऽपि तेजःसंयोगः  
 स्यादेवेति चेन्न मूर्त्तानां समानदेशताविरोधात् अवय-  
 वान्तरसंयुक्ते मध्यभागे तेजःसंयोगसम्भवात् । ननु यदि  
 द्रव्यनाशः कथं तर्हि स एवायं घट इति प्रत्याभिज्ञा, कथं वा  
 सर्वास्ववस्थासु आपाकादौ घटादेस्तादृशस्यैव दर्शनं, घटा-  
 देरुपरि निहितानां शरावेदञ्चनादीनां तथैव दर्शनं

वि० तेषामपि रूपादिपरावृत्तिर्भवति नतु तत्रावयविनां नाशः प्रत्य-  
 भिज्ञाविरोधादित्याहुः । अत्र च पाकप्रक्रिया ग्रन्थगौरवभिया  
 परित्यक्ताऽन्यत्रानुसन्धेया । ये तु नीलरूपादिव्यक्तय एकैका एव  
 नित्या इत्याहुस्तन्मते नीलरूपं नष्टं श्यामरूपमुत्पन्नमित्यादि-

उ० घटादिस्फुटने हि तेषां पातः स्यात्, कथं वा यावन्त एवा-  
 पाके निहितास्तावन्त एव पुनः प्राप्यन्ते परमाणुभिर्द्वाणु-  
 कादिप्रक्रमेण न्यूनानामधिकानां वा तदानीमारम्भस-  
 म्भवात्, कथं वा तावत्परिमाणान्येव घटादीन्यापाकोत्ती-  
 र्णान्युपलभ्यन्ते, रेखापरेखादिचिह्नदिलोपो वा कथं न भवेत्  
 तथाचावयविविधैव पाक इति चेत् एवं सूच्येण घटादौ  
 त्रिचतुरत्रसरेणुविभागे सति द्रव्यारम्भकसंयोगनाशे द्रव्य-  
 नाशे सर्व्यामामनुपपत्तीनामुभयसमाधेयत्वात् नहि तत्र  
 द्रव्यं न नश्यतीति पिठरपाकवादिनाऽपि वक्तुमुत्सहन्ते ।  
 तत्रापि घटादयो न नश्यन्ति कतिपयावयवनाशेऽप्य-  
 वशिष्टावधवमाश्रित्य कार्यावस्थानसम्भवादन्वया प्रत्य-  
 भिज्ञानाद्यनुपपत्तिरेवेति भीमांसकाः, ते तु तावदवयवान-  
 स्थानयोग्यस्य घटादेः स्वल्पेऽवयवेषु कथं वृत्तिः स्यादिति  
 प्रष्टव्याः, अविनष्ट एव पटे परिमाणसङ्कोचवदेतदुपपत्त्यते  
 इति तेषामुत्तरमिति चेन्न कठिनतरावयवानां काष्ठपा-  
 षाणस्तम्भकुम्भादीनां सङ्कोचविकाशयोरदर्शनात्, घटादि-  
 नाशकाभिमतेन तत्परिमाणमेव नश्यतीति चेन्न परिमा-  
 णस्याश्रयनाशैकनाशत्वात् घटादिप्रत्यभिज्ञानवत् सूची-

वि० प्रतीतिव्यवहारयोरनुपपत्तिः समवायसम्बन्धस्य नियतया तद्वि-  
 धयतया तयोरुपपत्त्यसम्भवात् अन्यथा घटादीनामपि नित्य-  
 त्वमेकत्वश्चापद्येत, घटस्य रूपमिति भेदप्रत्ययात् गुणगुणिना-  
 नाभेदः, नीलपीतादिनातातन्वाद्यारब्धे पटादौ चित्ररूपमेव

उ० दलनस्यले परिमाणस्यापि प्रत्यभिज्ञायमानत्वात् त्वन्मते  
 तन्नाशस्याप्यनुपपत्तिरिति दिक् । येषां मते द्रव्यारम्भकसं-  
 योगप्रतिद्वन्दी तदप्रतिद्वन्दी च विभाग एकैवावयवक्रिय-  
 या जन्यते तेषां झणुकनाशमारभ्य नवमक्षणे झणुकान्तरे  
 रक्ताद्युत्पत्तिरेकस्मिन्नेव परमाणौ क्रियाचिन्तनात् तथाहि  
 वज्रिना नोदनाद् झणुकारम्भके परमाणौ कर्म ततो विभा-  
 गस्ततोद्रव्यारम्भकसंयोगनाशस्ततोझणुकनाशः नष्टे झणुके  
 केवले परमाणावग्निसंयोगाच्छ्रामादिनिवृत्तिः श्रामादौ  
 निवृत्ते अन्यस्मादग्निसंयोगाद्रक्ताद्युत्पत्तिः रक्तादावुत्पन्ने  
 परमाणुक्रियानिवृत्तिस्तदनन्तरमदृष्टवदात्मसंयोगात् पर-  
 माणौ कर्म ततो विभागस्ततः पूर्वसंयोगनिवृत्तिस्ततः पर-  
 माणन्तरेण द्रव्यारम्भकः संयोगस्ततो झणुकोत्पत्तिरुत्पन्ने  
 झणुके कारणगुणप्रक्रमेण रक्ताद्युत्पत्तिरिति नव क्षणाः  
 यदि पूर्वक्रियानिवृत्तिक्षण एव क्रियान्तरमुत्पद्यते तदा,  
 यदि तु पूर्वक्रियानिवृत्त्यनन्तरकाले क्रियान्तरमुत्पद्यते  
 तदा दश क्षणाः, विभागजविभागाद्युपगमेऽपि यदि द्रव्या-  
 रम्भकसंयोगनाशविशिष्टं कालमपेक्ष्य विभागजविभागस्त-  
 दा दशक्षणा यदि तु द्रव्यनाशविशिष्टं कालमपेक्ष्य विभा-

वि० जायते तादृशपटस्य नीरूपत्वे तच्चाक्षुषानुपपत्तेः, नव्यास्तु तत्र  
 पटे तत्तदवयववच्छेदेन नानैव रूपाणि भवन्ति । अत एव

“जोहितो यस्तु वर्धेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ।

श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलोवध उच्यते” ॥

उ० गेन विभागान्तरं जन्यते तदैकादशचक्षुषा प्रक्रिया, तथा-  
 हि द्युणुकनाशविभागजविभागावित्यैकः कालः, ततः पू-  
 र्वसंयोगनाशश्चामादिनिवृत्ती, उत्तरसंयोगरक्ताद्युत्पत्ती,  
 उत्तरसंयोगेन विभागजविभागक्रियानिवृत्ती, ततो द्रव्या-  
 रम्भानुगुणा परमाणुक्रिया, क्रियातोविभागोविभागात्  
 पूर्वसंयोगनिवृत्तिस्ततो द्रव्यारम्भकः संयोगस्ततो द्रव्योत्प-  
 त्तिः, उत्पन्ने द्रव्ये रक्ताद्युत्पत्तिरिति दश चक्षाः, तदा तु  
 द्रव्यविनाशविशिष्टं कालमपेक्ष्य विभागेन विभागो जन्यते  
 तदैकचक्षुषा एकादश चक्षाः तथाहि द्रव्यविनाशस्ततो  
 विभागजविभागश्चामादिनिवृत्ती तत उत्तरसंयोगरक्ता-  
 द्युत्पत्ती ततो विभागजविभागकर्माणोर्निवृत्तिस्ततः पर-  
 माणौ द्रव्यारम्भानुगुणा क्रिया ततो विभागः पूर्वसंयोग-  
 निवृत्तिः द्रव्यारम्भकसंयोगोत्पत्तिः द्युणुकोत्पत्तिः रक्ता-  
 द्युत्पत्तिश्चेत्येकादश चक्षा एकस्मिन्नेव परमाणौ क्रियाक्रि-  
 योपरमचिन्तनादेवम्, परमाण्वन्तरे यदि द्रव्यारम्भानुगुणा  
 क्रिया चिन्त्यते तदा द्युणुकविनाशमारभ्य पञ्चमे षष्ठे सप्तमे-  
 ऽष्टमे वा रक्ताद्युत्पत्तिरूहनीया विवृतश्चैतत्कणादरहस्ये ॥  
 ॥ ६ ॥

वि० इत्यादिकं सङ्गच्छते इत्याहुः, रसगन्धयोस्तु न चित्रत्वं ना-  
 नारसादिमदवयवारब्धानामवयविनां नीरसत्वादिसोकारेऽपि  
 चतुर्भावत्, चित्रस्पर्शस्तु रूपस्पर्शाययुक्त्या स्वीकरणीय एवेति  
 संचेपः ॥ ६ ॥

सू० एकद्रव्यत्वात् ॥ ७ ॥

उ० पार्थिवपरमाणुरूपादीनां तेजःसंयोगसमवायिकार-  
णकत्वं साधयितुमाह ।

पाकजानामितिशेषः, अत्र च गुणत्वे कार्यत्वे सतीति  
विवक्षितं तदयं प्रयोगः पार्थिवपरमाणुरूपादयः संयोगा-  
समवायिकारणकाः कार्यगुणत्वे सति नित्यनिष्ठाद्विष्टगुणत्वात्  
शब्दवत् बुद्ध्यादिवच्च, संयोगजत्वमात्रं वा साध्यं नेन विभा-  
गजशब्दे न व्यभिचारः वायुसंयोगस्य शब्दमात्रे निमित्त-  
कारणत्वात्, पार्थिवरूपादीनाञ्च तेजोऽन्वयव्यतिरेकदर्श-  
नात् तेजःसंयोगसमवायिकारणकत्वं पक्षधर्मताबलात्  
सिध्यति ॥ ७ ॥ •

रूपरसगन्धस्पर्शानेकग्रन्थेन व्युत्पाद्य परिमाणस्य सर्व-  
सिद्धत्वेन सङ्ख्यायाञ्च विप्रतिपत्तिबाहुल्यादुद्देशकमर्माति-

वि० ननु कारणगुणानां कार्येऽसत्त्वात् कथं कार्यगुणजनकत्वं  
वैयधिकरण्यादित्याशङ्क्यामाह ।

एकं द्रव्यमधिकरणं यस्य तन्त्वात् सामानाधिकरण्यादिव्यर्थः,  
तथाच कारणगुणानां साक्षात्समवायसम्बन्धेन कार्येऽसत्त्वेऽपि  
स्वसमवायिसमवायरूपसामानाधिकरण्यासम्बन्धेन कार्यं सत्त्वा-  
त्तद्गुणजनकत्वं नानुपपन्नमितिभावः ॥ ७ ॥

संख्यायां बहुवादिनिप्रतिपत्तिकत्वेन क्रममुक्तञ्च प्रथमं सू-  
चीकटाह्न्यायेन परिमाणपरीक्षामारभते ।



सू० अणोर्महतश्चापलब्धनुपलब्धी नित्ये व्याख्या-  
ते ॥ ८ ॥

उ० क्रम्य सूचीकटाहन्त्यायेन प्रथमं परिमाणपरीचामारभ-  
माणः आह ।

नित्ये इति विषयेण विषयिणं नित्यत्वप्रतिपादकं चतु-  
र्थाध्यायमुपलक्षयति उपलब्धनुपलब्धी इति यथायोग-  
मन्वयः “येन यस्याभिसम्बन्धोदूरस्थस्यापि तस्य सः” इति  
न्यायैर्न, तथाचाणोरनुपलब्धिरिति लभ्यते तदेवं नील-  
नीलः कलस इति प्रात्यक्षिकप्रत्यये यथा नील रूपं  
विषयस्तथा परिमाणमपि तेन च परिमाणेन परिमाण-  
पर्यन्तं परिमाणमुच्यते द्रव्यत्वाच्च किञ्च द्रव्यप्रत्ययत्वायां  
रूपवत् परिमाणमपि कारणं नहि महत्त्वमन्तरेण द्रव्यं  
प्रत्यक्षं भवति तथाच द्रव्यप्रत्ययकारणत्वेन स्वयञ्च प्रत्य-  
क्षतया परिमाणं गुणोऽस्तीति निश्चीयते यदि हि घटादि-  
स्वरूपं परिमाणं स्यात् तदा महदानयेत्युक्ते घटमत्रमान-  
येत् तथाच प्रैषमंप्रतिपत्ती विरुद्धीयाताम्, एवं घटपदात्  
परिमाणं प्रतीयेत परिमाणपदाद्वा घट इति, मानव्यव-  
हारामाधारणकारणत्वं द्रव्यसाक्षात्कारकारणविषयनिष्ठ-

वि० उपलब्धनुपलब्धी इति इन्द्रसमासेऽल्पस्वरत्वादुपलब्धिशब्द-  
स्य, पूर्वभावः तेन महत् उपलब्धिः अणोस्वानुपलब्धिरिति इन्द्र-  
क्रमेणैवान्वयः, नित्ये नित्यप्रतिपादके चतुर्थाध्याये व्याख्याते कश्चि-

उ० सामान्यगुणत्वं वा महत्त्वत्वं मानव्यवहारो हस्तवित्त्यादि-  
व्यवहारो न तु पलमह्यादिव्यवहारः, तच्च परिमाणञ्चतु-  
र्विधं महत्त्वमणुत्वं दीर्घत्वं ह्रस्वत्वञ्च, तत्र परममहत्त्व-  
परमदीर्घत्वे विभुचतुष्टयवर्तिनी परमाणुत्वपरमह्रस्वत्वे  
परमाणुवर्तिनी अवान्तराणुत्वावान्तरह्रस्वत्वे गुणकवर्तिनी  
चसरेणुमारभ्य महावयविवर्त्यन्तं महत्त्वदीर्घत्वे, एवञ्च सर्वा-  
ण्यपि द्रव्याणि परिमाणद्वयवन्ति, विज्जामलकादावणुत्व-  
व्यवहारः समिदिक्षुदण्डादिषु च ह्रस्वत्वव्यवहारो भाक्तः,  
भक्तिश्चात्र प्रकर्षभावाभावः, आमलके यः प्रकर्षभावस्त-  
स्याभावः कुवले, विल्वे यः प्रकर्षभावस्तस्याभाव आमलके,  
सच गौणमुख्योभयभागित्वाद्भक्तिपदवाच्यः, दीर्घत्वह्रस्वत्वे  
नित्ये न वर्त्तते इत्यंके, परिमाण एव ते न भवत इत्यपरे,  
महत्सु दीर्घमानीयतामितिवत् महत्सुवर्त्तुलं त्रिकोणञ्चा-  
नीयतामिति निर्धारणबलाद्गुणत्वादीनामप्यपत्तेरिति  
तेषामाशयात् ॥ ८ ॥

इदानीं परिमाणकारणानि परिसञ्चये ।

वि० ते इत्यर्थः, मानव्यवहारासाधारणकारणं परिमाणम्, तच्चाणु  
महत् दीर्घं ह्रस्वञ्चेति चतुर्विधम्, तत्राणुपरिमाणं परमाणुं  
ह्यणुके च तिष्ठति, तत्रापि परमाणावणुपरिमाणं परमं विभुच-  
तुष्टये महत्परिमाणं परमं चसरेणवादिमहावयविवर्त्यन्तद्रव्येषु  
अवान्तरजन्यमहत्परिमाणम् ॥ ८ ॥

जन्यमहत्परिमाणस्यासमवायिकारणं दर्शयति ।

सू० कारणबहुत्वाच्च ॥ ६ ॥

उ० चकारोमहत्त्वप्रचयौ समुच्चिनोति, परिमाणमुत्पद्यते इति सूत्रशेषः, तत्र कारणबहुत्वं केवलं त्र्यणुके महत्त्वदीर्घत्वे जनयति महत्त्वप्रचययोस्तत्कारणेऽभावात् तच्च बहुत्वमीश्वरापेक्षाबुद्धिजन्यं तद्बुद्धेरनेकविषयत्वेऽप्यदृष्टविशेषोपदेशानियामकः, एवं परिमाणद्वयगतं द्वित्वं त्र्यणुके परिमाणोत्पादकं वक्ष्यते द्वाभ्यां तन्तुभ्यामप्रचिताभ्यां सूत्रे पटे केवलं महत्त्वमेवासमवायिकारणं बहुत्वप्रचययोऽभावात् यत्र च द्वाभ्यां तूलकपिण्डाभ्यां तूलकपिण्डास्तत्र परिमाणोत्कर्षदर्शनात् प्रचयः कारणं बहुत्वस्याभावात् महत्त्वस्य सत्त्वेऽपि परिमाणोत्कर्षं प्रत्यप्रयोजकमेव एवञ्च मति यदि महत्त्वं तत्र कारणं तदा न दोषः तत्र “द्वाभ्यामेकेन सर्वैर्वा” इति। प्रचयश्च आरम्भकः संयोगः, सच स्वाभिमुखकिञ्चिदवयवासंयुक्तत्वे मति स्वाभिमुखकिञ्चिदवयवसंयोगलक्षणः, सचावयवसंयोगः स्वावयवप्रशि-

वि० कारणस्य स्वाश्रयसमवायिकारणस्य यद्बहुत्वं तस्मादसमवायिकारणात् जन्यमहत्त्वदिमाद्यं जायते इतिशेषः, चकारात् प्रचयमहत्त्वदिमाद्ययोः संग्रहः अक्षरेणमहत्त्वदिमाद्यं प्रति त्र्यणुकगतं त्रित्वरूपं बहुत्वमसमवायिकारणं यत्र तूलकपिण्डाभ्यां प्रचययुक्ताभ्यां तूलकपिण्डान्तरमारब्धं तत्र शिथिलस्थित्यसंयोगरूपः प्रचयवत्तादृशावयवविपरिमाणस्यासमवायिकारणम्,

सू० अतोविपरीतमणु ॥ १० ॥

उ० थिलसंयोगापेक्षः परिमाणजनकः गुणकर्मारम्भे सापेक्ष-  
इतिवचनात् ॥ ९ ॥

महत्त्वदीर्घत्वे व्युत्पाद्याणुत्वं व्युत्पादयति ।

अतः प्रत्यक्षभिद्धान्नाहतः परिमाणाद्यद्विपरीतं तद-  
णुपरिमाणमित्यर्थः । वैपरीत्यञ्चाप्रत्यक्षत्वात् कारणवै-  
परीत्याच्च, महत्त्वे हि महत्त्ववज्जत्वप्रचयानां कारुणत्वम्,  
अणुत्वे च कारणगतस्य द्वित्वस्येश्वरापेक्षाबुद्धिजन्यस्य कारण-  
त्वम्, एतेन दीर्घत्वविपरीतं ह्रस्वत्वमित्यपि द्रष्टव्यम्, वैप-  
रीत्यञ्चात्रापि पूर्ववत् ॥ १० ॥

वि० घटादिगतमहत्त्वपरिमाणे तु कपालादिगतं महत्त्वपरिमाणमस-  
मवाधिकारणमित्यर्थः ॥ ९ ॥

अणुपरिमाणमाह ।

अतो महत्त्वपरिमाणाद्विपरीतं वैधर्म्यवदणुपरिमाणम्, वैध-  
र्म्यञ्च लौकिकप्रत्यक्षाविषयत्वं कारणवज्जत्वाद्यजन्यत्वञ्च तथाच  
परमाणौ ह्यणुके चाणुपरिमाणं वक्तते तस्य प्रत्यक्षं न भवति,  
परमाणुपरिमाणन्तु नित्यं ह्यणुकपरिमाणन्तु परमाणुगतद्वित्व-  
संख्याजन्यम्, एवमणुत्वरूपा परिमाणगता जातिरपि वैधर्म्यं  
बोध्यम् ॥ १० ॥

ननु विन्वादात्मकमणु गुञ्जाफलादात्मकं महदित्यादिप्रत्य-  
यात् महत्त्वपरिमाणेऽपि प्रत्यक्षविषयत्वमापेक्षिकमणुत्वञ्चास्तीति  
वैपरीत्यं कथमित्यत आह ।

सू० अणु महदिति तस्मिन् विशेषभावात् विशेषा-  
भावाच्च ॥ ११ ॥

उ० इन्द्रानो कुवलांमलकादावणुत्वव्यवहारोभाक्तइति द-  
र्शयति ।

इतिशब्दे व्यवहारपरतां दर्शयति, तेन विल्लापेक्ष-  
या कुवलमणु कुवलापेक्षयामलकं महत् आमलकापेक्षया  
विल्लं महदिति तावद्भावहारोऽस्ति, तत्र महदिति तेषु व्यं-  
वहारोमुख्यः, कुतएवमत आह विशेषभावात् महत्त्व-  
विशेषस्यैव तरतमादिभावेन भावात्, अणुव्यवहारस्तु तेषु  
भाक्तः, कुतएवमत आह विशेषभावात् अणुत्वविशेषस्य  
तत्राभावात्, अणुत्वं हि कार्यं द्वाणुकमात्रवृत्ति, नित्यं पर-  
माणुवृत्ति, कुवलादौ तदभावात् यद्वा विशेषस्य महत्त्व-  
कारणस्यैवावयववज्जत्वमहत्त्वप्रचयानां कुवलाद्यवयवेषु भ

वि० अणु महदिति प्रत्ययव्यवहारौ, तस्मिन् व्यवहयमाणे परि-  
माणे, विशेषस्य अपकर्षस्य, भावात् सत्त्वात्, विशेषस्यापकर्षस्या-  
भावादसत्त्वाद्भवत इत्यर्थः, अत्रापकर्षाभावेन उत्कर्षाविवक्षितस्त-  
थाच विल्लादामलकमणिवतिप्रत्ययव्यवहारश्च विल्लपरिमाणाद-  
पक्ष्यपरिमाणं विषयीकृत्य भवति, नतु वास्तविकाणुपरिमाणम्,  
एवं गुग्गाफलादामलकं महदित्यादिप्रत्ययव्यवहारश्च गुग्गा-  
फलपरिमाणापेक्षयात्कृष्टमहत्परिमाणं विषयीकरोति उत्क-  
र्षापकर्षा च स्वरूपसम्बन्धविशेषावतिरिक्तौ वेत्यन्यदेतत् ॥ ११ ॥

सू० एककालत्वात् ॥ १२ ॥

उ० वात् सद्भावात् विशेषाभावात् विशेषस्य अणुत्वकारणस्य महत्त्वासमानाधिकरणद्वित्वस्य कुवलाद्यवयवेष्वभावादसद्भावादित्यर्थः ॥ ११ ॥

अणुत्वव्यवहारोभाक्त इत्यत्र हेतुमाह ।

महत्त्वमणुत्वञ्च द्वयमपेक्षिन् कालेऽनुभूयते, ते च मत्त्वाणुत्वे परस्परविरोधिनी नैकत्राश्रये सह सम्भवतः, यतो महत्त्वकारणसद्भावान्महत्त्वप्रत्ययस्तत्र मुख्योऽणुत्वप्रत्ययप्रयोगौ च भाक्तावित्यर्थः ॥ १२ ॥

महत्त्वप्रत्ययस्य मुख्यत्वे हेतुमाह ।

वि० ननु उत्कर्षापकर्षौ परस्परविरोधिनी तत्कथमेकत्र तयोः समावेशः निम्बफलमपकृत्यं नारिकेलफलमृत्कृत्यमिति हि व्यवह्रियते नहि निम्बफलमृत्कृत्यमित्यादिकः प्रत्ययोव्यवहारो वा प्रेक्षावतां येन तयोरविरोधः सम्भाव्येत्यत आह ।

एककालत्वात् एककालीनत्वात् विशेषतदभावयोरुत्कर्षापकर्षव्यवहारयोरिति शेषः । अयम्भावः उत्कर्षापकर्षौ न विरुद्धौ एकत्राश्रये एकदैव द्वयोर्यवहारात् नहि क्षत्रियो ब्राह्मणादपकृत्यः वैश्याच्चाकृत्य इत्यादिव्यवहारः शक्योऽपलपितुम् । निम्बफलादावपि स्नापेक्षया तिक्ततमादुक्त्यप्रत्ययो भवत्येवेति नोत्कर्षापकर्षयोर्विरोधः ॥ १२ ॥

ननुत्कर्षापकर्षयोर्द्वये विरोधाभावेऽपि गुणादौ विरोधोऽस्त्येवेति कथमेकस्मिन् परिमाणे तयोः सम्भव इत्यत आह ।

सू० दृष्टान्ताच्च ॥ १३ ॥

अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावः कर्मगुणै  
व्याख्यातः ॥ १४ ॥

उ० दृश्यते तथा वस्तुगत्या महत्त्वेव कुवलामलकविल्वेषु  
स्यूलस्यूलतरस्यूलतमव्यवहारेण भवितव्यमित्यर्थः यथा  
वस्तुगत्या शुक्लेष्वेव पटशङ्खस्फटिकादिषु शुक्लशुक्लतर-  
शुक्लतमव्यवहारः ॥ १३ ॥

नन्वणु महत्परिमाणमितिव्यवहारबलान्महत्त्वेऽपि प-  
रिमाणे महत्त्वमणुत्वेऽप्यणुत्वमस्तीति ज्ञायते तत् कथं  
द्रव्यमात्रवृत्तित्वमनयोः कथं वा गुणे गुणवृत्तित्वविरो-  
धेनापद्यत इत्यत आह ।

यथा गुणकर्मणो नाणुत्वमहत्त्ववती तथाऽणुत्वमहत्त्वे

वि० शुक्लशुक्लतरशुक्लतमरक्ततरक्ततरमादिरूपात् दृष्टान्तात्  
परिमाणेऽपि उत्कर्षापकर्षयोः सम्भवः नहि परिमाणस्योत्कर्षा-  
पकर्षावन्तरेण महत्त्वमहत्तरमहत्तमादिव्यवहारः कथमपि सङ्ग-  
च्छत इति ॥ १३ ॥

ननु अणुमहत्परिमाणयोरपि अणुमहत्परिमाणान्तरमापे-  
क्षिकमस्ति तदेव हाणुकात्परिमण्डलमणु कपालाद्घटोमहान्  
विल्वादामलकमणु चामलकादित्वं महदित्यादिप्रतीतिर्विषयइति-  
भ्रमं निराकुशते ।

कर्मगुणैरिति गुणपदं रूपादिगुणपरं नतु परिमाणपरं  
तथाच यथा रूपादी रूपादयो न सन्ति एवं कर्मणि कर्माणि

सू० कर्मभिः कर्माणि गुणैश्च गुणा व्याख्याताः ॥ १५ ॥

उ० अपि नाणुत्वमहत्त्ववती इत्यर्थः प्रयोगश्च भाक्तोद्भूतः  
॥ १४ ॥

ननु यथा गुणा गुणवन्तः कथमन्यथा महान् शब्दः  
द्वौ शब्दैः एकः शब्दः चतुर्विंशति गुणा इत्यादिव्यवहारः,  
कर्माण्यपि च कर्मवन्ति प्रतीयन्ते कथमन्यथा शीघ्रं ग-  
च्छति द्रुतं गच्छतीति व्यवहारः तथाचाणुत्वमहत्त्वे अपि  
तद्वती स्यातामित्यत आह ।

कर्माभिः कर्माणि न तद्वन्ति गुणैश्च गुणा न तद्वन्त-  
स्तथाऽणुत्वमहत्त्वेऽपि न तद्वती, व्यवहारस्तु, सर्वत्र भाक्त-  
इत्यर्थः ॥ १५ ॥

ननु महान्ति कर्माणि अणूनि कर्माणि महान्तोगुणाः  
अणवोगुणा इत्यादिव्यवहारादणुत्वमहत्त्ववन्ति कर्माणि त-  
दुभयवन्तश्च गुणाः प्रसक्ता इत्यत आह ।

वि० न सन्ति तथा परिमाणेऽपि परिमाणान्तरं न सम्भवति कार्य-  
मात्रं प्रति द्रव्यस्य समवायिकारणत्वादिति ॥ १४ ॥

ननु कर्मसु कर्माणि रूपादिषु रूपादयश्च न सन्तीति यदुक्तं  
तत्कृत इत्याशङ्कयामाह ।

कर्माभिरित्यनन्तरं शून्यानीति गुणैरित्यनन्तरं शून्याइति च  
पूरणोपमं, कर्माणि न कर्मवन्ति गुणाश्च न गुणवन्त इति पूर्व-  
मेव प्रतिपादितमित्यर्थः ॥ १५ ॥

नन्वणूनि कर्माणि महान्ति कर्माणि अणवोगुणा महान्तोगुणा-



सू० अणुत्वमहत्त्वाभ्यां कर्मगुणाश्च व्याख्याताः ॥ १६ ॥  
एतेन दीर्घत्वह्रस्वत्वे व्याख्याते ॥ १७ ॥

उ० यथाऽणुत्वमहत्त्वे नानुत्वमहत्त्ववती तथा न कर्माणि  
तदुभयर्थान्त नवा गुणास्तदुभयवन्त इत्यर्थः, प्रयोगस्तु  
पूर्ववद्भाक्त इतिभावः ॥ १६ ॥

अणुत्वमहत्त्वप्रक्रियं दीर्घत्वह्रस्वत्वयोरतिदिशति ।

ह्रस्वत्वदीर्घत्वे अपि न ह्रस्वत्वदीर्घत्ववती महत्त्वोत्पा-  
दकमेव दीर्घत्वोत्पादकमणुत्वोत्पादकमेव ह्रस्वत्वोत्पादकम्,  
कारणैक्यात् कथं कार्यभेद इति चेन्न प्रागभावभेदेन  
पाकजवदुपपत्तेः यत्रैव महत्त्वं तत्र दीर्घत्वं यत्राणुत्वं तत्र  
ह्रस्वत्वं यत्र नित्यमणुत्वं तत्र नित्यं ह्रस्वत्वमित्याद्यतिदे-  
शार्थः ॥ १७ ॥

वि० इत्यादिव्यवहारबलात् कर्मणि गुणे च अणुत्वं महत्त्वञ्च परिमाण  
सेत्स्यतीत्यत आह ।

यथाऽणुत्वमहत्त्वपरिमाणयो नानुत्वमहत्त्वपरिमाणे तथा  
कर्मणि गुणेषु च न तदुभयम् उक्तव्यवहारास्वापकर्षात्कर्षवि-  
षयका एवन्ति ॥ १६ ॥

ह्रस्वत्वदीर्घत्वयोरप्यणुत्वमहत्त्वतुल्यतेत्याह ।

यथा अणुमहदितिव्यवहारसिद्धे अणुत्वमहत्त्वे तथा ह्रस्वं  
दीर्घमितिव्यवहारसिद्धे ह्रस्वत्वदीर्घत्वे एवमिदमस्माद् ह्रस्वमि-  
दमस्माद्दीर्घमित्यादिप्रत्ययव्यवहारावप्यपकर्षात्कर्षविषयकावेवेत्य-  
र्थः ॥ १७ ॥

सू० अनित्येऽनित्यम् ॥ १८ ॥

उ० इदानीं विनाशकमाह ।

एतच्चतुर्विधमपि परिमाणं विनाशिनि द्रव्ये वर्त्तमान-  
माश्रयनाशादेव नश्यति नतु विरोधिगुणान्तरात् । घटे  
सत्यपि तत्परिमाणं विनश्यति कथमन्यथा कम्बुभङ्गेऽपि  
स एवायं घट इति प्रत्यभिज्ञेति चेन्न आश्रयनाशेन तत्र  
घटनाशावश्यकत्वात् नहि परमाणुद्वयसंयोगनाशाद् द्वाणु-  
के नष्टे तदाश्रितस्य त्रसरेणोस्तदाश्रितस्य चूर्णशर्करादेरवि-  
नाश इति युक्तिरभ्युपगमो वा, कथं तर्हि प्रत्यभिज्ञेति चेत्,  
सैवेयं दीपकलिकेतिप्रत्यभिज्ञानवद्भ्रान्तित्वात् । प्रदीप-  
प्रत्यभिज्ञाऽपि प्रमैव ह्रस्वत्वदीर्घत्वे परमुत्पादविनाशशा-

वि० किं परिमाणमनित्यमित्यत्राह ।

परिमाणमनित्ये अनित्यमाश्रयविनाशादेव तन्नश्यतीत्यर्थः,  
नच घटादौ त्रिचतुरादिपरमाणुविज्ञेये तदुपचये वा परिमा-  
णान्तरं प्रत्यक्षसिद्धं स एवायं घट इत्यादिप्रत्यभिज्ञायास्तत्र  
सत्त्वेन घटादेस्तत्राविनाशादितिवाच्यं परमाणुविज्ञेये तदुपचये  
वा द्वाणुकनाशस्यावश्यकत्वेन त्रसरेणवाद्यन्यावयवपर्यन्तनाशस्या-  
प्यावश्यकत्वात् नहि विनाशसामग्री प्रत्यभिज्ञाभिधया कार्यं  
नार्जयिष्यति, शरीरादाववयवोपचयेऽसमवायिकारणनाशस्या-  
वश्यकत्वादवयविनाश आवश्यकः, नच पटाविनाशेऽपि तन्वन्तर-  
संयोगात् कथं परिमाणाधिक्यमितिवाच्यं तत्रापि वेमाद्यभि-  
घातेनासम्भवायिकारणतन्तुसंयोगनाशादेव पटनाशस्यावश्यक-

सू० नित्ये नित्यम् ॥ १९ ॥

नित्यं परिमण्डलम् ॥ २० ॥

उ० लिनी इति चेन्न तद्विनाशस्याश्रयविनाशमन्तरेणानुपपत्ते-  
रुक्तत्वात् ॥ १८ ॥

तत् किं पार्थिवपरमाणुरूपदिवत् परमाणुगतमणुत्वं  
शब्दबुद्ध्यादिवदाकाशादिगतं महत्त्वमपि नश्यतीत्यत आह ।

नित्येष्वकाशादिषु परमाणुषु च यत् परिमाणं  
तन्नित्यं विनाशकाभावात् ॥ १९ ॥

परमाणुपरिमाणस्य वैशेषिकसिद्धिं संज्ञामाह ।

परिमण्डलमेव पारिमाण्डल्यं तदुक्तम् “अन्यत्र पारि-  
माण्डल्यादिभ्यः” इति ॥ २० ॥

वि० त्वात् किञ्च तन्वन्तरस्य तत्पटावयवत्वे पूर्वं तत्पट एव न स्यात्  
तत्तन्तुरूपकारणाभावात् तत्तन्तोरवयवत्वाभावे च न तेन परि-  
माणार्थिकं संयुक्तद्रव्यान्तरवत्, तस्मात्तत्र तन्वन्तरसंयोगे सति  
पूर्वपटनाशात्पटान्तरोत्तत्तिरित्यवश्यं स्वीकार्यम्, अथवाविनः  
प्रत्यभिज्ञानन्तु साजात्येन सैवियं दीपकलिकेत्यादिवत् । नच  
पूर्वतन्तव एव तन्वन्तरसहकारात् पूर्वपटे सत्त्वेव पटान्तर-  
मारभन्त इति वाच्यं मूर्त्तयोः समानदेशताविरोधादितिसं-  
क्षेपः ॥ १८ ॥

नित्यगतपरिमाणस्य नित्यत्वमर्थायातमपि स्पष्टार्थमाह ।

सुशमम् ॥ १९ ॥

ननु किं द्रव्यं नित्यं परिमाणार्थिकरणश्चेत्यत्राह ।

परिमण्डलशब्दो परमाणुपरिमाणं तद्विशिष्टं परमाणुश्च परि-

सू० अविद्याच्च त्रिद्यालिङ्गम् ॥ २१ ॥

उ० ननु कुबलामलकादिषु समिदित्तुप्रभृतिषु च व्यव-  
ह्रियमाणमणुत्वं ह्रस्वलं वा यदि न पारमार्थिकं तदा  
पारमार्थिकयोस्तयोः किं प्रमाणमत आह ।

विद्यालिङ्गमविद्यां तदद्यमर्थः कुबलामलकादावणु-  
त्वज्ञानं समिदित्तुप्रभृतिषु ह्रस्वत्वज्ञानं तावदविद्या तत्र  
पारमार्थिकाणुत्वह्रस्वत्वयोरभावात्, सर्वत्राप्रमा प्रमापू-  
र्व्विकैव भवतीत्यन्यथाख्यातिवादिभिरभ्युपगमात् तथाच  
सत्यमणुत्वज्ञानं सत्यञ्च ह्रस्वत्वज्ञानमनुमेयमित्यर्थः एवञ्च  
भाक्तः शब्दप्रयोगो मुख्यमन्तरेण न भवतीति मुखे  
अणुत्वह्रस्वत्वे क्वचिदवश्यं मन्तव्ये ॥ २१ ॥

वि० भाषया प्रतिपादयति परिमण्डलं परिमाणद्वयपरिमाणविशिष्टं  
परमाणुरूपं द्रव्यं नित्यमिति न नित्यद्रव्यस्य दुर्भिक्षतेत्यर्थः ।  
तस्य नित्यत्वञ्च प्रागेव प्रतिपादितम् ॥ २० ॥

ननु परमाणुरूपं द्रव्यं कथमङ्गीकर्त्तव्यं तस्याप्रत्यक्षत्वात् चस-  
रेणवादिकन्तु प्रत्यक्षसिद्धं यद्द्रव्यं तदेवाङ्गीकरणीयमित्यत आह ।

अविद्या अप्रमा एथिवी नित्या जलं नित्यमित्यादिप्रतीतिरव-  
यविविषयिणी विद्यायाः परमाणुविषयिण्याः एथिवी नित्येति  
प्रमाया लिङ्गम्, सर्वत्र प्रमाया अप्रमापूर्व्वकत्वात् नहि कुत्रापि  
नित्यत्वमजमतः एथिवी नित्येति भ्रमे भवितुमर्हति, एतच्चापा-  
ततः वस्तुतः परमाणुसिद्धिप्रकारः प्राक् प्रदर्शित एवादरणीयः  
॥ २१ ॥

आकाशदावपि नित्यं परिमाणमस्तीत्याह ।

## सू० विभवान्महानाकाशस्तथात्मा ॥ २२ ॥

उ० द्रव्यत्वेन हेतुनाकाशादीनामनुमितस्य परिमाणस्य स्वरूपमाह ।

विभवः सर्वमूर्त्तसंयोगित्वं तच्च परममहत्त्वमन्तरेणानुपपद्यमानं परममहत्त्वमनुमापयेति, दृश्यते चेह वाराणस्यां पाटलिपुत्रेच युगपदेव शब्देत्यत्तिस्तत्र चैकमेवाकाशं समवायिकारणमित्याकाशस्य व्यापकत्वं सिद्धं व्यापकत्वञ्च परममहत्परिमाणयोग एव नानाकाशकल्पने गौरवमित्येक एवाकाशोऽभ्युपगन्तव्यः । आकाशस्य प्रदेश इति तु व्यपदेशः प्रदेशवद्भिर्घटादिभिः संयोगनिबन्धनो भाक्तः भक्तिश्च प्रदेशवद्द्रव्यसंयोगित्वम् । तथात्मेति यथाकाशं विभवात् सर्वमूर्त्तसंयोगित्वात् परममहत् तथात्मापि परममहान् यद्यात्मनः सकलमूर्त्तसंयोगित्वं न भवेत् तदा तेषु तेषु मूर्त्तेषु अदृष्टवदात्मसंयोगात् क्रिया नोत्पद्येत व-धिकरणस्यादृष्टस्य प्रत्यासत्त्यपेक्षया क्रियाजनकत्वात् साच प्रत्यासत्तिरदृष्टवदात्मसंयोग एव एवं सञ्चारिणि शरीरे तत्र तत्र ज्ञानसुखादीनामुत्पत्तिरात्मनो वैभवमन्तरे-

वि० विभवात् सर्वमूर्त्तसंयोगादाकाशमहान् परममहत्परिमाणवान्, तच्च परिमाणं नित्यमाकाशस्य नित्यत्वात्, आकाशस्य सर्वमूर्त्तसंयोगाभावे नानादेशावच्छेदेन शब्देत्यस्यसम्भवात् तत्तद्देशाकाशसंयोगस्य तत्तच्छब्दासमवायिकारणत्वात् एवमात्माऽपि नित्यपरममहत्परिमाणवान् वैभवात्, अदृष्टवदात्मसंयो-

सू० तदभावादणु मनः ॥ २३ ॥

उ० एतानुपपन्नेत्यात्माऽपि व्यापकः सच नाकाशवदेक एव व्यव-  
स्थादर्शनादित्युक्तमितिभावः तच्च महत्त्वं सातिशयं नित्यञ्च  
परमाणुत्ववत् एवमाकाशादौ परमदीर्घत्वं परमाणुषु  
च परमदृक्त्वमूहनीयम् ॥ २२ ॥

ननु मनो विभु सर्व्वदानिस्यर्गद्रव्यत्वादाकाशवत् ज्ञा-  
नाद्यसमवायिकारणसंयोगाधारत्वादात्मवदित्याकाशात्म-  
नोः साहचर्य्येण मनोऽपि किं नोक्तमत आह ।

तस्य विभवस्य सर्व्वमूर्त्तिसंयोगित्वाभावादणु मनः सक-  
लमूर्त्तिसंयोगित्वे तु युगपदनेकेन्द्रियसंयोगे ज्ञानाद्यौगपद्यं  
स्यात् तथाच व्यासङ्गा न स्यात्, अनुमाने तु मनो यावन्न  
सिद्धं तावदाश्रयासिद्धे मनःसिद्धिदशायान्तु धर्मिग्राहक-  
मानबाधिते । ननु विभवाभावादेवं नाणुत्वं सिध्यति  
घटादौ व्यभिचारादिति चेन्न विभवाभावेनाव्यापकत्वसाध-

वि० गस्य सर्गाद्यकालोपरमाणुकर्महेतुत्वादात्मवैभवमप्यावश्यकम् ॥  
॥ २२ ॥

नन्वात्मवन्मनोऽपि विभु ज्ञानाद्यसमवायिकारणसंयोगाश्रय-  
त्वादिति तस्य महत्त्परिमाणं कुतो नाक्तमत आह ।

तस्य विभवस्याभावान्मनोऽणु न परममहत्त्परिमाणवदित्यर्थः,  
ज्ञानाद्यौगपद्यनियामकतयाऽणुत्ववत् एव मनसः सिद्धिर्वैभव-  
साधकप्रागुक्तानुमानस्य धर्मिग्राहकप्रमाणबाधितत्वादितिभावः ॥

॥ २३ ॥

सू० गुणैर्दिग् व्याख्याता ॥ २४ ॥

उ० नात् तथाचैकदेहे मनस्तावदेकं नानाकल्पने गौरवापत्तेः  
एकस्याप्यवयवकल्पने कल्पनागौरवान्निःस्यर्शत्वेनानारम्भक-  
त्वाच्चेत्यादियुक्तेरणुत्वमिद्धेरितिभावः ॥ २३ ॥

दिशः परममहत्त्वे युक्तिमाह ।

गुणैः सकलद्वीपवार्त्तान्पुरुषसाधारणपूर्वापरदिप्रत्यय-  
रूपैः सकलमूर्त्तनिष्ठपरत्वापरत्वलक्षणैः दिगपि व्यापक-  
त्वेन व्याख्यातेत्यर्थः । परत्वापरत्वयोरुत्पत्तौ संयुक्तसंयोग-  
भूयस्त्वान्पीयस्त्वविषयापेक्षाबुद्धेः कारणत्वस्य वक्ष्यमाण-  
त्वात्, नानादिककल्पनस्य कल्पनागौरवप्रतिहतत्वात्, कथं  
तर्हि दश दिश इति प्रतीतिव्यपदेशाविति चेन्न तत्तदुपा-  
धिनिबन्धनत्वादित्युक्तत्वात् ॥ २४ ॥

कालस्य व्यापकत्वमाह ।

वि० दिश्यपि नित्यपरिमाणमाह ।

गुणैः परत्वापरत्वासमवायिकारणैः तदाश्रयसंयोगैः दिक्  
व्याख्याता परममहत्त्वेनेतिशेषः तथाच दिशः परममहत्परिमाणं  
विना दूरान्तिकादिनानादेशैः सह युगपत्संयोगानामनुपपत्त्या  
युगपन्नानापरत्वापरत्वानामुत्पत्तिर्न सम्भवतीति दिशः परम-  
महत्परिमाणमावश्यकमाश्रयस्य नित्यत्वात् तस्य नित्यत्वमिति-  
भावः ॥ २४ ॥

कालस्यापि तथात्वमाह ।

सू० कारणे कालः ॥ २५ ॥

उ० परापरव्यतिकरं यौगपद्यायौगपद्याचरन्ति प्रत्ययकारणे  
द्रव्ये काल इति समाख्या न तादृशः प्रत्ययः सर्वदेशपु-  
रुषसाधारणः कालस्य व्यापकतामन्तरेण सम्भवतीति  
तस्य व्यापकत्वं परमहृत्त्वयोग इत्यर्थः । यद्वा इदानीं जात-  
इत्यादिप्रतीतिबलात् सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारणत्वं का-  
लस्य प्रतीयते तदपि व्यापकत्वाधीनं निमित्तकारणस्य  
समवाय्यसमवायिकारणप्रत्यामन्नत्वनियमात् । यद्वा अती-  
तानागतवर्त्तमानव्यवहारः सार्वत्रिक इति सर्वगत एव  
कालः । यदा क्षणलंबमुहूर्त्तथामदिनाहोरात्रपचमाम-  
र्चयनसम्बन्धरादिव्यवहारकारणे द्रव्ये कालाख्येति व्यव-  
हारस्य सार्वत्रिकत्वात्कालः सार्वत्रिक इति परममहान्  
तस्य नानात्वकल्पना च कल्पनागौरवप्रतिष्ठेत्युक्तम् ॥ २५ ॥

इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्तारे सप्तमाध्यायस्या-  
द्यमाह्निकम् ॥ \* ॥

वि० कारणे कालिकपरत्वापरत्वसमवायिकारणे प्रत्यासन्न इति  
शेषः कालिकपरत्वापरत्वसमवायिकारणसंयुक्त इति तु फलि-  
तार्थः, काल इति महत्त्वेन वाख्यात इति शेषः तथाच कालस्य  
परममहत्परिमाणं विना युगपन्नानादेशावस्थितनानापिण्डैः सह  
युगपत्संयोगानुत्पत्तौ युगपन्नानापिण्डेषु कालिकपरत्वापरत्वा-  
त्यन्ति न सम्भवतीत्यवश्यं कालस्य परममहत्परिमाणमङ्गीकार्यं  
तच्च निबन्धं कालस्य निबन्धत्वादितिभावः ॥ २५ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-प्रणीतायां क-  
णादसूत्रनिबन्धतो सप्तमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ \* ॥



सू० रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् ॥

॥ १० ॥

उ० द्वितीयाह्निके एकानेकवृत्तिगुणपरीचाप्रकरणम् अ-  
नेकमात्रवृत्तिगुणपरीचाप्रकरणं प्रसङ्गाच्छब्दार्थसम्बन्धप-  
रीचाप्रकरणं विशेषगुणरहितविभुसंयोगसमवायिकारण-  
कैकवृत्तिगुणपरीचाप्रकरणं समवायपरीचाप्रकरणञ्चेति  
तत्र महत्त्वैकार्थसमवायाधीनं सङ्ख्यादीनामपि प्रत्यक्ष-  
त्वमिति चाद्देशक्रममतिक्रम्य परिमाणनिरूपणानन्तरं सङ्ख्यां  
पृथक्त्वञ्च परीक्षितुमाह ।

रूपरसगन्धस्पर्शेति सङ्ख्यादिपञ्चकभिन्नगुणोपलक्षणं व्य-  
तिरेकादिति व्यभिचारात् तदयमर्थः, एकोघट इति वि-  
शिष्टप्रतीतिविशेषणजन्या, तच्च विशेषणं न रूपादि, तद्व्य-  
तिरेकेण जायमानत्वात्, नच घटत्वादिकमेव निमित्तम्-  
पटोऽपि जायमानत्वात्, नचैकत्वं सत्तावत् सामान्यम्, सत्तया  
सहान्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वात्, नच द्रव्यमात्रसामान्यं तत्,

वि० महत्त्वस्य संख्यादिप्रत्यक्षहेतुत्वात् परिमाणनिरूपणानन्त-  
रमेव संख्यापृथक्त्वयोर्निरूपणमारभते ।

एकत्वम् अर्थान्तरं रूपादिभ्यो भिन्नं नतु रूपादिस्वरूपम्,  
एकत्वपदं सङ्ख्यादिपञ्चकोपलक्षणं गगनमेकं काल एक इत्यादि-  
प्रतीतिविषयो रूपादिभिन्नो गुणोऽवश्यमङ्गोकार्थः गगनादिषु  
रूपरसगन्धस्पर्शव्यतिरेकात् रूपादीनामभावादित्यर्थः, नचैकं

सू० तथा पृथक्त्वम् ॥ २ ॥

उ० द्रव्यत्वेनान्यूनानतिरिक्तदेशत्वात् नचान्यूनानतिरिक्तदेश-  
त्वेऽपि प्रतीतिभेदाद्भेदः प्रतीतिभेदस्य स्वरूपकृतत्वे मत्ता-  
ऽपि भिद्येत, विषयभेदकृतत्वे तु विषयभेदानुपपत्तेरुक्त-  
त्वात् अन्यथा घटत्वकलमत्वयोरपि भेदापत्तेः, नच स्वरू-  
पाभेद एकत्वमिति भूषणमतं युक्तम्, घटस्वरूपाभेदश्चे-  
देकत्वं तदा पटादावेकत्वप्रत्ययो न स्यात्, स्वरूपभेदोद्वि-  
त्वादिकमित्यपि भूषणमतमनुपपन्नं स्वरूपभेदस्य त्रिचतु-  
रादिसाधारण्येन व्यवहारवैचित्र्यानुपपत्तेरितिभावः ॥ १ ॥

एकत्वतुल्यतयैकपृथक्त्वमपि साधयितुमाह ।

अपोद्धारव्यवहारस्तावदस्ति इदमस्मात् पृथगन्यदर्था-  
न्तरमित्याकारः, अपट्टज्यावधिमपेक्ष्य य उद्धारो निर्द्धा-  
रणं सङ्घपोद्धारः, तत्रच न रूपादि तन्त्रं व्यभिचारादव-  
ध्यनिरूप्यत्वाच्च, नन्वन्योन्याभाव एव पृथक्त्वम्, इदमस्मात्

वि० सामान्यमेकोविशेषः एकः समवायः एकोऽभाव इत्यादिप्रतीतिः  
का गतिरिति वाच्यं तत्रानायच्या धीविशेषविषयत्वरूपस्यैकत्वस्य  
भानाङ्गीकारादधिकमन्यवानुसन्धेयम् ॥ १ ॥

पृथक्त्वगुणस्य संख्यातुल्यत्वमाह ।

पृथक्त्वमपि संख्यावद्गुणान्तरमेव तत्रैकपृथक्त्वम् एकत्व-  
संख्यातुल्यं द्विपृथक्त्वादिकञ्च द्वित्वादिसंख्यातुल्यमिति, नच  
घटः पटान् पृथगन्योभिन्न इत्यादिप्रतीतीनां समानविषयक-

उ० पृथगन्यदर्थान्तरमिति वद्विन्नमिति प्रतीतिरेन्योन्याभावावल-  
म्बनत्वात्, न पृथगादिशब्दानां पर्यायत्वेऽपि नान्योन्या-  
भावार्थत्वं तत्र पञ्चमीप्रयोगानुपपत्तेः इदमस्मात् पृथक्  
इदमिदं न भवतीति प्रतीत्योर्भिन्नविषयत्वात् न चान्यो-  
न्याभाववानर्थः पृथक्त्वम् अघटः पट इत्यत्रापि पञ्चमी-  
प्रयोगापत्तेः, ननु पृथगिति विशिष्ट इति प्रतीत्योरेका-  
कारत्वाद्द्वैशिष्यमेव पृथक्त्वमिति चेन्न मैत्रस्य दण्डवैशिष्य-  
दशायां मैत्रात् पृथगयं मैत्र इत्यपि प्रतीत्यापत्तेः एवं  
शब्दविशिष्टे व्यञ्जि बुद्धिविशिष्टे चात्मनि पृथक्त्वव्यवहारा-  
पत्तेः, अतएव वैधर्म्यमपि न पृथक्त्वं पाकरक्ते घटे श्या-  
मादृष्टात् पृथगयं घट इति व्यवहारापत्तेः तद्विरोधि-  
धर्मभावमेव हि तद्वैधर्म्यं तच्च श्यामीनन्तरं रक्ततादशाया-  
मपि नच सामान्यमेव पृथक्त्वं सामान्यस्यावध्यनिरूप्य

वि० त्वानुभवादन्योन्याभाव एव पृथक्त्वं नतु गुणान्तरमिति वाच्यं  
नञ्शब्दस्यैव पृथक्शब्दस्याप्यव्ययतयाऽभेदार्थकतयाच अस्मात्  
पृथक् इदमिदं नेति प्रतीत्योर्वैलक्षणानुपपत्तेः न चान्यादिशब्द-  
वत् पृथक्शब्दस्यापि भेदविशिष्ट एव शक्तिरिति वाच्यं गौरवा-  
पत्तेरेन्यादिशब्दस्य नामान्तरार्थं भेदान्वयानुपपत्त्या विशिष्टे  
शक्तिस्वीकारेऽपि पृथक्शब्दस्याव्ययतया भेदान्वयसम्भवेन वि-  
शिष्टशक्तिस्वीकारस्यानावश्यकत्वात् अन्यथा नञाव्यययाना-  
मपि विशिष्टशक्तिः स्वीक्रियेत नच पृथक्शब्दस्यान्यार्थत्वाभावे  
तद्योगे कथं पञ्चमीति वाच्यम् “तृतीया पञ्चमीचैव पृथक्  
नाना प्रयोगतः” इत्यादि शाब्दिकस्मृतेः पञ्चमीविधायकत्वात्,

सू० एकत्वैकपृथक्त्वयो\*रेकत्वैकपृथक्त्वाभावोऽ-  
णुत्वमहत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥ ३ ॥

उ० त्वात् जातिसङ्करप्रसङ्गाच्च मन्मात्रवृत्तिले सत्तया, द्रव्य-  
मात्रवृत्तिले द्रव्यत्वेनाभ्युनानतिरिक्तवृत्तित्वापत्तेः ॥ २ ॥

नन्वेकमेकत्वं, रूपादिभ्यः पृथक् पृथक्त्वमिति व्यवहा-  
रादेकत्वेऽप्येकत्वं, पृथक्त्वेऽपि पृथक्त्वमेवं तत्र तत्रापीत्यत-  
श्चाह ।

यथाऽणुत्वमहत्त्वे नाणुत्वमहत्त्ववती तद्व्यवहारस्तत्र भा-  
क्त स्तथैकत्वैकपृथक्त्वे नैकत्वैकपृथक्त्ववती तद्व्यवहारस्तत्र  
भाक्तइत्यर्थः । “कर्माभिः कर्माणि” “गुणैर्गुणाः” इत्यपि

वि० वस्तुतो वैशेषिकानुभवसिद्धमेव पृथक्त्वं गुणान्तर्गं खण्डनयत्ने  
दीधितिक्रता खण्डितमिति तत्रास्माकं विचारबाहुल्यमकिञ्चित्-  
करमेवेति विरम्यते ॥ २ ॥

नन्वेकमेकत्वमित्यादिव्यवहारबलादेकत्वेऽप्येकत्वमेवमेकपृथक्त्वं  
द्विपृथक्त्वात्पृथगितिव्यवहारबलादेकपृथक्त्वेऽप्येकपृथक्त्वमङ्गी-  
कार्यमिति तयोर्गुणत्वं दुर्घटं गुणेऽपि सत्त्वादतश्चाह ।

यथाऽणुत्वमहत्त्वे नाणुत्वमहत्त्वयोस्तथा एकत्वैकपृथक्त्वयो-  
रपि नैकत्वैकपृथक्त्वे, व्यवहारस्तु प्रकारान्तरेणोपपादनीय-  
इत्यर्थः ॥ ३ ॥

\* एकत्वैकपृथक्त्वयो नैकत्वैकपृथक्त्वभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति कश्चित् पाठः ।

सू० निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानां सर्वैकत्वं न विद्यते ॥ ४ ॥

उ० दृष्टान्तसूत्रद्वयं पूर्वं दृष्टान्तसूत्रेणैकवाक्यतापन्नमेवात्र प्रतिभासते यथा कर्माणि न कर्मावन्ति गुणाश्च न गुणान्तस्तथैकत्वैकपृथक्त्वे न ब्रह्मती इत्यर्थः ॥ ३ ॥

ननु गुणेषु कर्मसु च साधारणवैकल्यव्यवहारः किमत्र विनिगमकं यद्द्रव्येवैकत्वं न गुणादिद्विधत्वात्वाद्वाह ।

सर्वेषामेकत्वं तन्न विद्यते, कुत इत्यत आह निःसंख्यत्वात् कर्मगुणानामिति सङ्ख्याया निष्क्रान्ताः निःसङ्ख्यास्तेषां भावो निःसङ्ख्यत्वम्, तथाच कर्माणि गुणाश्च निःसङ्ख्यानि, सङ्ख्याया गुणत्वेन गुणेषु तावत् सङ्ख्या न विद्यते नवा कर्मसु, गुणानां कर्मसु निषेधात् अन्यथा द्रव्यत्वप्रसङ्गात् साधितञ्च सङ्ख्याया गुणत्वमेकत्वस्य च सङ्ख्यात्वमितिभावः ॥ ४ ॥

वि० नन्वेको घट इति वदेकमेकत्वमिति व्यवहारस्य सत्त्वात्तस्य भाक्तत्वे किं बीजमत आह ।

सर्वैकत्वं सर्वेषु पदार्थेषु एकत्वं वर्त्तते इति यन्मतं तन्न विद्यते न प्रामाणिकतया लभ्यते, कर्मणां गुणानाश्च निःसङ्ख्यात्वात् सङ्ख्याशून्यत्वादन्यथा तयोरेपि द्रव्यत्वं प्रसज्येत द्वित्वादेरिवैकत्वस्यापि गणनव्यवहारहेतुतया सङ्ख्यात्वस्यापक्रातुमशक्यत्वादि-  
तिभावः ॥ ४ ॥

सू० भ्रान्तं तत् ॥ ५ ॥

एकत्वाभावाद्भक्तिस्तु न विद्यते ॥ ६ ॥

उ० तर्हि कथमेकरूपमेकोरस इत्यादिज्ञानमित्यत आह ।  
गुणकर्मासु यदेकत्वज्ञानं तद् भ्रान्तमित्यर्थः, सूत्रे च  
ज्ञानमितिशेषः आचिप्रपूर्वपक्षत्वात्, प्रयोगस्तु भाक्तः स्वरू-  
पाभेद एवच भक्तिः नच तदेवैकत्वमुक्तोत्तरत्वात् ॥ ५ ॥  
ननु द्रव्येष्वप्ययमेकत्वप्रयोगोभाक्तोऽस्तु प्रत्ययस्तु तत्र  
भ्रान्तः किमेकत्वेनेत्यत आह ।

यदि पारमार्थिकमेकत्वं क्वचिन्नाभ्युपगन्तव्यं तदा न  
प्रयोगोभाक्तः मुख्यपूर्वकत्वाद्भक्तेः नवा प्रत्ययोभ्रान्तः प्रमा-  
पूर्वकत्वाद्भ्रमस्य, प्रमितं ह्यारोप्यते नाप्रमितम् असत्ख्याते-  
र्निरासात् अन्यथाख्यातेः साधनादितिभावः ॥ ६ ॥

वि० ननु गुणादावेकत्वाभावे कथमेकं रूपमित्यादिज्ञानमत आह ।  
तदितिबुद्धिस्थं गुणादावेकत्वज्ञानमुपस्थापयति तथाच गुणा-  
दावेकत्वज्ञानं भ्रमरूपमेवेति न ततोवस्तुसिद्धिरित्यर्थः, तादृश-  
व्यवहारस्तु उभयावृत्तिधर्मविषयक एव तादृशधर्मश्च तत्तद्भ-  
क्तित्वधीविशेषविषयत्वादिकएवेतिभावः ॥ ५ ॥

नन्वेकोघट इत्यादिव्यवहारोऽपि कथं न भाक्त इत्यत आह ।

एकत्वगुणस्य कुत्राप्यनङ्गीकारे एकत्वाभावात् मुख्यैकत्वप्रयो-  
गाभावाद् भाक्तैकत्वप्रयोगो न सम्भवति तस्माद् घटादौ प्रत्य-  
क्षसिद्धमेकत्वं गुणमादाय व्यवहारोमुख्यः एकादिशब्दानामेक-

सू० कार्यकारणयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावादैकत्वै-  
कपृथक्त्वं न विद्यते ॥ ७ ॥

उ० कार्यकारणयोस्तन्नुपटयोरेकत्वमेकपृथक्त्वञ्च यत एवै-  
कत्वमर्तएवैकपृथक्त्वमपि नहि स्वस्मादेवस्वपृथगिति भ्रम-  
वति, नहि पटे पाठ्यमाने प्रत्येकं तन्तूनामाकर्षे तद्भिन्नः  
पट उपलभ्यते, यदि तन्तुभिन्नः पटः स्यात् तदा तद्भि-  
न्नतयोपलभ्येत घटवत्, एवं घटेऽपि भग्ने कपालद्वयातिरि-  
क्तस्यानुपलभ्यात् घटेऽपि कपालद्वयात्मक एव, तदुक्तं  
“नान्योऽवयववयवेभ्यः” इति तदिदं साङ्ख्यीयं मतं प्रस-  
ङ्गान्निराचिकीर्षुराह ।

कार्यं कारणञ्च द्वयमेकं न भवति, कुत एतदित्याह  
एकत्वाभावादभेदाभावात् तर्हि यदेव कार्यं तदेव कारणं  
तन्तवः पट इति बह्वैकत्वयोः सामानाधिकरण्यानुप-  
पत्तेः, भवत्येव सामानाधिकरण्यमेकस्यामपि पाथःकणि-

वि० त्वत्वादिविशिष्टावच्छिन्नवाचकत्वात्, एकं रूपमित्यादौ तु उभ-  
यावृत्तिधर्म्मविशिष्टे एकपदस्य लक्षणैवेति तादृशप्रयोग एव  
भाक्त इति भावः ॥ ६ ॥

अवयवायविनोरेकत्वमेकपृथक्त्वञ्च नतु तयोर्भेद इति साङ्ख्य-  
मतं प्रसङ्गान्निराकर्त्तुमाह ।

कार्यकारणयोर्नैकत्वं नवैकपृथक्त्वं किमप्येकत्वमेकपृथक्त्वं वा  
कार्यकारणोभयनिष्ठं न भवतीत्यर्थः । अत्र हेतुमाह कार्यकार-  
णयोरेकत्वैकपृथक्त्वाभावात् एकत्वमभेदः एकपृथक्त्वमवैधर्म्यं

७० कायामाप इति प्रयोगात् एकस्यामपि योषिति दारा-  
 इति प्रयोगादिति चेन्न तत्रावयववञ्जत्वमादायोपपत्तेः  
 पाथःपरमाणौतु प्रकृतिगतं रूपादिबञ्जत्वमादायेत्येके श-  
 ब्दस्वाभाव्यमिदमपर्यनुयोज्यमित्यंपरे नच रण्डाक्तरण्डाव-  
 स्थितास्तन्तवः पटव्यपदेशं लभन्ते, नवा धारणाकर्षणे  
 तन्तवः प्रत्येकं कर्तुमीशते, नवा कार्यं कारणञ्च द्वयमध्ये-  
 कपृथक्त्वाश्रयः परस्परवधिकत्वप्रतीतेः, कुत इत्यत आह  
 एकपृथक्त्वाभावात् एकपृथक्त्वमवैधर्म्यं तदभावात् का-  
 र्यकारणयोरन्यान्यवैधर्म्यानुभवात् तन्तुत्वपटत्वयोः घटत्व-  
 कपालत्वयोश्च भिन्नवृद्धिव्यपदेशयोः सार्वलौकिकत्वात्  
 क्रयं तर्हि रूपरसगन्धस्पर्शानां न भेदेनोपलम्भः, अत्यन्त-  
 सारूप्यात् क्वचिच्चित्रपटादौ भेदोपलम्भोऽपि सञ्ज्ञापरि-  
 माणादिभेदस्य चातिस्फुटत्वात् ॥ ७ ॥

वि० तदोरभावात् तन्तुः पटभिन्नः पटविधर्मत्वादिप्रतीतेः सर्वसिद्ध-  
 त्वादितिभावः ॥ ७ ॥

ननु तन्तुः पटभिन्नः पटविधर्मत्वादिप्रतीतिर्भ्रान्तिरेव  
 परस्परसंयुक्तानां तन्तूनामेव पटभावात् पटस्य तन्तुभिन्नत्वे  
 प्रमाणाभावाच्च नच तन्तुवैधर्म्येण पटे तन्तुभेदः साधनीय इति  
 वाच्यं वैधर्म्यस्यैवासिद्धत्वात् नहि पटत्वं तन्तुवैधर्म्यं, पटाभि-  
 व्यक्तिदशायां तन्तुत्वेव पटत्वस्वीकारात् तदुक्तमोश्वरहणाचार्यैः

“सदकारणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्” इति ।



सू० एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ॥ ८ ॥

उ० अनित्ययोरेकलैकपृथक्त्वयोः कारणगुणपूर्वकत्वमाह ।  
 अनित्ययोः सङ्घातपृथक्त्वयोः कारणगुणपूर्वकत्वं यद्वा-  
 ख्यातं तदनित्ययोरेकलैकपृथक्त्वयोरेव बोद्धव्यम्, अन्ये-  
 षां सङ्घातपृथक्त्वानामपेक्षाबुद्धिजन्यत्वात्, यथाऽनित्ययो-  
 स्तेजोरूपस्यर्थाः कारणगुणपूर्वकत्वं तथैकलैकपृथक्त्वयोर-  
 ष्यनित्ययोरितिभावः । अर्थादन्वेकद्रव्यादित्वादिना पं-  
 रार्द्धान्ता । इत्युपसङ्ख्यानम्, उपसङ्ख्यानान्तरञ्च तत्स-  
 मानाधिकरणञ्च द्विपृथक्त्वादि परार्द्धपृथक्त्वपर्यन्तम् ।  
 तदयं द्वित्वाद्युत्पादविनाशक्रमः । समानजातीययोरप-  
 मानजातीययोर्द्रव्ययोश्चतुःसन्निकर्षे सति तन्निष्ठैकत्व-  
 योर्यत्सामान्यमेकत्वत्वंतयोर्निर्विकल्पकानन्तरं तस्मिन्पृथ-  
 गुणबुद्धिरुत्पद्यते सैव चापेक्षाबुद्धिस्तथा तयोर्द्रव्ययोर्द्वि-  
 त्वमुत्पद्यते, उत्पन्नस्य च द्वित्वस्य यत्सामान्यं द्वित्वत्वं  
 तदालोचनं तेनालोचनेनापेक्षाबुद्धेर्नाशो द्वित्वत्वविशिष्ट-  
 द्वित्वगुणविषया विशिष्टबुद्धिश्चैकदा भवति, तदयिमक्षणे  
 च द्वित्वगुणस्यापेक्षाबुद्धिविनाशाद्विनाशः द्वे द्रव्ये इति

वि० एवञ्च कार्यकारणयोरभेदावैधर्म्याभावः स्वयमसिद्धः कथमेक-  
 त्वैकपृथक्त्वाभावं साधयिष्यतीत्यत आह ।

एतत् अभेदावैधर्म्याभाववत्त्वेनैकलैकपृथक्त्वाभाववत्त्वम्  
 अनित्ययोः कार्यकारणयोः कथितमित्यर्थः तथाच तन्मुपपद्यो-

उ० द्वित्वविशिष्टद्रव्यज्ञानञ्च युगपदुत्पद्यते, ततस्तस्माद् द्वि-  
 त्वविशिष्टद्रव्यज्ञानात् संस्कारः । तदयं मञ्चेपः उत्प-  
 त्त्यमानद्वित्वाधारेणैन्द्रियसन्निकर्षस्त एतद्वगुणगतसामान्य-  
 ज्ञानं तत एकत्वसामान्यविशिष्टैकत्वगुणसमूहात्मन-  
 रूपाऽपेक्षाबुद्धिस्ततो द्वित्वगुणोत्पत्तिस्ततस्तद्गतसामान्यस्य  
 ज्ञानं ततस्तत्सामान्यविशिष्टद्वित्वगुणज्ञानं ततो द्वित्वगुण-  
 विशिष्टद्रव्यज्ञानं ततः संस्कारइतीन्द्रियसन्निकर्षमारभ्य  
 संस्कारपर्यन्तमष्टौ चक्षणाः, विनाशक्रमस्तु एकत्वसा-  
 मान्यज्ञानस्यापेक्षाबुद्धितोविनाशः द्वित्वसामान्यज्ञानाद-  
 पेक्षाबुद्धेर्विनाशः द्वित्वसामान्यज्ञानस्य च द्वित्वगुणबुद्धि-  
 तोविनाशः द्वित्वगुणबुद्धेश्च द्वित्वविशिष्टद्रव्यज्ञानात् तस्य  
 च संस्कारात् विषयान्तरज्ञानादिति । नन्वेकत्वज्ञानात्त-  
 द्विशिष्टद्रव्यज्ञानमेव कथं नोत्पद्यते तत्सामयिसत्त्वात्  
 नहि गुणज्ञाने सति द्रव्यज्ञाने विलम्बोऽस्ति तथाच  
 ततएवापेक्षाबुद्धेर्विनाशे तन्नाशाच्च तदग्रिमक्षणएवद्वित्व-  
 नाश इति द्वे द्रव्ये इति विशिष्टज्ञानपूर्वक्षणे एव द्वित्व-  
 विनाशापत्त्या द्वित्वविशिष्टद्रव्यज्ञानस्यानुत्पत्तिरेवेति चेन्न  
 द्वित्वाद्युत्पत्तिमामग्न्यनभिभूताया एवापेक्षाबुद्धेर्द्रव्यविशि-  
 ष्टज्ञानजनकत्वनियमात् फलबलेन तथाकल्पनात्, ननु

वि० रभेदाङ्गीकारे तन्तुत्पाददृशायां पट उत्पद्यते पटोत्पत्तिदृशायां  
 तन्तुस्त्वद्यते तन्तुनाशदृशायां पटोत्पत्ति पटनाशदृशायां तन्तु-  
 नश्यतीत्यादिप्रत्ययप्रयोगयोः प्रसङ्गः, नचोत्पत्तिविनाशावेवा-

उ० तथापि स्वजनितसंस्कारेणैवापेक्षाबुद्धिविनाशे पुनः स दोषस्तदवस्थ एव, द्वित्वविशिष्टज्ञानपूर्वक्षण एव द्वित्वनाशस्य सम्भवादिति चेन्न केवलगुणज्ञानस्य संस्काराजनकत्वात् नहि केवलांगुणः कापि स्मर्यते, सर्वत्र द्रव्योपरागेणैव गुणस्मरणात्, ननु भवत्वेवं तथापि विशिष्टबुद्धिकालेऽपि द्वित्वनाशे विशिष्टप्रतीत्यनुदयस्तदवस्थ एव नहि वर्तमानावभासिनी विशिष्टप्रतीति विशेषणनाशकाले सम्भवति तथाऽदर्शनादिति चेन्न विशेषणज्ञानविशेष्येन्द्रियसन्निकर्षतदुभयामंसर्गाग्रहस्य विशिष्टज्ञानमामग्याः प्रकृतेऽपि सम्भवात् यदि तु विशेषणेन्द्रियसन्निकर्षाऽपि मृग्यते तदा पूर्वक्षणे तस्यापि सत्त्वात् पूर्वक्षणवर्तिन एव सन्निकर्षस्य कारणत्वेनाभ्युपगमात्, विशेषणं विशिष्टज्ञानागोचरोऽपि सम्भवति विशिष्टज्ञानजनकज्ञानविषयत्वमात्रमेव हि विशेषणत्वे तन्त्वं ननु विशिष्टज्ञानविषयत्वम् । उपलक्षणस्याप्येवं विशेषणत्वापत्तिरिति चेन्नाप्रत्याय्यव्यावृत्तिसामानाधिकरण्यस्य विशेषणत्वे तन्त्वत्वात् उपलक्षणान्तु तद्व्यधिकरणम्, एवं यदा देवदत्तगृहे काकवत्ता तदा काकोविशेषणं, यदा तु उपरिभ्रमन् असन् तदोपलक्षणम्, एवं सति रूपवति रस इत्यादौ रूपादेरपि

वि० प्राम्भशिकौ आविर्भावतिरोभुवाभ्यामेव तत्रतीत्युपपत्तेरिति वाच्यमाविर्भावस्याविर्भावाङ्गीकारेऽनवस्थाप्रसङ्गात्, तदुत्पत्तिस्वीकारेण किमपराङ्गं पटाद्युत्पत्तिभिः, आविर्भावे आवि-

उ० विशेषणत्वापत्तिरिति चेन्न इष्टत्वात्, तर्हि तत्रापि र-  
 • सावर्त्ततेति चेन्न विशिष्टवृत्तेर्विशेषणवृत्तित्वानावश्यकत्वात्  
 नहि विशेषणं विशिष्टमित्येकं तत्त्वम्, द्वित्वनाशकाले वि-  
 शेषणसम्बन्धो नास्ति कुतोविशिष्टप्रत्यय इति चेन्न अत-  
 ज्ञावृत्तेरेव वैशिष्ट्यपदार्थत्वात्, तद्ज्ञानन्तु तत्रापिति न  
 किञ्चिदनुपपन्नमित्याचार्याः । एवं द्वित्वात्पत्तिविनाशवृत्त-  
 त्वात्पत्तिविनाशावपूहनीयौ । द्वित्वमपेक्षाबुद्धिनाशनाशम्,  
 आश्रयनाशविरोधिगुणान्तराभावे गुणस्य सतोऽविनाशि-  
 त्वात् चरमज्ञानवत् चरमज्ञानस्यादृष्टनाशनाशत्वात् ।  
 क्वचिदाश्रयनाशादपि नश्यति यत्र द्वित्वाधारावयवकर्मा-  
 समकालमेकत्वसामान्यज्ञानम्, तद्यथा अवयवकर्मासामा-  
 न्यज्ञाने विभागापेक्षाबुद्धी संयोगनाशगुणात्पत्ती द्रव्यना-  
 शद्वित्वसामान्यज्ञाने तत्र द्रव्यनाशाद्वित्वनाशः, सामान्यज्ञा-  
 नादपेक्षाबुद्धिनाशः, अपेक्षाबुद्धिनाशस्य द्वित्वनाशसमा-  
 नकालत्वात् कार्यकारणसमानभावाभावात् यदातु द्वि-  
 त्वाधारावयवकर्मापेक्षाबुद्धोर्योगपक्षं तदा द्वाभ्यामाश्रय-  
 नाशापेक्षाबुद्धिनाशाभ्यां द्वित्वनाशः, तद्यथा अवयवकर्मा-  
 पेक्षाबुद्धी विभागात्पत्तिद्वित्वात्पत्ती संयोगनाशद्वित्वसा-  
 मान्यज्ञाने द्रव्यनाशापेक्षाबुद्धिनाशौ ताभ्यां द्वित्वनाशः  
 प्रत्येकं सामर्थ्यघातः, इयञ्च प्रक्रिया ज्ञानयोर्बन्धघातक-

वि० भावस्ये त्वादस्य चानङ्गीकारे आविर्भावस्य सार्वदिकत्वप्रसङ्गः  
 नह्याविर्भावस्य सार्वदिकत्वं साङ्ख्येऽपि स्वीक्रियते वस्तुतः पटः

उ० पक्षे परमुपपद्यते स एव च पक्षः प्रागणिकः। ननु द्वित्व-  
त्रित्वादीनां सामयिसाम्ये कथं कार्यवैलक्षणं द्वाभ्यामेक-  
त्वाभ्यां द्वित्वं त्रिभिरेकत्वैस्त्रित्वमिति चेन्न एकत्वे द्वित्वाद्य-  
भावात्, समवायिकारणगतमेव द्वित्वत्रित्वादिकं तन्त्रमिति  
चेन्न द्वित्वाद्युत्पत्तेः पूर्वं तत्र द्वित्वाद्यभावात् तत्रापि का-  
रणचिन्ताया अनिवारणात् अपेक्षाबुद्धाविकल्पेषु च ता-  
दृशविशेषस्थानुपलम्भाधितत्वात् फलबलेन तत्कल्पनेवा  
द्वित्वादिव्यवहारोऽपि तत एवास्तु किं द्वित्वादिना, अदृ-  
ष्टविशेषाद्विशेष इति चेदेवं मति द्वित्वारम्भिकयाऽपि साम-  
य्या कदाचिन्नित्वं चतुष्टयोत्पद्यतेत्यनियमप्रसङ्गः। अत्रोच्यते  
प्रागभावविशेषाद्वि षोपपत्तेः यथा तुल्यया सामग्र्या पाक-  
जानां रूपरसगन्धस्पर्शानाम्, प्रागभावोऽपि साधारण ए-  
वति चेन्न स्वस्वप्रागभावस्यैव कार्यं प्रति कारणत्वावधारणात्  
यदा शुद्धयाऽपेक्षाबुद्ध्या द्वित्वं द्वित्वसहितया त्रित्वं त्रि-  
नेयम्, शतं पिपीलिकानां मया हतमित्यादौ समवायिका-  
रणभावे द्वित्वं तावन्नोत्पद्यते तथाच गौणस्तत्र सङ्ख्याव्यव-  
हारोद्गृह्यः। सेनावनादौ नियतापेक्षाबुद्ध्याभावाद्बहुत्व-  
मात्रमुत्पद्यते नतु शतसहस्रादिसङ्ख्येति श्रीधराचार्याः एवं  
मति शतसहस्रादिकोटिकस्तत्र संशयो न स्यात् न स्याच्च म-  
हती महत्तरा सेनेति नैवमित्युदयनाचार्याः। अत्रैवमालो-  
चनीयं त्रित्वादिपरार्द्धपर्यन्ता सङ्ख्येव बहुत्वम्, तद्विन्नं वा स-

वि० उत्पद्यते पटोविनश्यतीत्यादिकः सार्वलौकिकोऽनुभव एवेत्याद-

७०. ह्यान्तरम्, नाद्यः सेनावनादावपि शतसहस्रादिसह्यात्पत्ति-  
 • नियमात्, न द्वितीयः त्रित्वादिविलक्षणस्य बज्जलस्थाननुभ-  
 वात् तथाच प्रतिनियतैकत्वानालम्बनापेक्षाबुद्धिजनितश-  
 तादिसह्यैव बज्जलं शताद्यभिव्यक्तिस्तु तत्र न भवति तादृ-  
 शव्यञ्जकाभावात्, वयन्तु ब्रूमः त्रित्वादिममानाधिकरणं स-  
 ह्यान्तरमेव बज्जलं त्रित्वादिजनकापेक्षाबुद्धिजन्यं प्रागभाव-  
 भेदादेवंभावः, कथमन्यथा बहवस्तावत् मन्ति शतं वा सहस्रं  
 वेति विशय्य न जानीम इति, यथैकद्रव्ये सहस्रं शीर्षलञ्च  
 तथैकत्रैवाधिकरणे त्रित्वादिकं बज्जलञ्च, भवति हि शतं वा  
 सहस्रं वा चूतफलान्यान्यामीति प्रश्ने बहवस्तावदानीयन्तां  
 किं विशेषजिज्ञासयेति, एवञ्च द्वित्वमहितापेक्षाबुद्ध्या त्रित्वं  
 त्रित्वमहितापेक्षाबुद्ध्या चतुष्टुमेवमुत्तरोत्तरम्, बज्जलेत्यत्तौ  
 तु नापेक्षाबुद्धौ पूर्वपूर्वमह्याविशिष्टत्वनियमः, अतएव सेना-  
 वनादिषु बज्जलमात्रमुत्पद्यते न तु सह्यान्तरं मंगयस्त्व-  
 मत्कोटिकोऽपि भवत्येवेति । तत्समानाधिकरणञ्च पृथक्-  
 त्वमिति यथा द्वित्वं तथा द्विपृथक्त्वमित्यादि । ननु द्वित्वत्रि-  
 त्वादिममानाधिकरणैरेकपृथक्त्वैरेव तद्व्यवहारोपपत्तौ किं  
 द्विपृथक्त्वादिनेति चेन्न घटात् पटलोद्यौ पृथगितिद्विपृ-  
 थक्त्वस्थान्यान्यावधिकत्वाप्रतीतेः प्रत्येकपृथक्त्वे च तद्व्यती-  
 तेरिति वैषम्यात्, नचैवं द्विपरत्वापत्तिः द्वित्वममानाधि-

वि० विनाशसाधकः एकविषयकानुभवस्य विषयान्तरविषयकत्वस्वी-  
 कारे घटपटादेरप्यपलापापत्तेरित्यसमसदावेशेन ॥ ८ ॥

सू० अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगजश्च सं-  
योगः ॥ ६ ॥

उ० करणाभ्यां परत्वाभ्यामेवतदुपपत्तेः, यथा पृथक्त्वे परस्पर-  
वधिकत्वविरोधस्तथा न परत्वे, द्वाविमौ पराविति द्वाविमौ  
नीलावितिवदुपपत्तेः समानदेशस्योः संयुक्तसंयोगभूयस्त्व-  
साम्येऽपि दिक्पिण्डसंयोगस्यासमवायिकारणस्य भेदेन भि-  
न्नकार्योत्पत्तिसम्भवात्, मिलितयोरैकत्वयोर्द्वित्वं प्रति यथा-  
ऽसमवायिकारणत्वं तथा मिलितयोरैकपृथक्त्वयोर्द्विपृथक्त्वं  
प्रत्यसमवायिकारणत्वसम्भवात् द्रव्यातिरिक्तमेकं कार्यं प्रत्य-  
ेकेषां संयोगानां कार्यैकार्थसंमवायप्रत्यासत्त्या सम्भूयार-  
म्भकत्वाददर्शनात्, कारणैकार्थप्रत्यासत्त्या तु बहवस्तन्तुतुरी-  
संयोगा एकं पटतुरीसंयोगमारभन्त एवेतिदिक् । द्वित्वा-  
दिविनाशवद्विपृथक्त्वादिविनाशाऽप्यूहनीयः ॥ ८ ॥

प्रकरणान्तरमारभते ।

संयोगे संयुक्तप्रतीतिरबाधिता प्रमाणं कार्याणि च, अव-  
यवसंयोगेषु द्रव्यमग्निसंयोगे पाकजा रूपादयः प्रचये परि-  
माणविशेषः भेर्याकाशसंयोगे शब्द इत्याद्युच्यम् । नचाविर-  
लोत्पत्तिरेव संयोगः, क्षणभङ्गपरिणामयो निर्वासात् अप्रा-  
प्तिपूर्विका प्राप्तिः संयोगः, सचान्यतरकर्मजः । क्रियावता  
श्लेनेन निष्क्रियस्य स्थाणोस्तदभिमुखक्रियारहितस्य सक्रिय-

वि० संयोगपरीक्षामारभते ।

अन्यतरकर्मजः श्लेनशैलादिसंयोगः, उभयकर्मजो मेषद्वया-

उ० स्थापि धावतः यथा धावता पुरुषान्तरेण पृष्ठदेशसंयोगः, उ-  
 भयकर्त्तव्यः मेषयोर्मन्त्रयोर्वा प्रत्येकं गृहीतसामर्थ्याभ्यामुभा-  
 भ्यामेव तच्च ननात्, तृतीयस्त्वङ्गुलितरुसंयोगाद्भ्रूस्ततरुसंयोगः,  
 स चैकस्मादपि भवति यथा तन्तुवीरणसंयोगात्, पुटवीरणसं-  
 योगः, क्वचिद्वाभ्यां संयोगाभ्यामेकः संयोगः यथा द्वाभ्यां त-  
 न्तुभ्यामाकाशस्य द्वौ संयोगौ ताभ्यामेक एव द्वितन्तुकपट-  
 व्याकाशेन संयोगः, क्वचिच्च बङ्गभिरपि संयोगैरेकः संयोग  
 प्रारभ्यते यथा दशभिस्तन्तुभिराकाशस्य दशसंयोगा एकमेव  
 दशतन्तुकपटाकाशसंयोगमारभन्ते, क्वचित् पुनरेकस्मा-  
 दपि संयोगादसमवार्थिकारणात् संयोगद्वयमुत्पद्यते यथा  
 पार्थिवाप्ययोः परमाणोः प्रथममनारम्भके संयोगे जाते पार्थि-  
 र्थिवे परमाणौ पार्थिवपरमाण्वन्तरेण, आप्ये च परमाणा-  
 वाप्यपरमाण्वन्तरेण, ज्वाणुकद्वयारम्भकं संयोगद्वयमुत्पद्यते  
 ताभ्यां संयोगाभ्यां सजातीयनिष्ठाभ्यां ज्वाणुकद्वयं युगप-  
 दारभ्यते तत्र यः पार्थिवाप्यपरमाणोरनारम्भकः संयोग-  
 उत्पन्नस्तेनैकेनैव पार्थिवपरमाणुनाप्यज्वाणुकैकैकः संयोगः  
 आप्यापरमाणुना पार्थिवज्वाणुकेनापरः संयोगो ज्वाणुकयोर्-  
 पाद्युत्पत्तिसमकालमेव जायते, कारणकारणसंयोगेन  
 कार्याकार्यसंयोगयोरवश्यं जननात्, मूर्त्तैर्विभूनामन्यतर-

वि० दिसंयोगः, संयोगजः कपालतरुसंयोगजन्यस्तरुकुम्भयोः संयोग-  
 इति त्रिविधः संयोगः, प्रकारान्तरेणाप्ययं द्विविधः अविधा-

\* परमाणोराश्वेतिपाठः साधुः । † परमाणोरितिपाठः साधुः ।



७० कर्मज एव, विभुनोस्तु न संयोगः कारणभावात् कर्म ताव-  
 न्तत्र नास्ति नच कारणं तेन कारणाकारणसंयोगात्  
 कार्याकार्यसंयोगोऽपि नास्ति, नित्यस्तु संयोगो न सम्भवति  
 अप्राप्तिपूर्विकायाः प्राप्तेः संयोगत्वात् नित्यत्वे तद्विघातात्  
 एवञ्च मति विभागोप्यजस्तत्र स्यात् नचेष्टापत्तिः संयोग-  
 विभागयोर्विरोधिनोरविनश्यदवस्थयोरैकत्रानुपपत्तेः, कि-  
 ञ्च संयोगं प्रति प्रयोजिका युतसिद्धिः नच विभुनोस्त-  
 त्सम्भवः साहिद्वयोरन्यतरस्य वा पृथग्गतिमात्रं युताश्रया-  
 श्रयित्वं वा, विनाशस्तु संयोगस्य समानाधिकरणादिभा-  
 गादाश्रयनाशादपि क्वचित् यथा तन्तुद्वयसंयोगानन्तरमे-  
 कस्य तन्तोरवयवेऽग्नौ कर्म जायते तेनाश्वन्तरादिभागः क्रि-  
 यते विभागादारम्भकसंयोगनाशस्तत्तन्तुविनाशस्तन्तुविना-  
 शात् संयोगनाशो यत्र तन्तुद्वयं चिरं संयुक्तं मदनृत्यन्नक्रियं  
 भवति, केचित्तु तन्त्ववयवकर्माणा यदा तन्त्यारम्भकसंयोग-  
 नाशः क्रियते तदा तन्वन्तरे कर्मचिन्तनात् आश्रयनाश-  
 विभागाभ्यां युगपदत्यन्नाभ्यां संयोगानश्रयतीत्याहुः । तच्चा-  
 नुपपन्नं समवायिकारणनाशक्षणे विभागानुत्पत्तेः समवायि-  
 कारणस्य कार्यसमकालस्थायित्वनियमात् सचायं संयोगो  
 द्रव्यारम्भे निरपेक्षो गुणकर्मारम्भे सापेक्षः स्वसमानाधि-

वि० तेनेदनञ्चेति तत्रायः शब्दहेतुः, द्वितीयः शब्दाहेतुरित्यादिक-  
 मूह्यम् ॥ ६ ॥

सू० एतेन विभागोव्याख्यातः ॥ १० ॥

उ० करणात्यन्ताभावप्रतियोगी तथैवानुभवात् शाखामात्राव-  
च्छेदेनापि महति न्ययोधतरौ वर्त्तमानः कपिसंयोगः, न्ययो-  
धतरौ कपिसंयोग इत्यनुभवात् अवच्छेदमात्रेणान्यथामि-  
द्धौ परमाणुवृत्तिरापद्येत तथाच नोपलभ्येत विभूनामप्यु-  
पाधिभेद एव प्रदेशस्तदवच्छेदेन वर्त्तमानस्य संयोगस्याव्या-  
प्यवृत्तित्वं परमाणुनिष्ठस्यापि संयोगस्य दिगादयोऽवच्छे-  
दकाश्चिन्तनीयाः ॥ ९ ॥

विभागे संयोगोत्पत्तिप्रकारमतिदिशन्नाह ।

संयोगवद्विभागोप्यन्यतरकर्मज उभयकर्मजोविभागजश्च,  
श्लेनकर्मणा स्यात्पुंश्लेनविभागः, संयुक्तयोर्मत्वयोर्मपयोर्वा  
कर्मभ्यां तदुभयविभागः, सचायं कर्मात्पत्यव्यहितक्षणे-  
त्पत्तिकः अपेक्षणीयान्तराभावात् तदुक्तं “संयोगविभा-  
गयोरनपेक्षकारणं कर्म” इति, विभागे जननीये आश्रयः,  
संयोगे च जननीये पूर्वसंयोगनाशश्चापेक्षणीय इति चेन्न  
स्वोत्पत्त्यनन्तरोत्पत्तिकभावभूतानपेक्षत्वस्य कर्मणोनिर्पे-  
क्षत्वात्, विभागजस्तु विभागोद्विविधः कारणमात्रविभागज-  
कारणकारणविभागभेदात् कारणकारणविभागजका-

वि० विभागे संयोगतुल्यतामाह ।

विभागोऽपि त्रिविधः एककर्मजोभयकर्मजविभागजभेदात्  
तत्रायः श्लेनश्लेयः द्वितीयोऽपेक्षणीयः तृतीयस्तु द्विविधः कारण-

उ० र्थाकार्यविभागभेदाच्च, तत्र कारणमात्रविभागात् कारणा-  
कारणविभागो यथा कपालद्वयविभागात् कपालाकाशवि-  
भागः, कारणाकारणविभागाच्च कार्याकार्यविभागो यथा-  
ऽङ्गुलीतृणविभागाद्भ्रूस्तंरुविभागस्ततः शरीरतरुविभाग-  
इति । ननु विभाग एव न प्रमाणं संयोगाभाव एव वि-  
व्यवहारादिति चेन्न संयोगाभावोऽत्यन्ताभावश्चेत् गुणक-  
र्मणोरपि विभागव्यवहारप्रसङ्गात्, द्रव्ययोर्वर्त्तमानः संयो-  
गात्यन्ताभावो विभक्तप्रत्ययहेतुरिति चेन्नावयवायववि-  
नोरपि प्रसङ्गात्, अकार्यकारणभूतयोर्द्रव्ययोरितिचेत् वि-  
न्ध्यद्विमवतोरपि स्यात्, भवत्येवं तत्रेति चेन्न भ्रान्तस्य  
गुणकर्मणोरपि भावात् अभ्रान्तमधिकृत्य व्यवहारस्य चि-  
न्त्यमानत्वात्, संयोगविनाशोविभाग इति चेत् एकतरसंयो-  
गिनाशेन नष्टे संयोगे तद्व्यवहारप्रसङ्गात्, संयोगिनोर्वि-  
द्यमानयोरितिचेत् एकसंयोगनाशानन्तरं पुनः संयुक्तयोः  
कुवलांमलकयोः संयोगदशायामपि विभक्तप्रत्ययप्रसङ्गात्,  
यावत्संयोगनाशस्तथेतिचेदेकसंयोगनाशे तदभावप्रसङ्गात्  
तत्र यावदर्थभावात्, तस्मादस्ति विभागोऽर्थान्तरम्, स च  
गुणः विरोधिगुणान्तरनाशः, विरोधिनं समानाधिकरणं

वि० मात्रविभागजन्यः कारणाकारणविभागजन्यश्चेति तत्राद्येयथा  
प्रथमं कपाले कर्म ततः कपालद्वयविभागः ततो घटारम्भकसंयो-  
गनाशकतोऽटवाशस्तस्तेन कपालद्वयविभागेन कपालस्याका-  
शादिना विभागो जयते ततः कपालाकाशादिसंयोगनाशः तत-

उ० गुणमन्तरेण स्रत्याश्रये गुणनाशानुपपत्तेः, कर्षैव संयो-  
 • गनाशकं स्यादिति चेन्न विरोधिनागुणस्य गुणनाशकत्वात्,  
 किञ्च यत्राङ्गुलीहस्तभुजशरीराणां स्वस्वकर्मणा तरुसंयो-  
 गस्तत्राङ्गुलीमात्रे समुत्पन्नेन कर्मणाऽङ्गुलीतरुसंयोगनाश-  
 सम्भवेऽपि हस्ततरुभुजशरीरतरुसंयोगानामनाशप्रसङ्गात्  
 हस्तादीनामक्रियत्वात् अङ्गुलीकर्मणश्च व्यधिकरणत्वात्  
 व्यधिकरणस्यापि कर्मणः संयोगनाशकत्वे कश्चिदप्युत्प-  
 न्नेन कर्मणा युगपदेदं सर्वसंयोगनाशापत्तेः, त्वर्थात् तत्र  
 का गतिरिति चेत् अङ्गुलीतरुविभागेन हस्ततरुविभागो-  
 जनितो हस्ततरुसंयोगनाशक इत्यभ्युपगमात्, व्यधिकर-  
 णेनाङ्गुलीकर्मणैव हस्ततरुसंयोगनाशोऽस्तु नचांतिप्रसङ्गः  
 \*आश्रयाश्रितपरम्परसंयोगस्यैव व्यधिकरणकर्मनाशत्वाभ्यु-  
 पगमादिति सर्वज्ञेन यदुक्तं तदपि न युक्तं विरोधिनः  
 समानाधिकरणस्यैव सर्वत्र नाशकत्वानुभवात् बाधकमन्त-  
 रेण तत्परित्यागानुपपत्तेः। शब्दविभागौ च विभागकार्थौ  
 तत्र विभागस्य शब्दासमवायिकारणत्वं मृष्यामहे नहि वंशे  
 पाय्यमाने दले च चरणयन्त्रणावष्टम्भे दलान्तरे चापरि-  
 कृत्यमाणे यः शब्दो जायते तत्र दलाकाशविभागादन्य-

वि० उत्तरदेशसंयोगस्ततः कर्मनाश इति, नच प्राथमिकेन कपाल-  
 कर्मणा कथं कपालाकाशविभागोऽन जन्यते इति वाच्यम् एक-  
 • स्य कर्मणश्च आरम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनकस्यानारम्भक-  
 संयोगप्रतिद्वन्द्विविभागजनकत्वविरोधात् अन्यथा विकसतकम-

\* आश्रयाश्रितसमवेतसंयोगादेरवेत कश्चित् भाठः।

उ० दसमवाचिकारणं पश्यामः नच, द्रवद्रहनदह्यमानस्फुट-  
 द्वेणुचीत्कारे विभागातिरिक्तमसमवाचिकारणं पश्यामः,  
 कारणकारणविभागाच्च कार्याकार्यविभागमनुमन्यामहे  
 कथमन्यथा स्वस्वकर्मजनिताङ्गुलीतरुसंयोगहस्ततरुसंयोग-  
 भुजतरुसंयोगशरीरतरुसंयोगानामङ्गुलीमाचोत्पन्ने कर्मा-  
 ऽङ्गुलीतरुविभागे सति अङ्गुलीतरुसंयोगनाशे सत्यपि हस्त-  
 तरुसंयोगादीनां नाशः, तच्चहि विभागजविभागपरम्परैव  
 तत्तत्संयोगनाशिकेत्युक्त्वात्, कारणद्वयविभागपूर्वके तु  
 कारणकारणविभागे न संप्रत्ययः यतो वंशदले यदुत्पन्नं  
 कर्म तेन दलान्तरविभागवदाकाशादिविभागस्यापि जन-  
 नसम्भवात् यावद्भिः समं तद्वलं संयुक्तमासीत् तावद्भिस्तत्-  
 कर्मणा विभागस्य दर्शनात् नर्ह्यङ्गुल्यामुत्पन्नेन कर्मणाऽ-  
 ऽङ्गुल्यन्तरविभागवदाकाशादिदेशेभ्योऽपि विभागा न जन्यन्ते  
 कमलदले चोत्पन्नेन कर्मणा दलान्तरविभागवदाकाशा-  
 दिदेशेभ्योवा न विभागा आरभ्यन्ते, द्रव्यारम्भकसंयोगावि-  
 रोधिनः शतमापि विभागानेकं कर्मारभतां यत्तु कर्म द्र-  
 व्यारम्भकसंयोगविरोधिनं विभागमारभते न तत् द्रव्यार-

वि० लवु झलादिभङ्गप्रसङ्गात् तस्मादनारम्भकाकाशकपालसंयोग-  
 प्रतिबन्धविभागं न कपालकर्म जनयेत् तस्य घटारम्भकसंयो-  
 गप्रतिबन्धविभागजनकत्वात्, नच कपालविभागेनैव घटना-  
 श्चात् पूर्वं वृत्तः कपालाकाशविभागो न जन्यते इति वाच्यम्  
 आरम्भकसंयोगप्रतिबन्धविभागवतोऽवयवस्य सति द्रव्ये देशा-

७०. भ्रुकसंयोगाविरोधिनमपि यच्च द्रव्यारम्भकसंयोगाविरो-  
 धिनं तद् द्रव्यारम्भकसंयोगविरोधिनमिति ब्रूमः, कुतएत-  
 दिति चेत् कार्यवैचित्र्येण कारणवैचित्र्यस्यावश्यकत्वात्, ननु  
 कर्मणि वैचित्र्यमावश्यकं तथाचैकं कर्म द्रव्यारम्भकसंयोग-  
 विरोधिनं विभागं जनयतु यथा विक्रमत्कमलकुड्मलादा-  
 वपरञ्च द्रव्यारम्भकसंयोगविरोधिनमविरोधिनञ्चोभयमिति  
 मैवं कार्यविरोधो हि कारणवैचित्र्यकल्पनामूलं सच विरोधः  
 एकस्य द्रव्यारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्वत्वेन, अपरस्य तु तदप्रतिद्व-  
 द्दित्वेनेति तथैव वैचित्र्यस्यापि कल्पनौचित्यात् तच्चेदं वंशदले  
 वर्तमानं कर्म दलद्वयविभागमात्रं जनयति, सच विभागे-  
 ऽप्ये आकाशादिदेशादिभागं द्रव्यारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विनं  
 विभागमारभते, तस्य च निरपेक्षस्य विभागजनने कर्मत्वा-  
 पत्तिरिति द्रव्यनाशविशिष्टं कालमपेक्षते, ननु तदानोमपि  
 कर्मैव तज्जनयतु, अतीतकालत्वात् विभागजनने कर्मणः  
 स्वात्पत्त्यनन्तर एव कालः, नन्वेवं विभागेन जायते विभा-  
 गान्तरे कर्म प्रदेशान्तरसंयोगमपि न जनयेत्, न संयोगज-  
 ननं प्रति कर्मणोऽनतीतकालत्वात् अन्यथा कर्म न नश्येदेव  
 तस्योत्तरसंयोगमात्रनाशत्वात्, सोऽयं विभाग उत्तरसंयोग-

वि० न्तरविभागासम्भवात् । कारणाकारणविभागजन्यविभागो यथा  
 यत्र हस्तक्रियया हस्ततद्विभागस्तेन शरीरतद्विभागो जायते  
 तत्रच हस्तक्रिया न कारणं व्यधिकरणत्वात् शरीरे तु तदा क्रि-  
 या नास्ति स्वययविक्रियाया यावदायवक्रियानियतत्वात् अत-

उ० नाशः क्षणत्रयस्थायी, क्वचिदाश्रयनाशनाशः तद्यथा तन्तोवयवेऽंशौ कर्म तदनन्तरमंशुद्वयविभागस्तदैव तन्वन्तरे कर्म ततोऽंशुद्वयविभागेन तन्वारम्भकसंयोगनाशस्तन्तुकर्मणा च विभागस्ततो द्रव्यारम्भकसंयोगनाशात्तन्तुनाशस्तन्नाशाच्च तन्वन्तरकर्मजन्यविभागनाशः। नन्वेव तन्वन्तरोत्पन्नस्य \*कर्मणो न नाशः स्याद्विनाशकाभावात् उत्तरसंयोगेन हि तन्नाश्येत, विभागे च नष्टे नोत्तरसंयोग इति चेन्न तन्नोऽयत् कर्मात्पन्नं तेन यथा विदुश्यदवस्यतन्तो विभागो जनितस्तथा तदंशोरपि विभागो जननीयः साऽप्यारम्भकसंयोगविरोध्येव तेनांशुतन्तुविभागेन तन्वाकाशविभागस्तेन चोत्तरसंयोगस्तेन †ततः कर्मनाशः यद्वा यच्च तन्नो यदा कर्म तदंशोर्वापि तदैव कर्म तच्च कर्म विदुश्यदवस्यतन्तु तदवयवाकाशादिदेशाद्युपदेव विभागानारभते सर्वेषां विभागानामारम्भकसंयोगाविरोधित्वात् तथाच कारणमंशुरकारणञ्चाकाशादि तद्विभागात् कार्यस्य तन्तोकार्येणाकाशादिना यो विभाग उत्पन्नस्तदनन्तरोत्पत्तिकेन संयोगेन तन्तुसमवेतस्य कर्मणो विनाश इति। क्वचिद्वाभ्यां तद्यथा तन्तुवीरणयोः संयोगे मति तन्ववयवेऽंशौ कर्म वीरणेच क-

वि० स्तत्रकारणाकारणविभागेन कार्याकार्यविभागो जन्यते इति, अयमस्माद्विभजते इति प्रवृत्तसिद्धोऽयं विभागगुणः संयोगनाशेन नान्यथासिद्ध इति संक्षेपः ॥ १० ॥

\* कर्मणस्तादवस्थं विनाशकाभावादिति क्वचित् पाठः ।

† कृतः कर्मनाश इति क्वचित् पाठः ।

सू० संयोगविभागयोः संयोगविभागाभावोऽणुत्व-  
महत्त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥ ११ ॥ कर्मभिः कर्माणि  
गुणैर्गुणा अणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति ॥ १२ ॥

येतसिद्धभावात् कार्यकारणयोः संयोगवि-  
भागौ न विद्येते ॥ १३ ॥

उ० श्लोकेकः कालः अणुकर्मणाऽऽन्तरविभागस्तेन च संयोगस्य  
तन्वारम्भकस्य विनाशः वीरणकर्मणा च तन्तुवीरणवि-  
भागस्तन्तुवीरणसंयोगनाशश्च तन्वारम्भकसंयोगनाशानन्तरं  
तन्तुनाशस्तन्तुवीरणसंयोगनाशानन्तरं वीरणस्य प्रदेशान्तर-  
संयोगस्ताभ्यामाश्रयनाशसंयोगाभ्यां विभागनाशः ॥ १० ॥

ननु संयोगेऽपि संयोगोऽस्तु विभागेऽपि विभाग इति-  
प्रसङ्गनिवारणार्थमाह ।

यथाऽणुत्वमहत्त्वे नाणुत्वमहत्त्ववती तथा संयोगविभा-  
गौ न संयोगविभागवन्तौ ॥ ११ ॥ द्वितीयञ्च सूत्रं व्याख्या-  
तमेव ॥ १२ ॥

ननु द्रव्ययोरवयवावयविनोः संयोगः कथं नेत्यत आह ।

वि० संयोगविभागयोः संयोगविभागशून्यतामाह ।

संयोगविभागौ न संयोगविभागवन्तौ यथाऽणुत्वमहत्त्वे  
नाणुत्वमहत्त्ववती गुणानां निर्गुणत्वादित्यर्थः ॥ ११ ॥ कर्मभि-  
रिति सूत्रं स्पष्टार्थं स्मरणार्थं वा पुनरुक्तम् अस्यार्थः प्रागे-  
वाभिहितः ॥ १२ ॥

ननु अकथवावयविनोः कथं न संयोगविभागावित्वाशङ्कयामाह ।



सू० गुणत्वात् ॥ १४ ॥

गुणोऽपि विभाव्यते ॥ १५ ॥

उ० अमम्बन्धयोर्विद्यमदनत्वं युतसिद्धिः पृथगाश्रयाश्रितत्वं वा तदभावस्त्ववयवावयविनोरित्यर्थः ॥ १३ ॥

इदानीं प्रसङ्गाच्छब्दार्थयोः साङ्केतिकं सम्बन्धं साधयितुं प्रकरणान्तरम्, तत्र पूर्वपक्षमाह ।

संयोगस्येतिशेषः, तथाच गुणस्य शब्दस्य गुणः संयोगः कथं स्यात् अर्थेन घटादिनेत्यर्थः ॥ १४ ॥

किञ्च विषयोऽपि क्वचिद्रूपरमादिलक्षणत्वेन संयोगो न सम्भवति गुणे गुणानङ्गीकारादित्याह ।

गुणोऽपि विषय इतिशेषः गुणोऽपि रूपादिः शब्दस्य

वि० युतसिद्धिः परस्परसम्बन्धशून्ययोरवस्थानं कार्यकारणयो-  
वरयवावयविनोर्न संयोगविभागौ वर्तन्ते युतसिद्धिभावात् नहि  
घटाद्यवयवौ कपालाद्यवयवासम्बन्धः सन् तिष्ठति येन तयोः  
संयोगविभागा सम्भाष्येयातामिति ॥ १३ ॥

ननु शब्दार्थयोः कथं संयोगः सम्भवति शब्दस्य गुणत्वेन  
गुणवत्त्वासम्भवात् नच नस्येव तयोः संयोग इति वाच्यं तथा  
सत्यसम्बद्धत्वाविशेषेण घटादिशब्दात् पटादिशब्दबोधापत्तेरि-  
त्यतः पदपदार्थयोः शक्तिसम्बन्धं व्यवस्थापयिष्यन् पूर्वपक्षयति ।

प्रतिपादकस्य शब्दस्य गुणत्वात् तत्र प्रतिपाद्यस्य घटादः  
संयोगो न सम्भवतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

यत्र प्रतिपाद्योऽपि गुणस्तत्र नितरां तथेत्याह ।

सू० निष्क्रियत्वात् ॥ १६ ॥

असति नास्तीति च प्रयोगात् ॥ १७ ॥

उ० विषयो नतु तेन समं संयोगः सम्बन्ध इत्यर्थः यद्वा गुणो-  
ऽपि शब्देन विभाव्यते प्रतिपाद्यते तेन च शब्दस्य न संयोगः  
सम्बन्ध इत्यर्थः ॥ १५ ॥

किञ्च कस्यचिदाकाशादेर्द्रव्यस्य नान्यतरकर्मजः संयो-  
गो नोभयकर्मजः शब्दस्यापि निष्क्रियत्वादित्याह ।

शब्दस्य कस्यचिदर्थस्य चेति शेषः ॥ १६ ॥

सम्बन्धे बाधकान्तरमाह ।

असत्यपि घटपटादौ, नास्ति गेहे घटः, नास्ति पटः,  
श्रुतपूर्वो गकारो नास्ति, अभृत् पटः, पटो भविष्यतीत्या-

वि० गुणोऽपि विभाव्यते गुणो रूपादिः शब्दैः प्रतिपाद्यते तत्रोभ-  
योर्गणत्वात् संयोगसम्बन्धो न सम्भवतीत्यर्थः ॥ १५ ॥

एवं गगनादिशब्दप्रतिपाद्ये आकाशादिद्रव्येऽपि संयोगस्य  
सम्बन्धता न सम्भवति प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोः कर्मशून्यत्वेन  
क्रियाजन्यस्य संयोगस्यासम्भवादित्याह ।

गगनादिशब्दस्य गगनादेश्च निष्क्रियत्वात् संयोगो न सम्भ-  
वतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

प्रतिपाद्यस्यावर्त्तमानत्वादपि संयोगो न सम्भवतीत्याह ।

असति अविद्यमाने नास्तीति चकाराद्भविष्यतीति च प्रयो-  
गदर्शनात् तथा चातीतघट इदानीं नास्ति परदिने घटो भवि-  
ष्यतीत्यादिप्रयोगेण अतीतानागतघटयोर्बाधो भवति न च ताभ्यां  
शब्दस्य संयोगादिः सम्भवतीत्यर्थः ॥ १७ ॥

सू० शब्दार्थावसम्बन्धौ ॥ १८ ॥

संयोगिनोदण्डात् समवायिनोविशेषाच्च ॥ १९ ॥

उ० द्विप्रयोगदर्शनादित्यर्थः । तथाचासता घटादिना शब्दस्य न संयोगो नवा समवाय इति भावः ॥ १७ ॥

किञ्चात इत्यत आह ।

शब्दार्थयोः संयोगस्येनास्ति तदेतदायातं शब्दार्थावसम्बन्धावेवेत्यर्थः ॥ १८ ॥

ननु संयोगसमवाययोरन्यतरसम्बन्धः कथं नस्यादित्यत आह ।

दण्डी पुरुषः हस्ती कुञ्जर इति प्रत्ययौ स्तः, तत्र प्रथमः संयोगात्, द्वितीयः समवायात् हस्तेऽवयवविशेषे कुञ्जरस्य समवायाधीनः प्रत्ययः, हस्तः समवायितया यस्यास्ति स हस्तीति विशेषादिति विशेष एव हस्तादौ समवायसम्बन्धाद्विशेषणत्वं नतु तन्वादीनामपि तन्तुमान् पट इत्यादिर-

वि० माभूत् संयोगादिः पदपदार्थयोः सम्बन्धः का नो हानिरित्यत आह ।

शब्दार्थयोः संयोगादिसम्बन्धासम्भवे तावसम्बन्धावेव स्यातां तथा चातिप्रसङ्ग इति भावः ॥ १८ ॥

शब्दार्थयोः संयोगादिसंसर्गावगाहौ प्रत्ययोऽपि नास्तीत्याह ।

दण्डात् दण्डमवगाह्य संयोगिनः दण्डसंयोगिनः पुरुषस्य विशेषादवयवविशेषमवगाह्य समवायिनोऽवयविनः प्रतीतिर्भवतीतिशेषः तथाच यथा संयोगसम्बन्धावगाहौ दण्डी पुरुष इति

सू० सामयिकः शब्दार्थप्रत्ययः ॥ २० ॥

उ० वयस्विशेषणभावेन प्रत्ययो भवति, एवं घटशब्दान् घटो-  
ऽर्थदति प्रत्ययो न भवति, तथाच शब्दार्थयोर्न संयोगो  
नापि समवाय इति भावः ॥ १९ ॥

ननु यदि न संयोगो नवा समवायः शब्दार्थयोस्तर्हि  
केन सम्बन्धेन शब्देनियतमर्थं प्रतिपादयतीत्यत आह ।

सामयिक इति समय ईश्वरसङ्केतः अस्माच्छब्दादय-  
मर्थो बोद्धव्य इत्याकारः, यः शब्देयस्मिन्नर्थं भगवता सङ्के-  
तितः स तमर्थं प्रतिपादयति तथाच शब्दार्थयोरीश्वरेच्छैव

वि० प्रत्ययः समवायसम्बन्धावंगाही करी कुञ्जर इति प्रत्ययश्च खार-  
सिको लोकानां, तथा घटवान् घटशब्दः घटशब्दान् घट-  
इत्यादिप्रत्ययो नास्तीति पदपदार्थयोर्न संयोगो नवा समवायः  
सम्बन्ध इत्यर्थः । करी कुञ्जर इत्यादौ तु खानुयोगिकसमवायः  
संसर्गतया भासते, कपालं घटवदित्यादौ तु समवाय एवेत्यादि-  
कमूहनीयम् ॥ १९ ॥

इदानीं शाब्दबोधौपयिकं पदपदार्थयोः सम्बन्धं प्रदर्शयति ।

शब्दार्थप्रत्ययः सामयिकः समयरूपसम्बन्धप्रयोज्यस्तथाच  
पदपदार्थयोः समयरूपः सम्बन्ध एव शाब्दबोधनियामकः, सम-  
यश्च सङ्केतः, सच द्विविधो नित्य आधुनिकश्च, तत्र नित्यसङ्केतः  
शक्तिः, आधुनिकसङ्केतः परिभाषा, सङ्केतशास्त्राच्छब्दादयमर्थो-  
बोद्धव्यइत्याकारकः, अयं शब्द इममर्थं बोधयतित्याकार-  
कोवा तदुक्तम् ।

उ० सम्बन्धः स एव समयस्तदधीन इत्यर्थः, यथा नकुलदंष्ट्राय-  
 स्पृष्टा या काचिदोषधिः सा सर्व्वाऽपि सर्पविषं हन्ति, सच  
 समयः क्वचिद्भवहाराद्गृह्यते यथा प्रयोजकेन घटमान-  
 येत्युक्ते प्रयोज्यस्य कम्बुग्रीवावन्तमर्थमानयतो ज्ञानं तावदनु-  
 मिनाति तटस्थो बालः, इयमस्य प्रवृत्तिर्ज्ञानजन्या प्रवृत्ति-  
 त्वात् मत्प्रवृत्तिवत्, तच्च ज्ञानमेतद्वाक्यजन्यमेतदनन्त-  
 वित्वात्, एतज्ज्ञानविषयोऽयं कम्बुग्रीवावानर्थो घटपदवाच्य-  
 इत्यांवापोहापप्रक्रियया बालस्य घटपटादावर्थं व्युत्पत्तिः,

वि० “आजानिकश्चाधुनिकः सङ्केतोद्विविधः स्मृतः ।  
 नित्य आजानिकस्तत्र या शक्तिरिति गीयते ।  
 कादाचित्कस्वाधुनिकः शास्त्रकारादिभिः कृतः” ॥ इति ॥  
 शक्तियश्च व्यवहारादितो भवति तदुक्तम्,  
 “शक्तियश्च व्याकरणोपमानात् कोषाप्तवाक्याद्यवधारतश्च ।  
 सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धा वाक्यस्य शेषाद्विदते वेदन्ति” ॥  
 इति । धातुप्रकृतिप्रत्ययादीनां शक्तिमहे व्याकरणाद्भवति यथा  
 “कर्मणि द्वितीया” “कर्त्तरि परस्मैपदम्” इत्याद्यनुशासनात्  
 कर्मत्वादौ द्वितीयादेः, उपमानाद् गवादिसादृश्यज्ञानात् गवय-  
 त्वादजात्यवाच्छन्ने गवयादिपदानां शक्तियश्च, कोषात्  
 “गुणे शुक्लादयः पंसि गुणिलङ्गास्तु तद्वति” ।  
 “श्रुतिं गुणे तद्वदर्थः सुशीमः शिशिरोजडः” ॥  
 “चूर्णे क्षौदः समुत्पिङ्गपिङ्गलौ मृशमाकुले” ।  
 इत्यादिकात् श्रैत्यादौ शुक्लादिशब्दानां शक्तियश्च, कोकिलः पिक-  
 पदवाच्य इत्याद्याप्तवाक्यात् कोकिलादौ पिकादिपदानां शक्तियश्च,

उ० क्वचिच्च साक्षाद्वाक्वादेव यथाऽयं कम्बुपीवावानर्थो घट-  
 पदवाच्य इति, क्वचिदुपमानात् यथा, गोसदृशागवयः,  
 यथा मुद्गस्तथा मुद्गपर्णी, यथा माषस्तथामाषपर्णीत्यादि  
 साधर्म्योपमानात्, क्वचिन्निन्दाकांरादपि वाक्यात् यथा  
 धिक् करभमतिलम्वैष्टं दीर्घपीवं कठोरकण्टकाशिनम-  
 पसदं पशूनामिति निन्दावाक्यश्रवणानन्तरं तादृशपिण्ड-  
 मुपलभ्यायमसौ करभ इति व्युत्पत्तिः, क्वचित् प्रसिद्ध-  
 पदसामानाधिकरण्यात् यथा प्रभिन्नकमलोदरे मधूनि

वि० प्रयोज्यप्रयोजकव्यवहारात् गोत्वादिविशिष्टे गवादिपदानां श-  
 क्तिग्रहः, तथाहि यत्र प्रयोजकवृद्धेन गामानयेत्युक्तम्, तच्छ्रुत्वा  
 प्रयोज्यवृद्धेन गौरानीतः, तदवधार्य पार्श्वस्थोबालो गवानयनं  
 गामानयेति शब्दप्रयोज्यमवधारयति, ततश्च गां बधान अश्वमा-  
 नयेत्वावापोद्वापाभ्यां गवादिपदानां सास्त्राविशिष्टगवादौ शक्तिं  
 गृह्णाति, प्रसिद्धार्थकपदसामानाधिकरण्यात् “नीरूपः स्पर्शवान  
 वायुः” “सत्कृत्यालङ्कृतां कन्यां ददानः कूकुदः स्मृतः” इत्यादौ  
 रूपशून्यस्पर्शवदादौ वाख्यादिशब्दस्य कन्यादात्रादौ कूकुदादि-  
 शब्दस्य च शक्तिग्रहः, एवं वाक्यशेषादपि यथा यवपदस्य कङ्कु-  
 प्रभृतौ स्लेष्कानां दीर्घश्रुके च शिष्टानां व्यवहारात् व्यवहारादे-  
 कमात्रशक्तिः परिच्छेत्तुमशक्यत्वात् नानार्थत्वस्य चान्याय्यत्वात्  
 “यवमयश्चरु भवति” इति श्रुतौ यवपदस्यार्थसन्देहे,

“वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशतनम् ।

मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कश्चिप्रशालिनः” ॥

इति विध्यर्थ्याकाङ्क्षया प्रवर्त्तमानाद् कृषेयादीर्घश्रुक एव यवप-

७. मधुकरः पिवतीति वाक्यश्रवणानन्तरं भवत्ययमसौ मधुकर-  
रपदवाच्यः प्रभिन्नकमलोदरे मधुपानकर्तृत्वात्, यथा व  
सहकारतरौ मधुरं पिको रौतीति । तदेतदनुमानं धी  
शब्द एव वा प्रसिद्धपदसामानाधिकरणसामर्थ्याद्भ्रुत्पादकः,  
उपमानविशेष एव वा, मधुपानकर्तृत्वस्य भ्रमरादिव्यक्त्य-  
न्तरसाधर्म्यस्योपनयात् । समयश्च जातिमात्रे, व्यक्तेरात्ते-  
पत एवोपस्थितेरिति तौतातिकाः । जातौ व्यक्तौ चोभ-  
यशक्तिः किन्तु जात्यंशे ज्ञाता व्यक्त्यंशे स्वरूपसती प्रयोजि-

वि० दस् शक्तिग्रहः यथा वा “स्वाराज्यकामोऽधिष्ठेमेन यजेत”  
इत्यादिर्विधिशेषीभूतेभ्यः ।

“यन्न दुःखेन सम्भिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।

अभिलाषोपनीतञ्च तत् सुखं स्वःपदास्पदम्” ॥

इत्यादिवाक्येभ्यः स्वरादिपदस्य विजातीयसुखादौ शक्तिग्रहः ।  
क्वचिद्विवरणादपि यथा पचति पाकं करोतीति तुल्यार्थकवाक्यात्  
कृत्यादौ तिडादेः शक्तिग्रह इति तत्र जातावेव शक्तिर्नतु व्यक्तौ  
व्यभिचारादानत्याच्चेति मीमांसकाः, तत्रापि प्राभाकरमते व्यक्तिं  
विना जातिभानस्यासम्भवात्तुल्यवित्तवेद्यत्वादेव गामानयेत्यादौ  
व्यक्तेर्भानम्, भट्टमते च सामानाधिकरणसम्बन्धेन कर्मत्वादौ  
गोत्वादेः प्रथममन्वयबोधः पश्चात्तु कर्मतायां गोत्वत्तित्वस्यानुमानं  
भवतीति । मण्डनाचार्यमते व्यक्तेर्लक्षणाया भानं भवतीति ।  
तदेतज्जातिशक्तिमतं न समीचीनं गामानयेत्यादौ व्यक्तेः शाब्द-  
बोधविषयत्वस्यानुभवासिद्धस्य विना शक्तिमनुपपत्तेः, नच लक्षणाया  
व्यक्तेर्भानम्, मुख्यप्रयोगस्यासत्त्वे लाक्षणिकप्रयोगस्यासम्भवात्, नच

सू० एकं दिक्काभ्यामेककालाभ्यां सन्निकृष्टवि प्र-  
 • कृष्टाभ्यां परमपरञ्च ॥ २१ ॥

उ० कति प्राभाकराः । समयः शक्तिरेव व्यत्याकृतिजातयः  
 पदार्था इति वृद्धाः । गवादिपदानामिद्यं गतिः, गुणकर्मा-  
 दिवाचकपदानान्तु जातिव्यक्ती एवार्थ इति मयूखे विप-  
 च्छितम् ॥ २० ॥

इदानीमुद्देशक्रमप्राप्ते परत्वापरत्वे परस्परानुबद्धव्य-  
 वहारकारणतया शिष्यबुद्धिवैषद्यार्थं संक्षेपार्थञ्चैकग्रन्थेनाह ।

परमपरञ्चेति भावप्रधानो निर्देशः, उत्पद्यत इति शेषः,  
 यद्वा परमपरञ्चेति व्यवहार इति शेषः, इतिरुद्धाहार्यम्,  
 एका दिग् ययोस्तावेकदिक्कौ ताभ्यामेकदिक्काभ्यां पि-  
 ण्डाभ्यामित्यर्थः तुल्यदेशावप्येकदिक्कौ भवतः नतु ताभ्यां

वि० तुल्यवित्तिवेद्यतयाऽपि व्यक्तेर्भानं सम्भवति, कार्योभूतशाब्दबो-  
 धविषयतायाः कारणप्रयोज्यत्वस्यावश्यकत्वेन नियमरूपस्य तुल्य-  
 वित्तिवेद्यत्वस्य तत्राप्रयोजकत्वादिति तस्माज्जात्याकृतिर्वाश्रय-  
 क्तावेव गवादिपदानां शक्तिरितिमतमेवादरणीयम्, तदुक्तं गौ-  
 तमायै “जात्याकृतियत्कृत्यस्तु पदार्थः” इति ॥ २० ॥

क्रमप्राप्ते परत्वापरत्वे परीक्षितुमारभते ।

एका दिक् आधारतया ययोस्तावेकदिक्कौ मूर्त्ता ताभ्यां मूर्त्ताभ्यां  
 सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्यां बद्धतरसूत्र्यसंयोगाश्रयत्वाल्पतरसूत्र्यसं-  
 योगाश्रयत्वज्ञानविषयाभ्यां परमपरञ्चेति व्यवहारो जायते इत्य-



उ० परत्वापरत्वे उत्पद्येते व्यवह्रियेते वेत्यत उक्तं सन्निकृष्टविप्रकृ-  
 ष्टाभ्यामिति, सन्निकर्षः संयुक्तसंयोगाल्पत्वम्, विप्रकर्षस्तद्भूय-  
 स्त्वम्, तद्वद्भ्यामित्यर्थः एतेन समवायिकारणमुक्तम्, दिक्-  
 पिण्डसंयोगस्त्वसमवायिकारणम्, तथाहि प्राङ्मुखस्य पुरुष-  
 स्य प्राच्यावस्थितयोः पिण्डयोरेकस्मिन् संयुक्तसंयोगभूयस्त्वम-  
 परस्मिन् संयुक्तसंयोगाल्पतरत्वज्ञापेक्ष्य परत्वमपरत्वञ्चोत्-  
 पद्यते, असमवायिकारणमुक्तम्, सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्यां  
 विषयेण विषयिणं प्रत्ययमुपलक्षयति तथाचापेक्षाबुद्धेर्नि-  
 मित्तकारणत्वमुक्तम्, एकदिगवस्थितयोरेव परत्वापरत्वे उत्प-  
 द्येते इति न सर्वत्रोत्पत्तिः, एकस्यैव द्रव्यरूपेणाबुद्धिः समु-  
 त्पद्यते इति न सर्वथोत्पत्तिः, अपेक्षाबुद्धिनियमान्न सर्वदो-  
 त्पत्तिः, कारणशक्तेरुत्पन्नयोः प्रत्यक्षसिद्धत्वान्न परस्परश्र-  
 यत्वम्, अन्यथाहि नोत्पद्येयातां नवा प्रतीयेयातां परस्पर-

वि० र्थः, तथाच दैशिकपरत्वं प्रति बह्वतरसूत्र्यसंयोगाश्रयत्वज्ञानं  
 निमित्तकारणं तदाश्रये मूर्त्ते दिक्संयोगोऽसमवायिकारणं ता-  
 दृशज्ञानविषयोमूर्त्तः समवायिकारणम्, दैशिकापरत्वस्याल्पतर-  
 सूत्र्यसंयोगाश्रयत्वज्ञानं निमित्तकारणं तद्विषयोमूर्त्तः समवा-  
 यिकारणं तादृशमूर्त्ते दिक्संयोगोऽसमवायिकारणमिति, भवति  
 हि पाटलिपुत्रस्थस्य काशीमपेक्ष्य प्रयागः परः प्रथमामपेक्ष्य का-  
 श्यपरेतित्यवहारः, तद्विषयः परत्वं प्रयागे उत्पद्यते, तत्र बह्वतर-  
 सूत्र्यसंयोगाश्रयत्वेन तस्य ज्ञातत्वात्, काश्याश्चापरत्वं जायते चल्प-  
 तरसूत्र्यसंयोगाश्रयत्वेन तस्या ज्ञातत्वात्, एककालाभ्यामिति एकः

\* बुद्धेः समुत्पद्येते इति क्वचित् पाठः ।

उ० पेक्षायां हि द्वयोरनुत्पत्तिरप्रतीतिश्च स्यात् प्रतीयेते च पर-  
 • त्वापरत्वे, प्रतीतिश्च तयोर्नोत्पत्तिमन्तरेणेति, एककालाभ्या-  
 मिति कालिकपरत्वापरत्वे अभिप्रेत्य, तत्रैककालाभ्यामिति  
 एकोक्तमानः कालोययोर्युवस्यविरपिण्डयोः तावेकका-  
 लौ ताभ्यामेककालाभ्यामित्यर्थः, सन्निकर्षोऽल्पतरतपनप-  
 रिस्यन्दान्तरितजन्मत्वं, विप्रकर्षश्च बहुतरतपनपरिस्यन्दा-  
 न्तरितजन्मत्वम्, अत्रापि विषयेण विषयिणीं बुद्धिमुपलक्ष-  
 यति तेन युवस्यविरपिण्डौ समवायिकारणे, कालपिण्ड सं-  
 योगश्चासमवायिकारणम्, अल्पतरतपनपरिस्यन्दान्तरित-  
 जन्मत्वबुद्धिरपरत्वे बहुतरतपनपरिस्यन्दान्तरितजन्मत्वबु-  
 द्धिः परत्वे निमित्तकारणम्, एतेच परत्वापरत्वे अनियत-  
 दिग्देशयोरपि पिण्डयोरुत्पद्येते, तत्र दैशिकपरत्वापरत्वयोः  
 सप्तधा विनाशः, उत्पादस्तु युगपदेव द्वयोरन्यथाऽन्योन्याश्रयः  
 स्यात्, अपेक्षाबुद्धिनाशात्, संयोगस्यासमवायिकारणस्य ना-  
 शात्, द्रव्यस्य च समवायिकारणस्य नाशात्, निमित्तास-

वि० कालः संयोगितया ययोः पिण्डयोस्ताभ्यामेककालाभ्यां पिण्डाभ्यां  
 सन्निकृष्टविप्रकृष्टाभ्याम् अल्पतरतपनपरिस्यन्दबहुतरतपनपरि-  
 स्यन्दाश्रयतया ज्ञाताभ्यां परमपरश्चेति व्यवहारो भवति, भवति  
 हि युवानमपेक्ष्य स्यविरः परः स्यविरमपेक्ष्य युवाऽपर इत्या-  
 दिको व्यवहारस्तद्विषयस्य परत्वस्य समवायिकारणं स्यविरः, तत्र  
 महाकालस्य संयोगोऽसमवायिकारणम्, बहुतरतुर्द्वयक्रियाश्रय-  
 त्वज्ञानं निमित्तकारणम्, अपरत्वस्य च युवा र समवायिकारणम्,  
 युवशरीरमहाकालयोः संयोगोऽसमवायिकारणम्, स्यविराश्रि-

उ० मवाधिकारणयोर्नाशात्, निमित्तसमवाधिकारणयोर्नाशात्, निमित्तनाशसमवाधिकारणनाशसमवाधिकारणनाशेभ्यः । तत्रापेक्षाबुद्धिनाशात् तावत्, परत्वोत्पत्तिः परत्वमामान्यज्ञानं ततोऽपेक्षाबुद्धिविनाशस्तद्विनाशात् परत्वविशिष्टद्रव्यज्ञानकाले परत्वनाशः, द्वित्वनाशवदेव सर्व्वमूहनोयम् । असमवाधिकारणनाशादपि तद्यथा यदैवापेक्षाबुद्धिस्तदैव परत्वाधारे पिण्डे कर्म ततो यदैव परत्वोत्पत्तिस्तदैव दिक्पिण्डविभागस्ततो यदा परत्वसामान्यज्ञानं तदा दिक्पिण्डसंयोगनाशः ततः सामान्यज्ञानादपेक्षाबुद्धिनाशस्तदैव दिक्पिण्डसंयोगनाशात् परत्वापरत्वयोर्नाशः तत्र चापेक्षाबुद्धिनाशस्य परत्वनाशसमकालत्वान्न तन्नाशकत्वम्, नन्वसमवाधिकारणनाशादपि गुणनाशे आत्ममनःसंयोगनाशादपि संस्कारादृष्टादीनां विनाशे बज्ज व्याकुलं स्यादिति चेन्न विप्रकृष्टत्वेन परत्वस्य व्यापनात् परत्वाधारस्यान्यत्र गमने विप्रकर्षाभावात् परत्वनिवृत्तिरावश्यको न च तदा

वि० ततपनस्पन्दपेक्षयाऽल्पतरतपनस्पन्दाश्रयत्वेन यूनोज्ञानं निमित्तकारणम्, यद्यपि शरीराणां बाल्ययौवनवार्द्धक्यभेदेन भिन्नत्वात् युवस्थविरगततपनपरिस्पन्दानां वैपरीत्यमपि सम्भवति तथापि बज्जतरतपनपरिस्पन्दसमानाधिकारणवैजात्यवत्त्वज्ञानमेव स्थविरे कालिकपरत्वस्य कारणम्, अल्पतरतपनस्पन्दसमानाधिकारणवैजात्यज्ञानञ्च यून्यपरत्वस्य कारणमिति न च घटाद्यपेक्षया परमाशोरमि बज्जतरद्वैतक्रियासमानाधिकारणपृथिवी-

उ० नाशकान्तरमस्तीत्यन्यथाऽनुपपत्त्या संयोगनाश एव नाशकः  
 कल्प्यते, संस्कारादृष्टादेः कार्यस्य स्थितिसुखादेश्वरेणापि  
 दर्शनान्न तन्नाशकल्पना, उपलक्षणञ्चैतत् अवधेर्द्रष्टृस्य तद्देश-  
 संयोगिन्नाशादपि परत्वापरत्वे विनश्यतः युक्तेस्तुल्यत्वात्,  
 समवायिकारणनाशादपि क्वचित् परत्वनाशः तथाहि यदा  
 पिण्डावयवे समुत्पन्नेन कर्माणाऽवयवान्तरादिभागस्तदै-  
 वापेक्षाबुद्धिः, विभागात् पिण्डारम्भकसंयोगनाशः परत्वो-  
 त्पत्तिः, अग्रिमक्षणे संयोगनाशाद्द्रव्यनाशः परत्वसामान्य-  
 ज्ञानं, द्रव्यनाशात् परत्वनाशोऽपेक्षाबुद्धिनाशश्च सामान्य-  
 ज्ञानात्, तथाच यौगपद्यान्नापेक्षाबुद्धिनाशात् परत्वनाश-  
 इति, क्वचिद्द्रव्यनाशापेक्षाबुद्धिनाशाभ्यां परत्वनाशः तद्यथा  
 पिण्डावयवे कर्मापेक्षाबुद्धेरुत्पादस्ततोऽवयवान्तरविभागः  
 परत्वोत्पत्तिः तत आरम्भकसंयोगनाशसामान्यज्ञाने ततो-  
 द्रव्यनाशापेक्षाबुद्धिनाशौ ततश्च परत्वनाशः, क्वचिद्द्रव्यस्य सं-  
 योगस्य च नाशाभ्यां परत्वनाशः तद्यथा यदा द्रव्यावय-  
 वविभागस्तदैव पिण्डकर्मापेक्षाबुद्धोत्पादस्तदनन्तरमवय-

वि० त्वादिजातिमत्त्वज्ञानात् परत्वं कथं नेत्वद्यते इति वाच्यं बहूतर-  
 सूर्यक्रियासमानाधिकरण्यैककालीनद्वयावृत्तिजातिमत्त्वस्य विव-  
 क्षितत्वात् तादृशजातिश्च चैत्रत्वादिः सूर्यक्रियाऽपि तत्कालो-  
 त्तरकालीनान्यत्वेन विशेषणीया नातोऽशीतिवर्षजीविस्थविरचै-  
 चापेक्षया शतवर्षजीवियुवमंत्रे परत्वोत्पत्तिः, अथवा सूर्यपरि-  
 स्पन्दपूर्वोत्पन्नत्वं विप्रकर्षः तदनन्तरोत्पन्नत्वं सन्निकर्षः युवचै-  
 चाद्युत्पत्त्यधिकरणं यः सूर्यस्पन्दस्तत्पूर्वोत्पन्नत्वं स्थविरमैत्रादौ

सू० त्वाभ्यां व्याख्यातः ॥ २३ ॥ कर्मभिः कर्माणि ॥ २४ ॥

गुणैर्गुणाः ॥ २५ ॥

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः

॥ २६ ॥

उ० परत्वापरत्वादीनां मूर्त्तमात्रसमवेतत्वमुक्तं ज्ञानसुखादी-  
नाञ्चात्मसमवेतत्वं तत्र समवाय एव कइति शिष्यजिज्ञासा-  
मनुरेह्य बुद्धेरुद्देशक्रमप्राप्ताया अप लङ्घनात् समवायपर-  
त्वात्तमाह ।

कार्यकारणयोरित्युपलक्षणम्, अकार्यकारणयोरित्यपि  
द्रष्टव्यं तदुक्तं पदार्थप्रदेशाख्ये प्रकरणे “अद्युतसिद्धाना-  
माधार्याधारभूतानां यः सम्बन्ध इहेतिप्रत्ययहेतुः स स-  
मवायः” इति, असम्बद्धयोरविद्यमानत्वमद्युतसिद्धिः, इह  
कुण्डे दधि इह कुण्डे बदराणीतिवत् इह तन्तुषु पट इह  
वीरणेषु कट इह द्रव्ये द्रव्यगुणकर्माणि इह गवि गोत्वम्  
इहात्मनि ज्ञानम् इहाकाशे शब्द इतीहबुद्धिरत्यद्यमाना  
न विना सम्बन्धमुत्पत्तुमर्हति तेनानुमीयतेऽस्ति कश्चित्

वि० गुणानां द्रव्यसमवेतत्वस्योक्तत्वात् तत्र कः समवाय इति जिज्ञा-  
सानुरोधत् क्रममुल्लङ्घ्यापि समवायपरीक्षामारभते ।

( कार्यकारणयोरयवावयवविज्ञेयतः सम्बन्धात् इहेदमिति  
प्रत्ययः स समवायः, तन्तुषु पटः कपालेषु घटः वीरणेषु कट-  
इत्यादिप्रत्ययोहि पटादौ तन्वादिदृष्टित्वं विधयीकरोति तच्च

उ० सम्बन्धः, न चासौ संयोग एव, अन्यतरकर्मादीनां तदु-  
 त्यादकानामभावात् विभागपर्यवसानाभावाच्च सम्बन्धि-  
 चामयुतसिद्धत्वाच्च नियताधिकरणतयैवोच्चेयत्वात् अप्र-  
 त्यक्षत्वात्केकत्वान्नित्यत्वाच्च । नन्वेकस्मैत् समवायस्तद्वा द्रव्य-  
 त्वादीनां सङ्करप्रसङ्गः कर्मात्वासिमवायस्य द्रव्ये सम्भवात्,  
 मैवम्, आधाराधेयनियमादेवामङ्करात् यद्यपि य एव द्र-  
 व्यत्वसमवायः स एव गुणत्वकर्मात्वादीनामपि तथापि तेषां न  
 द्रव्यमाधारस्तत्र तेषामप्रतीतेः द्रव्येष्वेव द्रव्यत्वं प्रतीयते  
 गुणेष्वेव गुणत्वं कर्मास्त्रेव कर्मात्वं नत्वन्वत्त्रेत्यन्वयव्यतिरेक-  
 दर्शनादेव नियमः, यथा कुण्डदध्नेः संयोगाविशेषेऽपि  
 कुण्डमेवाधारो न दधीत्याश्रयाश्रयिभावनिर्यमस्तथा व्य-  
 ङ्गव्यञ्जकशक्तिभेदादिषाचापि नियम उपपत्त्यते नहि द्रव्येण  
 द्रव्यत्ववत् कर्मात्वाद्यप्यभिव्यज्यते तदुक्तम्,

“सम्बन्धेवहि भगवती वस्तुपगमे नः शरणम्” ॥

वि० दृष्टित्वं सम्बन्धविशेषनियमितमेवान्वयात् तन्मुमु चट इत्यादि-  
 प्रतीतिप्रसङ्गात् आश्रितेन तन्वादिदृष्टित्वस्य चटादौ सत्त्वात्,  
 इत्यस्य तादृशदृष्टितानिधामकः सम्बन्धः समवाय एव, अथय-  
 वावयविनाः संयोगासम्भवात्, कार्यकारणयोरित्युपलक्षणं गुण-  
 गुणिनाः क्रियाक्रियावतोर्जातियत्तयोर्नित्यद्रव्यविशेषपदार्थयोश्चा-  
 धाराधेयभावनियामकोऽपि समवाय एवेति मन्थम् । सम-  
 वाये प्रमाणन्तु गुणक्रियादिविशिष्टबुद्धिविशेषणविशेष्यसम्बन्ध-  
 विधया विशिष्टबुद्धित्वाद्दृष्टी पुरुष इति विशिष्टबुद्धिवदित्यनु-

उ० इति, नञ्धाधारत्वं प्रति विपरीता सम्बद्धिः, नहि भवति  
 द्रव्यं कर्मति, नवा भवति पटे तन्त्रव इति, एतेन वाच्यौ  
 रूपसमवायेऽपि वाच्यौ रूपमित्याधारतां न वाच्यौः प्रती-  
 यते तस्मात् स्वरभावशक्तिरेव सर्वत्र नियामिका, स चायं  
 नित्य अकारणकत्वात् भावानां हि समवायिकारणादु-  
 त्पत्तिनियमः, तदनुबुद्धे च निमित्तासमवायिनी, तथा च  
 समवायस्य समवायिकारणं यत् स्यात् तत् समवाया-  
 रेण तेनैव समवायेन वा, न तावदाद्यः, अनवस्थापातात्,  
 द्वितीयः, नहि स एव समवायः स्वेनैव समवायः सम्बन्ध-  
 तीत्यात्माश्रयात्, तन्तुषु पटसमवायः पटे रूपसमवाय-  
 इति प्रतीतिः कथमिति चेत् स्वरूपसम्बन्धेन, समवायान्त-  
 राङ्गीकारेऽनवस्थापातात्, तर्हीह 'पटरूपमित्यपीहप्रत्यय  
 स्वरूपसम्बन्धेनैव स्यात् किं समवायेनेति चेन्न तत्राति-  
 रिक्तसम्बन्धे बाधकाभावात्, तर्हीह भूतले घटाभाव इत्या-

वि० मानं तत्र च संयोगादिबाधात् समवायसिद्धिः नच स्वरूप-  
 सम्बन्धेनार्थान्तरमनन्तस्वरूपाणां सम्बन्धत्वाभ्युपगमे गौरवात्  
 नचैवमभावस्याप्यनया रीत्या सम्बन्धान्तरं सिद्धेदिति वाच्यं  
 यतोऽभावसम्बन्धस्य न नित्यत्वसम्भवस्तथा सति भूतले घटान-  
 यनानन्तरमपि घटाभावबुद्धिप्रसङ्गात् घटाभावस्य तत्सम्बन्धस्य  
 च नित्यत्वात् नाप्यभावस्य सम्बन्धान्तरमनित्यमङ्गीकर्तुं शक्यते  
 एकस्मिन्नेव भूतले सहस्रधा घटानयनापसारणादौ सम-  
 बन्धसहस्रकल्पनापत्तेस्तस्माद्घटापसारणकालीनभूतलादिस्वरूप एव

उ० चापि समवायः सम्बन्धान्तरं वा स्यादिति चेन्न स्वरूपसम्बन्धेनैव तद्रूपपत्तेः अन्यथा घटात्यन्ताभावान्योन्याभावयोर्नित्ययोरनेकसमवेतयोः सामान्यत्वापत्तेः प्रध्वंसस्य च समवेतकार्यत्वेन विनाशित्वापत्तेः प्रागभावस्य च समवेतानुत्पन्नत्वेनाविनाशित्वापत्तेस्तु नच भावत्वं तत्र तन्त्रम्, भावत्वस्यापाद्यत्वात्, अभावेऽस्त्येव वैशिष्ट्याख्यं सम्बन्धान्तरमिति भाट्टाः, तत्र यदि सर्वाभावव्यक्तीनामेकमेव वैशिष्ट्यं तदा घटवत्यपि घटाभावप्रत्ययप्रसङ्गः पटाभाववैशिष्ट्येनैव घटाभाववैशिष्ट्यमत्त्वात्, घट एव तत्र घटाभावधोप्रतिबन्धक इति चेत् वैशिष्ट्यसम्बन्धेन प्रतिबन्धकाभावस्यैव तत्र सत्त्वात्, नचाश्रयस्वभाव एव तादृशा येन न तत्र घटाभावाभिव्यक्तिः, घटापसारणानन्तरं तत्रैव घटाभावप्रतीतिः । तत्रापि रूपनाशानन्तरं कथं न रूपवत्ताप्रत्ययः समवायस्य नित्यत्वादेकत्वाच्चेति चेत्, रूपनाशादेव तदप्रतीतिरूपपत्तेः, समवायप्रतिबन्धिः प्रत्यक्षमयूखे भोचित एवेत्यास्ताम् ॥ २६ ॥

द्रव्यादिभ्यः पञ्चभ्यो भेदं साधयन्नाह ।

वि० घटाभावसम्बन्धः स्वीकरणीयः घटकालस्य सम्बन्धाघटकतया घटकाले न घटात्यन्ताभावप्रतीतिः, इत्यस्य भूतलादौ घटाद्यभावस्य स्वरूपसम्बन्धस्वीकारस्यावश्यकत्वेनाभावान्तरस्यलेऽपि स्वरूपस्यैव सम्बन्धत्वमभावप्रत्ययानामेकविधसम्बन्धावगाह्निवसानुभवसिद्धत्वादिति ॥ २६ ॥

ननु समवायो द्रव्ये गुणादिषु वाऽन्तर्भवतु किन्तस्यातिरिक्त-



सू० द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधोभावेन व्याख्यातः ॥ २७ ॥  
तत्त्वभावेन ॥ २८ ॥

उ० भावः सत्ता, यथा सत्ता न द्रव्याद्यात्मिकां विलक्षणबु-  
द्धिवेद्यत्वात् तथा समवायोऽपि नत एव द्रव्यादिभ्योभिन्नः  
द्रव्यत्वगुणत्वपलक्षणं कर्मत्वाद्यपि द्रष्टव्यम् ॥ २७ ॥

एकत्वं माधयति ।

व्याख्यातमिति शेषः तत्त्वमेकत्वंभावेन सत्तया व्याख्यातम्,  
यथैका सत्ता सर्वत्र सद्बुद्धिप्रवर्तिका तथैक एव समवायः  
सर्वत्र समवेतबुद्धिप्रवर्तकः खलिलङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गा-  
भावाच्च नहि समवायस्य विशेषलिङ्गं भेदकं लिङ्गमाकल-

वि० पदार्थत्वकल्पनेनेत्यत आह ।

भावेन सत्तया द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधो द्रव्यत्वगुणत्वाभावो व्या-  
ख्यातः उक्तः तथाच सत्ता यथा द्रव्यत्वगुणत्वशून्या विलक्षण-  
बुद्धिविषयत्वात् समवायोऽपि विलक्षणबुद्धिविषयत्वान्न द्रव्यत्वा-  
दिमानित्वर्थः इदमुपलक्षणं कर्मत्वादिप्रतिषेधोऽपि ज्ञेयः ॥ २७ ॥  
समवायस्य नानात्वं निराकरोति ।

तत्त्वं तद्व्यक्तित्वमेकमात्रव्यक्तित्वमिति यावत् समवायस्येति  
शेषः, भावेनेति व्याख्यातमिति शेषः । यथा द्रव्यं सत् गुणः सन्  
कर्मं सदित्येकाकारप्रतीतिविषयत्वात् नानात्वसाधकप्रमाणाभा-  
वात् साधवाच्च सत्ता एका, तथा घटः समवेतः पटः समवेत-  
इत्याद्यनुगतप्रतीतिविषयत्वात् भेदकप्रमाणाभावात् साधवाच्च

उ० यामो येन नानात्वमभ्युपगच्छामः, अतएव नित्यः देशका-  
 लादिभेदेऽप्यभिन्नस्त्वं सत्तावदेवानित्यत्वायोगात्, ननु सम-  
 वायोयद्यद्यं सम्बन्ध एव तदा तन्तुपटयोः पटरूपयोर्वा वि-  
 श्लेषः स्यादिति चेन्न युतसिद्धिभङ्गांदिश्लेषानुपपत्तेः नहि  
 रूपरूपवतोरवयवावयविनोर्वाऽसम्बद्धयोर्विद्यमानत्वमस्ति  
 येन विश्लेषः स्यात्, युतसिद्धिरेवापाद्यत इति चेन्न कदा-  
 चिदपि तथाऽननुभवेनापाद्यबाधात् । समवायो नानाऽ-  
 नित्यश्चेति प्राभाकरास्तच्चानुपपन्नं रूपं नष्टमिति हि  
 प्रत्ययो नतु रूपसमवायोनष्ट इति कस्यापि प्रत्ययः ।  
 प्रत्ययः समवाय इति नैयायिकास्तदप्यनुपपन्नं समवायो-

वि० समवायोप्येक एवेत्यर्थः । सच नित्यस्तस्योत्पादविनाशयोः प्रमा-  
 णाभावात् तत्कल्पने कल्पनागौरवात् समवायस्यैकत्वेन तन्ना-  
 श्नाभ्युपगमे तन्नाशदशायां मित्ये द्रव्ये द्रव्यत्वादेर्विशिष्टानुभवानु-  
 पपत्तेश्च । यत्तु नीलो नष्टः रक्त उत्पन्न इति प्रतीतिर्नीलादिसम-  
 वायविषयिणी समवायस्थानित्यत्वनातावसाधिकेति प्राभाकर-  
 मतं तन्मन्दम् उक्तप्रतीतौ समवायस्थानुल्लेखात् अन्यथा घटो-  
 नष्ट इत्यादिप्रतीतेरपि समवायविषयकत्वसम्भवेन घटादेरपि  
 नित्यत्वप्रसङ्गादिति । वैशेषिकमतानुयायिनस्तु समवायस्य प्रत्यक्षं  
 न भवति समवायोऽतीन्द्रियश्चेतनान्यासमवेतभावत्वादाकाशा-  
 दिवदित्यनुमानेन तस्यातीन्द्रियत्वसिद्धेरित्याहुः । न्यायमतानु-  
 यायिनस्तु इन्द्रियसम्बन्धविशेषणताप्रत्यासत्त्या समवायस्य प्रत्यक्षं  
 भवत्येव, अतीन्द्रियत्वसाधकोक्तानुमानस्याप्रयोजकत्वात् सम-

उ० ऽतीन्द्रियः आत्मान्यत्वे सत्यसमवेतभावत्वात् मनोवत्काला-  
दिवदा ॥ २८ ॥

इति श्रीभाङ्करे वैशेषिक\*सूत्रोपस्कारे सप्तमाध्यायस्य  
द्वितीयमाल्लिकम् ॥ \* ॥

समाप्तश्चायं सप्तमाध्यायः ।

वि० वायेः लौकिकप्रत्यक्षविषयः योग्यप्रतियोगिकत्वे सति विशेषे-  
षणतया योग्यवृत्तित्वात् भूतलादिवृत्तिघटाद्यन्ताभावादिवदि-  
त्यादेः प्रत्यक्षसाधकानुमानस्य सत्त्वाच्चेत्याङ्गरितिसंक्षेपः ॥ २८ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य्य-प्रणीतायां क-  
णादसूत्रविरचितौ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयमाल्लिकम् ॥ \* ॥

समाप्तश्चायं सप्तमाध्यायः ।

\* सूत्रसंस्कारे इति क्वचित् पाठः ।

सू० द्रव्येषु ज्ञानं व्याख्यातम् ॥ १ ॥

उ० शिष्यजिज्ञासानुरोधत् क्रमलङ्घनमिदानीमुद्देशक्रम-  
मालम्बते तत्र बुद्धिपरीक्षा अष्टमाध्यायार्थः, आत्मसाधनाय  
पूर्वं बुद्धिरूपा तां स्मारयन्नाह ।

द्रव्येष्विति विषयेण विषयिणं तृतीयाध्यायमुपलक्षयति ।  
“इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः” “आ-  
त्मेन्द्रियार्थमन्निकर्षाद्यन्निष्पद्यते तदन्यत्” इत्येताभ्यां सूचा-  
भ्यां ज्ञानं व्याख्यातमित्यर्थः । तत्र “बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानं प्रत्यय-  
इति पर्यायाः” इति समानतन्त्रे बुद्धिलक्षणे साह्यमतनिरा-  
सार्थं पर्यायाभिधानम् । साह्यादि बुद्ध्यादिष्वानामर्थ-  
भेदमाचक्षते तथाहि सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः,  
सा चैकैव, पुरुषास्तु परं भिद्यन्ते, ते च कृत्स्या नित्या अपरि-  
णामिना नित्यचैतन्यस्वभावाः, ते च पङ्क्तवोऽपरिणामित्वात्,  
प्रकृतिस्त्वन्वा जडत्वात्, यदा विषयभोगेच्छा प्रकृतिपुरुषभे-

वि० दानार्द्रगण्डमभितो भ्रमतोद्विरेफा-  
न्मूर्त्तानिवातिमलिनानखिलान्तरायान् ।  
विद्रावयन् प्रचलपुष्करफूलकृतेन  
देवः स वारणमुखः शरणां ममान् ॥

परत्वापरत्वे परीक्ष्य शिष्यजिज्ञासानुरोधत् मध्ये समवायं  
परीक्ष्य उद्देशक्रममालम्ब्याद्यमे बुद्धं परीक्षित्तिषुः पूर्वोक्तां तां  
स्मारयति ।

द्रव्येषु द्वयनिरूपणवाक्येषु तृतीयाध्याये इति यावत्, ज्ञानं  
२४२

उ० ददिदृक्षा च प्रकृतेर्भवति तदा सा पुरुषोपरागवशात् परिण-  
मते, तस्याश्चाद्यः परिणामो बुद्धिरन्तःकरणविशेषः, बुद्धि-  
रेव महत्तत्त्वं तदुक्तम् “प्रकृतेर्महान्” इति, सा च बुद्धि-  
दर्पणवन्निर्मला, तस्याश्च वहिरिन्द्रियप्रणाडिकयां विषया-  
कारो यः परिणतिभेदो घट इति पट इत्याद्याकारस्तज्ज्ञानं  
वृत्तिरिति चाख्यायते, स्वच्छायां बुद्धौ वर्त्तमानेन ज्ञानेन  
चेतन्यस्य पुरुषस्य भेदाग्रहादहं जानामीति योऽभिमान-  
विशेषः सैवोपलब्धिः, सक्चन्दनादि विषयमन्निकर्षादिन्द्रिय-  
प्रणाडिकयैव सुखदुःखाद्याकारो बुद्धेरेव यः परिणाम-  
विशेषः स प्रत्ययः, अतएव ज्ञानसुखदुःखेच्छादेषप्रयत्नसं-  
स्कारधर्माधर्माः सर्व्व एव बुद्धेः परिणामविशेषाः सूक्ष्मभा-  
त्रया प्रकृतावेव वर्त्तमाना अवस्थाभेदादाविर्भवन्ति तिरो-  
भवन्ति च, पुरुषस्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपः प्रतिविम्बते परं  
बुद्धाविति यन्मन्यन्ते तदनेन पर्य्याभिधानसूचितप्रमा-  
णेन निराक्रियते तथाहि बुद्धिशब्दो यदि बुध्यतेऽनयेति  
करणकृत्यन्नस्तदा मन एव तत्पर्य्यवस्यति, न च मनः प्रत्यक्षम्,  
बुद्धिस्त्वहं बुध्ने इति प्रत्यक्षवेद्यैव, न चान्तःकरणस्य ज्ञाना-  
दो धर्माः, कर्तृधर्मत्वेनैव तेषां सिद्धेः, भवति हि अहं जाने  
अहं प्रत्येमि अहमुपलभे इत्यहन्त्वसामानाधिकरण्येन प्रति-  
भासः, अभिमानोऽसाविति चेत् तात्त्विकत्वे बाधकाभावात्,

वि० व्याख्यातं कथितम्, आत्मानुमापकत्वेनेतिशेषः तच्चेदानीं परीक्ष-  
याथमितिभावः ॥ १ ॥

## सू० तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे ॥ २ ॥

उ० पुरुषस्यागन्तुकधर्मानाधारत्वं कूटस्थत्वं तदेव बाधकमिति चेन्नागन्तुकधर्माधारत्वेऽपि नित्यत्वसम्भवात् नहि धर्मा धर्मशैत्येकं तत्त्वं येन धर्मात्पादविनाशवेव धर्म्यत्पादविनाशौ स्यातां, तथाच य एव चेतयते स एव बुध्यते जानात्युपलभते प्रत्येति चेति नार्थान्तरकल्पना युक्तेतिदिक् ॥ १ ॥

तच्च ज्ञानं द्विविधं विद्या चाविद्या च, विद्याचतुर्विधा प्रत्यक्षलौकिकस्यत्यार्धलक्षणा, अविद्याऽपि चतुर्विधा संशयविपर्ययस्वप्नान्धवसायलक्षणा, तत्र यत्तैज्जिकं तदनिन्द्रियजम्, कुत एतदित्याह ।

आत्माऽत्र परात्मा स्वात्मा वा स्वात्मनि मानसस्य काचित्काहम्प्रत्ययस्याहं गौरः कृशोमहाबाहुरित्यादिप्रत्ययतिरस्कृतत्वात् स्वात्मनोऽप्यप्रत्यक्षतोक्ता, चकारादाकाशकालदिशां वायोः परमाणूनाञ्च द्रव्याणामुपग्रहः । इन्द्रियजमपि द्विविधं सर्वज्ञीयमसर्वज्ञीयञ्च, सर्वज्ञीयं योगजधर्मलक्षणया प्रत्यासत्त्या तत्तत्पदार्थसार्थज्ञानं, तथाहि परमाणवः प्रसक्ताः प्रमेयत्वादाभिधेयत्वात् सत्त्वात् । साम-

वि० नन्वात्मनः प्रत्यक्षसिद्धत्वात् ज्ञानस्य तस्मिन्नुक्तया पूर्वमभिधानमसङ्गतमत आह ।

तत्र परशरीरे, अधिष्ठातृत्वं सप्तम्यर्थः परशरीरौघिष्ठातात्मा एवं मनसु इमे द्वे अप्रत्यक्षे परात्मनसोः प्रत्यक्षाभावात् तयो-

उ० योविरहात् कथमेवं महत्त्वस्यापि प्रत्यक्षं प्रति कारणत्वात्  
 नच परमाणवो महान्तः, रूपवत्त्वस्यापि चाक्षुषप्रत्यक्षकार-  
 णत्वात् नच दिगादयोरूपवन्त इति चेन्नै योगजधर्मसह-  
 कारिणा मनसैव तत्सम्भवात् तदुपग्रहाच्चतुरादिनां वा, अ-  
 चिन्त्यप्रभावोहि योगजोधर्मा न सहकार्यन्तरमपेक्षते ।  
 विवादाध्यामितः पुरुषो न सर्वज्ञः पुरुषत्वादहमिवेत्यादि  
 तु प्राभाकरो न मीमांसाभिज्ञः पुरुषत्वादहमिवेत्यादिव-  
 द्विपक्षबाधकतर्कशून्यत्वादप्रयोजकम्, असर्वज्ञीयञ्च प्रत्यक्षं  
 द्विविधं सविकल्पकं निर्विकल्पकञ्च, सविकल्पकं ज्ञानं न  
 प्रमाणमिति कीर्त्तिदिङ्गागादर्थः तथाहि अभिलापसंसर्ग-  
 योग्यप्रतिभासं हि तत्, नह्यभिलापेन नाम्ना सम्भवत्यर्थस्य  
 सम्बन्धो येन घट इति पट इति वा नामानुरञ्जितः प्रत्ययः  
 स्यात्, नच जात्यादि परमार्थसत्, येन तद्वैशिष्ट्यं विषयेषु  
 इन्द्रियेण गृह्येत, नच सतः खलक्षणस्यासता सम्बन्धः सम्भ-  
 ति, नचासत् इन्द्रियगोचरः, तस्मादिन्द्रियेणालोचनं जन्यते  
 आलोचनमहिम्नाच सविकल्पकमुत्पद्यमानं तत्रार्थं प्रवर्त्तयत्  
 प्रत्यक्षमिति प्रमाणमिति चोच्यते इति, तच्चैतदनुपपन्नम-  
 भिलापसंसर्गयोग्यप्रतिभासञ्च भवेत् प्रमाणञ्चेन्द्रियार्थसन्नि-

वि० रनुमानार्थं तृतीयाध्याये “आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावो-  
 ऽभावश्च मनसोलिङ्गम्” इति सूत्रे “इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रिया-  
 र्थेभ्योऽर्थान्तरस्य हेतुः” इति सूत्रे च ज्ञानं कथितमिति पर्यव-  
 सितार्थः, इदमुपपन्नम्, शरीरादिभिन्नत्वेन स्वात्मनोऽप्यनुमा-

सू० ज्ञाननिर्देशे ज्ञाननिष्पत्तिविधिरुक्तः ॥ ३ ॥

उ० कर्षजन्यं स्यादिति सन्दिग्धव्यतिरेकित्वं, नामवैशिष्ट्यञ्च चा-  
 ल्पज्ञाने सम्भवत्येव, सुरभित्त्वं नुमितिवदुपनीतभानसम्भ-  
 वात् यदा संज्ञावैशिष्ट्यं प्रत्यक्षज्ञाने न भासते० संज्ञायाः  
 स्मरणमात्रम्, स्यतैव सार्थव्यावर्तिका, अभावज्ञाने प्रति-  
 योगिस्मरणवत्, जात्यादिकञ्च० वस्तुभूतं साधितमेवातः  
 सविकल्पकमपीन्द्रियार्थसन्निकर्षजत्वात् प्रत्यक्षम् । ननु नि-  
 र्विकल्पकं न व्यवहारप्रवर्तकं नवा व्यवहारविषय इति  
 किन्तत्र प्रमाणमिति चेत् सविकल्पकमेव, तद्वि विशिष्टज्ञा-  
 नम्, नच विशेषणज्ञानमन्तरेण तदुत्पद्यते विशिष्टज्ञाने  
 हि विशेषणज्ञानविशेष्येन्द्रियसन्निकर्षतदुभयसंसर्गाद्यहस्य  
 कारणत्वावधारणात् ॥ २ ॥

यत्र यथा ज्ञानं चत्कारणकञ्च तद्विषयदयितुमाह ।

ज्ञानान्तरान्निर्देष्टव्यं यत्रकारकं यद्विषयकं यद्गुणकं  
 तत्र ज्ञाननिर्देशे कर्त्तव्ये ज्ञानस्य निष्पत्तिविधिरुत्पत्ति-

वि० नार्थं “कारणाज्ञानात्” इत्यादिसूत्रेऽपि ज्ञानं कथितमिति  
 वेदितव्यम् ॥ २ ॥

ननु ज्ञानस्य किं कारणात्मिकाकाङ्क्षायामाह ।

ज्ञाननिर्देशे तृतीयाध्याये यत्र ज्ञानस्य निर्देशः कृतस्तत्रैव  
 तन्निष्पत्तिविधिरुत्पत्तिविधानं उक्तः “आत्मेन्द्रियार्थसन्निक-  
 र्षाद्यनिष्पद्यते तदन्यत्” इति सूत्रे ज्ञानस्य कारणाभ्यासात्कारण-  
 तथाचात्मा ज्ञानस्य समवायिकारणम्, आत्ममनःसंयोगोऽसम-



सू० गुणकर्मसु सन्निकृष्टेषु ज्ञाननिष्पत्तेर्द्रव्यं कार-  
णम् ॥ ४ ॥

उ० प्रकार उक्तः उच्यते इत्यर्थः आदिकर्माणि क्तविधानात् ॥  
॥ ३ ॥

कोदृशो निष्पत्तिविधिस्तमाह ।

गुणेषु रूपादिषु कर्मसु चोत्क्षेपणादिषु यज्ज्ञानं निष्प-  
द्यते तत्र द्रव्यं कारणं योग्यद्रव्यनिष्ठमेव तदुभयं गृह्यत ।  
द्रव्ययोग्यतैव तत्र तन्त्रम्, सन्निकर्षश्च तेषां द्रव्यघटित एव,  
संयुक्तसमवायेन तेषां ग्रहणात्, यद्यपि विषक्तचम्यकावयव-  
कर्पूरभाणानामयोग्यानां गन्धो गृह्यते तथापि सन्निकर्ष-  
घटकं तत्रायोग्यमपि द्रव्यमेव, यद्यपि शब्दघटे द्रव्ययो-  
ग्यता न तन्त्रं तत्रापि तत्रैव समवेतः शब्दो गृह्यत इति तदेव  
तन्त्रम्, नन्वदृष्टसन्निकर्षकल्पना कुतः क्रियते इति चेन्न

वि० वायिकारणम्, विषयसन्निकर्षो निमित्तकारणमिति तस्मिन्  
सूत्रश्रवोक्तमिति, प्रत्यक्षमधिष्ठित्य सन्निकर्षस्य हेतुता कथितेति  
वेदितव्यम् ॥ ३ ॥

सन्निकर्षोऽपि विशेषमाह ।

सन्निकृष्टेषु गुणकर्मसु यज्ज्ञानमुत्पद्यते तत्र द्रव्यं द्रव्यघटित-  
सन्निकर्षः इन्द्रियसंयुक्तद्रव्यसमवायः कारणं तथाच द्रव्यप्रत्यक्षे,  
इन्द्रियसंयोगस्य हेतुता, द्रव्यसमवेतस्य गुणादेः प्रत्यक्षे तु इन्द्रिय-  
संयुक्तद्रव्यसमवायः, शब्दरूपद्रव्यसमवेतप्रत्यक्षे अवगणसमवायः,

सू० सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषाभावात्तत एव  
ज्ञानम् ॥ ५ ॥

उ० ज्ञाननिष्पत्तेः कार्येण हि कारणमवश्यं कल्पनीयमिति  
भावः ॥ ४ ॥

अपरं ज्ञाननिष्पत्तिविधिमह ।

सामान्यं सत्ता तस्य विशेषा द्रव्यत्वगुणत्वकर्मात्वानि  
एवमेतेषामपि सामान्यानां विशेषाः पृथिवीत्वादिरूपत्वा-  
द्युत्क्षेपणत्वादीनि, तत्र द्रव्यगतानां सामान्यानां तत एव  
योग्याश्रयविशेषादेव तन्निबन्धनाच्च संयुक्तसमवायात् संयु-  
क्तसमवेतसमवायात् समवेतसमवायाच्च सार्व्वेन्द्रियं ज्ञानं  
गुणत्वे च संयुक्तसमवेतसमवायात् शब्दत्वकत्वाद्वा समवेत-  
समवायात् सत्तायाः संयुक्तसमवायात् संयुक्तसमवेतसमवा-  
यात् समवेतसमवायाच्च सार्व्वेन्द्रियं ज्ञानम्, गुणत्वे च संयु-  
क्तसमवायः समवायश्च न प्रत्यासत्तिरिति, ननु तत एव  
स्वाश्रयसन्निकर्षादेवेत्यवधारणानुपपत्तिः यतः सामान्ये वि-

वि० कारणं सर्व्वत्रैव द्रव्यघटितः सन्निकर्षो हेतुरित्यर्थः, तत्रापि चा-  
क्षुधे त्वाचेच द्रव्यस्य योग्यताऽपेक्षितेति विशेषः ॥ ४ ॥

सामान्यप्रत्यक्षेऽपि द्रव्यघटितसन्निकर्षः कारणमित्याह ।

सामान्यं सत्ता विशेषो द्रव्यत्वादि तेषु यज्ज्ञानं जायते, तत् तत-  
एव द्रव्यघटितसन्निकर्षादेव, ननु द्रव्यवत् कैवल्येन्द्रियसन्निकर्षेण  
कथं सामान्यानि न गृह्यन्ते इत्यत आह सामान्यविशेषाभा-

सू० सामान्यविशेषापेक्षं द्रव्यगुणकर्मसु ॥ ६ ॥

उ० शेषेषु च पृथिवीत्वादिषु सामान्यविशेषान्तरमस्यैव तत्स-  
न्निकर्षोऽपि कारणमेवात आह सामान्यविशेषाभावादिति  
नहि सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषा वर्तन्ते, अस्या-  
प्रसङ्गात् तेषां परस्परं भेदप्रतीतिः स्वरूपत एव, गवेतरा-  
वृत्तित्वे सति सकलगोवृत्तित्वलक्षणापाधिमन्नेदादा, एवं  
घटत्वादावपीति ॥ ५ ॥

ननु सामान्यविशेषेषु सामान्यविशेषाभावाद्यथा तन्निर-  
रपेक्षमेव ज्ञानं तथा द्रव्यगुणकर्मसुपि किं तन्निरपेक्षमेव,  
नेत्याह ।

ज्ञानमुत्पद्यते इति प्रकृतम्, द्रव्यगुणकर्मसु द्रव्यत्वगुणत्व-  
कर्मत्वविशिष्टबुद्धिस्तावदस्ति विशिष्टज्ञानञ्च विशिष्टविशेष-

वि० वादिति सामान्यविशेषोद्रव्यत्वं तदभावात् तथाच सामान्यानां  
द्रव्यत्वशून्यतया इन्द्रियसंयोगस्यासम्भवेन द्रव्याघटितसन्निकर्षा-  
याह्यत्वात् द्रव्याघटितसन्निकर्षयाह्याख्येव सामान्यानीतिभावः ॥  
॥ ५ ॥

द्रव्यगुणकर्मप्रत्यक्षे कश्चिद्विशेषमाह ।

द्रव्यगुणकर्मसु यत्प्रत्यक्षात्मकं ज्ञानं जायते तत्सामान्यविशेष-  
सापेक्षं जातिविशेषप्रकारकं तेषां सामान्यानामिव स्वरूपतेभा-  
नासम्भवादित्यर्थः ॥ ६ ॥

सू० द्रव्ये द्रव्यगुणकर्मापेक्षम् ॥ ७ ॥

उ० ऐन्द्रियमन्निकर्षादुत्पद्यते इति समान्यविशेषापेक्षा तत्रा-  
वश्यकी, भवति हि द्रव्यमिदं गुणोऽयं कर्मोदमिति विशिष्ट-  
ज्ञानमिति भावः ॥ ६ ॥

तत् किं द्रव्येऽपि सामान्यविशेषमात्रापेक्षमेव ज्ञानमत-  
आह ।

ज्ञानमुत्पद्यते इति प्रकृतं घण्टावान् शुक्लोगौर्गच्छ-  
तीति ज्ञानम्, तत्र द्रव्यं घण्टा विशेषणम्, शुक्ल इति गुणः,  
गच्छतीति कर्म, तथाच नागृहीतविशेषणा विशिष्टप्रतीति-  
र्नवा विशेषणसम्बन्धमन्तरेणेति भवति द्रव्यज्ञाने द्रव्यगुण-  
कर्मापेक्षेति भावः ॥ ७ ॥

तत् किं गुणकर्माणोरपि गुणकर्मापेक्षा नेत्याह ।

वि० ननु शुक्लोऽयमित्यादिप्रत्यक्षस्याऽप्यनुभवसिद्धत्वात् तत्र च  
जातेरप्रकारकत्वात् कथं द्रव्यगुणकर्मास्त्वविशेषणोक्तमत आह ।

द्रव्ये यत्प्रत्यक्षं जायते तद्द्रव्यगुणकर्मापेक्षं द्रव्यगुणकर्माणि वि-  
शेषणविधयाऽपेक्षते, द्रव्यगुणकर्माप्रकारकमपीति पर्यवसितार्थः,  
तथाचायं दाडवान्, अयं शुक्लः, अयं चलतीत्यादिप्रत्यक्षम् इद-  
मंशे द्रव्यादिप्रकारकमपि सम्भवतीति भावः ॥ ७ ॥

गुणकर्माप्रत्यक्षन्तु गुणकर्माप्रकारकं त भवतीत्याह ।

सू० गुणकर्मसु गुणकर्माभावाद्गुणकर्मापेक्षं न वि-  
द्यते ॥ ८ ॥

समवायिनः श्रैत्याच्छ्रैत्यबुद्धेश्च श्रैते बुद्धिस्ते एते  
कार्यकारणभूते ॥ ९ ॥

उ० ज्ञानमिति शेषः । गुणे गुणविशिष्टबुद्धेः कर्मसु कर्मवि-  
शिष्टबुद्धेरभावात् गुणकर्मापेक्षा न तद्गतबुद्धिः, नहि गुणे  
गुणे, नवा कर्मसु कर्म, येन तत्र विशेषणत्वेन भासतेति  
भावः ॥ ८ ॥

ननु गुणकर्माणोः स्फुरणाद्गुणबुद्धौ कर्मबुद्धौ च कथं  
न गुणकर्मापेक्षेत्याशङ्क्य प्रकरणान्तरमारभते ।

समवायिन इत्यभिधानात् सम्बन्धस्य कारणतामाह  
तथाच गुणे गुणसमवायाभावात् कर्मसु कर्मसमवायाभा-

वि० गुणकर्मसु विशेष्येषु गुणकर्मापेक्षं गुणकर्मप्रकारकं प्रत्यक्ष-  
ज्ञानं न विद्यते कुत इत्यत आह गुणकर्माभावात् गुणकर्मसु  
गुणकर्माभावादित्यर्थः, तथाचाभान्तस्य तादृशज्ञानं न सम्भव-  
त्येवेतिभावः ॥ ८ ॥

ननु गुणकर्मसु गुणकर्माभावेऽपि विशिष्टबुद्धौ विशेषण-  
ज्ञानस्य हेतुत्वात् गुणकर्मज्ञानदशायां गुणकर्मसु तद्विशिष्ट-  
बुद्धिर्दुर्वीरैवेत्यत आह ।

समवायिनः श्रैत्यसमवायिनः श्रैत्यात् शुक्लरूपात् श्रैत्यबुद्धेः  
शुक्लरूपात्मकविशेषणबुद्धेश्च श्रैते शुक्लरूपवति शङ्खादौ बुद्धिः

सू० द्रव्येषनितरेतरकारणाः ॥ १० ॥

उ० वाच न तत्तद्ज्ञाने गुणकर्मापेक्षा विशेषणत्वेन, विशेष्यत्वेन त्वस्येव, एवञ्च श्रेतः शङ्ख इत्यादिप्रतीतौ शैत्यसमवायस्य शैत्यगुणस्य शैत्यविशेषणज्ञानस्य च कारणत्वमित्युक्तं तथाच विशेषणसम्बन्धविशेषणतज्ज्ञानानां विशिष्टप्रत्यक्षप्रमां प्रति कारणत्वमिति तेन पूर्वोक्तं सर्वं सिद्धति ॥ ९ ॥

ननु यथा घण्टावानित्यत्र द्रव्यापेक्षं द्रव्यज्ञानम्, तथा-  
ऽयं स्तम्भो, अयं कुम्भ इत्यादावपि द्रव्याविशेषणकबुद्धौ द्रव्य-  
बुद्धिः कारणं तथाच कापि प्रथमतो द्रव्यबुद्धिर्न स्यादि-  
त्यत आह ।

बुद्ध्य इतिशेषः । स्तम्भज्ञानानन्तरकालीनमपि कुम्भ-

वि० शुक्लोऽयमिति शुक्लरूपविशेषणिका प्रत्यक्षप्रमिति भवति अतस्ते  
शुक्लरूपवत्त्वशुक्लरूपबुद्धौ कौथ्यस्य शुक्लरूपप्रकारकप्रत्यक्षप्रमा-  
त्मकस्य कारणभूते इत्यर्थः, तथाच समवायसम्बन्धेन शुक्लरूप-  
प्रकारकप्रत्यक्षप्रमां प्रति शुक्लरूपवत्त्वं शुक्लरूपज्ञानञ्च द्वयमेव  
तन्त्रमिति गुणकर्मासु गुणकर्मारूपविशेषणविरहाद्न तत्प्रका-  
रकप्रत्यक्षप्रमिति रितिभावः । समवायसम्बन्धेन शैत्यवत्त्वस्य तन्त्र-  
तासूचनाय सूत्रे समवायिन इत्युक्तमिति ॥ ९ ॥

ननु अयं घट इतिप्रत्यक्षानन्तरमयं पट इति प्रत्यक्षं यत्र  
जायते तत्र घटज्ञानं पटज्ञाने कारणं तत्पूर्ववर्तितात् तथाच  
घटज्ञानं विना पटज्ञानं कदाऽपि न स्यादिति तदस्याशङ्कं निर-  
स्यति ।

सू० कारणयौगपद्यात् कारणक्रमाच्च घटपटादि-  
बुद्धीनां क्रमो न हेतुफलभावात् ॥ ११ ॥

उ० ज्ञानं न स्तम्भज्ञानकार्यं स्तम्भस्य कुम्भं प्रति विशेषणत्वा-  
योगात् ॥ १० ॥

ननु घटपटादिबुद्धीनां क्रमो दृश्यते क्रमस्य कार्य-  
कारणभावघटित एवेत्यत आह ।

कारणक्रमाधीनो घटपटादिबुद्धीनां क्रमो, न हेतु-  
फलभावाधीनः, कारणक्रम एव कथमत आह कारणा-  
यौगपद्यादिति बुद्धीनां यौगपद्यं प्रतिषिद्धमतो नाना-

वि० द्रव्येषु पूर्वात्तरभावापन्नद्रव्याविशेषणकद्रव्यबुद्धिषु अनितरं-  
तरकारणा न परस्परकारणाः, बुद्ध्य इति पूरणीयं तथाच  
घटज्ञानस्य पटज्ञानपूर्ववर्तित्वेऽपि नियतपूर्ववर्तित्वाभावात्  
कारणत्वमितिभावः ॥ १० ॥

तन्नेवं तत्र घटज्ञानमेव कथं न पटमालम्बते कार्यकारण-  
भावमन्तरेण तयोः क्रमस्यासम्भवादित्यत आह ।

घटपटादिबुद्धीनां क्रमः पौर्वापर्यरूपः न हेतुफलभावात्  
न कार्यकारणभावात् किन्तु तादृशबुद्धिकारणानां घटपटादि-  
सन्निकर्षादीनां क्रमात् पौर्वापर्यात् चकारोऽनुक्तमयौगपद्यं स-  
मुच्चिनोति अयञ्कारः “क्रम” इत्यनन्तरं योजनीयः, एवञ्च घट-  
पटादिबुद्धीनामयौगपद्यं तत्कारणानां सन्निकर्षादीनामयौगप-  
द्यादित्यर्थः, यत्र तु घटपटसन्निकर्षादीनामस्त्रियौगपद्यम्, तत्र  
युगपदेव सन्निकृष्टयावत्पदार्थविषयिणी समूहालम्बनात्मिका  
बुद्धिरुत्पद्यते इति कारणयौगपद्यात् कार्ययौगपद्यं कारणा-

७० बुद्धिकारणानामपि न यौगपद्यम्, यदि तु कारणयौगपद्यं  
 • भवेत्तदा कार्ययौगपद्यमप्यपद्येत, तथाच युगपज्ज्ञाना-  
 नुत्पत्तिर्मनसोऽलिङ्गमिति बह्वभज्येतेतिभावः ।

इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रेषु प्रकारेऽष्टमाध्यायस्य प्र-  
 थमाह्निकम् ॥\*॥

वि० क्रमात् कार्याक्रमश्चेत्यपि बोद्धव्यम् । बुद्धिः प्रथमतोद्विविधा  
 अनुभूतिः स्मृतिश्च, अनुभूतिरपि काणादमते द्विविधा प्रत्यक्षानु-  
 मितिभेदात्, प्रत्यक्षमपि प्राणजादिभेदेन षड्विधं, सविकल्पक-  
 निर्विकल्पकभेदेन च द्विविधं लौकिकालौकिकभेदेन द्विविधश्च,  
 अनुमितिरपि केवलान्वयिकेवलव्यतिरेकान्वयव्यतिरेकिरूपत्रिवि-  
 धानुमानजन्यत्वात् त्रिविधा, तत्रेदंवाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादिकं केव-  
 लान्वयनुमानम्, एङ्गवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वादित्यादिकं केवल-  
 व्यतिरेकनुमानम्, अन्यैरव्यतिरेकनुमानन्तु पर्वतोवज्जिमान् धू-  
 मादित्यादिकमिति । स्मृतिश्चेत्पदानात्कनिश्चयाधीनसमानाका-  
 रकभावनाख्यसंस्काराधीना एकविधैव, प्रकारान्तरेणापि बुद्धि-  
 र्द्विविधा प्रमाऽप्रमाचेति, तद्वति तत्रकारिका बुद्धिस्तत्रमा तद-  
 भाववति तत्रकारिका बुद्धिस्तदप्रमा, संशयनिश्चयभेदेनापि बुद्धि-  
 र्द्विविधा, तत्रैकधर्मिणि विरुद्धभावाभावप्रकारकज्ञानं संशयः,  
 तदभावाप्रकारकं तत्रकारकं ज्ञानं तन्निश्चयः, एतन्मते सादृश्य-  
 ज्ञानस्थले पदज्ञानस्थले च तदुत्तरं लिङ्गपरामर्शात्पत्तैवानु-  
 मिति भवति प्रमाणं द्विविधं प्रत्यक्षमनुमानश्चेति यथार्थानुभवश्च  
 प्रमा एतच्चाद्ये सूत्रकृदेव वक्ष्यतीति संक्षेपः ॥ ११ ॥

इति श्रीजयताराणतर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-प्रणीतायां कणा-  
 दसूत्रविरक्तौ अष्टमाध्यायस्याष्टमाह्निकम् ॥०॥



सू० अयमेष त्वयाकृतं भोजयैनमिति बुद्ध्यपेक्षम् ॥  
॥ १.॥

उ० प्रात्यक्षिकस्य सविकल्पकस्य निर्विकल्पकस्य च ज्ञानस्य  
निष्पत्तिविधिमभिधायेदानो विशिष्टवैशिष्ट्यप्रत्यक्षमभिधा-  
तुमेकदेशमाह ।

सन्निकृष्टे वस्तुनि तावदयमिति बुद्धिरुत्पद्यते, विप्रकृष्टे  
च वस्तुन्येष इति, क्रियायां स्वतन्त्रोऽयमिति बुद्धिमपेक्ष्य,  
त्वयेति कर्तृत्वापरत्वाबुद्धिः, कारणव्यापारविषयत्वबुद्धि-  
मपेक्ष्य कृतमितिकर्मबुद्धिः, अयं भुजिक्रियायां कर्ता  
प्रयोजकश्चायमिति बुद्धिमपेक्ष्य भोजयेति, नियोज्यानयो-

वि० बुद्धिविशेषणिका अपि काश्चिद्बुद्धयो भवन्तीत्याह ।

अयमेष इति, अयं घट एष पट इति ज्ञानं बुद्ध्यपेक्षं बुद्धि-  
विशेषणकम् इदमेतदेतः प्रत्यक्षविषये शक्तत्वात् प्रत्यक्षरूपा बु-  
त्तादृशज्ञाने विशेषणम्, युष्मच्छब्दस्य स्वजन्यबोधाश्रयतया वक्तुर-  
भिप्रायविषये शक्तत्वात् त्वयाकृतमिति वाक्यजन्यं ज्ञानं बुद्धिवि-  
शेषणकं भोजयैनमिति इदमर्थकैः शब्दजन्यज्ञानमपि प्रत्यक्षा-  
त्मकबुद्धिविशेषणकम् अतएव “विद्यामथैनं विजयां जयाञ्च” इति  
भट्टिकाव्यम्, यदा उक्तस्य पश्चादुक्तौ इदम् शब्दस्य एनादेशः  
तादृशस्य च पूर्वोत्पन्नशब्दबोधविषयबोधकत्वात् तज्जन्यज्ञानं  
बुद्धिविशेषणकमेवेति, शिष्यव्युत्पादनार्थं कतिपयप्रयोगप्रदर्शन-  
मिति ॥ १ ॥

सू० दृष्टेषु भावाददृष्टेषुभावात् ॥ २ ॥

अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु ॥ ३ ॥

उ० ऋत्यापारस्य विषयोऽयमितिबुद्ध्यपेक्षमेनमिति एवमन्यदपि बुद्ध्यपेक्षमूहनीयम् ॥ १ ॥

अन्वयव्यतिरेकपरिच्छेद्यमेवैतदित्याह ।

यदाऽयमितिबुद्धेः सन्निकृष्टोविषयः, एष इतिबुद्धेर्वि-  
प्रकृष्टोऽपि बुद्ध्यारूढोविषयः, त्वयेतिबुद्धेः सन्निकृष्टः कर्त्ता  
विषयः, कृतमितिबुद्धेः कर्म विषयः, भोजयेतिबुद्धेर्नि-  
योज्यनियोक्तारौ विषयौ, एनमितिबुद्धेस्तदुभयव्यापारो  
विषयः, सन्निकृष्टो भवति तदैतादृशी बुद्धिरुत्पद्यते, अदृ-  
ष्टेषु तु विषयेषु चैता बुद्ध्यः प्रादुर्भवन्तीत्यन्वयव्यति-  
रेकगम्यमेवैतदित्यर्थः ॥२॥

इदानीं प्रकरणान्तरमारभते ।

एतेषां द्रव्यगुणकर्मणामर्थ्यमानत्वं तेन तेन विधिनेतां

वि० एतेषां पदानां ज्ञानघटितधर्मावच्छिन्ने शक्तिरन्वयव्यतिरेक-  
गम्येत्याह ।

दृष्टेषु ज्ञानेषु ज्ञानघटितधर्मावच्छिन्नेष्वितियावत्, भावात्  
इदमादिशब्दप्रयोगस्य सत्त्वात्, अदृष्टेषु अज्ञानेषु ज्ञानघटित-  
धर्मानवच्छिन्नेष्वितियावत्, अभावात् तादृशप्रयोगस्यासत्त्वात्  
बुद्धिघटितधर्मावच्छिन्न एव तेषां शक्तिरित्यर्थः ॥ २ ॥

अर्थपदपरिभाषां दर्शयति ।

अर्थ इति शब्दे द्रव्यगुणकर्मसु वर्तते स च तत्र पारिभाषिकः,

सू० द्रव्येषु पञ्चात्मकत्वं प्रतिषिद्धम्\* ॥ ४ ॥

उ० तेन तेषु त्रिषु वैशेषिकाणामर्थ इति परिभाषा, अर्थपदेन चयाणामुपस्थितेः, तदुक्तं प्रशस्तदेवाचार्यैः “चयाणामर्थ-शब्दाभिधेयत्वञ्च” इति ॥ ३ ॥

प्रकरणान्तरमवतारयति ।

द्रव्येष्विति द्रव्यपदार्थनिरूपणप्रकरणमुपलक्षयति प्रत्यक्षप्रत्यक्षाणामित्यादिसूत्रेण शरीरादीनां पञ्चात्मकत्वं पञ्चभूतात्मकत्वं प्रतिषिद्धं निराकृतम् । यथा शरीरस्य न नानाप्रकृतिकत्वं तथा वक्ष्यमाणानां प्राणादीनामिन्द्रियाणामपि, तेन तेषां प्रतिनियतगुणग्राहकत्वं सिध्यतीति भावः ॥ ४ ॥

यदर्थमिदमारब्धं तदाह ।

वि० गौतमीये तु “रूपरसगन्धस्पर्शाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः” इति प्रमेयान्तःपातिनेऽर्थस्य लक्षणसूत्रम्, अतः पञ्चेन्द्रियग्राह्येषु पञ्चसु गुणेष्वपि अर्थशब्दस्य परिभाषान्तरं समानतन्वसिद्धम् ॥ ३ ॥  
किमिन्द्रियं किमप्रकृतिकं किमर्थग्राहकमित्यभिधातुं पीठं रचयति ।

द्रव्येषु द्रव्यनिरूपणसूत्रेषु पञ्चात्मकत्वं पञ्चभूतप्रकृतिकत्वं प्रतिषिद्धं निराकृतं तथाच शरीरादिकं किञ्चिदपि द्रव्यं न पञ्चभूतप्रकृतिकं किन्वेकैकभूतप्रकृतिकान्येव सर्वाणि शरीराणीन्द्रियाणि चेति भावः ॥ ४ ॥

\* प्रतिषिद्धमिति शेषः कश्चित् कश्चित् पुस्तके ३; दृश्यते ।

सू० भूयस्त्वाद्गन्धवत्त्वाच्च पृथिवी गन्धज्ञाने प्रकृतिः

॥ ५ ॥

उ० गन्धो ज्ञायतेऽनेनेति गन्धज्ञानं घ्राणं तत्र पृथिवी पृथि-  
वीमात्रं प्रकृतिः उपादानकारणम्, कुत एतदित्यत आह  
गन्धवत्त्वात् नहि गन्धवत् निर्गन्धेनारभ्यते इत्युक्तम्, गन्धव-  
त्त्वञ्च वहिरिन्द्रियाणां ग्राह्यजीतीयगुणवत्त्वनियमात् मि-  
द्धम्, तर्हि पार्थिवत्वाविशेषेऽपि शरीरावयवान्तराणां न  
गन्धव्यञ्जकत्वं किन्तु घ्राणस्यैवेति कुतो नियम इत्यत आह  
भूयस्त्वादिति इतरद्रव्यानभिभूतैः पार्थिवावयवैरारब्धत्वमेव  
भूयस्त्वं पारिभाषिकञ्चेतद्भूयस्त्वं समानतन्त्रेऽपि ॥ ५ ॥

इन्द्रियान्तरेऽप्येतदितिदिशति ।

वि० एवं घ्राणेन्द्रियं गुणेषु गन्धमात्रग्राहकं पृथिवीमात्रप्रकृतिकश्चे-  
त्याह ।

गन्धस्य ज्ञानं प्रत्यक्षं यस्मात् तद्गन्धज्ञानं घ्राणेन्द्रियं तत्र, पृ-  
थिवी तन्मात्रं, प्रकृतिः समवायिकारणम्, भूयस्त्वात् जलाद्यनभि-  
भूतभागारब्धत्वात् गन्धवत्त्वाच्च, रसाद्यग्राहकत्वात् घ्राणेन्द्रियं  
न जलाद्यारब्धम्, गन्धवत्त्वञ्चात्र ग्राहकतासम्बन्धेन गन्धग्राहक-  
त्वादिति फलितार्थः, तथाच घ्राणेन्द्रियं पार्थिवं रूपादिषु मध्ये  
गन्धस्यैव व्यञ्जकत्वात् कुङ्कुमगन्धाभिव्यञ्जकघृतादिवदित्यनुमानेन  
घ्राणस्य पृथिव्युपादानकत्वं सिध्यतीतिभावः, एतच्च स्पष्टार्थमत्रो-  
क्तम् ॥ ५ ॥

इन्द्रियन्तरमध्येकैकभूतप्रकृतिकमित्याह ।

सू० तथापस्तेजोवायुश्च रसरूपस्पर्शाविशेषात् ॥ ६ ॥

उ० रसनचक्षुष्ट्वगिन्द्रियाणां प्रकृतिरितिशेषः, तेन यथा-  
संख्यं रसनादीनामवादयः प्रकृतयः, तत्तत्प्रतिनियतार्थग्रा-  
हकत्वात्, अत्रापि नियमे भूयस्त्वमेव तन्त्रम्, रसादिमत्त्वे च  
रसनादीनां बाह्यजातीयविशेषगुणवत्तनियम एव प्रकृत-  
मित्युक्तम्, एवञ्च विशिष्टादृष्टोपगृहीतकर्णशङ्कुत्ववच्छिन्नो-  
नभोदेश एव श्रोत्रम् ॥ ६ ॥

इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपकारेऽष्टमाध्यायस्य द्वि-  
तीयमाह्निकम् ॥ ० ॥

समाप्तस्वयमष्टमोऽध्यायः ।

वि० रसग्रहणे रसने आपः प्रकृतयः, रूपग्रहणे चक्षुषि तेजः,  
प्रकृतिः, स्पर्शग्रहणे त्वगिन्द्रिये वायुः प्रकृतिः, रसनेन्द्रियादीनां  
रसाद्येकैकमात्रग्राहकत्वात्, रसगन्धस्पर्शाविशेषादिति काचित्त्वो  
लिपिकरप्रमादप्रयुक्तः पाठस्तत्र कथञ्चिदर्शसङ्गमनेऽपि तेज-  
हृत्यस्य हेत्वकथनेन सन्दर्भविरोधोदुर्वार एवेति, रसनादीनां  
अकीयत्वादिसिद्धिप्रकारः प्राक्प्रदर्शित एवादरणीयः ॥ ६ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-प्रणीतायां अ-  
ष्टादसूत्रविद्यतौ अष्टमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ।

समाप्तस्वयमष्टमोऽध्यायः ॥ ३७६ ॥

६० क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत् ॥ १ ॥

उ० संयोगसमवायान्यतरसन्निकर्षजलौकिकप्रत्यक्षनिरूपणा-  
नन्तरं तदितरप्रत्यासत्तिजन्यलौकिकालौकिकप्रत्यक्षव्युत्पा-  
दनफलकं नवमाध्यायमाह ।

कार्यमिति शेषः, प्रागिति कार्योत्पत्तेः प्राक्, कार्यं  
घटपटादि, असत् तत्कालीनस्वजनकाभावप्रतियोगीत्यर्थः,  
अत्र हेतुः क्रियागुणव्यपदेशाभावात्, यदि तदानीमपि  
कार्यं घटादि सदेव स्यात् तदा क्रियावत्त्वेन गुणवत्त्वेन च  
व्यपदिश्येत, यथोत्पत्ते घटे घटस्तिष्ठति घटश्चलति रूपवानयं  
दृश्यते घट इत्यादि प्रकारेण व्यपदिश्यते न यथोत्पत्तेः प्रा-  
गपि व्यपदेशोऽस्ति तेन गम्यते तदानीमसन्निति, स च व्यूहमा-  
नेषु वीरणेषु योज्यमानेषु तन्तुषु चक्रारूढायां मृदि कुला-  
लादिव्यापारेषु अनुवर्त्तमानेषु भविष्यत्यत्र कटः पटो घटो-  
वेति सार्वलौकिकी प्रत्यक्षप्रतीतिः, चतुर्विस्कारणानन्तरं  
जायमानत्वात्, न च संयोगसमवायान्यतरघटिता प्रत्यास-  
न्निरच प्रभवति, तस्मादिन्द्रियसम्बद्धविशेषणता प्रत्यासत्तिरच

वि० हेरन्वाभापदद्वन्द्वं निधाय च्छदयाम्बुः ।

कात्वादनवमाध्यायं विद्वेषामि कुतूहलात् ।

अभावप्रत्यक्षमभिधित्युभूमिकामाह ।

घटादिकार्यं स्रोत्यत्तेः प्रागसत्, क्रियाया गुणस्य च व्यपदेशस्य  
थवहारस्याभावात्, घटे जाते यथा घटस्तिष्ठति घटश्चलति

उ० तन्मम, ननु चान्योन्याश्रयः सत्यां विशेषणतायां तत्प्रतीतिः प्रतीतौ च विशेषणतेति चेन्न विशेषणता हि तदुभयस्वरूपमेव उपसृष्टप्रत्ययजननयोग्यं तच्च प्रतीतिः पूर्वमपि सदेव तदुक्तं न्यायवार्तिके “समवायेऽभावे च विशेषणविशेष्यभावः” इति, सचाद्यं प्रागभावः प्रतियोगिजनकः, नहि घटे जाते स एव घटस्तदानीमेवोत्पद्यते तत्र कारणान्तरसत्त्वेऽपि कारणवैकल्यमनुस्रियमाणं स्वप्रागभाववैकल्यमेतनुसर्तुमर्हति, तद्वदोत्पत्तौ स एव घटः प्रतिबन्धक इति चेत्तर्हि प्रतिबन्धकाभावात्वेन तस्य कारणत्वमवर्जनीयम्, ननु यदि घट एव तस्याभावस्तदा घटे नष्टे तदुन्मज्जनापत्तिरिति चेन्न घटनाशस्यापि तद्विरोधित्वात् नहि विरोधिसत्त्वकालेऽपि विरोध्यन्तरप्रदुर्भाव इति, नह्यनयोर्देशकतोविरोधो येन गोत्वाश्रित्वत् समानकालीनत्वं स्यात् किं तर्हि कालकृतस्तथाच कथमेककालावस्थायित्वमभवेत् ॥ १ ॥

अभावान्तरं प्रतीतिबलसिद्धमाह ।

वि० घटः श्यामइत्यादि क्रियागुणव्यवहारो भवति पूर्वन्तु न तथा व्यवहार इत्यर्थः, अतः सत्कार्यवादेनिरस्त इति, घटोत्पत्तेः पूर्वं घटप्रागभावस्तिष्ठतीति सच्च प्रतियोगिजनकः कथमन्यथा कारणान्तर सत्त्वे उत्पन्नस्य न पुनरुत्पादः, इहेदानीं घटो भविष्यतीत्यादि प्रत्यक्षमपि प्रागभावे मानमिति ॥ १ ॥

ध्वंसरूपोऽभावोप्यस्तीत्याह ।

सू० सदसत् ॥ २ ॥

असतः क्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् ॥

॥ ३ ॥

उ० यथा कारणव्यापारात् पूर्वं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां कार्य-  
स्यासत्त्वं प्रमीयते, तथा विनाशकस्य मुद्गरादेर्व्यापारान-  
न्तरं सदेव कार्यं घटादि इदानीमसदिति प्रत्यक्षानुमाना-  
भ्यामेव प्रमीयते, सूचायमभावोऽध्वंस इति गीयते, भवति  
हि घटोनष्टोऽध्वस्त इदानीं, श्रुतपूर्वोऽगकारोनास्तीत्या-  
दिधीरितिभावः ॥ २ ॥

ननु घट एवावस्थाविशेषे ध्वंसव्यवहारं करोति नतु  
घटादन्यस्तस्य ध्वंस इत्यत आह ।

सदिति सूत्रशेषः, असतः सत् अर्थान्तरं, कुत इत्यत आह  
क्रियागुणव्यपदेशाभावादिति नहि प्रध्वंसकालेऽपि वर्त्तते

वि० सदपि घटादिकार्यं मुद्गरप्रहारानन्तरम् असत् अवर्त्तमानं  
ध्वंसप्रतियोगीत्यर्थः तथाच घटो नश्यति घटोऽध्वस्त इत्यादि-  
प्रत्यक्षसिद्धोऽध्वंसात्मकोऽभावोऽप्यस्तीतिभावः ॥ २ ॥

ननु मुद्गरप्रहारानन्तरं तिरोभूतः सन् मृद्येव घटस्तिष्ठति  
तादृशावस्थान्वितो घट एव ध्वंसव्यवहारविषय इत्यत आह ।

असतो अवर्त्तमानस्य क्रियागुणव्यपदेशाभावात् क्रियागुण-  
व्यवहाराभावात् असत् इति सावधारणं तथाचावर्त्तमानस्यैव  
क्रियागुणव्यपदेशाभावो नहि मुद्गरप्रहारानन्तरं घटश्चलति



ख० सत्त्वासत् ॥ ४ ॥

उ० घटः, अस्ति घटः, इदानीं रूपवान् घटः, घटमानयेत्या-  
दिव्यपदेशस्तदितो वैधर्म्यादमतः सदर्थान्तरमिति ॥ ३ ॥

प्रांगभावप्रध्वंसौ साधयित्वाऽन्योन्याभावं साधयितु-  
माह ।

यत्र सदेव घटादि असदिति व्यवह्रियते तत्र तादात्म्या-  
भावः प्रतीयते भवति हि असन्नश्चागवात्मना, असन् गौरस्या-  
त्मना, असन् पटो घटात्मना, अघटः पटः, अनश्चागैः, अगौ-  
रश्च इत्यादिप्रतीतिः, तदस्यामश्यान्योन्याभाववान् गैः  
पटान्योन्याभाववान् घट इत्यन्योन्याभाव एव तादात्म्या-

वि० श्यामो घटोदृश्यते इति व्यवहारलोकानां तस्मात्सव्यवहार-  
विधये न घटस्तस्यावर्त्तमानत्वात् किन्तु अर्थान्तरम्, घटादन्य  
एव ध्वंसनामा जन्याभाव इति ॥ ३ ॥

भेदरूपोऽभावोऽप्यस्तीत्याह ।

सदपि घटादि भूतलादौ असत् अन्योन्याभावप्रतियोगि भू-  
तलं न घट इत्यादिप्रतीतिः, ननु घटवति भूतले कथं घटस्यान्यो-  
न्याभावः स्यास्यति प्रतियोगिरूपस्य घटस्य विरोधिः सत्त्वा-  
दिति चेन्न ह्यर्थं कश्चित् अभावं प्रति येन केनापि सम्बन्धेन  
प्रतियोगिना विरोधिता, तथा सति समवायसम्बन्धावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकघटाद्यन्ताभावस्यापि भूतलेऽसत्त्वप्रसङ्गात् किन्तु  
प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनैव प्रतियोगी अभावस्य विरोधी  
तथाच अन्योन्याभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकः सम्बन्धस्तादा-

ख० यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ ५ ॥

उ० भावापरनामा भासते तदत्र तादात्म्यं प्रतियोगितावच्छेद-  
कम्, प्रतियोगिसमानाधिकरणञ्चायमभावः, भवति हि  
घटो न भूतलमिति प्रतीतिः, नित्यञ्च, कदाचिदपि घट-  
पटयोस्तादात्म्यासम्भवात् ॥ ४ ॥

ददानीं चतुर्थमभावमत्यन्ताभावाख्यमाह ।

अतः पूर्वाक्तादभावत्रयात्, यदन्यदसत् तदसत्, तदत्य-  
न्तासत्त्वम्, असदित्युभयत्र भावप्रधानो निर्देशः, तत्रैकमस-  
दुद्देश्यमपरमसदधिष्यम्, तथाचोक्ताभावत्रयभिन्नो योऽभावः  
सोऽत्यन्ताभाव इति पर्यवसन्नोऽर्थः, तत्र प्रागभावंस्य उत्त-  
रावधिकत्वम्, प्रध्वंसस्य पूर्वावधिकत्वम्, अन्योन्याभावस्य प्र-

वि० व्याख्य एव तेन सम्बन्धेन च घटस्य स्वस्मिन्नेव सत्त्वेन भूतत्वादा-  
वसत्त्वात्तत्र घटान्योन्याभावसत्त्वे न कोऽपि विरोधः, अयञ्चान्यो-  
न्याभावोऽत्यन्ताभाववद्विद्य एवेति बोध्यम् ॥ ४ ॥

अत्यन्ताभावं साधयति ।

अत उक्तादभावत्रयादन्यद् यत् असत् भावभिन्नम्, तदसत्  
अत्यन्तासत्त्वं भावप्रधाननिर्देशोऽयम्, अत्यन्ताभावाख्यमिति तु  
फलितार्थः, अयञ्चात्यन्ताभावस्तुरीयोऽभावः सदावनञ्च, प्रति-  
योगि तत्प्रागभाव तत्प्रध्वंसास्त्रय एवात्यन्ताभावस्य विरोधिनः,  
रक्तघटे श्यामं रूपं नास्ति श्यामघटे रक्तं रूपं नास्तीति प्रतीती  
च ध्वंसप्रागभाववग्राहेते नत्वत्यन्ताभावमिति प्राञ्चः, नवास्तु

ख० असदिति भूतप्रत्यक्षाभावात् भूतस्मृतेर्विरोधि-  
प्रत्यक्षवत् ॥ ६ ॥

उ० तिगोगिसमानाधिकरणत्वमत्यन्ताभावस्य तु त्रितयवैधर्म्य-  
मतश्चतुर्थोऽयमभावः ॥ ५ ॥

इदानीं प्रकरणान्तरमारभते तत्र प्रध्वंसे तावत् प्र-  
त्यक्षसामयोमाह ।

असदिति तिकारेण प्रत्यक्षाकारं ज्ञानमाह, तेनासन्  
घटः, नष्टो घटः, ध्वस्त इदानीं घट इति प्रत्यक्षप्रतीतिरस्ति  
तत्र दृष्टान्तो विरोधिप्रत्यक्षवदिति विरोधिने घटादेर्यथा

वि० ध्वंसप्रागभावयो नात्यन्ताभावविरोधित्वमतो ध्वंसादिकालावच्छे-  
देनाप्यत्यन्ताभावो वर्त्तत एव, यत्र भूतले पूर्वमपसारितं घटादिकं  
पुनरानीतं तत्र घटकालस्याभावसम्बन्धाघटकत्वाद्घटसत्त्वकाले न  
घटात्यन्ताभावबुद्धिरित्याहुः, केचित्तु यत्र भूतले पूर्वं घटादिकं  
स्थितमथापसारितं पुनरानीतञ्च तत्रोत्पादविनाशशाली साम-  
यिकनामा चतुर्थः संसर्गाभाव एव प्रतीयते नात्यन्ताभाव-  
इत्याहुः ॥ ५ ॥

अभावचतुष्टयं व्युत्पाद्य ध्वंसप्रत्यक्षं व्युत्पादयति ।

असदिति असन् घटः नष्टो घटः ध्वस्तो घट इत्यादिप्रत्यक्षं  
विरोधिप्रत्यक्षवत् प्रतियोगिघटप्रत्यक्षवत् अनुभवसिद्धं लौ-  
किकसन्निकर्षजन्यज्ञेयार्थः तत्र च प्रतियोगिप्रत्यक्षं चक्षुरादिसं-  
योगजन्यं ध्वंसप्रत्यक्षन्तु चक्षुरादिसंयुक्तधिग्रेष्यताजन्यमिति-

सू० तथाऽभावे भावप्रत्यक्षत्वाच्च ॥ ७ ॥

उ० स्पष्टं प्रत्यक्षं तथा तत्प्रध्वंसस्यापि, तत्र कारणमाह भूत-  
प्रत्यक्षाभावादिति भूतस्य उत्पत्तौ विनष्टस्य घटादेः प्रत्य-  
क्षाभावात् एतेन योग्यानुपलब्धिमाह, तत्र चायं तर्कः  
सहकारी, यद्यत्र घटोऽभविष्यत् भूतत्वमिवाद्द्रव्यत न च  
दृश्यते तस्मान्नास्तीति, सहकार्यन्तरमाह भूतस्यतेरिति  
भूतस्य प्रतियोगिनो घटादेः स्यतेरिति प्रतियोगिसंख्य-  
मुक्तम् ॥ ६ ॥

प्रागभावे प्रध्वंसप्रत्यक्षताप्रकारमतिदिशन्नाह ।

सामान्यवाच्यप्ययमभावशब्दः प्रकरणात् प्रागभावपरः,  
यथा प्रध्वंसे प्रत्यक्षज्ञानं तथा प्रागभावेऽपि, कुतः भाव-

वि० विशेषः, अपरमपि विशेषमाह भूतप्रत्यक्षाभावादिति भूतस्य  
अतीतस्य प्रतियोगिनो घटादेः प्रत्यक्षस्याभावाद्योग्यानुपलम्भ-  
रूपात् कारणात् भूतस्य अतीतघटादेः स्मृतेः स्मरणात्मकात् प्रति-  
योगिज्ञानाच्च जायमानमिति पृथगीयम्, तथाच ध्वंसप्रत्यक्षं  
प्रतियोग्यानुपलब्धिजन्यं प्रतियोगिज्ञानजन्यञ्च प्रतियोगिप्रत्यक्षन्तु  
न तथा इतोऽपि विशेष इतिभावः, अत्र स्मृतित्वमविवक्षितं  
ज्ञानमात्रन्तु विवक्षितमिति मन्तव्यम् । एवञ्च घटादयो यथा  
प्रत्यक्षसिद्धास्तथा तद्धंसा अपोतिभावः ॥ ६ ॥

प्रागभावप्रत्यक्षमप्यनयैव रीत्या भवतीत्याह ।

अभावे प्रागभावे सामान्यवाचकशब्दस्य विशेषपरत्वात्, तथा  
प्रत्यक्षम्, यथा ध्वंसे इन्द्रियसन्निकर्षयोग्यानुपलब्धिप्रतियोगिज्ञानैः

सू० एतेनाघटोऽगौरधर्मश्च व्याख्यातः ॥ ८ ॥

उ० प्रत्यक्षत्वात् भावस्य व्युत्पद्यमानवीरणादेः प्रत्यक्षत्वात् प्रत्यक्षेण विषयीक्रियमाणत्वात्, यदा भावस्याधिकरणस्य प्रतियोगिनश्च प्रत्यक्षत्वात् योग्यत्वादित्यर्थः, संसर्गाभावयहेऽधिकरणयोग्यतायाः प्रतियोगियोग्यतायाश्च तन्त्रत्वात्, चकारात् प्रतियोगिस्मरणमुक्तञ्च तर्कं समुच्चिनोति, अनादेरपि प्रागभावस्यानन्तस्यापि प्रध्वंसस्यावस्थाविशेषमात्रे प्रत्यक्षत्वम् ॥ ७ ॥

अन्योन्याभावस्य प्रत्यक्षतामाह ।

एतेनेति प्रतियोगिस्मरणाधिकरणग्रहणप्रागुक्ततर्कान-

वि० प्रत्यक्षं जायते तथा प्रागभावेऽपीत्यर्थः । ननु प्रागभावस्यानादित्वात् कपालादिसंयोगजननादतिपूर्वमपि कथं न प्रागभावस्य प्रत्यक्षमुक्तानां कारणानां तदानीमपि सम्भवादित्यत्र आह भावप्रत्यक्षत्वादिति भवत्यस्मादित्यपादाने घञ्, भावस्वरमकारणसामग्री तेन प्रत्यक्षं यस्य तत्त्वात् चरमकारणसामग्रीव्युत्पत्त्यादितिफलितार्थः तथाचोक्तस्थले चरमकारणसामग्र्यभावान्नप्रागभावप्रत्यक्षमितिभावः, अतीन्द्रियस्य वाय्वादेः प्रागभावस्य प्रत्यक्षत्वात् चकारात्तेन च प्रतियोगियोग्यत्वं समुच्चितमिति मन्तव्यम् ॥ ७ ॥

अन्योन्याभावस्याप्येवं प्रत्यक्षं भवतीत्याह ।

अघटः घटः, अगौरश्च, अधर्मः सुखमित्याद्याकारकोऽन्योन्याभावप्रत्ययोऽपि एतेन प्रध्वंसप्रागभावप्रत्यक्षकथनेन व्याख्यातः

उ० तिदिशति, योग्यानुपलम्भः सर्वत्र समानः, चकार उक्त-  
 • समञ्चार्थः, अधर्म इत्यतीन्द्रियस्यापि धर्मस्य सुखज्ञानादा-  
 वधिकरणेऽन्योन्याभावस्य प्रत्यक्षतां वदन् अन्योन्याभावग्रहे  
 प्रतियोगियोग्यता न तन्त्रं किन्त्वधिकरणयोग्यतामात्रं तन्त्र-  
 मित्युपदर्शयति, कथमन्यथा स्तम्भः पिशाचो न भवतीति  
 पिशाचान्योन्याभावः स्तम्भे गृह्येत, स्तम्भात्मतया पिशाचानु-  
 पलम्भस्य तदन्योन्याभावग्राहकत्वात्, तस्याप्यनुपलम्भस्य प्र-  
 तियोगिसत्त्वविरोधित्वात् स्तम्भे पिशाचतादात्म्यसत्यनुपल-  
 म्भानुपपत्तेः । ननु पिशाचतादात्म्यमिह न प्रतियोगि, कि-  
 न्तर्हि पिशाचः, सच स्तम्भे वर्त्तमानोऽपि गुरुत्ववन्नोपल-  
 भ्यते इति तदनुपलम्भः प्रतियोगिसत्त्वविरोधी न भवतीति  
 चेन्न प्रतियोग्यनुपलम्भवत् प्रतियोगितावच्छेदकानुपलम्भ-  
 स्याप्यभावग्रहकारणत्वात्, ननु प्रतियोगित्वग्रहाधीनोऽन्यो-

वि० कथित इति समुदितार्थः तथाचान्योन्याभावप्रत्यक्षेऽपि इन्द्रिय-  
 सम्बद्धविशेषणता प्रतियोग्यनुपलम्भः प्रतियोगिज्ञानक्षैतानि का-  
 रणानि, इयान् परं विशेषो यत् संसर्गाभावग्रहे प्रतियोगियो-  
 ग्यत्वं तन्त्रम्, अन्योन्याभावग्रहे त्वधिकरणयोग्यत्वमिति धर्मस्या-  
 तीन्द्रियत्वेऽपि सुखादौ योग्याधिकरणे तदन्योन्याभावस्य प्रत्यक्षं  
 निराबाधमवेति, यत् संसर्गाभावग्रहे प्रतियोग्यधिकरणोभय-  
 योग्यत्वं तन्त्रमिति कैश्चिदुक्तं तन्न समीचीनं, तथा सति पाषाणे  
 सौरभाभावस्य, गुडे तिक्ताभावस्य, वायौ रूपाभावस्य, आकाशे  
 स्पर्शाभावस्य शब्दाभावस्य च प्रत्यक्षानुपपत्तेस्तदधिकरणानां

सू० अभूतं नास्तीत्यनर्थान्तरम् ॥ ६ ॥

उ० न्याभावग्रहः प्रतियोगित्वञ्चान्यान्याभावविरहात्मत्वं तत-  
श्चान्यान्याभावग्रहाधीन एवान्यान्याभावग्रह इति चेन्ना-  
धिकरणवृत्तित्वेन ज्ञायमानो धर्म एव प्रतियोगिताव-  
च्छेदको नतु प्रतियोगितावच्छेदकत्वेनापि तद्ग्रहस्तन्त्र  
मित्युक्तत्वात् ॥ ८ ॥

अथेदानीमित्यन्ताभावप्रत्यक्षतामाह ।

भूतमिदानीं नास्तीतिप्रतीति ध्वंसमालम्बते भूतत्वं  
नोस्तिखति किन्त्विदं नास्तीतिमात्रोस्तेखिनी प्रत्यक्षप्र-  
तीतिरत्यन्ताभावमालम्बते, अभूतमित्युत्पादविनाशानाल-  
म्बनत्वं द्योतयति, अनर्थान्तरत्वमिति तदभिप्रायकमेव, यथा  
जले पृथिवीत्वं नास्ति पृथिव्यां न जलत्वमिति, यदि

वि० तत्तदिन्द्रियायोग्यत्वात्, अतरव त्वकसंयुक्तकालविशेषगतया वायु-  
स्पर्शनाशप्रत्यक्षं पक्षधरमिथैः स्वीकृतमिति संक्षेपः ॥ ८ ॥

अत्यन्ताभावस्यापि प्रत्यक्षतामाह ।

अभूतमिति नास्ति भूतं अतीतं यत्र प्रत्यक्षे तादृशम्, नास्तीति  
यत् प्रत्यक्षम्, तदनर्थान्तरम्, नास्ति विषयतयाऽर्थान्तरम् अत्यन्ता-  
भावभिन्नं ध्वंसादिरूपं यत्र तत्, रक्तघटे श्यामो नास्तीतिप्रत्यक्षे  
भूतस्य श्यामरूपस्य विषयतया वर्त्तमानत्वेन तत्प्रत्यक्षं श्याम-  
ध्वंसविषयकम्, वायौ रूपं नास्तीति प्रत्यक्षञ्च न वायौ पूर्वात्पन्नं

उ० हि जलावयविनि पृथिवीलं स्यात् उपलभ्येत नचोपलभ्यते तंस्मान्नास्तीतितर्कपुरस्कारोऽत्रापि द्रष्टव्यः । एवञ्च यद्वस्तु यत्र न कदाऽपि भविष्यति नच कदाचिद्भूतं तस्य वस्तुनस्तत्रात्यन्ताभावोमन्तव्यः । भूतभविष्यतोश्च तत्र प्रध्वंसप्रागभावालम्बन एव तत्राधिकरणे नास्तीति-प्रत्ययः । अतएवाद्यमात्यन्तिकस्तेकालिक इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

ननु गेहे घटाभावोनात्यन्ताभावः कदाचित्तत्र घट-सत्त्वात्, नापि प्रागभावप्रध्वंसौ, तयोः समवायिकारण-मात्रवृत्तित्वात्, नाप्युत्पादविनाशशीलोऽत्यन्ताभाव एव, आत्यन्तिकश्चेत्पादविनाशशीलश्चेति विरोधात्, नापि च-तुर्थ एवायं संसर्गभावः, तस्य त्रैविध्यविभागव्याघातादि-त्यत आह ।

वि० रूपं विषयोक्तेरिति, तस्मात् तत्प्रत्यक्षं न ध्वंसविषयकं किन्त्वत्य-न्ताभावविषयकमेवेति, भूतपदं भविष्यतोऽप्युपलक्षकम्, तेन श्यामे रक्तं रूपं नास्तीति प्रागभावप्रत्ययस्यात्यन्ताभावाविषयक-त्वेऽपि न क्षतिः ॥ ६ ॥

ननु भूतलादौ यत्र पूर्वं घटोऽस्थितस्ततोऽपसारितस्तदानीं घटोनास्तीति प्रत्यक्षं न प्रागभावध्वंसावगाहते तयोः समवा-यिकारणवृत्तित्वनियमेन भूतलादिदेशेऽसत्त्वात्, नप्यत्यन्ताभा-वम्, तस्य नित्यत्वेन घटसत्त्वकालेऽपि तादृशप्रत्यक्षप्रसङ्गात्, तथाच तादृशप्रत्यक्षस्य कोविषय इत्याकाङ्गायामाह ।



ख० नास्ति घटो गेहे इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्र-  
तिषेधः ॥ १० ॥

उ० गेहे घटस्य यः संसर्गः संयोगस्तस्य प्रतिषेधः, सच यदि कदाचिदपि न घटस्तदात्यन्ताभाव एव, भविष्यतः प्राग्भावे भूतस्य प्रध्वंसाभावः । तर्हि घटसंसर्गो गेहे नास्तीति प्रतीत्या भवितव्यमिति चेत् प्रतीत्या भवितव्यमिति कोऽर्थः, यदि तद्विषयया प्रतीत्या भवितव्यमित्यापादनार्थस्तदेष्टापत्तिः, अथ तदुल्लेखिन्येति, तदा गेहे इत्यधिकरणोल्लेखस्यैव संसर्गोल्लेखपर्यवसानमाधारत्वं स्यैव धर्मसम्बन्धाकारत्वात्, तत् किं घटस्तत्रास्येव, अस्येवेति कोऽर्थस्तत्र समवेतः संयुक्तौवा नाद्यः समवेतघटस्य तत्राभवात्, न द्वितीयः संयोगस्य निषेधात्, नन्वेवं घटादीनां केवलान्वयित्वप्रसङ्गः, तत्संयोगसमवायान्यतरस्यैव सर्वत्र निषेधादिति चेन्न तदुभयनिषेधस्यैव घटनिषेधात्मकत्वात्, तत् किं घटस्तत्सं-

वि० सतः पूर्वं तत्र वर्तमानस्य घटस्यैव गेहसंसर्गप्रतिषेधः गेहे संसर्गाभावः तद्विशेषोऽत्यन्ताभाव इति तु परमार्थः, नास्ति गेहे घट इति प्रत्यक्षविषय इति समुदितसूत्रार्थः, तथाच तादृशप्रत्यक्षे घटात्यन्ताभाव एव तत्तत्कालीनगेहाद्यात्मकेन स्वरूपसम्बन्धेन भासते, घटकाले तु तादृशसम्बन्धासत्त्वान्न तदत्यन्ताभावबुद्धिरिति भावः । केचित्तु नास्ति गेहे घट इति प्रत्यक्षस्य विषयो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः गेहवृत्तित्वाभावः सच घटापसा-

उ० योगस्येत्येकं तत्त्वं, येन घटसंयोगनिषेधो घटनिषेधः स्यात्,  
 • तत् किं घटस्तत्संयोगसमवायावेकं तत्त्वं, येन तद्विधिरेत्र  
 घटविधिः स्यात्, नहि तौ यत्र निषेध्येते तत्र घटान्वयो येन  
 केवलान्वयित्वं तस्य स्यात्, तथाचं यस्य योविधिस्तन्निषेध-  
 एव तन्निषेध इति यद्वा घटस्य समवायितया गेहेऽत्यन्ता-  
 भाव एव, स एव गेहे घटो नास्तीतिप्रतीतिविषयः, कपाले  
 संयोगितश्चेत्, एवं सति केवलान्वय्यत्यन्ताभावप्रतियोगि-  
 तया घटोऽसन् स्यादिति चेत् भवेदेवं यदि संयोगित्वसम-  
 वायित्वाभ्यां सर्वत्रासन् स्यादिति ॥ १० ॥

वि० रणकालीनघटात्मकेन स्वरूपसम्बन्धेन घटेऽबाधितं एवेति, नच  
 घट इति प्रथमाऽनुपपत्तिरनुयोगिनि सप्तम्याः संसर्गाभावबोधै  
 तन्त्रत्वादिति वाच्यं प्रातिपदिकार्थस्यात्यन्ताभावबोधस्य एव  
 अनुयोगिनि सप्तम्यपेक्षणादुक्तस्यले सप्तम्यर्थाभावस्य घटे भानात्,  
 नचात्रास्तीति क्रियायाः कुत्रान्वयः, नञर्थे चेत् तदा घटौ न स्त-  
 इत्यादौ द्विवचनाद्यनुपपत्तिः, घटे चेत् नञर्थस्य घटांशे विशेष्य-  
 तावच्छेदकतया भानं न सम्भवति अन्यथा न घटः पटस्तिष्ठ-  
 तीत्यादिप्रयोगस्यापि साधुत्वापत्तेरिति वाच्यं नञर्थप्रातिपदि-  
 कार्थाभावस्य विशेष्यतावच्छेदकतया भानासम्भवेऽपि व्युत्पत्ति-  
 वैचित्र्येण नञर्थस्य सुवर्धाभावस्यास्तिक्रियाविशेष्यतावच्छेदकवि-  
 धया भाने बाधकाभावात् । वस्तुतस्तु नास्ति गेहे घट इत्य-  
 भिलापप्रयोजकत्वं तादृशप्रत्यक्षस्याबाधितमेव तादृशशब्दजन्य-  
 बोधसमानाकारकत्वस्य तत्राप्रयोजकत्वादित्याहुः ॥ १० ॥

लौकिकसन्निकर्षजन्यं प्रत्यक्षं परीक्ष्यालौकिकयोगजसन्निकर्ष-

सू० आत्मन्यात्ममनसोः \*संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम् ॥ ११ ॥

उ० तदेवं भावाभावंविषयकं लौकिकप्रत्यक्षं निरूप्य योगि-  
प्रत्यक्षं निरूपयितुं प्रकरणान्तरमारभते ।

ज्ञानमुत्पद्यते इतिशेषः, द्विविधास्तावद्योगिनः समा-  
हितान्तःकरणे ये युक्ता इत्यभिधीयन्ते, असमाहितान्तः-  
करणस्य ये वियुक्ता इत्यभिधीयन्ते, तत्र युक्ताः साक्षात्-  
कर्त्तव्ये वस्तुन्यादरेण मनोनिधाय निदिध्यासनवन्तः, तेषा-  
मात्मनि स्वात्मनि परात्मनि च ज्ञानमुत्पद्यते आत्मप्रत्य-  
क्षमिति आत्मा प्रत्यक्षः साक्षात्कारविषयो यत्र ज्ञाने तत्तथा  
यद्यप्यस्मदादीनामपि कदाचिदात्मज्ञानमस्ति तथाप्यवि-

वि० जन्यं प्रत्यक्षं व्युत्पादयति ।

आत्ममनसोः संयोगविशेषात् योगजधर्मसङ्कृतादात्ममनः-  
संयोगात्, आत्मनि बुद्धारम्भे यत्ने सति “आत्मायत्नोद्यतिर्बुद्धिः”  
इतिकोषात्, बुद्धारम्भयत्नजन्यायां चिन्तायां सत्यामितितु फलि-  
तार्थः, आत्मप्रत्यक्षं स्वात्मनः परात्मनाश्च प्रत्यक्षं, भवतीतिशेषः ।  
अलौकिकसन्निकर्षस्तावत्त्रिविधः सामान्यलक्षणाज्ञानलक्षणा-  
योगजधर्मभेदात्, तत्र योगजधर्मयोगाभ्यासजनितो धर्म-  
विशेषः श्रुतिपुराणादिप्रमाणकः, सोऽपि द्विविधः युक्तयुञ्जान-  
रूपश्लेष्मिद्वैविध्यात्, तत्र योगाभ्यासवशीकृतमानसः समाधिस्-  
मासादितविविधसिद्धिर्युक्त इत्युच्यते अथमेव विशिष्टयोगवत्त्वा-

सू० तथा द्रव्यान्तरेषु प्रत्यक्षम् ॥ १२ ॥

उ० द्यातिरस्कृतत्वात् तदसत्कल्पमित्युक्तमात्ममनसोः सन्निकर्षविशेषादिति योगजधर्मानुग्रहः ॥ आत्ममनसोः सन्निकर्षविशेषसंस्मादित्यर्थः ॥ ११ ॥

तत् किमात्मन्येव युक्तानां ज्ञानं तत् कुतः सार्वज्ञ्यमित्यत आह ।

ज्ञानमुत्पद्यत इति प्रकरणायातम्, तथेति योगजधर्मानुग्रहीतेनैव मनसां, द्रव्यान्तरेषु चतुर्ध्वेषु मनसि वायुदिक्कालाकाशेषु, द्रव्यपदेन तद्गतगुणकर्मसामान्यानां विशेषपदार्थस्य समवायस्य प्रत्यक्षगतस्यापि गुरुत्वस्थितिस्थापकादेरात्मगतस्यापि जीवनयोनियत्ननिर्विकल्पकभावनाधर्माधर्मादेः संग्रहः, सांभ्रम्या योगजधर्मापग्रहस्य तुल्यत्वात् अन्यथा सार्वज्ञ्यमुक्तं न भवेत् ॥ १२ ॥

युक्तानां प्रत्यक्षं ज्ञानमभिधायेदानो वियुक्तानामाह ।

वि० द्वियुक्त इत्यप्युच्यते । युञ्जानो विषयव्यावृत्तमानसोऽध्यानसहकारान्निखिलपदार्थानां साक्षात्कर्त्ता, एतादृशयुञ्जानमभिप्रेत्यैवेदं सूत्रम् ॥ ११ ॥

ननु योगजधर्मात्मात्ममात्रस्य साक्षात्कारोपगमे योगिनः सर्वज्ञत्वमनुपपन्नमत आह ।

उक्तयोगजधर्मसन्निकर्षात्मात्ममात्रे प्रत्यक्षं किन्तु द्रव्यान्तरेषु पृथिव्यादिव्यपि प्रत्यक्षं भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

युञ्जानस्य प्रत्यक्षमुक्त्वा युक्तस्य वदाह ।

ख० असमाहितान्तःकरणा उपसंहृतसमाधयस्ते-  
पाञ्च ॥ १३ ॥

उ० असमाहितान्तःकरणा इत्यस्यैव व्याख्यानमुपसंहृतस-  
माधय इति, यद्वा कथमसमाहितान्तःकरणा इत्यत आह  
उपसंहृतसमाधय इति उपसंहृतो दूरीकृतः समाधिर्निदि-  
ध्यासनात्मको यैस्ते तथा, ते हि समाधिप्रभावादिकरणध-  
र्माः अणिमाद्याः शरीरसिद्धी दूरश्रवणाद्यास्येन्द्रियसिद्धी-  
राप्तवन्तः समाधावप्यलंप्रत्ययमाप्सादयन्तः “तावदेवास्व  
चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ सम्यक्त्ये” इत्यादिश्रुतिसमाधि-  
गतकृत्यान्तराभावाः भोगभात्रस्य कर्त्तव्यतामाकलय्य तेषु  
तेषु प्रदेशेषु द्वीपोपद्वीपादिषु तेन तेन जन्मना तुरङ्गमात-  
ङ्गविहङ्गभुजङ्गादिना यावदेव चिरं यावद्देवर्षिमानुषभा-  
वेन च पूर्वोपात्तान् कर्माशयानुपभुञ्ज्महे तावत् प्राप्तेव  
निरपाया भूमिरित्याकलयन्तः सकलमर्थजातं योगज-  
धर्मबलोपवृंहितेन्द्रियशक्तयोव्यवहितं विप्रकृष्टञ्च प्रत्यची-  
कुर्वन्ति ॥ १३ ॥

वि० असमाहितान्तःकरणाः असमाहितं समाधिरहितम् अन्तः-  
करणं येषां ते तथा, उपसंहृतः समापितः सफलीकृतः समाधि-  
र्यैस्ते समाधेः फलं विविधाः सिद्धयस्ता येषामुत्पन्नास्तादृशाः  
ये युक्तास्तेषामपि आत्मनाम् अन्येषां इत्यायाञ्च प्रत्यक्षं भवतीति  
समुदितार्थः, युञ्जानस्य प्रत्यक्षे ध्यानापेक्षा, युक्तस्य प्रत्यक्षे तु ध्या-  
नात्मकसमाधयेक्षा नास्तीतिभावः ॥ १३ ॥

सू० तत्समवायात् कर्मगुणेषु ॥ १४ ॥

उ० ननु न तीव्रतेषु मानसं ज्ञानं मनसोवहिरस्वातन्त्र्यात्, नापि वहिरिन्द्रियजन्यम्, तेषां संबद्धवर्तमानार्थुग्राहित्वात् यथायोगं रूपोद्भवादिमापेक्षत्वात् आलोकादिसव्यपेक्षत्वा-  
चेत्याशङ्क्य केषुचित् पदार्थेषु प्रत्यासत्तिमुपपादयन्नाह ।

प्रत्यक्षज्ञानं जायते इतिशेषः । भौतिकानीन्द्रियाणि यदि सन्निकर्षमपेक्षन्ते तदा परमाण्वाकाशदिककालस-  
मवेतेषु गुणसामान्येषु स्वमनःसंयोगिसमवायात् इतरद्रव्ये-  
षु च कायब्यूहोपभोगार्थोपगृहीतनानापण्डमनःसंयोगात्  
तत्संयुक्तसमवायात् तत्तद्द्रव्यगुणादिषु ज्ञानमुत्पद्यते,  
एतच्चापपत्तिसौकर्यमनुरूधोक्तम्, वस्तुतो वाह्येन्द्रियेषु मन-  
सि च योजगज एव धर्मः प्रत्यासत्तिस्त एव सर्वानुपप-  
त्तिशान्तेः, अगस्त्यसमुद्रपानं दण्डकारण्यनिर्माणञ्चात्र दृ-  
ष्टान्तः ॥ १४ ॥

वि० ननु द्रव्याणां प्रत्यक्षसम्भवेऽपि सर्वज्ञत्वं योगिनोऽनुपपन्नमेव  
गुणादीनामज्ञानादत आह ।

तस्य योजगजधर्मसहस्रतमनःसंयोगस्य, समवायात् युक्तयुञ्जा-  
नयोः कर्मसु गुणेषु च प्रत्यक्षमुत्पद्यते इत्यर्थः, अचिन्त्योऽहि यो-  
गजधर्मप्रभावः, यद्वलेनागस्त्यमुनिः पारावारं पपौ, सौभरिश्च  
कायब्यूहं परिगृहीतवान्, वशिष्ठश्च दिलीपस्य सुरभिशापं  
ञ्चातवान्, तस्य योजगजधर्मस्य पदार्थसार्थसाक्षात्कारसम्पादनं

सू० आत्मसमवायादात्मगुणेषु ॥ १५ ॥

उ० तत् किं स्वकीयबुद्ध्यादिष्वपि मनसो द्रव्यान्तरसंयुक्तसमवाय एव प्रत्यासत्तिः, नेत्याह ।

योगिनां प्रत्यक्षं ज्ञानमुत्पद्यते इति प्रकृतम्, आत्मसमवेतानान्तु बुद्ध्यादीनां संयुक्तसमवायादेव प्रत्यक्षं ज्ञानमुत्पद्यते ऽस्मदादीनामिवेति न तत्र सन्निकर्षान्तरापेक्षेत्यर्थः, तत्रेन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमव्यभिचारिज्ञानं लौकिकप्रत्यक्षम्, अर्थजं वा, साच्चान्वयोगिज्ञानं प्रत्यक्षमिति लौकिकालौकिकसाधारणम् ॥ १५ ॥

इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्कारे नवमाध्यायस्याद्यमाह्निकम् ॥ \* ॥

वि० नासम्भावनीयमिति, कर्मगुणेत्युपलक्षणं सामान्यादिकमपि बोध्यम्, एवं सामान्यलक्षणाज्ञानलक्षणारूपालौकिकप्रत्यासत्तिजन्यं प्रत्यक्षमप्युहनीयम् ॥ १४ ॥

तत् किं योगिनां लौकिकप्रत्यक्षं न भवतीत्यत आह ।

आत्मसमवायात् मनःसंयुक्तात्मसमवायात् आत्मगुणेषु स्वात्मवृत्तिसुखादिगुणेषु योगिनां लौकिकमपि प्रत्यक्षं भवति तत् सामग्र्या वृत्तत्वादिति समुदितनिष्कर्षः ॥ १५ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-प्रणीतायां कणादसूत्रविरचिते नवमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥ \* ॥

सू० अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि  
चेति लैङ्गिकम् ॥ १ ॥

उ० तदेवं पूर्वोक्तिके योगिप्रत्यक्षमयोगिप्रत्यक्षञ्च कारणतः  
स्वरूपतो लक्षणतश्च निरूपितम्, प्रमाणं द्विद्विधं प्रत्यक्षं  
लैङ्गिकञ्चेति यद्विभक्तं तत्र लैङ्गिकमिदानीं निरूपयि-  
तुमुपक्रमते ।

ज्ञानमिति प्रकृतम्, लिङ्गाज्जातं लैङ्गिकं व्याप्तिविशिष्टः  
पक्षधर्मीलिङ्गम्, तत्र व्याप्तिरूपा, यत्सिषाधयिषाविरोधिप्र-  
माणाभावा यत्र स तं प्रति पक्षः, तादृशं प्रमाणं साधकं  
बाधकञ्च, तदुभयाभाववतः पक्षत्वात्, नहि साधके बाध-  
के वा प्रमाणे सति कस्यचित् संशयः सिषाधयिषा वा, अत-  
एव सन्दिग्धसाध्यधर्मी धर्मी सिषाधयिषितसाध्यधर्मी धर्मी  
वा पक्ष इति प्राञ्चः, उत्पाद्यसाध्यवत्तानिर्णयनिवर्त्यसंश-  
योत्पत्तिप्रतिबन्धकमानत्वावच्छिन्नाभावा यत्र स पक्ष इति

वि० इदानीमनुमितिरूपां बुद्धिं परीक्षितुमारभते ।

लिङ्गेन व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टेन जनितं ज्ञानं लैङ्गिकं प्र-  
योजकत्वं प्रयोज्यत्वं वा ब्रवीत्यर्थः, व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मता-  
ज्ञानजन्यं ज्ञानमिति तु फलितार्थः, नच परामर्शप्रत्यक्षमपि  
परामर्शजन्यमिति तत्रातिव्याप्तिः, वङ्गसाध्यकपरामर्शापादाने  
आलोकादिविधेयकानुमिताव्याप्तिश्चेति वाच्यं तादृशज्ञानवृ-  
त्तिप्रत्यक्षासमवेतजातिमत्त्वस्यानुमितिलक्षणत्वे तात्पर्यात्, स्मृति-  
व्यादृत्यर्थं ज्ञाने जन्यान्तविशेषणम्, नच परामर्शजन्यस्मृत्या-  
त्मकज्ञानमिदं तद्दोषतादवस्थमिति वाच्यं व्याप्तिविशिष्टप-



उ० जीवनाद्यमिन्द्राः, सिषाधयिषाविरहसहकृतसाधकमाना-  
भावा यत्र स पक्ष इति केचित्, एतन्मते बाधस्थत्वेऽपि प-  
क्षता, तदेतदनुमानमयूखे द्रष्टव्यम्, तदेतस्य पक्षस्य धर्मा-  
लिङ्गमित्युक्तं भवति, लिङ्गञ्च दृष्टमनुमितं श्रुतं वा यदनु-  
भवरूपं ज्ञानं जनयति तल्लिङ्गिकं तदुक्तम्,

“अनुभवेन सम्बद्धं प्रसिद्धञ्च तदन्विते ।

तदभावे तु नास्त्येव तल्लिङ्गमनुमापकम्” ॥ इति ॥

एतेन लिङ्गमेवानुमितिकरणं नतु तस्य परामर्शः तस्य  
निर्वापारत्वेनाकरणत्वात्, लिङ्गस्य तु स एव व्यापारः ।  
यत्र धूमादेरतीतत्वमनागतत्वं वा तत्र कथमनुमितिरिति  
चेन्न साध्यस्याप्यतीतानागतत्वयोस्तत्रानुमानात्, तत्रैव प्र-  
तिबन्धात् अतीतत्वमनागतत्वं वर्त्तमानत्वञ्च धूमादेर्यत्र न

वि० द्वाधर्मतानिश्चयत्वमात्रावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यत्वस्य नि-  
वेशनीयत्वात्, स्मृतिजनकतावच्छेदककोटौ उपेक्षान्यत्वस्याधिकस्य  
सत्त्वेन तादृशजनकतायास्तादृशनिश्चयत्वमात्रावच्छिन्नत्वाभा-  
वात्, नच तादृशजन्यत्वमपेक्ष्य स्मृत्यन्यत्वमेव लाघवाद्निवेशयि-  
तुमुचितमिति वाच्यं यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभावात् स्मृत्यन्यत्व-  
घटितस्य लक्षणांतरत्वादिति यद्वा जन्यान्तं परिचायकं निवे-  
शस्तु यत्किञ्चिदनुमितियुक्तोक्तद्युक्तित्वेनेति संक्षेपः । व्याप्तिः  
पूर्वमुक्ता, पक्षाधर्मताच पक्षतावच्छिन्नवृत्तिता, पक्षताच प्राचां  
मते साध्यनिश्चयनिवर्त्यसंशयरूपा. तस्य विशेष्यतासम्बन्धेन  
पर्वतादौ सत्त्वम्, आचार्यमते सिषाधयिषा पक्षता, तस्याश्च  
विषयताविशेषसम्बन्धेन पक्षनिष्ठत्वम्, चिन्तामखिद्यन्मते सि-

उ० निश्चितं तत्र कथमनुमितिरिति चेत्, न कथञ्चित्, तत्र  
 साध्यस्यापि सन्देहात्, पूर्वापरदिनयोः सत्त्वनिश्चये मध्य-  
 दिने तु सन्देहे कथमनुमितिरिति चेत् तद्दिनावच्छिन्नधू-  
 मादिना तद्दिनावच्छिन्नवज्रादेरनुमानात् तथैव व्याप्तेः  
 कारणत्वावधारणत्, धूलीपटलात् कथं धूमभ्रमादनुमि-  
 तिरिति चेत् व्याप्तत्वेन ज्ञातस्यैव लिङ्गत्वात् ज्ञानस्य च  
 याथार्थ्यायाथार्थ्याभ्यामनुमितेस्ताद्रूप्यात्, अन्यथा तवापि  
 कथं तत्र परामर्शः करणं स्यात्, अतीन्द्रियलिङ्गस्यै पराम-  
 र्शस्य तदजन्यतया कथं तद्वाप्यनुमिते चेत् तत्सत्त्वानि-  
 र्व्याहकत्वरूपचैमिकसाधनतायास्तत्र व्यापारत्वघटकत्वात्  
 अन्यथा समवायस्य अत्राणादेर्यापारत्वानुपपत्तेरिति, का-  
 र्यालिङ्गात् धूमालोकदेरग्याद्यनुमानं, कारणादपि यथा

वि० साधयिषाविरहविशिष्टसिद्धभाव एव पक्षता, तस्य च स्वप्रति-  
 योगिविशेष्यत्वसम्बन्धेन पर्वतादिवृत्तित्वम्, अनुमितिचेतुता तु  
 पक्षताया आत्मनिष्ठप्रत्यासत्त्येत्यवधेयम्, एतादृशपक्षतायान्तु  
 धर्म्यश्रे परिचायकतयैव निवेशो न तु विशेषणतयेति संक्षेपः ।  
 तदेतत् लैङ्गिकं ज्ञानं त्रिविधं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो-  
 दृष्टश्चेति, तत्र पूर्वं कारणं तद्वत् तल्लिङ्गकम्, शेषः कार्यं  
 तद्वत् तल्लिङ्गकम्, सामान्यतोदृष्टं कार्यकारणभिन्नलिङ्गकमिति  
 गौतमीयोक्तमेवाह अस्येदमिति, अस्य साध्यस्य इदं साधनं का-  
 र्यमिति व्यवहारो यत्र भवति अर्थात् कार्यलिङ्गकं यथा धूमा-  
 दिलिङ्गेन वज्रादेरनुमानम्, अस्येदं कारणमिति कारणलिङ्गकं  
 यथा मेघोन्नतिविशेषेण दृष्टेरनुमानम्, कार्यकारणभिन्नलिङ्गक-

उ० बधिरस्य भेरीदण्डसंयोगविशेषात् शब्दानुमानम्, यथा वा धार्मिकस्य यथाविधियागस्नानीद्यनुष्ठानाद्भ्रूमस्वर्गाद्यनुमानम्, यथाविधिकारीर्याद्यनुष्ठानाद्वा वर्षानुमानम्, पयःपूर्णद्यादौ खन्यमानप्रवाहाद्वा जलनिःसरणानुमानम्, उपरि वृष्टिदर्शनाद्वा नदीवृद्धानुमानम्, सचायं कार्यकारणभावलक्षण एकसम्बन्धः प्रकारद्वयेनाक्तः, संयोगिनः शरीरस्य दर्शान्तगिन्द्रियानुमानम्, विरोधिनाविस्फुर्जिताऽहेदर्शनाज्झाटाद्यन्तरितनकुलानुमानम्, समवायिना जलौषधयेन तत्सम्बद्धतेजोऽनुमानम् ॥ १ ॥

नन्वव्यापकमिदं परिसङ्ख्यानम्, नहि चन्द्रेदयेन समुद्रजलवृद्धेः जलप्रसादेनागस्त्योदयस्य कुमुदप्रकाशेन चन्द्रेदयस्य चतुर्दशनेन चन्द्रेदयेनापरचतुर्दशनेन चास्तमयस्य रसेन रूपस्य रूपविशेषेण वा रसविशेषस्थानुमानमनेन संगृह्यते इत्यत आह ।

वि० रूपं यत् सामान्यतोदृश्यं तत् विविधं यथा लोहसंयोगिना मुषलविशेषलिङ्गेन उदूखलादौ संयोगिन लोहस्थानुमानम्, तथा नकुलविरोधिस्फूर्थदहिविशेषदर्शने गुल्माद्यन्तरितनकुलस्थानुमानम् एवं वज्रनयोगिकसमवायप्रतियोगिरूपवज्रिसमवाय्युष्पर्शेन भर्जनकपालादौ वज्रादिरनुमानमिति ॥ १ ॥

ननुक्तानुमानानां सामान्यतोदृश्यत्वे पृथिवीत्वादिना द्रव्यत्वानुमानं पद्मस्य विकासेन दिनस्थानुमानं कुमुदविकासेन रजन्या अनुमानं रसादिना गुरुत्वाद्यनुमानञ्च कुक्षान्तर्भविष्यतीत्यत आह ।

सू० अस्येदं कार्यकारणसम्बन्धश्चावयवाद्भवति ॥२॥

उ० अस्येदमित्येतावदेव प्रयोजकं भवतीति, अस्य साधनस्य धूमादेरिदं साध्यं वज्रादि यद्वाऽस्य व्यापकस्य वज्रादेरिदं व्याप्यं धूमादि, तथाच व्याप्यत्वग्रहमात्रं तन्त्रं नतु कार्यकारणभावादिरपि, ननु पूर्वसूत्रे तर्हि परिसङ्ख्यानमतन्वमत आह कार्यकारणसम्बन्ध इति, अनेन चोक्तं सम्बन्धान्तरमप्युपलक्षयति सम्बन्धपदे च विषयिलक्षणा तेन सम्बन्ध इति सम्बन्धोपन्यास इत्यर्थः । कुतस्तदुपन्यास इत्यत आह अवयवात् एकदेशात् उदाहरणमात्रात् खलोपे पञ्चमी, तेनोदाहरणमनुबध्य कार्यकारणभावादेः सम्बन्धोपन्यास इह दर्शने साङ्ख्यादिदर्शने च भवतीत्यर्थः । एवञ्च स्वाभाविकसम्बन्धशालित्वं व्याप्यत्वम्, स्वाभाविकत्वज्ञानौपाधिकत्वम्, तच्च प्रत्यक्षाणां केषाञ्चित् साध्याव्यापकत्वनिश्चयात्, केषाञ्चित् साधनव्यापकत्वनिश्चयादेवानुपाधित्वं ज्ञेयम्, अतीन्द्रियाणाञ्च प्रमाणसिद्धानां केषाञ्चिद्भयव्यापकत्वम् उभयाव्यापकत्वं साधनमात्रव्यापकत्वं साध्यामात्रव्यापकत्वं वा, तत्राद्ये साधनव्यापकत्वात् द्वितीये साध्या-

वि० अस्य व्यापकस्य साध्यस्य इदं साधनं व्याप्यमिति ज्ञानाल्लैङ्गिकं भवति, कार्यकारणाभ्यां सहितः सम्बन्धः कार्यकारणसम्बन्धः सम्बन्धपदमपि मत्वर्थायाचप्रत्ययेन सम्बन्धिवोधकम् अवयवात् श्रुतीकात् लैङ्गिकविशेषात् लैङ्गिकविशेषमधिकृत्य लिङ्गं

उ० व्यापकत्वात्, चतुर्थेऽपि साधनव्यापकत्वादेवानुपाधित्वं निश्चयेयम्, ततोयेऽपि व्यापकस्य तन्मात्रव्यापकत्वानुपपत्तिरितरस्य तु कथं तन्मात्रव्यापकत्वमित्यत्र तर्कोऽनुसन्धेय इति तु ल्ययोगचेमत्वादिनाऽनुपाधित्वमध्यवसेयम् । भविष्यति कश्चिदत्रोपाधिरिति शङ्कापिशाची सकलविधिनिषेधव्यवहारानास्कन्दतीत्यनादेयेत्यनौपाधिकत्वनिश्चयसम्भवात्, उपाधिलक्षणं व्याप्तिर्लक्षणञ्चोक्तम् । तच्चानुमानं द्विविधं स्वार्थं परार्थञ्च, तत्र स्वार्थं स्वयमेव व्याप्तिपक्षधर्मतयोरनुसन्धानात्, परार्थञ्च परोदीरितन्यायजन्यव्याप्तिपक्षधर्मताज्ञानात्, न्यायश्च तृतीयलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकवाक्यम्, तदवयववाच्यं पञ्च, तत्रावयवत्वं तृतीयलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वम्, तानि च वाक्यानि प्रतिज्ञाहेतुदाहरणोपनयनिगमनानि, तत्र प्रतिज्ञा उद्देश्यानुमित्यनूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकं न्यायावयववाक्यम्, हेतुश्च प्रकृतसाधनगतपञ्चम्यन्तो न्यायावयवः, उदाहरणन्तु प्रकृतसाध्यसाधनाविनाभावप्रतिपादको न्यायावयवः, उपनयस्या-

वि० भवतीति समुदितार्थः, तथाच कार्यं यत्र लिङ्गं तत् शेषवत्, कारणं यत्र लिङ्गं तत् पूर्ववत्, सम्बन्धि कार्यकारणभिन्नं साध्यस्य यथाकथञ्चित् सम्बन्धविशिष्टं यत्र लिङ्गं तत् सामान्यतोदृष्टमित्युक्तानुमानानां सामान्यतोदृष्ट एवान्तर्भाव इति भावः, येतु केवलान्वधिकेवलव्यतिरेक्यन्वयव्यतिरेकिभेदेनानुमानस्य त्रै-

सू० एतेन शब्दं व्याख्यातम् ॥ ३ ॥

उ० विनाभावविशिष्टस्य हेतोः पक्षवैशिष्ट्यप्रतिपादको न्याया-  
वयवः, निगमनन्तु पक्षे प्रकृतसंधिवैशिष्ट्यप्रतिपादको न्या-  
यावयवः । एवञ्च प्रवर्त्तते न्यायः, शब्देऽनित्यः, कृतकत्वात्,  
यद् यत् कृतकं तदनित्यम्, अनित्यत्वव्याप्यकृतकत्ववाञ्छायम्,  
तस्मादनित्यः । एतेषामेव प्रतिज्ञापदेशनिदर्शनानुसन्धा-  
नप्रत्यास्नाया इत्यन्वया वैशेषिकाणां संज्ञाः, अत्रैव वाद-  
जल्पवितण्डानां प्रवृत्तिप्रकारश्चलजातिनिग्रहस्थानलक्ष-  
णाणि च वादिविनोदेऽन्वेष्टव्यानि ॥ २ ॥

प्रमाणान्तराणि लौकिकेऽन्तर्भावयितुं प्रकरणान्तरमा-  
रभते ।

शब्दं शब्दकरणकं ज्ञानमिदमिति यन्नेयायिकादीना-  
मभिमतं तदप्येतेन लौकिकत्वेन लिङ्गप्रभवत्वेनैव व्याख्यातं  
यथा व्याप्तिपक्षधर्माप्रतिसन्धानापेक्षं लौकिकं तथा शब्द-  
मपि, तथाहि एते पदार्थाः मिथः संगर्गवन्तः आका-

वि० विध्यं वर्णयन्ति तैस्त्विदं सूत्रद्वयमन्यथैव व्याचक्षते, तद्व्याख्यानन्तु  
ग्रन्थगौरवभयाद्भोक्तावितमस्माभिः ॥ २ ॥

शब्दबोधश्चात्रैवान्तर्भवतीत्याह ।

एतेन लौकिकज्ञानकथनेन शब्दं शब्दज्ञानजन्यं ज्ञानमपि  
व्याख्यातं कथितमित्यर्थः नैयायिकप्रभृतिभिरन्यबोधनामकं  
प्रत्यक्षानुमितिभिन्नमनुभवरूपं ज्ञानं अन्यते, वैशेषिकमतेषु न

उ० ज्ञादिमद्भिः स्मारितत्वात् गामभ्याजेति पदार्थसार्थवत्, त-  
 चहि आकाङ्क्षादिमत्पदकदम्बस्मारितत्वं पदार्थानां मिथः०  
 संसर्गवत्त्वव्याप्यं गृहीत्वैव संसर्गवत्त्वमनुमिषोति किं कल्प-  
 नीयप्रमाणभावेन शब्देन, ननु नदीतीरे पञ्च फलानि  
 सन्तीत्यनाप्तवाक्ये व्यभिचारान्नेदमनुमानमिति चेन्न  
 प्रोक्तत्वेनापि विशेषणात्, आप्तत्वं हि प्रकृतवाक्यार्थगोचर-  
 यथार्थवाक्यार्थज्ञानवत्त्वं नत्वप्रतारकत्वमात्रं तच्च वाक्यार्थ-  
 प्रतीतेः पूर्वं दुर्ग्रहमिति चेन्न शब्दप्रामाण्यवादिभिर-  
 पि व्यभिचारिशब्दव्यावर्तकस्याप्रोक्तत्वस्य ग्राह्यत्वेनाभिमत-  
 त्वात्, तेषां प्रामाण्यग्रहणार्थं तदपेक्षा शब्दन्तु ज्ञानं तद्-  
 ग्रहमन्तरेष्वाप्युपपद्यते तवतु यादृशं लिङ्गं तादृशग्रहण-  
 मावश्यकं व्याप्यन्वाप्रोक्तत्वविशिष्टमिति चेन्न अथमत्राभ्रा-  
 न्तदति सामान्यतो ग्रहणसम्भवात्, नन्वेति प्रकृतसंसर्गं  
 इत्येव पर्यवस्यति तथाच पूर्वमशक्यमेव तद्ग्रहणमिति चेन्न  
 प्रकरणसमाभिव्यवहारादिमाहात्म्यात् सामान्यत आप्तत्व-  
 निश्चयसम्भवेन लिङ्गनिश्चयसम्भवात्, कदाचित्तत्र विसंवा-  
 देऽपि वाप्यादौ धूमधर्मेणैवानुमानप्रवृत्तेः । नन्वेते पदार्थाः

वि० तदङ्गीकारः, पदज्ञानस्थले पदार्थसंसर्गस्यानुमितिरेव भवति,  
 तथाहि गौरस्तीतिवाक्यश्रवणान्तरं गौरस्तितावान् स्वधर्मिका-  
 स्तित्वान्बोधोधानुकूलाकाङ्क्षाश्रयपदस्मारितत्वात् घटवत्, अस्ति-  
 पदसमभिव्याहृतगौरपदस्मारितत्वाद्वा चक्षुर्वदित्यनुमानमेव नतु  
 शब्दजन्यो विलक्षणो बोधः, पदानामेकवाक्यतापन्नत्वरूपसम-

उ० संसृष्टा एवेति वा साध्यम्, सम्भावितसंसर्गा इति वा,  
 • नाद्यः अनाप्तोक्ते व्यभिचारात्, न द्वितीयः योग्यतामात्र-  
 सिद्धावपि संसर्गानिश्चयान्निष्कल्पप्रवृत्त्यनुपपत्तेः, योग्यता-  
 याश्च पूर्वमेव हेतुविशेषणत्वेन ज्ञातत्वात् किमनुमानेनेति  
 चेन्न नियमस्यैव साध्यत्वात् आप्तोक्तत्वेन विशेषणाच्च न  
 व्यभिचार इत्युक्तत्वात्, नन्वाकाङ्क्षा श्रोतरि तदुत्पाद्य-  
 संसर्गावगमप्रागभावः स च स्वरूपसन्नेव हेतुस्तज्ज्ञाने च  
 संसर्गज्ञानस्य पूर्वमेव भावादनुमानवैयर्थ्यामिति चेन्न नहि  
 संसर्गावगमप्रागभावमात्रमाकाङ्क्षां ब्रूमः, किं तर्हि स्मारि-  
 ततदाक्षिप्ताविनाभावविशिष्टम्, तथाच विशेषणं ज्ञानादे-  
 वाकाङ्क्षाया ज्ञानात्, तर्हि तावदेवाकाङ्क्षाऽस्त्विति चेन्न  
 विमलं जलं नद्याः कच्छे महिषश्चरतीत्यत्रापि नदीक-  
 ष्कयोरविनाभावसत्त्वेनान्वयबोधापत्तेः नीलमुत्पलमित्यत्र  
 नीलोत्पलयोरविनाभावाभावेऽपि तदाक्षिप्तयो द्रव्यगुण-  
 योरविनाभावसम्भवात्, यदा पदस्मारितगोचरा जिज्ञासै-  
 वाकाङ्क्षा अभिधानापर्यवसानं वा तथापि तज्ज्ञानमा-  
 वश्यकं ज्ञायमानकारणे ज्ञानोपयुक्तव्यभिचारिवैलक्षण्यात्

वि० भिव्याहृतत्वनिश्चयं विना न्यायनयेऽप्यन्वयबोधस्यानुत्पत्त्या पूर्वं  
 तस्यावश्यकत्वात्, नच विनष्टे भाविनि वा घटचक्षुरादौ  
 व्यभिचारः, स्वार्थानुमाने स्वरूपसतस्तस्याकिञ्चित्करत्वात् एक-  
 विधव्यभिचारग्रहसत्त्वेऽपि अन्यविधव्याप्तिनिश्चयस्य सम्भवाच्च  
 समानप्रकारकस्यैव व्यभिचारग्रहस्य व्याप्तिधीविरोधित्वात्



उ० व्याप्तिवत्, अत एवान्वयनिश्चयविरहो वा, बाधकप्रमा-  
णाभावा वा, सजातोये दर्शनं वा, इतरपदार्थसंसर्गोपर-  
पदार्थनिष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वप्रमाविशेष्यत्वं वा यो-  
ग्यताऽस्तु, तज्ज्ञानमावश्यकम्, आसत्तेरप्यव्यवधानेन स्मरण-  
रूपार्थां ज्ञानं तन्त्रम्, संसर्गं च संसृज्यमानविशेषादेव विशेष-  
दति नानभिमतविशेषसिद्धिः । यद्वा एतानि पदानि स्मार्-  
रितार्थसंसर्गज्ञानपूर्वकाणि आकाङ्क्षायोग्यतासन्निमत्प-  
दकदम्बत्वात् गामभ्याजेतिपदकदम्बवदित्यनुमानात् ज्ञा-  
नावच्छेदकतयाऽभिमतविशेषसिद्धिः । यत्तु एतानि पदा-  
नि स्मारितार्थसंसर्गवन्तीति माध्यम्, तत् पदानां पदार्थसं-  
सर्गवत्त्वं बाधितमित्युपेक्षणीयम्, नच लिङ्गतया संसर्गज्ञा-  
पकत्वमेव पदानां संसर्गवत्त्वम्, तस्यानुमानात् पूर्वमसिद्ध-  
त्वेन व्याप्तेरग्रहात् । केचिच्चेष्टाप्रमाणान्तरमिति वदन्ति, त-  
त्रोच्यते चेष्टा द्विविधा कृतसमयाऽकृतसमया च, तत्र कृतस-  
मया अभिप्रायस्थं शब्दं स्मारयति नतु संसर्गप्रमाऽपि  
जनयति लिपिवत्, स्मृत्यारूढः शब्द एव तत्र प्रमाणं शब्दस्य  
च लिङ्गत्वमुक्तं नच शब्दस्मरणं चेष्टाया अवान्तरव्यापारः,

वि० अथवा गौःपदमस्तिवद्गौःचरज्ञानपूर्वकम् अस्तिपदसाका-  
ङ्क्षगौःपदत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथाकाशमित्येवं पदपक्षकानुमान-  
मिति, यद्वा सामान्यत एवानुमानं तथाहि एते पदार्थाः पर-  
स्परं संसर्गवन्तः आकाङ्क्षादिमत्पदस्मारितत्वाद्दृष्टेन गामभ्या-  
जेति पदार्थसार्थवत्, किं वा एतानि पदानि स्मारितपदार्थसंस-

उ० चेष्टामन्तरेणापि शब्दादर्थप्रत्ययात् व्यापारत्वे तु चेष्टा-  
 नैयत्यापत्तेः । नन्वेवं कथमेडमूकस्य चेष्टाधीनो व्यवहारस्तस्य  
 तत्र समयग्रहाभावादिति चेन्न तस्य चेष्टातः कथमर्थेऽपि  
 संप्रत्यय इति चिन्तनीयत्वात् तं स्वार्थेऽपि सङ्गतिग्रहाभा-  
 वात्, व्यवहारस्तु तस्याविनाभावग्रहात् करितुरंगयोरिव  
 कशाकुशाभिघातात्तत्तद्भवहारपाटवोपपत्तेः । अहृतस-  
 मयातु या कृत्यान्वयिनी, सा प्रयोजकाभिप्रायं स्मारयन्ती  
 प्रयोज्यं प्रवर्त्तयति, न तु कुत्रचित्प्रमां जनयति, यथा  
 शङ्खध्वनौ तयागन्तव्यमिति श्रुतशङ्खध्वनिः प्रतिष्ठते, तथा  
 यदा मया तर्ज्जन्यूर्द्धीक्रियते तदा तयाऽसौ ताडनीय इति  
 तदा ताडयति, न तु किञ्चित् प्रमिणोति । ज्ञानान्वयिनी त्व-  
 कृतसमया यथा दृष्टानामङ्गुलीनामूर्द्धकरणेन दशसङ्घा-  
 मुद्राणां पुराणानां वा तया ज्ञातव्येति कारकप्रधाना,  
 हस्ताकुञ्चनदर्शनान्वया समगन्तव्यमिति क्रियाप्रधाना,  
 तथाचानया चेष्टया पदार्था एव स्वतन्त्राः परं स्मार्यन्ते न तु  
 तेषां परस्परमन्वयोऽपि बोध्यते, तद्वेधककर्तृककर्मादिवि-

वि० गंज्ञानपूर्वकाणि आङ्गादिमत्पदकदम्बत्वात् दण्डेन गामभ्याजेति  
 पदकदम्बवदित्थेवानुमानम्, न च व्याप्तिज्ञानविरहस्थले कथं तादृ-  
 शानुमित्तिरिति वाच्यं तत्र विशिष्टबोधस्थानङ्गीकारात् तावत्-  
 पदार्थस्मृतिः परस्परं संसर्गावगाह्यलौकिकमागमप्रत्यक्षा-  
 त्मकविशिष्टबोधसम्भवाच्च । एतेन चेष्टाऽपि व्याख्यातेति संक्षेपः ।

सू० हेतुरपदेशोलिङ्गं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम् ॥ ४ ॥

उ० भक्तिवत् प्रकृतेचेष्टेकदेशानां नियतानामभावात्, तर्हि संसर्गबोधमन्तरेण चेष्टातः कथं प्रवृत्तिनिवृत्तौ इति चेत् संशयप्रतिभयोरन्यतरस्मादिति गृहाण, तस्मान्न चेष्टाऽपि प्रमाणमिति ॥ ३ ॥

ननु शब्दः कथं लिङ्गं शब्दस्यापदेशस्वभावत्वेन लिङ्गभिन्नत्वादित्याशङ्क्याह ।

अपदिश्यते कथ्यतेऽनेनार्थे इत्यपदेशः शब्दः, स च हेतुलिङ्गपर्याय एव, प्रमाणमिति लिङ्गविधया प्रमाकरणमित्यर्थः, एवं करणशब्देऽपि लैङ्गिकज्ञानकरणे लिङ्ग एव वर्तते, इथी हि करणगतिः, किञ्चित् सन्निकर्षाधीनप्रवृत्ति, किञ्चिच्चाविनाभावबलप्रवृत्ति, शब्दस्य तु अर्थेन न सन्निकर्षाणाप्यविनाभाव इति कथमर्थं गमयेत्, सङ्केताद्गमयतीति चेत् सङ्केताहि पदार्थे न तु तत्संसर्गे,

वि० ननु शब्दस्यापदेशपदवाच्यस्य कथं लिङ्गत्वमपदेशस्यानुमित्यजनकत्वस्योक्तत्वादिति तटस्थाशङ्कां निरस्यति ।

अपदेशशब्दे यद्यपि परिभाषया हेत्वाभासे वर्तते तथापि अपदिश्यते कथ्यतेऽनेनेतिव्युत्पत्त्या शब्देऽपि स वर्तते, शब्दश्च लिङ्गविधया लैङ्गिकज्ञान एव हेतुरिति, अनुमितिप्रमितिकरणश्च शब्देऽपि, एवं लिङ्गविधया करणत्वमपि शब्दे वर्तते, तथा च

सू० अस्येदमिति बुद्धपेक्षितत्वात् ॥ ५ ॥

उ० तत्रापि सङ्केत इति चेन्न तस्यानेकविधत्वेन सङ्केतविषयभावानुपपत्तेः, पदार्थसङ्केतबलादेवं वाक्यार्थाऽपि भासते इति चेन्न अन्यसङ्केतेनान्योपस्थितावतिप्रसङ्गात्, शब्दस्मारितसंसर्गत्वेन नियम इति चेत् तथा चैतन्नियमबलेनानुमानस्यैवलभावमरत्वात्, सङ्केतस्यापि इच्छामात्रत्वेनातिप्रसक्तत्वात्, ईश्वरेच्छा नातिप्रसक्तेति चेन्न तदिच्छामन्तरेणापि गङ्गादिपदान्तोराद्युपस्थितेरित्यलं नैयायिकेषु घृष्टतयेति ॥ ४ ॥

उपमानादीनामपि पराभिमतानां अविनाभावबलप्रवृत्तिकानां लैङ्गिक एवान्तर्भाव इति प्रतिपादयितुमाह ।

उपमानार्थापत्तिप्रभवाभावानामितिशेषः । अस्य व्यापकस्य इदं व्याप्यमित्याकारा या बुद्धिः सा जनकत्वेनापेक्षिता येषां ते तदपेक्षितास्तस्य भावस्तदपेक्षितत्वं तस्मादित्यर्थः आदिताग्निपाठात् ज्ञान्तेन वज्रब्रीहिः, तारकादिपाठा-

वि० हेतुरपदेशोलिङ्गं प्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरं एते शब्दा एकस्य लिङ्गस्य बोधकाः नतु हेत्वाभासमात्रबोधकाः हेत्वाभासस्यानुमापकत्वेऽपि शब्दस्यानुमापकत्वे न काचिदनुपपत्तिरित्याशङ्कितु र्मान्तिर्महतीतिभावः ॥ ४ ॥

उपमानादेरप्यनुमान एवान्तर्भाव इति प्रतिपादयति ।

अस्य व्यापकस्य साध्यस्य इदं साधनं व्याप्यमिति बुद्धेर्वाऽपेक्षा सा जाती येषां तत्त्वात्, यातिज्ञानसाक्षात्त्वादिति तु फलि-

उ० दितोवा, तत्रोपमानं तावदनुमानमेव शब्दद्वारा, तथाहि गोसदृशो गवय इति वाक्यन्तर्गत आरण्यकेन कीदृक् गवय इति नागरिकजिज्ञासायामभिधीयते तत्र ये गोसदृशः स गवयशब्दवाच्य इति सामानाधिकरण्यवशात् अतिदेशवाक्यश्रवणान्तरमेव परिच्छिनत्ति, वनं गतस्तु तादृशं पिण्डमुपलभ्यायमसौ गवयशब्दवाच्य इति प्रतिषन्वत्ते, अतिदेशवाक्यश्रवणसमये गवयत्वं प्रवृत्तिनिमित्तं न ज्ञातमतः कथं संज्ञापरिच्छेद इति चेत् लक्षणाया तत्प्रतीतिसम्भवात्, गोसदृशो गवय इति वाक्येऽन्वयानुपपत्तिविरहात् कथं लक्षणेति चेत् तात्पर्यानुपपत्तिसत्त्वात्, अनद्विद्युत्पित्सुं प्रति गोसादृश्यस्य सखण्डस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वेनोपदर्शनमुचितं, तस्मादखण्डजातिविशेषे तात्पर्यमस्येति लक्षणासम्भवात्, यद्वा गवयशब्देगवयवाचकः असति वृत्त्यन्तरे शिष्टैस्तत्र प्रयुज्यमानत्वात् असति वृ-

वि० तार्थः, उपमानार्थापत्तिसम्भवैतिह्यस्यलीयबुद्धीनां लैङ्गिकत्वमिति शेषः । तत्रोपमानजन्या बुद्धिस्तावत् ग्रामीणस्य प्राथमिकगवयचक्षुःसंयोगान्तरमयं गोसदृश इति प्रात्यक्षिकं ज्ञानं ततो गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थस्मरणं तत एतज्जातीयो गवयपदवाच्य इति या बुद्धिर्बुदेति सोपमितिरिति न्यायमतानुसारिणः, काण्णादमते तु साऽनुमितिरिव गोसादृश्यलिङ्गेन गवयपदवाच्यत्वव्याप्यतया गृहीतेन गवयपदवाच्यत्वस्यानुमितरेव तदानीं जननात्, व्याप्तिधोविरहदशायाश्च न भवत्येव गवयपदवाच्यत्वधोरिति । अथवा गवयप्रत्यक्षानन्तरं गवयपदं गवय-

उ० त्थन्तरे यः शब्देयत्र शिष्टैः प्रयुज्यते स तस्य वाचको यथा  
 • गोशब्देगोरित्यनुमानादेव गवयसंज्ञां परिच्छिनत्ति, तर्कश्च  
 यस्त्वयोपमानसहकारीवाच्यः स वरमनुमाने क्लृप्तप्रमाण-  
 भावेऽस्तु किं कल्पनीयप्रमाणभाषेनोपमानेनेति, अनुमान-  
 मयूखे विस्तरोऽत्रान्वेष्टव्यः । अर्थापत्तिरप्यनुमानमेव तथा-  
 हि दृष्टार्थापत्तिस्तावज्जीवंतश्चैत्रस्य गृहामन्त्रेण कृत्ततर-  
 प्रमाणावधृतेन वह्निः सत्त्वं कल्पयति, तत्रोपपाद्योपपादकयो  
 र्वाप्यव्यापकभावावधारणाधीनैव वह्निःसत्त्वप्रतीतिः, भव-  
 ति हि जीवतो गृहामत्त्वं वह्निःसत्त्वेन सहचरितं, वह्निःसत्त्वं  
 विना जीवतो गृहामत्त्वमनुपपन्नमिति वा ज्ञानम्, तत्राद्ये-  
 ऽन्वयव्याप्तिरेवान्ये तु व्यतिरेकव्याप्तिरेव ग्रह इति, व्याप्तिरस्ति  
 न तस्य ग्रहणमिदोपयुज्यत इति चेत् व्याप्तिग्रहमन्तरै-

वि० त्वप्रवृत्तिनिमित्तकम्, असति वृत्त्यन्तरे वृद्धेस्तत्र प्रयुज्यमानत्वात्  
 यथा गोपदं गोत्वप्रवृत्तिनिमित्तकम्, यद्वा गवयपदं सप्रवृत्ति-  
 निमित्तकं साधुपदत्वादित्यनुमानेन पक्षधर्मताबलाद्गवयत्व-  
 प्रवृत्तिनिमित्तकत्वं भासते इति । मीमांसका अर्थापत्तिं  
 प्रमाणान्तरं मन्यन्ते तथाहि यत्र देवदत्तस्य शतवर्षजीवित्वं  
 ज्योतिःप्रास्नादवगतं जीविनो गृहामत्त्वञ्च प्रत्यक्षादवगतं । तत्र  
 शतवर्षजीवित्वान्यथानुपपत्त्या वह्निःसत्त्वं कल्प्यते, तदनुमानेन  
 गतार्थत्वान्नेष्यते, तथाहि जीवित्वस्य वह्निःसत्त्वगृहसत्त्वान्यतर-  
 व्याप्यत्वं गृहीतं तत्रान्यतरसिद्धौ जायमानायां गृहसत्त्वबाधात्  
 वह्निःसत्त्वमनुमितौ भासते, एषं पौनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते  
 इत्यादौ ऋीनत्वस्य भोजनव्याप्यत्वागमाद्भोजनं सिद्धत् दिवाभो-

उ० णार्थापत्त्याभासानवकाशात्, स्वरूपसत्या व्याप्या वस्तुतोय-  
दुपपादकं तस्यैव कल्पना स्यादिति दिक् । संश्रयकर-  
काया विरोधकरणायाश्चानुमानान्तर्भाव ऊहनीयः ।  
विरोधस्यापि सहानवस्थाननियमलक्षणस्य व्यभिचटि-  
तत्वात् । अर्थार्थापत्तिरप्यनुमितानुमानं पीनो देवदत्तो  
दिवा न भुङ्क्ते इत्यनेन वाक्येन पीनत्वमनुमितं तेन च पीन-  
त्वेन रात्रिभोजनानुमानं, देवदत्तो रात्रौ भुङ्क्ते दिवाऽभो-  
जित्वेति पीनत्वान्तवदिति । सम्भवोऽप्यनुमानमेव, तदु-  
दाहरणं हि सम्भवति खार्यां द्रोणः सम्भवति द्रोणे आट-  
कम् सम्भवति सहस्रे शतमित्यादि, तत्रेयं खारी द्रोणवती  
तद्वदितत्वात् यद्येन घटितं तत्तेन तदत् यथाऽवयववान्  
घटः, एवमन्यदप्युह्यम् । यत्तु सम्भवति ब्राह्मणे विद्या,

वि० जनवाधे रात्रिभोजनं सिध्यति । एवं सम्भवैतिह्ययोरपि प्रमा-  
णान्तरत्वं मन्यन्ते पौराणिकाः, तथाहि सम्भवो भूयःसहचारा-  
धीनज्ञानं यथा सम्भवति ब्राह्मणे विद्या सम्भवति सहस्रे शत-  
मत्र च व्याभिर्नापेक्षितेति तेषामाशयः, एवमैतिह्यमिति हेच-  
रित्यनेन प्रकारेण यदुच्यते, तद्वि चनिर्दिष्टप्रवक्तृकं परम्परागतं  
वाक्यं, यथा वटेवटे यत्त इत्यादि, तस्याप्तोक्तत्वानिश्चयान्न शब्दे-  
ऽन्तर्भाव इति पौराणिकानामभिसन्धिः, तदेतन्मतं न समीची-  
नम्, ऐतिह्यस्य शब्दरूपतयाऽनुमानयवान्तर्भावात्, सम्भवोऽपि  
व्याप्तिसापेक्षोऽनुमान एवान्तर्भवति, तन्निरपेक्षस्तु प्रमाणमेव न,  
तदुक्तं गौतमीये “शब्द ऐतिह्यानर्थान्तरभावादनुमानेऽर्थापत्ति-

सम्भवति चित्रिये शैथिल्यमित्यादि, तत्रमाणमेव न भवति  
 अनिश्चायकत्वात् । अभावोऽपि न मानान्तरं कार्येण कार-  
 णानुमानवत् कार्याभावेन कारणाभावानुमानस्य व्याप्ति-  
 मूलकत्वेनानुमान एवान्तर्भावात् । भट्टमतन्तु भूतत्वादाव-  
 भावग्रहकं प्रमाणमनुपलम्भाख्यं, तत् क्वचित् प्रत्यये क्वचि-  
 च्चानुमानेऽन्तर्भूतं चक्षुरादिर्नैवाभावग्रहात्, नचेन्द्रियम-  
 धिकरणग्रह एवोपचीणम्, अभावग्रहपर्यन्तं तद्व्यापारम-  
 त्त्वात् । ऐतिह्यमविज्ञातप्रवक्तृकं प्रवादपारम्पर्यम्, इतिहेति-  
 निपातसमुदायः पुरावृत्ते वर्तन्ते, तस्य भाव ऐतिह्यं, तद्  
 यदि वाधितार्थं न भवति तदाशब्दान्तर्निवेशादनुमानम्,  
 यदिह वटे यद्योमधुकतरौ गौरीत्यादि तद् यद्योमोक्तं  
 तदा पूर्ववत्, नास्मिन्नेतदा न प्रमाणम्, तदेवं प्रत्यक्षम-  
 नुमानञ्चेति सिद्धं इयमेव प्रमाणमिति ॥ ५ ॥

लौकिकं व्याख्याय इदानीं प्रकरणान्तरमारभते ।

सम्भवाभावानामनर्धान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः” इति, भट्टमते वेदान्त-  
 मते चानुपलब्धेरपि प्रमाणान्तरत्वमस्ति तथाचाभावग्रहो-  
 भवतीति, तन्मतमपि न मनोरमम्, अनुपलब्धिस्थले इन्द्रियसम्ब-  
 द्धविशेषणताप्रत्यासत्त्या प्रत्यक्षमेव भवतीति तत्र चानुपलब्धेः  
 कारणत्वं न विप्रतिपद्यामहे प्रमाणान्तरत्वन्तु तस्या न युक्ति-  
 पदवी स्पृशतीति संक्षेपः ॥ ५ ॥

द्विविधामनुभूतिरूपां बुद्धिं परीक्ष्य स्मृतिरूपां बुद्धिं परीक्षि-  
 तुमारभते १



सू० आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्मृ-  
तिः ॥ ६ ॥

उ० उत्पद्यते इतिशेषः, संयोगविशेषः प्रणिधानादिसन्नि-  
धानम्, एतस्मादसमवायिकारणादात्मनि समवायिनि  
स्यति विद्याविशेष उत्पद्यते, निमित्तकारणमाह संस्का-  
रादिति चकारेण व्यापारी पूर्वानुभवः समुच्चोयते, अनु-  
भवयाथार्थ्यायाथार्थ्यामियमनुविधत्ते, रज्जुंभुजङ्गतयोपलभ्य  
पलायितस्य तथैव स्यते, नच सततं स्यतिप्रसङ्गः, संस्कारो-  
द्बोधाधीनत्वात्, तदुक्तं प्रशस्तदेवपादैः “लिङ्गदर्शनेच्छानु-  
स्मरणान्छेच्छादात्ममनसोः संयोगविशेषात् पद्वभ्यासादर-  
प्रत्ययजनिताश्च संस्काराद्दृष्टश्रुतानुभूतेषु शेषानुव्यवसाय-  
स्मरणेच्छादेशहेतुरतीतविषयास्मृतिः” इति । आर्षं ज्ञानं  
सूत्रकृता पृथङ्गं लक्षितं, योगिप्रत्यक्षान्तर्भावितं, पदार्थप्रदे-  
शाख्यं तु प्रकरणे तदुक्तं तद्यथा “आम्नायविधाहृणामृषी-  
णामतीतानागतवर्त्तमानेष्वतीन्द्रियेष्वर्थेषु धर्मादिषु ग्रन्थो-  
पनिबद्धेषु वा लिङ्गाद्यनपेक्षादात्ममनसोः संयोगाद्भ्रूमविशे-  
षाच्च प्रातिभं ज्ञानं यदुत्पद्यते तदार्षम्” इति तच्च कदा-

वि० आत्ममनसोः संयोगविशेषात् सुसृष्टादिसहितादात्ममनः-  
संयोगात्, संस्कारात् समावाकारकात् भावनाख्यात्, चकारा-  
दुद्बोधकाच्च स्मृतिर्भवति तत्र च उपेक्षानात्मकनिश्चयः क-  
रणं, संस्कारोत्थापारः, उद्बोधकास्तत् सहकारिणः, आत्ममनः-

सू० तथा स्वप्नः ॥ ७ ॥

उ० चिह्नैकिकानामपि भवति यथा कन्यका वदति श्वे मे भ्राता  
गन्तेनिहृदयं मे कथयतीति ॥ ६ ॥

तदेवं चतुर्विधां विद्यां व्युत्पाद्य इदानीमविधां व्युत्पा-  
दयितुमर्हति, तत्र संशयविपर्ययौ प्रसङ्गात् पूर्वमेव निरू-  
पितौ, स्वप्नं निरूपयितुमाह ।

यथात्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्वप्तिस्तथा  
स्वप्नज्ञानमपीत्यर्थः । उपरतेन्द्रियगामस्य प्रलीनमनस्कस्य  
इन्द्रियद्वारेण यदनुभवं मानसम्, तत् स्वप्नज्ञानम्, तच्च  
त्रिविधं किञ्चित् संस्कारपाटवात् कामी क्रुद्धो वा यमर्य-  
मादृतस्त्विन्त्यम् स्वपिति तस्य तस्यामवस्थायां प्रत्यक्षाकारं  
ज्ञानं पुराणादिश्रवणजनितसंस्कारवशाच्चायते कर्णाङ्गुलीयं

वि० संयोगोऽसमवायिकारणं संसृष्टारूपप्रविधानादिकं निमित्तका  
रणमित्यर्थः ॥ ६ ॥

स्मृता यथा संस्कारः कारणं तथा स्वप्नसंज्ञकमानसज्ञाने-  
ऽपीत्याह ।

तथा आत्ममनःसंयोगविशेषात् पूर्वानुभवजनितसंस्काराच्च  
स्वप्नोमानसज्ञानविशेषो भवति, अत्र संयोगे विशेषोमेध्यामनः  
संयोगात्प्रदोषविशिश्लम् अतएव तदानीं मन एव भव-  
ति, पूर्वानुभवस्य ऐहिकोज्ज्वलान्तरीयो वा, नच नशादेर्दम-  
यन्त्यादिदर्शनमुषादेरनिर्बन्धादिदर्शनं पुराणादिप्रसिद्धं कथं  
सङ्गच्छते सज्जन्मन्धनुभवात् ज्ज्वलान्तरे विषयस्याद्यातत्वेना-

उ० युद्धमिदमित्याकारम्, किञ्चिद्भावनं वातपित्तश्लेष्मणां दोषात्, तत्र वातदोषादाकाशगमन-वसुन्धरापर्यटन-व्याप-  
 दिभयपलायनादीनि पश्यति, पित्तोपचयदोषमहिम्ना  
 ऋप्रवेश-वर्द्धिज्वालांलिङ्गन-कनकपर्वत-विद्युत्प्रताविस्फुर-  
 णदिग्दाहादिकं पश्यति, श्लेष्मदोषप्राबल्यात् समुद्रमन्तर-  
 णनदीमज्जन-धारासारवर्षण-रजतपर्वतादि पश्यति, अदृ-  
 ष्टवशादपि तज्जन्मानुभूतेषु जन्मान्तरानुभूते वा सिद्धाप-  
 सुतान्तःकरणस्य यज्ज्ञानमुत्पद्यते तत्र शुभावेदकं धर्मात्  
 गजारोहण-पर्वतारोहण-कूचलाभ-पायसभक्षण-राजसन्द-  
 र्शनादिविषयकम्, अधर्मात् तैलाभ्यञ्जनाभ्यक्षूपतनोद्धारो-  
 रोहण-पैङ्गमज्जन-खविवाहदर्शनादिविषयकं स्वप्नज्ञान-  
 मुत्पद्यते त्रयाणां मिलितानामेकात्र कारणत्वं गुणप्रधान-  
 भावमाश्रित्यायं विभागो द्रष्टव्यः ॥ ७ ॥

ननु यज्ज्ञानं स्वप्नमध्ये स्वप्नज्ञानानुभूतसैवार्थस्य स्य-

वि० नुभवासम्भवाच्चेति वाच्यं संसारस्यानादितया कल्पान्तरानुभूत-  
 तत्तद्विषयसंस्कारेण तत्तद्विषयस्वप्नसम्भवात्, नच “अदृष्टमप्यर्थ-  
 मदृष्टवैभवात् करोति सुनिर्जनदर्शनातिथिनम्” इति श्रीहर्ष-  
 वाक्यस्यासङ्गतिरिति वाच्यं तत्रादृष्टपदस्य तज्जन्मादृष्टार्थकत्वात्,  
 तत्र किञ्चित् स्वप्नज्ञानं वातदोषाधीनमाकाशगमनादिविषयकम्,  
 किञ्चित् पित्तदोषाधीनं विद्युद्दर्शनादिविषयकम्, किञ्चित् श्लेष्म-  
 दोषाधीनं नदीमज्जनादिविषयकम्, तत्र कानिचिज्ज्ञानानि  
 शुभसूचकानि, कानिचिच्चाशुभसूचकानि तदुक्तम्,

सू० स्वप्रान्तिकम् ॥ ८ ॥

उ० तिरूपं जायते तत्र स्वप्रत्वं न वर्त्तते स्वप्रस्थानुभवरूपत्वात्  
तथा च कस्मात् कारणात्तदुत्पन्निरित्यर्थः आह ।

तथेति पूर्वसूत्रादनुवर्त्तते तेनात्ममनसोः संयोगविशेषात्  
संस्काराच्च यथा स्वप्रस्तथा स्वप्रान्तिकमपीत्यर्थः ।  
एतावानेव विशेषो यत् स्वप्रज्ञानं पूर्वानुभवजनितात् संस्कारात्,  
स्वप्रान्तिकन्तु तत्कालोत्पन्नानुभवजनितसंस्कारादेव,  
तदुक्तं प्रश्नस्तदेवाचार्यैः “अतीतज्ञानप्रत्यवेक्षणात्  
स्मृतिरेव” इति । उक्तञ्च वृत्तिकारैः “अनुभूतवस्तु-  
स्फुरणार्थतया न स्मरणादर्थान्तरं स्वप्रज्ञात्तम्” इति ।

वि० “आरोहणं गोरुषकुञ्जराणां प्रासादशैलाग्रवजस्पतीनाम् ।  
आरुह्य नैकां प्रतिगृह्य वीणां भुक्त्वा रुदित्वा भुवमर्थलाभः” ॥  
इति,

“कृष्णाम्बरधरा नारी कृष्णगन्धानुलेपना ।

उपगूहति यं स्वप्ने तस्य मृत्युर्न संशयः” ॥

इत्यादि च, अत्रच मानसं ज्ञानं ज्ञानजन्तारूपलौकिकसन्निक-  
र्षाद्भवति स्मरणञ्च संस्कारादिति विशेषः ॥ ७ ॥

स्वप्रान्तिकसंज्ञकेऽपि ज्ञाने एतदेव कारणमित्याह ।

तथेत्यस्य पूर्वसूत्रस्यात्रानुषङ्गादेषोऽर्थः । तथाच स्वप्रज्ञानं  
यथात्ममनःसंयोगविशेषसंस्कारोभयजन्यं तथा स्वप्रान्तिकाख्यं  
ज्ञानमपीत्यर्थः । इदञ्च ज्ञानं स्वप्रावस्थाजात्प्रानुभवजनितसंस्कारेण  
जायते, किन्तु सूत्र्यात्मकम्, न मानसमिति विशेषः ॥ ८ ॥

सू० धर्माच्च ॥ ९ ॥

इन्द्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥ १० ॥

उ० स्वप्नमध्ये प्रमोभूतं चञ्ज्ञानं तत् स्वप्नान्तिकमिति केचित्  
यथा शय्यायां शयानोऽस्मीत्यादि ॥ ८ ॥

स्वप्नस्वप्नान्तिकयोः कारणं समुच्चिनोति ।

अधर्मसमुच्चयार्थसंस्कारः, कृतव्याख्यानमेतत् ॥ ९ ॥

इदानीं पर्यायमधिकृत्याह ।

अविद्येति सामान्यवाच्यपि पदं विपर्यये वर्तते प्रकर-  
णात् संशयस्वप्नान्धवशाद्यानाभिकृत्वात्, तत्रेन्द्रियदोषोवा-  
तपित्ताद्यभिभवकृतमपाटवम्, संस्कारदोषाविशेषादर्शन-  
साहित्यं तदधीनं हि मिथ्याज्ञानं जायते ॥ १० ॥

वि० स्वप्नस्वप्नान्तिकयोरदृष्टमप्यसाधारणं कारणमित्याह ।

अकारादधर्मस्य संग्रहः । केचित्तु संस्कारं विनैव धर्मादि-  
मात्रादपि किञ्चित् स्वप्नादिकं जायते इतिप्रतिपादनायेदं सूत्रम्,  
अतएव पूर्वोक्तश्रीहर्षकाव्यमपि साधु सङ्गच्छते इत्याहुः ॥ ९ ॥

प्रकारान्तरेणापि बुद्धिर्द्विविधा प्रमाऽप्रमाचेति तत्राप्रमायाः  
कारणमाह ।

इन्द्रियदोषः काचादिः, संस्कारदोषोऽभमानुभवज तत्वादिः  
अकारादूरत्वादिरूपाणामसङ्गिरूपरामर्शादिरूपाणाञ्च दोषाणां  
संग्रहः, तथाचाविद्यायामप्रमायां दोषः कारणं दोषस्तु पित्तद्रु-  
त्वादिरूपो नानाविध इत्यर्थः ॥ १० ॥

अविद्याया कक्षयमाह ।

सू० तद्दुष्टज्ञानम् ॥ ११ ॥

अदुष्टं विद्यां ॥ १२ ॥

उ० अविद्यासामान्यलक्षणमाह ।

तदित्यव्ययपदं सर्वनामसमानार्थकमविद्यां परामृशति,  
साऽविद्या, दुष्टज्ञानं व्यभिचारिज्ञानमतीक्ष्णं स्तद्विदितज्ञानं  
व्यधिकरणप्रकारावच्छिन्नं विश्वेद्यावृत्तिप्रकारकमिति या-  
वत्, दोषस्य ज्ञानस्यानिश्चयरूपत्वमपि, तेनैककोटिसत्त्वेऽपि  
संशयोदुष्ट एवानवधारणात्मकत्वात्, तदनेन संशयविपर्यय-  
स्वप्नान्धवसायानाश्चूर्णामप्युपग्रहः ॥ ११ ॥

ज्ञानमित्यनुवर्तते अदुष्टमदुष्टेन्द्रियजन्यं यच्च यदस्ति तत्र  
तदनुभवो वा समानाधिकरणप्रकारानुभवो वा विश्वेद्या-  
वृत्त्यप्रकारकानुभवो वा विद्येत्यर्थः, तच्चाध्यक्षं लौकिकस्य  
द्वयमेव ॥ १२ ॥

वि० सर्वनामसमानार्थकं तदित्यव्ययं नातस्तेनाविद्यापरामर्शानुप-  
पत्तिः, दोषजन्यं ज्ञानं सा अविद्येति अविद्यालक्षणम्, अत्र दो-  
षाणामन्यतमत्वेन निवेशः, उपलक्ष्यमेतत् तदभाववति तत्  
प्रकारकं विश्वेद्यावृत्तिप्रकारकं वा ज्ञानमित्यप्यविद्यालक्षणं द्रष्ट-  
व्यम् ॥ ११ ॥

प्रमाणक्षयमाह ।

दोषानधीनं ज्ञानं प्रमेति प्रमाणक्षयं ज्ञमसामान्यभिन्नज्ञानं  
प्रमेत्यपि लक्षणं द्रष्टव्यम्, आशिकप्रमाया अलक्ष्यत्वमेव, तद्वति  
लक्षणकारकं ज्ञानं तत्रमेति विशेषलक्षणम्, एतच्च रङ्गरञ्जतयोदि-

सू० आर्षं सिद्धदर्शनञ्च धर्मोभ्यः ॥ १३ ॥

उ० नन्वार्षमपि ज्ञानं समानाधिकरणप्रकारकमेव तच्च  
नेन्द्रियजन्यमसैन्निकृष्टार्थगोचरत्वात्, न लौकिकं लिङ्गा-  
नुसन्धीनमन्तरेण जायमानत्वात्, तथा चैतत्करणं तृतीयं  
प्रमाणमायातमत आह ।

च्छीणां गालवप्रभृतीनां यदतीतानागतविषयकं ज्ञा-  
नं तदार्षम्, यच्च सिद्धानां मन्त्रौषधिगुटिकाञ्जनादिना  
व्यवहितविप्रकृष्टार्थगोचरज्ञानं प्रतिसिद्धिगतानां यद-  
तदुभयं धर्मोभ्यो यथार्थसाक्षात्कारिज्ञानं जायते, तत्र  
प्रत्यक्षेऽन्तर्भावान्न विद्यान्तरमिति वृत्तिकृतः, आर्षं ज्ञानं  
चतुर्थी विद्यैव साच च्छीणां लौकिकानाञ्च भवति, तच्च  
मानसं प्रत्यक्षमेव उत्प्रेक्षासहकृतेन मनसा जनितं नियम-

वि० मे रजते इत्याद्यांशिकप्रमासाधारणम्, स्मृतित्यावृत्तप्रमाणक्षणे  
च अनुभवत्वं निवेशनोपमिष्यन्त्यत्र विस्तरः ॥ १२ ॥

ननु योगिनां ज्ञानं कथमविद्या न भवति दूरत्वादिरूपविष-  
यदोषस्य तत्रापि सम्भवादत आह ।

आर्षमृषीणां योगजधर्मण्य जनितं यत् सिद्धदर्शनं सिद्धानां  
सतां सर्वेषां वस्तूनां दर्शनं तद्धर्मोभ्यो जायते नतु तत्राधर्मः  
कारणमिति न तत् कदाचिदपि भ्रमरूपं, भ्रमं प्रति अधर्मस्य  
हेतुत्वात्, योगिनां ज्ञानन्तु धर्ममात्राधीनं प्रमारूपमेव भवति  
दूरत्वादेर्विषयदोषस्य तत्र भ्रमत्वासम्पादकत्वात्, दोषाणां भ्रम-  
जनकत्वमधर्मसहकारेणैवेति हृदयम्, केचित्तु सिद्धेन मन्त्राद्यभि-

उ० सन्दर्शनादि-स्त्रिङ्गजनितं वा, प्राग्भवोयसंस्काराधीनैवात्र  
 व्याप्तिधीः, स्तनपानेष्टमाधनताव्याप्तिग्रहवत् । प्रशस्ताचा-  
 र्यास्तु सिद्धदर्शनं न ज्ञानान्तरमित्याहुः तथाहि यदि  
 सिद्धाङ्गां गुटिकाञ्जनादिसिद्धनिमित्तप्रभवं व्यवहितवि-  
 प्रकृष्टविषयं तदुच्यते तदा प्रत्यक्षमेव, यदितु दिव्यान्तरी-  
 क्षभौमानां ग्रहनक्षत्रसञ्चारादिनिमित्ताधीनं तदा तस्यैङ्गि-  
 कमेव तथा सहचारदर्शनेन व्याप्तिपरिच्छेदादिति ॥ १३ ॥

इति श्रीशाङ्करे वैशेषिकसूत्रोपस्कारे नवमोऽध्यायः ।

समाप्तश्चायं नवमोऽध्यायः ।

वि० मन्त्रितेन गुटिकाञ्जनैविशेषादिना यद्दर्शनं भवति तदपि आर्ध-  
 वत् धर्मैभ्य एव भवति अतएव रघुवंशे “अतीन्द्रियेव्यप्युपपन्न-  
 र्शनोवभूव भावेषु द्रिणीपनन्दनः” इत्यादिकमपि साधु सङ्गच्छते,  
 तथाच तादृशज्ञानमपि धर्ममात्राधीनतया प्रमारूपमेव भवती-  
 तिभाव इति व्याचक्षते ॥ १३ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-प्रणीतायां क-  
 षादसूत्रविवृतौ नवमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ • ॥

समाप्तश्चायं नवमोऽध्यायः ।



सू० इष्टानिष्टकारणविशेषाद्विरोधाच्च मिथः सुख-  
दुःखयोरर्थान्तरभावः ॥ १ ॥

उ० आत्मगुणानां कारणतोभेदव्युत्पादनं दशमाध्यायार्थः,  
तत्र “आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभाव-  
फलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्” इति गौतमीये प्रमेयविभाग-  
सूत्रे सुखस्थानभिधानात् दुःखाभिन्नमेव सुखमिति भ्रम-  
निरासार्थं सुखदुःखयोरेव प्रथमं भेदमाह ।

सुखदुःखयोर्मिथः परस्परमर्थान्तरभावोभेदो वैजात्य-  
मितियावत् कुत इत्यत आह इष्टानिष्टकारणविशेषात्  
इष्टं इच्छमाणं स्रक्चन्दनवनितादि, अनिष्टमनिच्छमाण-  
महिकण्टकादि, तद्रूपं यत्कारणं तस्य विशेषाद्भेदात् का-  
रणवैजात्याधीनं कार्यवैजात्यमावश्यकं यतः, भेदकान्त-  
रमाह विरोधात् सहानस्थानस्रवणात् नह्येकस्मिन्नात्म-

वि० अगन्तोहनपादाब्जपरागनिकरं परं ।

स्मारं स्मारं पुरःपूरं तरेयं विप्लवारिधेः ॥

क्रमप्राप्ते सुखदुःखे परीचिच्छिषु स्तयोर्भेदन्तावह्यवस्थापयति ।

गौतमीयेन “दुःखविकल्पे सुखाभिमावाच्च” इति सूत्रेण दुःखस्य  
सुखाभिमानविषयत्वमुक्तं तेनापाततो दुःखमेव सुखं ननु तद्विभ्रं  
गुणान्तरमिति बोधोभवति तद्भ्रमनिरासार्थमयमारम्भः । सुख-  
दुःखयोरर्थान्तरभावो नैकत्वम्, इष्टं स्रक्चन्दनवनितादिकम्,  
अनिष्टमहिकण्टकवैरिपूतिगन्धादिकम्, तद्रूपं यत्कारणं तस्य वि-

उ० न्येकदा सुखदुःखयोरनुभवः । चकारादनयोः कार्य-  
 • भेदं भेदकं समुच्चिनोति, तथाहि अनुग्रहाभिष्वङ्गनयन-  
 प्रसादादि सुखस्य, दैन्यमुखमालिन्यादि दुःखस्य कार्य-  
 मिति ततोऽप्यनयोर्भेदः । तदुक्तं प्रशस्तार्थचार्यैः “अनुग्रह-  
 लक्षणं सुखं स्वगाद्यभिप्रेतविषयसान्निध्ये सति दृष्टौत्पन्नधी-  
 न्द्रियार्थमन्निकर्षाद्दुर्माद्यपेक्षादात्ममनसोः संयोगाद्यद्य-  
 दनुग्रहाभिष्वङ्गनयनादिप्रसादजनकमुत्पद्यते तत् सुख-  
 म्” इति, तदिदमतीतेषु स्वक्चन्द्रनादिषु स्थितिजमना-  
 गतेषु सङ्कल्पजम्, गौतमीये सूत्रे सुखापरिगणनं वैरा-  
 ग्याय सुखमपि दुःखत्वेन भावयतो वैराग्यं स्यादेतदर्थ-  
 मिति ॥ १ ॥

नन्वास्तां सुखदुःखे परस्परं भिन्ने ज्ञानादभिन्ने स्यातां  
 स्थत्यनुभववदित्यत आह ।

वि० शेषात् वैलक्षण्यात् मिथः परस्परं विरोधात् एकात्मनि युग-  
 पदनृत्यमानत्वाच्च नहि विजातीयकारणकयोर्विबद्धयोर्वाऽ-  
 भेदः सम्भावनापदवीमधिरोहति, गौतमीयं सूत्रन्तु सुखं दुःख-  
 स्त्वेन भावनीयं वैराग्यार्थमित्येतत्परमिति । वस्तुतः सर्वजन-  
 संवेदनसिद्धं सुखं दुःखं वाऽपङ्क्तुं न शक्नोति ग्रीर्वाणगुरुरपी-  
 तिसंक्षेपः ॥ १ ॥

ननु सुखदुःखे ज्ञानविशेषावेव यथैन्द्रियकैङ्करिके नतु भिद्ये-  
 ते तत इत्यत आह ।

सू० संशयनिर्णयान्तराभावश्च ज्ञानान्तरत्वे हेतुः

॥ २ ॥

उ० सुखदुःखयोर्ज्ञानान्तरत्वे ज्ञानभिन्नत्वे संशयनिर्णयाभ्यन्तरत्वाभावाहेतुर्लिङ्गमित्यर्थः, तदयमर्थः सुखं दुःखं वा ज्ञानं भवत्संशयरूपं वा स्यात् निर्णयरूपं वा, नाद्यः कोटिद्वयानुसृष्टित्वात्, न द्वितीयः एककोट्यनुसृष्टित्वात्, तथाच यावद्द्विशेषबाधात् सामान्यबाधः, द्वावेव हि ज्ञानस्य विशेषौ संशयत्वं निर्णयत्वञ्च, तदुभयञ्च सुखे दुःखे च बाधितमिति ज्ञानत्वमपि तत्र बाधितम्, चकारादनुभवबाधं समुच्चिनोति सुखदुःखयोरहं सुखी दुःखीतिमानसोऽनुभवे नत्वहं जाने सन्देहो निश्चिनोमीत्याकारोऽनुभूव इति ॥ १ ॥

भेदकान्तरमाह ।

वि० सुखदुःखयोर्ज्ञानान्तरत्वे ज्ञानगुणभिन्नत्वे संशयनिर्णयान्तराभावः संशयनिश्चयान्तर्गतत्वाभावाहेतुः । ज्ञानगुणो हि द्विविधः सन्देहो निश्चयश्चेति न हि तयोरन्यतरस्मिन्नपि सुखं दुःखं वाऽन्तर्भवितुमर्हति न हि सुखं दुःखं वा विरुद्धकोटिद्वयप्रकारकं येन तयोः सन्देहत्वं सम्भावेत, नापि तदभावाप्रकारकं सत्तत्प्रकारकं येन निर्णयत्वं सम्भावनीयमिति, ज्ञानस्य तृतीयप्रकारस्तु शशविषाणायमानः, नातस्तत्र सुखं दुःखं वा प्रवेष्टुमीष्टे इति ॥ २ ॥

ननु यथा निर्विकल्पकं ज्ञानं न संशयोनापि निश्चयस्तथा सुखदुःखेऽपि स्यातामत आह ।

सू० तयोर्निष्पत्तिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्याम् ॥ ३ ॥

उ० • तयोः संशयनिर्णययोर्निष्पत्तिरुत्पत्तिः प्रत्यक्षलिङ्गात्  
सुखं दुःखं वा न प्रत्यक्षसामपीजन्यं न वा लिङ्गजन्यम्,  
चतुर्विधं हि सुखं वैषयिकं मानोरथिकम् आभिमानि-  
कमाभ्यासिकञ्च, तत्र चयाणामिन्द्रियमन्निकर्षप्रभवत्वं ना-  
स्त्येव प्रथममिन्द्रियार्थमन्निकर्षजत्वात् ज्ञानं स्यादिति चेन्न  
सामग्र्येकदेशस्य कार्यस्य साजात्यानापादकत्वात् अन्यथा  
दिक्कालसाधारणेन सकलकार्यैकजात्यापत्तेः, किञ्च इ-  
न्द्रियार्थमन्निकर्षानुत्पद्यमानं सुखं निर्विकल्पकं वा स्यात्  
सविकल्पकं वा, नाद्यः अतोन्द्रियत्वप्रसङ्गात्, न द्वितीयः  
विशेष्यविशेषणभावेन द्वयोरनाकलनरूपत्वात्, किञ्च सुख-  
दुःखयोरवश्यसंवेद्यत्वात् ज्ञानस्यावश्यसंवेद्यत्वेऽनवस्थाप्रस-  
ङ्गात्, लैङ्गिकमिति लिङ्गमेव वैषयिकवत्। वृत्तिरुतस्तु तयो-  
र्ज्ञानसुखयोर्निष्पत्तिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्यां प्रत्यक्षलैङ्गिकज्ञा-  
नव्याख्यानाभ्यां व्याख्याता, प्रत्यक्षं ज्ञानमिन्द्रियजम्, लैङ्गि-  
कन्तु लिङ्गजम्, सुखादिकन्तु नैतादृशमिति व्याचक्रुः ॥ ३ ॥

वि० तयोःसुखदुःखयोर्निष्पत्तिः सिद्धिः प्रत्यक्षलैङ्गिकाभ्यां स्वा-  
त्मनि सुखदुःखे प्रत्यक्षसिद्धे परात्मनि नयनप्रसादादिना सुखस्य  
मुखमालिन्यादिना दुःखस्यानुमानं भवति तथाच तयोर्निर्वि-  
कल्पकज्ञानरूपत्वे प्रत्यक्षानुपपत्तिः मुखप्रसादमालिन्यादिलिङ्ग-  
कानुमितिविषयत्वानुपपत्तिश्चातो ज्ञानान्तर्गतत्वं न सुखदुःख-  
योरिति भावः ॥ ३ ॥

ख० अभूदित्यपि ॥ ४ ॥  
सति च कार्यादर्शनात् ॥५ ॥

उ० लैङ्गिकज्ञानात्सुखादेः प्रकारभेदाधीनं भेदमाह ।  
इतिशब्दः प्रकारे, अपिशब्दो भविष्यतीत्याकारान्तर-  
समुच्चये, तथाच पर्वते, वङ्गिरभृद्भ्रविष्यति वेति लैङ्गिके  
ज्ञानेऽतीतादिः प्रकारोदृशते नचैवंप्रकारं सुखं दुःखं वा  
उत्पद्यमानमुपलभ्यम् ॥ ४ ॥

भेदकान्तरं समुच्चिनोति ।

सति इन्द्रियार्थसन्निकर्षे सति च व्याप्तिपक्षधर्मादि-  
प्रतिसन्धाने कार्यस्य सुखस्य दुःखस्य वाऽदर्शनात् न प्रत्य-  
क्षमात्रं सुखं दुःखं वा न लैङ्गिकमात्रं वा, तद्व्यमर्थः ज्ञान-  
सामान्यं तावत् सुखदुःखे न भवन्त इत्युक्तं ज्ञानविशेषः

वि० भेदकान्तरमपि दर्शयति ।

पर्वते वङ्गिरभृत् पर्वते वङ्गिरस्ति पर्वते वङ्गिर्भविष्यतीत्याद्या-  
कारा अपि ज्ञानस्य ज्ञानसुखाद्योर्भेदकाः, ज्ञानं हि अतीताना-  
गतवर्तमानविषयकं भवति नहि सुखस्य दुःखस्य वा कोऽपि  
विद्यते विषयः, अतः सविषयकत्वनिर्विषयकत्वरूपविवेकधर्मा-  
ध्यासात् ज्ञानाभेदः सुखादीनामितिभावः ॥ ४ ॥

इतोऽपि सुखदुःखे भिद्येते ज्ञानादित्याह ।

सृति ज्ञानकारणे सति, कार्ययोः सुखदुःखयोः, अदर्शनात्  
अननुभवात्, न सुखदुःखयोर्ज्ञानान्तर्भावः, प्रत्यक्षसामग्र्यामनु-  
मितिसामग्र्याच्च सत्यां प्रत्यक्षमनुमितिर्वा भवन्ति, तत्र घटं पश्या-

सू० एकार्थसमवायिकारणान्तरेषु दृष्टत्वात् ॥ ६ ॥

उ० प्रत्यक्षज्ञानं वा भवेदनुमितिरूपं वा इन्द्रियार्थसन्निकर्षे स्व-  
क्चन्द्रनादिप्रत्यक्षे सुखत्वानुभवाभावात्, न द्वितीयः चन्द्र-  
नाद्यनुमितौ वज्राद्यनुमितौ वा सुखत्वदुःखत्वान्तराननु-  
भवात् एवं प्रत्यक्षविशेषेऽनुमितिविशेषे वा सुखदुःखयोरन-  
नुभवान्न तद्विशेषोऽपीति ॥ ५ ॥

भेदकान्तरमाह ।

सुखदुःखयोरिति विशेषः, सुखं प्रति एकार्थसमवेतानि अ-  
साधारणकारणानि, धर्मः, सुखे रागः, सुखकारणेच्छा,  
तदुपादानयत्नः, स्वक्चन्द्रनादिज्ञानम्, दुःखं प्रति तु  
अधर्मः, अनिष्टकण्टकादिज्ञानम्, एषु एकार्थसमवायिषु  
कारणेषु दृष्टत्वादित्यर्थः, ज्ञानानु निर्विकल्पकमेकार्थसम-  
वेतमसाधारणकारणं नापेक्षते एव, सविकल्पकत्वपेक्षते वि-  
शेषणज्ञानं तन्न कारणान्तरं स्वविजातीयं कारणं न भवति,

वि० नि वद्विमनुमिनोमोत्साद्यनुभवो भवति ननु सुखो दुःखो वेति  
सुखं दुःखं वा नैव भवितुमर्हति अत्र निर्विकल्पक इति आह ॥ ५ ॥  
निर्विकल्पकत्वात् विशेषकान्तरमाह ।

एकार्थसमवायिकारणान्तरेषु स्वसमानाधिकारविजातीय-  
कारणेषु सत्यु दृष्टत्वात् सुखदुःखयोरिति विशेषः । तथाच सुखं  
धर्मसुखरागसुखकारणेच्छासुखकारणोपादानमोचरप्रयत्नरूपान्  
स्वसमानाधिकारविजातीयगुणान् दुःखस्याधर्मकण्टकादिज्ञान-  
रूपान् अपेक्षते निर्विकल्पकत्वाच्च विषयेन्द्रियसन्निकर्षादेव

ख० एकदेशे इत्येकस्मिन् शिरः पृष्ठमुदरं मर्माणि  
तद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ॥ ७ ॥

उ० मनःसंयोगस्तु, साधारणत्वादविवक्षितः । यद्यपि स्थितिः  
संस्कारमसाधारणमपेक्षते तथापि तद्भेदः स्फुटसिद्ध एवेत्य-  
नुभवमादाय भेदचिन्तनान् । लौकिके यद्यपि व्याप्तिस्थितिप-  
क्षधर्मादिज्ञानापेक्षा तथाप्यन्तरशब्देनैव तद्बुद्धासः । तदयं  
प्रमाणार्थः सुखदुःखे अनुभवभिन्ने स्वसमानाधिकरणस्व-  
जातीयासाधारणकारणजन्यत्वात् स्थितिवदाद्यशब्दवच्च ॥ ६ ॥

ननु यदि कारणभेदाधीनो ज्ञानात् सुखदुःखयोः  
सुखाच्च दुःखस्य स्तम्भकुम्भादिवदेव परस्परं भेदः तदा  
शरीरस्य तदवयवानाञ्च शिरःपादपृष्ठोदरादीनां न  
परस्परं भेदः स्यात् तत्र हि परमाणुद्व्यणुकादीनां लोहित-  
रेतसोर्वा कारणानामविशेषादित्यत आह ।

एकदेश इति अवयवे इत्यर्थः, एकस्मिन्निति शरीरे इत्य-

वि० जायते न स्वसमानाधिकरणासाधारणकारणमपेक्षते, मनः-  
संयोगादृष्टादिकम् तत्र साधारणकारणमेव एवञ्च सुखं  
दुखं वा कथं निर्विकल्पकज्ञानान्तर्भूतं भवितुमर्हति कारण-  
वैषम्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥

ननु यदि कारणावैकल्यात् कार्यभेदस्तदा देहस्य तदवय-  
वानां करचरणशिरःपृष्ठोदरादीनाञ्चाभेदप्रसङ्गः सर्वत्रैकविध-  
योः सुकशोभितयोर्हेतुत्वादित्यत आह ।

एकस्मिन् देशे एकदेशे अवयवे शिरः पृष्ठम् उदरं मर्माणीति-

र्थः, शिर इत्येकदेशः उदरं पृष्ठं मर्माणि च स्याद्युप्रभृतीनि,  
 • तेषां विशेषो वैजात्यम्, तद्विशेषेभ्यस्तत्कारणविशेषेभ्यः, तत्रापि  
 • कारणवैजात्यादेव वैजात्यं नहि यज्जातीयं शिरःसमवायि-  
 कारं तज्जातीयमेवोदरपृष्ठादीरपि, तन्नुकपालाद्युपादान-  
 वैजात्यात् पटघटादौ वैजात्यवत्, तत्रापि वैजात्यसम्भवात्  
 तन्नुकपालादेरपि अंगुशुशर्करादिवैजात्यात् एवं तत्र तचाप्य-  
 न्वेष्टव्यं परमाणूनां साधारण्येऽपि स्वस्वोपादानवैजात्यस्य  
 सर्वत्र वैजात्यप्रयोजकत्वात् द्रव्यत्वेन त्वापादानमाजात्यं न  
 वैजात्यप्रयोजकमितिदिक् ॥ ७ ॥

इति श्रीशाङ्करे विशेषिकसूत्रोपस्कारे दशमाध्यायस्य  
 प्रथमाङ्गिकम् ॥ \* ॥

वि० व्यवहारविशेषा भवन्तीति पूरणीयम्, इतिकारश्च मर्माणीत्यन-  
 न्तरं योजनीयः, तथाच व्यवहाराणां वैलक्षण्यात् व्यवहर्त्तव्याना-  
 मपि वैलक्षण्यमावश्यकम्, तद्विशेषः व्यवहर्त्तव्यानां शिरःप्रभृती-  
 नां वैलक्षण्यश्च तद्विशेषेभ्यस्तेषां कारणानां ये विशेषास्तेभ्य एव,  
 इत्यश्च घटपटादीनामिदं शिरःप्रभृतीनामवयवानामपि स्वस्वस-  
 मवायिकारणवैजात्यादेव वैजात्यं समवायिकारणवैजात्यमपि  
 तत्समवायिकारणवैजात्यप्रयोज्यमेवं क्रमेण त्रसरेणुवैजात्यप-  
 र्यन्तं वाच्यम्, हायुकवैजात्यन्तु तत्तद्विजातीयकार्यजनकतावच्छेद-  
 कतया सिद्धम्, एवमसमवायिकारणसंयोगवैजात्यादपि केषा-  
 ष्चिद्वैजात्यं द्रव्यमधिकमन्यवानुसन्धेयमिति ॥ ७ ॥

इति श्रीजयनारायण-तर्कपञ्चानन-भट्टाचार्य-प्रणीतायां क-  
 शादसूत्रनिबन्धतौ दशमाध्यायस्याद्यमाङ्गिकम् ॥ \* ॥



सू० कारणमिति द्रव्यं कार्यसमवायात् ॥ १ ॥  
संयोगाद्वा ॥ २ ॥

उ० इदानीं प्रसङ्गतं क्लृप्ताणां कारणानां विशेषविशेषणमार-  
भते ।

कारणं समवायिकारणमिति प्रतीतिप्रयोगौ द्रव्ये  
द्रष्टव्यौ, कुत एवमत आह कार्यसमवायात् कार्याणि द्रव्य-  
गुणकर्माणि तत्रैव समवयन्ति यतः ॥ १ ॥

तत् किं समवायिकारणत्वमात्रं द्रव्याणामत आह ।  
पटोत्पत्तौ तन्नूनां समवायिकारणत्ववत् निमित्तका-

वे० प्रसङ्गात् कारणनिरूपणमारभते ।

कारणमिति समवायिकारणमिति व्यवहारो द्रव्य एव भवति  
कार्यसमवायात् समवायेन कार्याश्रयत्वात् नहि कार्यस्य क-  
स्यापि समवायेनाधारता द्रव्यभिन्नेषु पदार्थेषु विद्यते येन तत्रा-  
पि तद्व्यवहारः प्रसज्येतेत्यर्थः । अन्यथासिद्धिभ्रान्त्ये सति  
नियतपूर्वपरित्तत्वं कारणत्वमिति कारणसामान्यकक्ष्यम्, कारणं  
त्रिविधं समवायिकारणासमवायिकारणनिमित्तकारणभेदात्,  
तत्र समवायसम्बन्धेन तत्कार्याश्रयत्वं तत्समवायिकारणत्वं  
समवायेन कार्याश्रयत्वन्तु सामान्यतः समवायिकारणत्वम्, तत्र  
द्रव्य एव नान्यत्रेतिभावः ॥ १ ॥

न केवलं द्रव्यस्य समवायिकारणत्वं कार्यसमवायितया किन्तु  
असमवायिकारणाश्रयतयाऽपीत्याह ।

संयोगात् असमवायिकारणसंयोगाश्रयत्वाद्वा द्रव्ये समवायि-

उ० रणत्वमपि, तुरीतन्तुसंयोगस्यापि पटकारणत्वात् तत्संयोग-  
 • द्वारां तुर्यांस्तन्तोऽप्य पटनिमित्तकारणत्वमपि, वाकारः  
 संमुच्ये तुरीतन्तुसंयोगं प्रति तन्तोः समवायिकारणत्वेऽपि  
 पटं प्रति तद्द्वारा निमित्तकारणत्वात् ॥ १ ॥

वि० कारणमितिव्यवहार इत्यर्थः, अत्र संयोगपदमसमवायिकारण-  
 मात्रोपलक्षकम्, नह्यसमवायिकारणाश्रयत्वं द्रव्यादन्यस्मिन्नस्ति  
 येनातिप्रसक्तिः सम्भावनीया, असमवायिकारणत्वस्य गुणकर्म-  
 मात्रवृत्तित्वात्, नच घटरूपस्यासमवायिकारणं युक्तपालरूपं  
 तदाश्रयत्वस्य कपाले सत्त्वात् घटरूपस्य समवायिकारणं कपाल-  
 मिति व्यवहारः स्यात् न स्याच्च घटोघटरूपस्य समवायिकारण-  
 मितिव्यवहार इति वाच्यं कारणाताघटकसम्बन्धेनासमवायि-  
 कारणाश्रयत्वस्यैव तादृशव्यवहारनिर्वाहकत्वात्, कपालरूपस्य  
 स्वसमवायिसमवायसम्बन्धेनैव कार्यजनकत्वात् तादृशसम्बन्धेन  
 तस्य कपालेऽसत्त्वात् घटेऽसत्त्वाच्च, नच कपालेयगुणकर्मसामान्ये-  
 ष्वपि तादृशसम्बन्धेन तदीयरूपस्य विद्यमानत्वात्तेषु तादृशव्य-  
 वहारप्रसङ्ग इति वाच्यमसमवायिकारणाश्रयत्वस्यैव सम-  
 वायिकारणव्यवहारनियामकत्वोपगमात्, वस्तुतः समवायिका-  
 रणमितिसामान्यव्यवहारनियामकमसमवायिकारणसंयोगाद्या-  
 श्रयत्वमितिवैतत्तूपेण सूचितं नतु विशेषव्यवहारनियामकं  
 तदित्येव तत्त्वम्, अतएव त्रितन्तुकपटरूपस्य समवायिकारणं  
 पञ्चतन्तुकः पट इति व्यवहारः स्यात् तदसमवायिकारणस्य तन्तु-  
 रूपस्य स्वसमवायिसमवायसम्बन्धेन पञ्चतन्तुकपटेऽपि सत्त्वात्  
 न स्याच्च श्रैलः श्येनश्रैलसंयोगस्य समवायिकारणमितिव्यवहार-  
 त्तदसमवायिकारणस्य कर्मणः श्रैलेऽसत्त्वादिनि पूर्वपक्षोऽपि  
 निरस्त इति संक्षेपः ॥ २ ॥

हृ० कारणे समवायात् कर्माणि ॥ ३ ॥

उ० कर्माणि यादृशकारणत्वं तदाह ।

असमवायिकारणानीति शेषः असमवायिकारणत्वञ्च कार्यकारणभावसम्बन्धकार्यसमवेतकारणत्वं तेषु कार्यकार्यसमवायात् कारणैकार्यसमवायाद्वा तत्राद्या लघ्वी द्वितीया महतीति वैशेषिकपरिभाषा, तत्र कयाप्रत्यासत्त्या संयोगविभागसंस्कारान् प्रति कर्माणामसमवायिकारणत्वमित्यत आह कारणे समवायात् कारणे संयोगादिसमवायिकारणे समवायात् तथाच कार्यकार्यसमवायलक्षणया लघ्व्या प्रत्यासत्त्य संयोगादौ कर्माणाऽसमवायिकारणत्वमित्यर्थः ॥३॥

वि० असमवायिकारणव्यवहारः कुत्र भवतीत्याकाङ्क्षायामाह ।

कर्माणि असमवायिकारणानीति व्यवहारः कारणे संयोगविभागवेगस्थितिस्थापकानां समवायिकारणे समवायात् समवायसम्बन्धेन सत्त्वात्, तथाच समवायसमवायिसमवायान्यतरसम्बन्धेन समवायिकारणप्रत्यासन्नत्वे सति कारणत्वमेवासमवायिकारणत्वं तत्र संयोगादीनामसमवायिकारणे कर्माणि समवायसम्बन्धेन तत्समवायिकारणप्रत्यासन्नत्वादसमवायिकारणव्यवहारः । नच इच्छादिकार्थाणां ज्ञानादिकारणेऽसमवायिकारणव्यवहारापत्तिः, सामान्यलक्षणे आत्मविशेषगुणभिन्नत्वस्य विशेषणीयत्वात्, नच तुरीतन्तुसंयोगस्य पटासमवायिकारणत्वपत्तिः एवं वेगादीनामभिघाताद्यसमवायिकारणत्वापत्तिरिति वाच्यं पटासमवायिकारणलक्षणे तुरीतन्तुसंयोगभिन्नत्वस्या-

तथा रूपे कारणैकार्थसमवायाच्च ॥ ४ ॥

उ० रूपदीनां गुणानामवयववर्तनानामवयविगुणादिषु को-  
दृशी कारणतेत्यपेक्षायामाह । ०..

रूप इति रूपरसगन्धस्पर्शसंज्ञापरिमाणपृथक्त्वगुह्य-  
द्रव्यत्वस्नेहाद्युपलक्षयति, तथेत्यसमवायिकारणत्वमिति दिश-  
ति, कारणैकार्थसमवायादिति अवयविरूपादीनां समवा-  
यिकारणं यदवयविव तेन सहेकार्थसमवायेन महत्या प्रत्या-  
सक्त्याऽवयविरूपादिकमारभते, तद्यथा कपालरूपादि घटे  
रूपादिकमारभते इति सर्व्वत्र द्रष्टव्यम्, चकारादमीषां /  
क्वचिन्निमित्तत्वमपि समुच्चिनोति ॥ ४ ॥

वि० भिघाताद्यसमवायिकारणलक्षणे वेगादिभिन्नत्वस्य चानायक्त्या-  
विशेषणीयत्वात्, तुरीतन्तुसंयोगस्तु, तुरीपटसंयोगं प्रति वेगा-  
दिकं वेगस्यन्दादिकं प्रत्यसमवायिकारणं भवत्ववेति तत्तल्लक्षणे  
तत्तद्भिन्नत्वं न देयमेवेति संक्षेपः ॥ ३ ॥

अवयवरूपादीनामवयविरूपादिकं प्रति परम्परयैवासमवा-  
यिकारणत्वमित्याह ।

रूपेऽवयवगतरूपादिषु कारणैकार्थसमवायात् स्वसमवायि-  
समवायरूपप्रत्यासत्तितः तथा ऽवयवविगतरूपादीनामसमवायि-  
कारणत्वव्यवहार इत्यर्थः, कपालरूपादिकं स्वसमवायिसमवाय-  
सम्बन्धेन घटाद्यवयवविनि समवायिकारणे वर्तमानं घटरूपाद्य-  
समवायिकारणं भवति तत्र परम्परसम्बन्धस्थलेऽसमवायिका-  
रणतायामहतीति वैशेषिकाणां परिभाषा साक्षात् सम्बन्धस्थले  
च लब्धीति परिभाषेति संक्षेपः ॥ ४ ॥

सू० कारणसमवायात् संयोगः पटस्य ॥ ५ ॥  
कारणकारणसमवायाच्च ॥ ६ ॥

उ० द्रव्यारणे संयोगस्य समवाधिकारणस्य लक्ष्णी प्रत्यास-  
त्तिमाह ।

कारणे समवाधिकारणे समवायात् संयोगोऽपि पटादौ  
कार्ये कार्यैकार्थसमवायलक्षणया प्रत्यासत्त्याऽसमवायिका-  
रणमित्यर्थः, पटपदेन कार्यद्रव्यमात्रमुपलक्षयति तत्र ल-  
वयवावयवसंयोगोऽपि पटादेरसमवाधिकारणं तदा कर्तव्ये-  
कार्थसमवायोऽपीतिकश्चित् ॥ ५ ॥

संयोगस्य क्वचित् महत्या प्रत्यासत्त्या कारण-  
त्याह ।

द्वलपिण्डावयवे वर्तमानः प्रचयाख्यः संयोगस्तूलकपि-  
ण्डे महत्त्वमारभते तत्र कारणैकार्थसमवायः प्रत्यासत्तिरि-  
त्यर्थः ॥ ६ ॥

वि० द्रव्ये संयोगस्याऽपि साक्षात् सम्बन्धेनैवासमवाधिकारणत्वमि-  
त्याह ।

समवाधिकारणे तन्नौ समवायेनैव तन्वोः संयोगो वर्तते इति  
पटं प्रति साक्षात् सम्बन्धेनैवासमवायिकारणमित्यर्थः ॥ ५ ॥

संयोगस्य क्वचित् कार्ये परम्परयाप्यसमवाधिकारणत्वमस्ती-  
त्याह ।

कारणस्य समवायिकारणस्य कारणे समवायिकारणे समवा-  
यात् समवायसम्बन्धेन वर्तमानत्वात् संयोगः क्वचित् असम-

६० संयुक्तसमवायाद्भेदवैशेषिकम् ॥ ७ ॥

७० एवं समवायिनिरूपितां कारणतां निरूप्य निमित्तकारणतां निरूपयितुं प्रकरणान्तरमारभते ।

अभेदवैशेषिकं विशेषगुणश्रौष्यं संयुक्तसमवायात् पाकजेषु निमित्तकारणम् । उपलक्षणञ्चैतत् ज्ञानं प्रति सर्वेषां निमित्तकारणत्वं बुद्धिसुखदुःखेच्छादेषप्रयत्नधर्माधर्माभावानां निमित्तकारणत्वमेव सुखादीनां भेदप्रतिपादनाय प्रपञ्चोऽयं द्रष्टव्यः ॥ ७ ॥

इदानीमाद्यायप्रामाण्यं द्रढयितुमुक्तमेवार्थमाह ।

वि० वायिकारणं भवति, यथा तूलकपिण्डमहतरिमाणरूपकार्ये तदवयवगतः शिथिलाश्वसंबोग इति ॥ ६ ॥

निमित्तकारणतां निरूपयति ।

अभेदवैशेषिकं विशेषगुणात्मकमौघ्यं संयुक्तसमवायात् पाकजरूपादौ निमित्तकारणम्, तथाच पाकजं प्रति स्वाश्रयसंबोगसम्बन्धेन उष्णस्पर्शानिमित्तकारणम्, समवायिकारणासमवायिकारणभिन्नं कारणं निमित्तकारणमिति सामान्यलक्षणं बोध्यम् । अवशिष्टानां परीक्षा उक्तदिशैव कर्तव्येति मुनीनामभिप्रायः नातस्तेषां न्यूनतेति ।

तदेवं पदार्था निरूपिताः साधर्म्यं वैधर्म्यञ्च निरूपितम्, कर्मभिः शुद्धचित्तानामेवैतच्छास्त्रात् मननं भवति, नाशुद्धचित्तानाम्, कर्मणां चित्तशुद्धिजनकत्वञ्च विविदिषन्तीति श्रुत्योक्तं तत्पूर्वाह्णमपि दार्ढ्यार्थं पुनराह ।

सू० दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाभावे प्रयोगोऽभ्यु-  
दयाय ॥ ८ ॥

उ० दृष्टानां प्रमाणत उपलब्धानां कर्मणां यागद्वन्द्वाना-  
दीनां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टमुपदिष्टं प्रयोजनं येषां तथा-  
हि “स्वर्गकामोयजेत” “अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम”  
इत्यादौ विधिसमभिव्याहृतमेव फलम्, क्वचिदार्थवादिकं  
यथा “यएता रात्रोरधीयीत तस्य पितरोऽघृतकुल्यामधुकु-  
ल्याः चरन्ति” इत्यादौ, क्वचिद्वैपादानिकम्, यथा “विश्व-  
जितायजेत” इत्यादौ, अत्र हि न विधिसमभिव्याहृतं ना-  
र्थवादोपस्थितमित्यौपादानिकं काल्पनिकं स्वर्गस्यैव स्वतः  
सुन्दरस्य फलस्य कल्पनीयत्वात्, तथाचाशुतरविनाशिनो-  
मतेषां कर्मणां चिरभाविने फलाय कारणत्वमनुपपद्यमान-  
मतएतेषां प्रयोगोऽनुष्ठानमभ्युदयायापूर्वाद्येत्यर्थः । ननु  
श्रुतिप्रामाण्ये षति स्यादेवं तदेव तु दुर्लभं नहि मीमांसका-  
नामिव नित्यनिर्दोषत्वेन श्रुतिप्रामाण्यं त्वयेत्यते पौरुषेयत्वे-

वि० दृष्टानां विधिदृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टं विध्यर्थवादादिना  
ज्ञातं प्रयोजनं येषां तथाविधानां कर्मणां यज्ञदानतपःप्रभ-  
वीनां प्रयोगोऽनुष्ठानं दृष्टानां तत्तत्कर्मफलानामभावे तत्तत्-  
फलकामनाविरहादसम्भवे अभ्युदयाय चित्तशुद्धिप्रयुक्तविविदि-  
घात्मकफलाय भवति तथाच “स्वर्गकामोऽश्वमेधेन यजेत” इत्या-  
दिविधिविहितानां स्वर्गाद्यात्मकप्रतिनियतप्रयोजनानां कर्मणां

लतायाः प्राणतोषणाः कारकाङ्गामतोषणात् ।

विद्यालङ्कारविख्याताद्योऽलङ्कारमथागमत् ॥ ८ ॥

अस्ति स्वस्तिमदूर्जितार्थनिवहं भूषायमाणं भुवः ।

कल्क्याताङ्गरं सुधाब्जिलहरीन्यकारिसौधोज्ज्वलम् ॥

द्वारेगङ्गममुष्य चाङ्गमिव यां प्राखापुरी प्रालिका ।

तत्रासीद्गुधवन्द्वन्दितगुणाभोधिर्जगन्मोहनैः ॥ ९ ॥

तर्कसिद्धान्तनामासाववतीर्णः कलौ युगे ।

गीष्पतिर्मानवीं लीलां कर्तुमिच्छन् मच्चोतले ॥ १० ॥

सत्तर्ककर्कशमतेः सहजानुभाव—

वाग्वैभवस्फुरितनिर्जितवादिद्वन्दात् ।

यस्तर्कदर्शनमितः स्थिरधीरधीत्य

वादस्फुरद्गुधसमाजसमादृतोऽभूत् ॥ ११ ॥

तथा गुर्जरदेशीयाद्यो नाथूरामप्रास्त्रिणः ।

वाग्देव्याः पौत्रुवाङ्मूपाद्देदान्तादीन्यधीतवान् ॥ १२ ॥

कल्क्याताराजधान्यन्तर्विराजत्पाठमन्दिरे ।

दर्शनाध्यापने राज्ञा यः पट्टीक्ष्य नियोजितः ॥ १३ ॥

यो नारिकेलडाङ्गाख्यस्थले लोहाध्वसन्निधौ ।

निवसन् सुधियः शिष्यार्नध्यापयति सन्ततम् ॥ १४ ॥

यस्य ज्येष्ठः प्रालिकायां मठे श्रीमधुसूदनः ।

पाठयत्यधुना तर्कं तर्कवागीश्वविश्रुतः ॥ १५ ॥

प्राक्के दृग्गजशैलसोमविमिते वर्षे ततं भारतम् ।

कानिड्नामनि राजनोह नयतः संप्रासति श्रीमति ॥

चैत्रे मासि कणादसूत्रविद्वतिः सिद्धान्तसंघाद्वति—

नीता तेन समाप्तिमत्र मुदिता भूयादशेषेश्वरः ॥ १६ ॥

यदत्र रत्नलितं किञ्चित् प्रमादेन भ्रमेण वा,

मान्या मयि दयावन्तः सन्तः संशोः यन्तु तत् ॥ १७ ॥



वैशेषिकदर्शनम् ।

समितिर्महतोदानीमासियाखण्डमण्डनी ।

विद्यावारिधिभिः सभ्यैर्भूषिता भाति भूतले ॥ १८ ॥

बहुवागीशसंयोगाद्वियोगात्तमसस्तथा ।

याऽधस्वकार नित्तराममन्दा देवसंसुदम् ॥ १९ ॥

कीर्त्तिः कधीनां प्राचीनाऽतिजीर्णा यत् प्रभाङ्गतः ।

यौवनं पुनरादत्तेऽमरत्वमपि गच्छति ॥ २० ॥

सारान् स्वकीयानादायासियामूमिर्भयादिव ।

यदालयपुरीभूत्वा शङ्के यां शरणं गता ॥ २१ ॥

तदाज्ञया किल दधती समुद्रता—

न्तथागता मृतिपदवोसमीपतः ।

कणादभूरतिजरती सरस्वती

कलेवरं पुनरवहन्मनोहरम् ॥ २२ ॥

॥ \* ॥ अत्रैव शिवम् ॥ \* ॥

# वैशेषिकदर्शनस्य

## शुद्धिपत्रम् ।

| शुद्धाङ्काः । | पुस्तक्यङ्काः । | अशुद्धानि ।               | शुद्धानि ।           |
|---------------|-----------------|---------------------------|----------------------|
| २             | ८               | मनसिहृत्य .. ..           | मनसि हृत्वा          |
| २             | १३              | मृतत्वमिति .. ..          | मृतत्वम्" इति        |
| ५             | ६               | नियमादिति" .. ..          | नियमात्" इति         |
| ५             | २२              | यज्ञेनेत्यादि" .. ..      | यज्ञेन" इत्यादि      |
| ६             | ७               | आत्यन्तकोदुख .. ..        | आत्यन्तिकी दुःख      |
| ६             | १६              | व्यापकं .. ..             | व्यापकम्             |
| ६             | १६              | किं .. ..                 | किम्                 |
| ७             | १६              | जुहोतीति" .. ..           | जुहोति" इति          |
| ७             | २२              | मानं .. ..                | मानम्                |
| ८             | ११              | दोषेभ्य" .. ..            | दोषेभ्यः"            |
| ८             | १७              | यज्ञोक्तम्- .. ..         | यज्ञोक्तम् "अ        |
| ८             | १६              | दोषेभ्य" .. ..            | दोषेभ्यः"            |
| ८             | २३              | कला .. ..                 | "कला                 |
| ८             | २४              | कलावत .. ..               | कलावतः"              |
| १०            | २५              | मननं .. ..                | मननम्                |
| ११            | २१              | योग .. ..                 | योग                  |
| १३            | २१              | विदित्वेति .. ..          | विदित्वा" इत्यादि    |
| १४            | १२              | भावेवा- .. ..             | भावेवा               |
| १४            | १७              | भाव" इति .. ..            | भावः" इति            |
| १४            | १६              | न्यायस्त्रीलावण्यां .. .. | न्यायस्त्रीलावण्याम् |
| १४            | २२              | वल्यां .. ..              | वल्याम्              |
| १५            | ७               | समाप्तं .. ..             | समाप्तम्             |
| १५            | ८               | ब्रह्मेति .. ..           | ब्रह्म" इति          |

| श्रुत्याः । | पञ्चम्याः । | अश्रुतानि ।                    | श्रुतानि ।                        |
|-------------|-------------|--------------------------------|-----------------------------------|
| १५ ..       | १६ ..       | सप्तधर्माः ..                  | सप्त धर्माः                       |
| १७ ..       | १८ ..       | मथ्यतां ..                     | मथ्यताम्                          |
| १८ ..       | २० ..       | वाच्यं ..                      | वाच्यम्                           |
| २० ..       | १३ ..       | लोकानां ..                     | लोकानाम्                          |
| २० ..       | १६ ..       | नौस्थानां ..                   | नौस्थानम्                         |
| २१ ..       | २० ..       | गुणाः इति ..                   | गुणाः इति                         |
| २२ ..       | ३ ..        | जनकत्वं ..                     | जनकत्वम्                          |
| २२ ..       | ८ ..        | वचनं ..                        | वचनम्                             |
| २३ ..       | १२ ..       | { पयां अवक्षेपणं<br>आकुञ्चनं } | { पयाम् अवक्षेपणम्<br>आकुञ्चनम् } |
| २४ ..       | २१ ..       | कारणत्वं ..                    | कारणत्वम्                         |
| २५ ..       | ३ ..        | यत्नेन ..                      | यत्नेन                            |
| २५ ..       | ८ ..        | क्षेपणं ..                     | क्षेपणम्                          |
| २७ ..       | १५ ..       | नवापादि- ..                    | नवा पादि-                         |
| २७ ..       | १६ ..       | सामान्यंसद्विशेषो ..           | सामान्यं सद्विशेषो                |
| २८ ..       | ७ ..        | दिभ्यः इति ..                  | दिभ्यः इति                        |
| २८ ..       | १३ ..       | मत्त्वं अनित्यत्वं ..          | मत्त्वमनित्यत्वं                  |
| ३० ..       | १४ ..       | मेव द्रव्य- ..                 | मेव द्रव्य-                       |
| ३७ ..       | २ ..        | तथागुणाः ..                    | तथा गुणाः                         |
| ४१ ..       | ५ ..        | गुणानां ..                     | गुणानाम्                          |
| ४८ ..       | २२ ..       | शास्त्रार्थः इत्यपि ..         | शास्त्रार्थः इत्यपि               |
| ५० ..       | ४ ..        | नियमः इत्यप्युचितम् ..         | नियमः इत्यप्युचितम्               |
| ५१ ..       | १७ ..       | विशेषत्वम् । ३ ॥ ..            | विशेषत्वम् ।                      |
| ५३ ..       | १५ ..       | समर्थकः इति ..                 | समर्थकः इति                       |
| ५३ ..       | १६ ..       | संग्रहः इति ..                 | सङ्ग्रहः इति                      |
| ५५ ..       | ५ ..        | तथास्तु ..                     | तथास्तु                           |

वैशेषिकदर्शनस्य शुद्धिग्रन्थम् ।

| शब्दरूपाः । | पर्यायरूपाः । | अशब्दानि ।           | शब्दानि ।          |
|-------------|---------------|----------------------|--------------------|
| ५५ ..       | १३ ..         | भावःसत्ता ..         | भावः सत्ता         |
| ५६ ..       | २३ ..         | समुच्चय-             | समुच्चयः           |
| ५७ ..       | १८ ..         | नुमानं ..            | नुमानम्            |
| ६० ..       | १५ ..         | नाऽननु ..            | नाननु              |
| ६३ ..       | ४ ..          | कर्म्मत्वतद्वा ..    | कर्म्मत्वं तद्वा   |
| ६५ ..       | १२ ..         | समाधिकरण ..          | समानाधिकरणं        |
| ६६ ..       | ९ ..          | तिक्ताकार ..         | तिक्तां कार        |
| ६६ ..       | १८ ..         | रूपानुमितिः ..       | रूपाऽनु मितिः      |
| ६७ ..       | १६ ..         | भासं ..              | भासम्              |
| ६८ ..       | १० ..         | वत्त्वात् ..         | वत्त्वात्          |
| ६८ ..       | १६ ..         | त्वेवाऽवि ..         | त्वेवावि           |
| ७१ ..       | ५ ..          | रसाऽना ..            | रसाना              |
| ७२ ..       | २३ ..         | यदुष्ण ..            | यउष्ण              |
| ७३ ..       | ५ ..          | नाऽनल ..             | नानल               |
| ७८ ..       | २१ ..         | रूपाऽना ..           | रूपाना             |
| ७९ ..       | ६ ..          | कृतस्याऽग्रहणस्याऽभि | कृतस्याग्रहणस्याभि |
| ७९ ..       | १३ ..         | न्यस्याऽनु ..        | न्यस्यानु          |
| ८१ ..       | १० ..         | एवाऽनुद्भूत ..       | एवानुद्भूत         |
| ८४ ..       | २१ ..         | नवार्था ..           | नवाऽर्था           |
| ८५ ..       | १४ ..         | चरितत्वेनाऽनुप ..    | चरितत्वेनानुप      |
| ८५ ..       | २० ..         | तस्यभावो ..          | तस्य भावो          |
| ९० ..       | १० ..         | तत्राऽष्ट ..         | तत्राष्ट           |
| ९१ ..       | ११ ..         | नाऽनुमितिः ..        | नानुमितिः          |
| ९२ ..       | २० ..         | वेतस" ..             | वेतसः"             |
| ९४ ..       | ११ ..         | कर्म्मरूपि ..        | कर्म्मरूपि         |
| ९६ ..       | १९ ..         | अजिह्वं आकाश ..      | अजिह्वमाकाश        |

| श्रुत्याः । | पङ्क्त्याः । | अश्रुत्याः ।    | श्रुत्याः ।      |
|-------------|--------------|-----------------|------------------|
| १०१         | २            | परिशेषा         | परिशेषा          |
| १०१         | २१           | सिद्ध           | सिद्धम्          |
| १०२         | २३           | वद् द्रव्य      | वद् द्रव्य       |
| १०४         | ४            | इतिद्या         | इतिरा            |
| १०७         | १४           | द्रव्यत्व       | द्रवत्व          |
| १०८         | १०           | रभमान           | रभमाय            |
| ११०         | २१           | उन्वेष          | उन्नेय           |
| ११०         | २४           | वृत्ता          | वद्रव्यत्वा      |
| ११३         | ५            | वलादेत          | वलादप्येत        |
| ११३         | ७            | एतत् काल        | एतत्काल          |
| ११८         | १७           | हितत्व          | हितत्वा          |
| १२२         | २२           | दृष्ट           | दृष्टे           |
| १३५         | १२           | कार्थी रैषमो    | कार्थिरैषमो      |
| १३५         | १६           | इत्यादि         | इत्यादिका        |
| १३६         | १५           | नानाकृपाय       | नाना, कृपाय      |
| १३७         | १७           | इत्यादि         | इत्यादिका        |
| १४७         | १४           | मपिनत्य         | मपि नित्य        |
| १४९         | ६            | दिनाकर          | दिना कर          |
| १४९         | १६           | सत्त्वाच्च नियत | सत्त्वाच्च, नियत |
| १५१         | ३            | वज्रे           | वज्रे            |
| १५१         | ६            | प्रसङ्गात्      | प्रसङ्गात्,      |
| १५१         | १२           | करणात्वं        | करणात्वम्        |
| १५२         | ४            | यावत् स्व       | यावत्स्व         |
| १५२         | ७            | यावत् साध       | यावत्साध         |
| १५२         | १२           | वज्रि           | वज्रि            |
| १५२         | १४           | वज्र्य          | वज्र्य           |

वैशेषिकदर्शनस्य शुद्धिप्रश्नम् ।

| शुद्धाङ्काः । | परम्पराङ्काः । | अशुद्धानि ।               | शुद्धानि ।                                 |
|---------------|----------------|---------------------------|--|
| १५२           | १५             | वक्ति                     | वक्ति                                      |
| १५२           | २०             | कतनीय                     | कलनीय                                      |
| १५३           | ८              | व्यापकं                   | व्यापकम्                                   |
| १५४           | १२             | चारित्वे न                | चारित्वेन                                  |
| १६४           | २              | दृष्टपरत्र                | दृष्टे परत्र                               |
| १६५           | ९              | भावाऽभावश्च               | भावोऽभावश्च                                |
| १७३           | २२             | खैव                       | खेव  |
| १८४           | २२             | प्रयोगानां                | प्रयोगाणां                                 |
| २०२           | २०             | नरूप                      | तेन रूप                                    |
| २०८           | ११             | विशेषगुणानाञ्चय           | गुणानाञ्चय                                 |
| २१३           | ८              | मुखतो                     | मुखतो                                      |
| २२८           | ४              | यत्र पूण्य                | यत्र न पूण्य                               |
| २२९           | ३              | कारणम्                    | कारणकम्                                    |
| २३७           | १९             | द्रवत्व                   | द्रवत्व                                    |
| २३७           | २३             | नाद्येति                  | नाद्येति                                   |
| २३९           | २१             | {ऽसम वायिका<br>रयं तदृष्ट | {ऽसमवायिकारणं<br>तादृष्ट                   |
| २४४           | २              | {मग्नानामनसश्चाद्यं       | {मग्नमनसोश्चाद्यं, वरद-<br>राजदृतेऽयं पाठः |
| २५५           | ९              | १६                        | २६   |
| २५६           | १              | वशे                       | वैशे                                       |
| २५६           | १५             | तमो ह्यरन्                | तमो ह्यरन्                                 |
| २६२           | १३             | संसर्गात्                 | संसर्गात्                                  |
| २७०           | १४             | अमा                       | “अमा                                       |
| २७०           | १५             | दद्यत्                    | “दद्यात्”                                  |
| २७०           | २०             | कर्म                      | कर्म,                                      |

| श्रुत्याः। | पञ्चमः। | अशुद्धानि।     | शुद्धानि।   |
|------------|---------|----------------|---|
| २७०        | २३      | कृन्ताघ        | सन्तोष  |
| २७१        | ३       | नपधा           | नुपधा   |
| २७२        | १२      | मर्ज्येदि      | मर्ज्येत् ३   |
| २७२        | १२      | बोधितम्        | बोधितम्   |
| २७२        | १६      | शस्त याज       | शस्त-याज  |
| २८०        | ८       | धर्माधर्मा     | धर्माधर्मा  |
| २८७        | ६       | त्वानुपयत्ते   | त्वापत्ते   |
| २८१        | २       | स्थल           | स्थले   |
| २८६        | १६      | चात्कृष्ट      | चोत्कृष्ट   |
| ३०१        | ११      | महत्त्वेऽपि    | महत्त्वे अपि  |
| ३०१        | २३      | गणा            | गुणा  |
| ३०८        | १७      | परमह           | परम मह  |
| ३०६        | ६       | परमह           | परममह   |
| ३०६        | २१      | परत्वो         | परत्वयोश्च  |
| ३१२        | २४      | स्मृतेः पञ्चमी | स्मृतेः "एथग्विनानानाभिः" इत्यादि पाणिनिद्वयस्यच पञ्चमी |
| ३१२        | १२      | द्विषोप        | द्विशेषोप   |
| ३२७        | २१      | भेदा           | भेदात्  |
| ३३०        | २०      | विभागन         | विभागं न  |
| ३३०        | २२      | विभगो          | विभागो  |
| ३३३        | ७       | यत्तु          | यत्तु तु  |
| ३३८        | २२      | समुत्पिञ्ज     | समुत्पिञ्ज  |
| ३४१        | २       | एवि प्र        | एविप्र  |
| ३४१        | २३      | कालाभ्यामित    | कालाभ्यामिति  |
| ३५५        | २       | द्रव्येष       | द्रव्येषु   |

|                |  |  |           |
|----------------|--|--|-----------|
| शब्दाः ।       | पञ्चम्याः ।  | शब्दानि ।  | शब्दानि । |
| ३५६ .. १८ ..   | दो धर्माः  | द्वयो धर्माः   |           |
| ३५६ .. ६ ..    | सार्थं .. ..   | सा अर्थ  |           |
| ३६० .. २२ ..   | प्रत्यक्ष .. ..  | प्रत्यक्षे   |           |
| ३६४ .. ८ ..    | यन .. ..   | येन  |           |
| ३६६ .. १५ ..   | तन्वेवं .. ..  | तन्वेवं  |           |
| ३६८ .. १६ ..   | शब्दबोध .. ..  | शब्दबोध*   |           |
| ३७४ .. २२ ..   | प्रागभावे .. ..  | प्रागभावे  |           |
| ३७७ .. २० ..   | योगितत् प्रागभाव   | योगि-तत्प्रागभाव   |           |
| ३७९ .. १८ ..   | विवक्षित .. ..   | विवक्षितम्   |           |
| ३८१ .. २३ ..   | नैकइति .. ..   | नैकेति   |           |
| ३८९ .. १३ ..   | योजनाज .. ..   | योगज   |           |
| ३९८ .. १६ ..   | समभिव्यवहारा ..  | समभिव्याहारा   |           |
| ४०१ .. ८ ..    | कृत्वान्वयि .. ..  | कृत्वान्वयि  |           |
| ४०१ .. १० ..   | शुद्धध्वनि .. ..   | शुद्धध्वनि   |           |
| ४०१ .. १३ ..   | दशसंख्या .. ..   | दश संख्या  |           |
| ४०१ .. १७ ..   | तद्बोधक .. ..  | तद्बोधक  |           |
| ४०१ .. १८ ..   | आकाङ्क्षादि .. ..  | आकाङ्क्षादि  |           |
| ४०२ .. १७ । १८ | { अपदेशस्यानुमित्यज-<br>नकत्वस्योक्तत्वादिति }           | { अपदेशस्य स्वरूपा-<br>च्छादरूपतयाऽनु-<br>मित्यजनकत्वादिति } |           |
| ४०२ .. १९ ..   | परिभाषया हेत्वाभासे,                                     | स्वरूपाच्छादनने  |           |
| ४०३ .. ९ ..    | मितिवुद्ध्य .. ..  | मिति-बुद्ध्य   |           |
| ४०३ .. १७      | { हेत्वाभासमात्र बो-<br>धकाः हेत्वाभास-<br>स्थान .. .. } | { स्वरूपाच्छादनमात्र-<br>बोधकाः स्वरूपाच्छा-<br>दनस्थान }    |           |
| ४०५ .. ४ ..    | कारीवाच्यः .. ..   | कारी वाच्यः  |           |



|              |                 |                |                                     |
|--------------|-----------------|----------------|-------------------------------------|
| पञ्चाङ्गाः । | पङ्क्त्यङ्गाः । | शशद्धानि ।     | शद्धानि ।                           |
| ४०६          | १९              | हृटे वटे       | इह वटे                              |
| ४०८          | २२              | स्तत् सह       | स्तत्सह                             |
| ४१०          | १८              | तिथिनम्        | तिथिम्                              |
| ४१५          | ९               | नवमेऽध्यायः    | { नवमाध्ययस्य द्वितीय-<br>माहिकम् } |
| ४२७          | ३               | मयवि           | मवयवि                               |
| ४२७          | ६               | द्रव्यत्व      | द्रवत्व                             |
| ४२९          | २३              | द्रव्यार्थं    | दाह्यार्थं                          |
| ४३२          | ४               | सम्भावन्ते     | सम्भावन्ते                          |
| ४३३          | १६              | निरवयवानि      | निरवयवाणि                           |
| ४३५          | ३               | करकयाः         | करकयोः                              |
| ४४१          | ११              | चेतनोह         | चेतनोऽह                             |
| ४४७          | १५              | व्यापिकाबहु    | व्यापिका बहु                        |
| ४५३          | १२              | वर्त्तते       | वर्त्तते                            |
| ४५६          | १०              | सक्तका         | सक्तुका                             |
| ४५७          | २४              | भागजनकं        | भागजनकं                             |
| ४५९          | १९              | विशेष्यतिशेष्य | विशेष्यविशेष्य                      |
| ४६२          | २४              | रेखात्मकं      | रेखात्मकं                           |
| ४६८          | ३४              | रूपादिकारणता   | रूपादिनिष्ठकारणता                   |

॥ \* वैशेषिकदर्शनस्य शुद्धिपत्रं समाप्तम् \* ॥

एतस्यास्तनुतनुतामियेष संसत् सम्भूता विवृतिरिचं ततः कृशाङ्गी ।  
सद्रूपा रसलसितैर्गुणप्रकाशैः सद्भावैरपि समितेस्तनोतु मोदम् ॥





